पौरी—(सं०) (१) वह अन्न, जिसमें सद्यः अंकुर निकला हो (द० प० मै०)। दे०—पुआरी।
[पौरी < पुरु- (?)]।

पौरी—(सं०) (२) वह क्षेत्र, जिसमें कोल्हू का बैल घूमता है। दे०—पौट, पौदर।
[पौर+ई (प्र०); पौर < प्रतोली (?)]।

पौरी—(सं०) (३) ऊख के कोल्हू के नजदीक का वह क्षेत्र, जिसमें बैल घूमता है। (सं० उ०, पट०, गया, द० भाग०)। दे०—गोरपौर।
[पौरी < प्रतोली (संस्कृ०); पओली (प्रा०)]।

पौरी—(सं०) (४) संपूर्ण नदी के पाट को छेंकनेवाला मछली पकड़ने का वह जाल, जिसमें ऊपर तो तूंबा बँधा रहता है और नीचे ईंट। किनारे पर से ही उसकी रस्सी खींची जाती है, न कि नाव पर से।
[पौरी < पुरु- (?)]।

पौरी, पौर—(सं०) खलिहान में दाँवने के लिए छींटी हुई तैयार फसल (पू० मै०)। दे०—पैर।
[पौरी < पुरु- (?)]।

पौला—(सं०) एक प्रकार की खड़ाऊँ, जिसमें खूंटी के बदले रस्सी लगाई जाती है (घाघ)।

'सूथन पहिरि हर जोतै; औ पौला पहिरि निरावै।
घाघ कहै ई तीनो भकुआ; सिर बोझा औ गावै।'
—घाघ।

पौह—(सं०) (१) परती जमीन जोतने के दो वर्ष बाद का खेत (पट०, द० मुं०)। दे०—खील।
[पौह < पुरन्ध्रि-(?) = अवन्ध्या]।

प्यास—(सं०) (१) एक प्रकार की चोईंटा-रहित मछली (सा०-१)। (२) पीने की इच्छा।

फ

फँदनी—(सं०) बरतन के गले के चारों ओर लपेटी हुई रस्सी की फाँस (गया)। दे०—अरवन।
[फँद + नी (प्र०); फंदा < स्पन्द-]।



फंदा—(सं०) (१) रस्सी या किसी और वस्तु की गाँठ। (२) रस्सी का विशेष प्रकार का बना गोल घेरा, जो बाँधने के लिए पशुओं के गले में या लोटे के गले में लगाया जाता है। (३) जाल, बंधन।



फंदिया—(सं०) (१) खेत की चौड़ाई की ओर से की जानेवाली जुताई (द० प० शाहा०)। दे०—फानी। (२) ताड़ के पेड़ पर चढ़ने के समय दोनों पैरों में लगाई जानेवाली फंदावाली रस्सी (मै०, पट०)। दे०—मकरी।
[फंद+इया < स्पन्द-(?)। फंदा < पाश या बंध—(हिं० श० सा०); फंदो (ने०) = उधार लिया; फंदा (हिं०); फंदो (बं०); फंदा (ओ०); फंध, फंधा (पं०); फंदु (सिं०); फंद (गु०, मरा०); फाँद (हिं०); फांदो (गु०); फंदा < फंद < फंद (फा०); फाँस < स्पर्श-(?)—(नेपा०)]।

फंसरगाली—(सं०) किसी बरतन के गले के चारों ओर लपेटी हुई रस्सी की फाँस (गया, द० मुं०)। दे०—अरवन।
[फँसर+गाली; फँसर < फाँस < पाश-, < स्पाश- (नेपा०); गाली < गाल < गल-(?)]।

फँसरी—(सं०) फाँस लगाने की गोल रस्सी (मुं०-१)।
[फँस+री (प्र०); फाँस < पाश-]।

फँसिआ—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी, मिला०—फाँस < स्पर्श-, स्पाश-]।

फँसिआरी—(सं०) एक प्रकार का जाल (पट०-१)।

फँसुली—(सं०) ताड़ के पेड़ के फल को काटनेवाली हँसिया (सा०-१)। दे०—हँसुली।
[फँसुली < फाँस < स्पर्श- या प्रास-(?)]।

फंहसुल—(सं०) (१) (मग०)। दे०—फँसुली। (२) हँसिया, तरकारी आदि तराशने का हथियार।
[फँहस + उल (प्र०) < फँहस < फाँस या स्पर्श या < परशु-, < प्रास- (?)। मिला०—महसन्ती, हसन्ती-(?)]।

फकाह—(सं०) दूर-दूर पर की जानेवाली बुआई (सं० उ०)। दे०—पातर।
[फकाह < फाँक (बिहा०)—अंतर—देशी (?)]।

फकिराना—(सं०) माँगनेवाले फकीरों के लिए अलग निकाला गया अन्न (मु० प्र०)। (२) मुस्लिम संतों

और वस्तु की गाँठ।



ड़ाई की ओर से की
हा०)।
पेड़ पर
लगाई
(मै०,

फंदा <
); फंदो
(हि०); फंदो (ने०)
(०); फंदु (सिं०); फंद
फांदो (गु०); फंदा <
स्पर्श-(?)—(नेपा०)]।
के गले के चारों ओर
(गया, द० मुं०)।

ांस < पाश-, <स्पाश-
गश-(?)]।
गोल रस्सी (मुं०-१)।
पाश-]।
मछली (सा०-१)।
स्पर्श-, स्पाश-]।
जाल (पट०-१)।
फल को काटनेवाली
सुली।
र्श- या पाश-(?)]।
—हँसुली। (२) हँसिया,
हथियार।
हँस < फांस या स्पर्श
। मिला०—मछसन्नी,

ानेवाली बुआई (गं०

—अंतर—देशी (?)]।
कीरों के लिए अलग
। (२) मुस्लिम संतों

या फकीरों के नाम दी गई करमुक्त भूमि (गाइड०)।

[फकिर+आना (प्र०); < फ़क़ीर]।

फगुआ—(सं०) किसानों का प्रसिद्ध वसंतोत्सव, होली।

फगुआही—(सं०) होली के अवसर पर किसानों की ओर से पटवारी आदि को मिलनेवाला पुरस्कार। दे०—होलीखेलाई।

[फगुआ+ही (प्र०); < फगुआ < फाल्गुनक-]।

फगुनहट—(सं०) फागुन में बहनेवाली हवा (चंपा०-१, पट०-१)।

[फगुन+हट (प्र०); फगुन < फागुन < फाल्गुन-]।

फगुनाहि—(सं०) फागुन-चैत मास (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[फगुन + आहि (प्र०); फगुन < फागुन < फाल्गुन-]।

फगुनी—(सं०) (१) प्रधानतः फाल्गुन में बोई जानेवाली नील की खेती (गं० उ०)। यह खेती प्रधानतः उत्तर बिहार में होती थी। (२) वह फसल, जो फागुन में तैयार होती है। मिला०—असाढ़ी, अखाढ़ी। (१) असाढ़ में बोई जानेवाली नील की दूसरी खेती। (२) असाढ़ में होनेवाली फसल। (वि०) फागुन में बना, फागुन का (चंपा०-१)।

[फगुन+ई (प्र०); फगुन < फागुन < फाल्गुन-]।

फजलिया—(सं०) भादो में पकनेवाला बड़े आकार का आम (पट०-१)।

फजली—(सं०) बड़े आकार का एक प्रसिद्ध आम।

फजिरे—(सं०) सवेरा (चंपा०-१)।

[< फजर (अ०)]।

फटकल—(क्रि०) अन्न आदि को सूप में रखकर उसे उछालते हुए साफ करना।

[फटक+ल (प्र०); फटक < स्फोट < √ स्फोट् (स्फोटयति)]।

फटकाह—(सं०) किसी भैंस का वह सींग, जो दायें और बायें दोनों ओर फैला हुआ और बड़ा हो।

[देशी]।



फटकी—(सं०) खेत की चौड़ाई की ओर से जुताई (चंपा०, द० पू०)। दे०—फानी।

[देशी]।

फटलबाँसी—(सं०) वह धान, जो पकने के पूर्व ही स्वयं फटकर खराब हो जाय (चंपा०-१)।

[फटल+बाँसी, फटल < फटल (बिहा०); फटना (हि०) < स्फट < √स्फट् (स्फाटयति, स्फोटयति); बाँसी < वंश-, बंध्र-(?)]।

फटहा—(सं०) (१) धान के पौधे का एक रोग (द० भाग०)। पर्या०—फट्टा (द० मुं०)। (२) अकिंचन। (३) मुँहफट।

[फट+हा (प्र०) < फट < स्फट (?) < √स्फट्]।

फटार—(सं०) सीधे सींगोंवाली भैंस (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—फटकाह।

[देशी, मिला०—फटल (बिहा० क्रि०)=फटना]।

फटाह—(वि०) वह बैल, जिसके दोनों सींग बड़े और फैले हुए हों। दे०—फठाह।

[फटा+ह (प्र०); फटा < फटा < फटल (बिहा०), फटना (हि०); स्फट या < फटा=फण]।

फठिहा—(सं०) बैलगाड़ियों के दोनों पहियों के बीच के भाग में लगाई जानेवाली फट्ठी, जिसपर लोग बैठते हैं या सामान रखा जाता है (पट०-१)।

फटौआ—(सं०) फटा हुआ दूध (पट०-१)।

फट्टा—(सं०) धान के पौधे का एक रोग (द० मुं०)। दे०—फटहा।

[फट्टा < स्फट-(?); संभ०—पौधे के फट जाने के कारण यह नाम पड़ा हो]।

फट्ठा—(सं०) बाँस को चीरकर बनाया गया लट्ठा (चंपा०-१, पट०-१)।

[फट्ठा < स्फटित-(संस्कृ०) < फट्ठिअ (प्रा०), फट्ठी (बिहा०, हि०—स्त्री०); फट्ठा (पुं०)]।

फट्ठी—(सं०) बाँस को फाड़कर बनाई हुई छड़ी, बाँस को चीरकर बनाया गया पतला लट्ठा। पर्या०—फठी या फंठी, बँसफट्ठा, बसफेंटा (पट०, गया), बत्ती (द० पू०)।

[फट्ठी < फट्ठिअ (प्र०) < स्फटित-; फट्ठी (बिहा०, हि०); फट्ठा (पुं०)]।

फठाह—(सं०) वह बैल, जिसके दोनों सींग बड़े और दोनों ओर फैले हुए हों। पर्या०—फटाह, फरक-भाड़ा (उ० पू० मै०)।

[फठा + ह (प्र०) < फठा < फरल (बिहा०); < √स्फट् (स्फटति, स्फाटयति)]।

फठी—(सं०) बाँस को फाड़कर बनाया गया पतला लट्ठा। दे०—फट्ठी।

[फठी < स्फटित (?)]।

फड़ही—(सं०) (१) बिना दाँत की हेंगी के समान सिंचाई का साधन-विशेष, जो एक बेंट में लगा रहता है और जिससे पानी उपछकर खेत सींचा जाता है। इसे एक आदमी काम में ला सकता है। दे०—फरुही। (२) चावल का भूँजा।

[फहड़ी <(?)। मिला०—फलक-, फलकिन् (संस्कृ०); फलहिका, फलहिका (प्रा०)। मिला०—प्रास (प्रास्यते, क्षिप्यते अनेन इति प्रासः)]।

फड़ुहा—(सं०) (१) फावड़ा, कुदाल (शाहा०)। दे०—फौरा। (२) बिना दाँत की हेंगी के समान सिंचाई का साधन-विशेष, जो एक बेंट में लगा रहता है। इससे पानी उपछकर खेत सींचा जाता है। इसे एक ही आदमी चला सकता है (द० भाग०)। दे०—फरुही।

[फड़ + उहा (प्र०) < फड़ < फलक ; फलक- वा फाल-]।

फतिंगी—(सं०) (१) एक प्रकार का झींगुर, जो ऊख का पत्ता चाटता है। (२) विशेष प्रकार की तितली। (३) तितली।

[फतिंगी < पतंगिका, पतंगिकी]।

फतेफेसानी-(सं०) वह बैल, जिसका माथा छोटा हो और स्वयं पर्याप्त बलवान् हो (पट०-१)।

फनकी—(सं०) किसी बरतन के गले के चारों ओर लपेटी जानेवाली रस्सी की फाँस (उ० पू० मै०)। दे०—अरवन।

[फन + की (प्र०) ; फन < फान < फंदा स्पन्द (?) वा फण (?)]।

फनगी—(सं०) सूखा (वर्षा के अभाव) के समय में दीख पड़नेवाला और चना-गेहूँ की जड़ को चाटनेवाला एक प्रकार का झींगुर (प०)।

[फनगी <पतंगिकी ; वा फन+गी<पन्नगी-(?)]।

फनिगा-(सं०) ऊख की पत्तियों को चाटनेवाला एवं चना, मटर और दूसरे खाद्यान्नों को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा (द० प० शाहा०)। दे०—सुरका।

[फनिगा < पतंगिका वा पर्णगिर- < पर्ण + गिर < गृ-(?); पन्नगी]।

फनेला-(सं०) जामुन (पट०-१)।

फर-(सं०) (१) तंबाकू का बीजकोष (चंपा०)। दे०—घुनी। (२) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (मै०)। दे०—सतार। (३) बैलगाड़ी के दोनों तरफ त्रिभुजाकार आकृति बनाता हुआ आक के प्रत्येक छोर से शुरू होकर सगुन तक जाता है। पर्या०—फड़, फैड़ (उ० पू० मै०), तोंगा (गं० द०), हासा (सा०, चंपा०); फरि (दर०-१, पट०-१)।

[फर < फल-; फलक-]।

फरकझाड़ा—(सं०) वह बैल, जिसके दोनों सींग बड़े और दोनों ओर फैले हुए हों (उ० पू० मै०)। दे०—फठाह।

[फरक + झाड़ा ; फरक < पृथक् (?) ; झाड़ा (देशी)]।

फरकतियावन—(सं०) मालगुजारी के सामान्य रूप से पूर्णतः हिसाब बेबाक करने पर पटवारी को मिलनेवाला आठ आना या एक रुपये का पुरस्कार। पर्या०—फरिकाना, फरकाना (मै०)।

[फरकत + इयावन (प्र०) < फरकत < फरकल फरकावल=अलग करना]।

फरका-(सं०) (१) मछली मारकर रखने का गड़ा। (२) एक पशुखाद्य घास (द० पू० मै०)।

[देशी]।

फरकाना--(सं०) मालगुजारी का हिसाब सामान्य-पूर्णतः बेबाक कर देने पर, पटवारी को मि[लने]वाला आठ आने या एक रुपये का पुरस्कार (मै[०])। किंतु, मुँगेर में यह पुरस्कार प्रति रुपया एक [पैसा] मिलता है। पटवारी को मिलनेवाला पुरस्कार (पट०-१)। दे०—फरकतियावन।

[देशी ; वा फरकाना < फरकल, फरकावल (बिहा० क्रि०)]।

फरकावाँ—(सं०) रैयतों को एक वर्ष के लिए जमीन पर अधिकार देने के निमित्त पटवारी द्वारा लगाया गया प्रति रुपया दो पैसों का कर (गाइड०)।

फरकिल्ला-(सं०) (१) गाड़ी, हल आदि में लगनेवाला एक पच्चड़, जो अपनी जगह पर कड़हड़ी को कसे रहता है। पर्या०—कठकिल्ली, किल्ली, पच्चर, काँटी। (२) पहिये के भीतर की ओरवाला पच्चड़ (सा०)। दे०—फरकिल्ली।

[फर + किल्ला ; फर < फार < फाल, किल्ला < किल्लअ < कीलक। फरकिल्ला (हिं०) = वह खूँटा, जो गाड़ी में हरसे के बाहर पटरी में लगाया जाता है और जिसपर लकड़ी, बाँस या बल्लों को रखकर रस्सियों से कसकर ढाँचा बनाया जाता है—(हिं० श० सा०)]।

फरकिल्ली-(सं०) पहिये के भीतर की ओरवाला पच्चड़। पर्या०—फरकिल्ला।

[फर + किल्ली ; फर < फार ; फाल- ; वा < फल-, फलक-। किल्ली < कीलक-]।

फरकी—(सं०) फावड़े की धार का झुका हुआ भाग, फलक। (गं० उ०, मै०, पट०, मुँ०)। दे०—फरी।



[फरक+ई (प्र०) ; फलक < फलकिन् (?)]।

< पृथक् (?) ; काढ़ा

ारी के सामान्य रूप से
पर पटवारी को मिलने-
क रुपये का पुरस्कार
ा (मै०)।
< फरकत < फरकल

कर रखने का गढ़ा
(० पू० मै०)।

का हिसाब सामान्य -
पर, पटवारी को मि
रुपये का पुरस्कार (मै
हार प्रति रुपया एक
ो मिलनेवाला पुरस्कार
यावन।
< फरकल, फरकावन

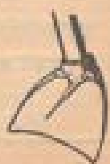
एक वर्ष के लिए जमीन
नस पटवारी द्वारा लगाया
का कर (गाइड०)।
हल आदि में लगनेवाला
ाह पर कढ़हड़ी को कसे
किल्ली, किल्ली, पच्चर,
तर की ओरवाला पच्चड़
ी।
< फार < फाल, किल्ला
। फरकिल्ला (हिं०) = वह
से के बाहर पटरी में लगाया
लकड़ी, बाँस या बल्लों को
कर ढाँचा बनाया जाता है—

भीतर की ओरवाला पच्चड़।

र < कार ; फाल- ; वा <
< कीलक-]।

धार का
क। (सं०
)। दे०—

फलक <



फरजी—(सं०) (१) जमीन का नकली अधिकारी (पट०-१)। (२) शतरंज खेल का वजीर। (वि०) काल्पनिक, नाम-मात्र का।

फरदैन—(सं०) सभी असामियों को मालगुजारी की अलग-अलग रसीद देने की प्रक्रिया।

[फरदैन < फरद < फ़र्द (अ०)=लेखा या वस्तुओं की सूची आदि, जो स्मरणार्थ किसी भाग पर अलग लिखी गई हो—(हिं० श० सा०)]।

फरनिहार—(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटने-वाला (पट०, गया)। दे०—अँगेड़ीहा।

[फरनि+हार (प्र०) ; फरनि < फाड़नि < फाड़ल (बिहा०) < स्फार < √स्फट् (?)]।

फरनी—(सं०) (१) पहली जोत। दे०—पहिला चास। (२) धान रोपने के समय खेत की पहली जोत (पट०-१)।

[फर+नी (प्र०) ; फर < फार < फाल-(?)]।

फरमा—(सं०) (१) उबाली हुई नील के उफनाये हुए तरल पदार्थ को हटानेवाला साधन-विशेष (उ० पू० मै०)। दे०—फहुरी। (२) नील की टिकिया बनानेवाली मशीन।

[फरमा < फ्रेम (अं०)]।

फरमाइश—(सं०) (१) जमींदार की आज्ञा से किसी विशेष अवसर पर किसान के द्वारा समर्पित वस्तु-विशेष या वैयक्तिक सेवा। दे०—हुकूमत। (२) आदेश, आज्ञा।

[फरमाइस < फ़रमाइश (फा०)]।

फरल—(क्रि०) (१) फलना, फलयुक्त होना। परिणत होना। (२) किसी काम का कोई परिणाम निकलना। (३) फलना-फूलना, समृद्ध होना। (४) सिर के बालों में जूँ आदि का होना।

[फर+ल (प्र०) ; फर < फल ; फलना (हिं०) ; फलनु (ने०) ; < √ फल् (फलति—संस्कृ०) ; √फल्-(फलति) (पा०); फलदि, फलइ (प्रा०); फलुन (कश्म०) ; फलनो (कुमा०) ; फलिबा (असं०) ; फला (बं०) ; फलणा (पं०) ; फलनु (सिं०) ; फलवुँ (गु०); फलणे (मरा०)]।

फरसा—(सं०) (१) फावड़ा, कुदाल (द० प० शाहा०)। दे०—फौरा। (२) चौड़े फलकवाला युद्ध का एक हथियार-विशेष। (३) भट्ठी में से आग इकट्ठा करने का फावड़ा (द० प० शाहा०)। दे०—फरसा। (४) फालसा, एक प्रसिद्ध छोटा फल, जो बैंगनी रंग का होता है (पट०-१)।

[फरसा < परशु या प्रासक-(?) ; परस, फरस (प्रा०, पा०) ; फरसा (हिं०) ; फरसिया (हिं०) = हँसिया ; फर्शा (बं०), फर्सी (गु०) ; फरश (मरा०) ; पोरू (सिंह०)]।

फरहद—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

टि०—यह बंगाल में समुद्र के किनारे अधिकता से पैदा होता है। वहाँ यह 'पालिते मंदार', कहलाता है।

[फरहद<पारिभद्र (?) (संस्कृ०) ; पारिभद्द (पा०), पारिहद्द (प्रा०)]।

फरहरी—(सं०) तरकारी आदि की खस्सी (चंपा०-१)।

[फर+हरी ; फर < फल ; हरी (?)। फरहरी (हिं०) = फल]।

फरही—(सं०) (१) अधपका भुना हुआ जौ (पट०, पट०-१, गया)। दे०—चिउरी। (२) चावल का विशेष प्रकार का भूँजा।

[फरही < स्फुरित (?), प्लोषित < √प्लुष् (?) ; फरुही (हिं०) ; फरुइ (ने०) ; फरुही (हिं०) = छोटा फावड़ा। फावड़े के आकार का बना हुआ एक औजार, जिससे घोड़े की लीद या क्यारी बनाने के लिए खेत की मिट्टी हटाई जाती है, और इसी प्रकार के दूसरे काम किये जाते हैं। मथानी—(हिं० श० सा०)]।

फरही के चाउर—(सं०) धान को फुलाकर और खपड़ी में उलाकर कूटा हुआ चावल (पट०-१)।

फरही तारल—(क्रि०) फरही बनाने के लिए धान को जल में फुलाकर खपड़ी में उलाना (पट०-१)।

फराठी—(सं०) (१) बाँस को फाड़कर बनाई हुई खड़ी या लट्ठा। (२) बाँस की चीरी हुई बत्ती, टट्टी की फिरकी (मुं०-१)।

[फराठी (देशी ?) या स्फारित-(?)]।

फरिंगा—(सं०) (१) टिड्डी (पू० मै०)। दे०—टीड़ी। (२) फतिंगा, कीड़ी, तितली।



[फरिंगा < फतिंगा < पतङ्गक-]।

फरिआवल—(क्रि०) (१) विवाद का सुलझाना। (२) कुछ स्वस्थ होना। (३) साफ होना (चंपा०-१)।

[फरि + आवल (प्र०) ; फरि < स्फार < √ स्फुर् (?)]।

फरिकाना—(सं०) मालगुजारी का हिसाब, सामान्य रूप से पूर्णतः बेबाक कर देने पर, पटवारी को

मिलनेवाला आठ आने या एक रुपये का पुरस्कार (मै०)। दे०—फरकतियावन।

[फरिक+आना < फरिक]।

फरिछ—(सं०) (१) रात की अँधियारी समाप्त होकर कुछ-कुछ साफ होने का समय, उषःकाल। (२) पानी का साफ होना (चंपा०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)।

[फरिछ < (?); मिला०—प्रत्यूष-; वा < परिक्षय < परि+ √क्षि ; < परि+ √क्षल्]।

फरिछावल-(क्रि०) (१) रात बीतने पर सवेरे अंधकार का कम होना। (२) पानी का साफ होना (चंपा०-१)। (३) सुलझाना।

[फरिछ + आवल (प्र०); फरिछ < परिक्षय < परि+ √क्षि < परिक्षाल < परि+ √क्षल्]।

फरियावल—(क्रि०) विवाद का निर्णय करना। तय करना, नतीजा निकालना, पृथक्-पृथक् करना। तय पाना, फैसला होना (मुं०-१)।

[फरिया + आवल (प्र०); फरिया < फलीकरण < फली + √कृ (?), वा फरिया < फलित- < फल-]।

फरी—(सं०) फावड़े की धार का झुका हुआ भाग (सा०)। पर्या०—फरकी (द० मै०, द० मुं०), फल (पट०, द० मुं०), फरो (द० भाग०), फरी (आ०), धार (शाहा०), डंक (द० प०)।

[फरी < फलक ; < फलकिन्]।

फरुआ—(सं०) प्याज रोपने के लिए काठ का बना एक औजार, जो खेत की मिट्टी को बराबर करने के काम में आता है (चंपा०-१)।



[फरुआ < परशुक-(?); परस्वध, मिला०—प्रासक-, फालक-]।

फरुहा—(सं०) (१) आग इकट्ठा करनेवाला फावड़ा (पू० मै०)। दे०—फरुही। (२) नील के उफनाये हुए तरल पदार्थ को हटानेवाली हेंगी (सा०)। दे०—फरुही। (३) बिना दाँत की हेंगी की तरह सिंचाई का एक साधन, जो लंबे बेंट में लगा रहता है और जिससे पानी उपछकर खेत सींचा जाता है। इसे एक ही आदमी चलाता है (पू० मै०)। दे०—फरुही।

[फरुआ < परशुक (?); परस्वध-]।

फरुही—(सं०) (१) अधपका भुना हुआ जौ (पू० मै०, शाहा०)। (२) भुने हुए चावल का विशेष प्रकार का भूँजा (द० भाग०)। दे०—चिउरी।

[फरुही < स्फार = (?) वा < प्लोषित-]।

(३) लकड़ी का बना साधन-विशेष, जिससे राख हटाई जाती है। पर्या०—फरुही (प०)।

[फरुही < परस्वध, < परशुक-]।

(४) आग इकट्ठा करनेवाला फावड़ा। पर्या०—फहुरा (सा०, चंपा०), फरुहा या कोदारी (पू० मै०), खड़मा (शाहा०), फरसा (द० प० शाहा०), कड़नी (गया), अगकड़ना (पट०), करछुल (पू०)। (५) बिना दाँत की हेंगी के समान सिंचाई का साधन-विशेष, जो लंबे बेंट में लगा हुआ रहता है, जिससे पानी उपछकर खेत सींचा जाता है। इसे एक ही आदमी चलाता है (गं० द०)। पर्या०—फरुहा (पू० मै०), फहुरी (गं० उ० प०), फड़हा (द० भाग०), फड़ही (द० मुं०), पेड़नी (गया)।

[फरुह+ई (प्र०); फरुह < परस्वध-]।

फरेंद—(सं०) वह पेड़, जिसमें अधिक फल लगा हो (भोज०)। दे०—फरेन।

फरेन—(सं०) फल का वह पेड़, जिसमें ज्यादा फल हों (चंपा०-१)। पर्या०—फरेंद (भोज०)।

[फरेन < फलिन्-]।

फरेनवा—(सं०) वह पेड़, जो काफी फलता हो (चंपा०-१)।

[फरेन+वा (प्र०); फरेन < फलिन्-]।

फरो—(सं०) फावड़े की धार का झुका हुआ भाग (द० भाग०)।

[फरो—(ओ, स्थानीय उच्चारणप्रवृत्ति के कारण अ की वर्तुल ध्वनि) < फल- ; फलक-]।

फर्द आबपाशी—(सं०) गाँव की सिंचाई का रिकार्ड (गाइड०)।

फर्द खोज भरौती—(सं०) उपज की ग्रामीण प्रणाली का रिकार्ड (गाइड०)।

फर्द हवाला—(सं०) खेत के बैलों, हलों और गाड़ियों आदि की सूची (गाइड०)।

फल—(सं०) (१) अपने मालिक के लिए कोई सामान लाने पर किसी नौकर द्वारा लिया जानेवाला एक एक प्रकार का पारिश्रमिक या हिस्सा।

[फल < फल। मिला०—फलिक = किसी कार्य के लिए प्राप्त उपहार का उपयोग—(मो० वि० वि०)]।

फल—(सं०) (२) फावड़े की धार का झुका हुआ अंश, फलक। दे०—फरी। (३) कुदाल का वह अंश, जो चौड़ा और धारयुक्त होता है (पट०-१)। (४) फल। (५) परिणाम।
[फल < फल-, या फलक-]।

फलकर—(सं०) फलों पर लगनेवाला कर या राजस्व।
[फल+कर < फल+कर-]।

फलकल—(क्रि०) (१) फैलना (चंपा०-१)। (२) फैलना, खिलना, विकसित होना (मुं०-१)।
[फलक+ल (प्र०); फलक < फलक (संस्कृ०) = विस्तृत देहवाला—(मो० वि० कि०)]।

फलगुनी—(सं०) (१) फाल्गुन में बोया जानेवाला नील (द० भाग०)। (२) फाल्गुन में होनेवाली फसल। पर्या०—फगुनी। (३) फल्गुनी नक्षत्र।
[फलगुन+ई (प्र०) < फल्गुन < फाल्गुन-]।

फलतार—(सं०) मादा जाति का ताड़ का पेड़, जिसमें फल लगता है। पर्या०—फल्ला (द० भाग०)।
[फल+तार < फल+ताल-]।

फलबात—(सं०) पशुओं का वह रोग, जिसमें वायु-विकार से पेट फूल जाता है। पर्या०—पेटफुल्ली (मै०, शाहा०), बिधा (पट०)।
[फल+बात < फल+वात-(?)]।

फलहार—(सं०) फलाहार। फल और शाक का भोजन (पट०-१)।

फल्ला—(सं०) मादा जाति का ताड़ का पेड़, जिसमें फल लगता है (द० भाग०)। दे०—फलतार।
[फल्ला < फलल; फलिन् (?)]।

फल्ली—(सं०) ताड़ का तना या समूचा धड़।
[फल्ली < फलखिन् (?)]।

फसली—(सं०) (१) मवेशियों का एक रोग, जिससे मवेशी हाँफता है और लहू के करके मर जाता है, हैजा (सा०-१)। पर्या०—ढेंकना। (२) फसल या ऋतु से संबंध रखनेवाला। (३) आम की एक जाति। (४) हैजा आदि महामारी (मुं०-१)। (५) बिहार में चलनेवाला एक संवत्, जो सावन से शुरू होता है (गाडव०)।
[फसल+ई (प्र०); फसल < फ़स्ल (अ०) = ऋतु, समय]।

फसिलाना—(सं०) चौकीदार को किसानों की ओर से मिलनेवाला पारिश्रमिक (पट०)। दे०—चौकीदार।
[फसिल + आना (प्र०); फसिल < फसल < फ़स्ल (अ०)]।

फहुरा—(सं०) (१) जमीन या दीवार से खारी मिट्टी खोदनेवाला फावड़ा। पर्या०—कोदार (मै०), कुदारी (सा०)। (२) फावड़ा या कुदाल (शाहा०)। (३) आम इकट्ठा करने का फावड़ा-जैसा साधन-विशेष (सा०, चंपा०)। दे०—फरुही। (४) बड़ा फावड़ा (पट०-१)।
[फहुरा < परशुक-; < प्रासक-(?)। यहाँ ध्यान देने योग्य एक बात है कि फावड़े के अर्थ में फरुहा, फरुही, फहुरा, फहुरी और फरुही, फरुहो शब्द आते हैं। इन सभी में अर्थसमता तो है ही, संभवतः मूल शब्द-साम्य भी है। फहुरा, फरुहा या फहुरी, फरुही में 'ह', 'र' का वर्ण-व्यत्यय हुआ है और आचक्षर दोनों में महाप्राण हैं, जबकि परुहा, परुही में आचक्षर अल्पप्राण हैं। इन सभी रूपों की व्युत्पत्ति 'परशुक' से ही हो सकती है। इनके अतिरिक्त 'फहोड़ा' (पट०, गया) में 'उ' का 'ओ' और 'र' का 'ड़' उच्चारण-भेद हो गया है]।

फहुरी—(सं०) (१) बिना दाँत की हेंगी के समान सिंचाई का एक साधन-विशेष, जो एक लंबे बेंट में लगा रहता है। दे०—फरुही। (२) नील के उफनाये हुए तरल पदार्थ को हटानेवाली कलछी। पर्या०—फरुहा (सा०), फरमा (उ० पू० मै०)। (३) लकड़ी का बना फावड़ा-जैसा एक औजार, जिससे राख हटाई जाती है (प०)। दे०—फरुही।
[फहुर+ई (प्र०); फहुर < परशुक-]।

फहोड़ा—(सं०) फावड़ा, कुदाल (पट०, गया)। दे०—फौरा।

फाँक—(सं०) (१) दरार। (२) जमे हुए गुड़ के ऊपर का पतला अंश (मुं०-१)। (३) तंबाकू के बनाने में प्रयुक्त छोआ। दे०—छोआ।
[मिला०—फाणितक=रवा, गुड़]।
(४) दो वस्तुओं के बीच का रिक्त स्थान (चंपा०-१)। (५) किसी वस्तु का कटा हुआ टुकड़ा।
[फाँक < फलक (?)—(हिं० श० सा०)]।

फाँकी—(सं०) दो फाँकों (टुकड़ों) में कटा हुआ बैल का चमड़ा (उ० पू० मै०)। दे०—आधाकारी।

फाँट—(सं०) (१) हिस्सा। (२) बखरा-बाँट। (३) दूरी। (४) पृथक् रहना। (५) एकांत, सूना (मुं०-१)।
[फाँट < स्फाट-(?) < √स्फट्। फाँट (हिं०) = हिस्सा, बाँट, क्रम से बाँटा हुआ भाग, दर या पड़ता। कादा क्वाथ। फाँट (नें०)=विस्तृत, खुला स्थान; फाँट (कुमा०) = बाँट-बखरा; फाँट (असा०) = वह खुला स्थान, जहाँ व्यापारी अपना बाकी चुकता करते हैं;

फाण्ट (ओ०)=फाँड़ी, सिपाहियों के रहने का स्थान। फाँट (पं०) = टुकड़ा। फाँड़ (सि०) = हिस्सा। फाँट (गु०) = किसी परिधान का छोर। फाँटा (मरा०)। मिला०—फाण्ट-(संस्कृ०) = शोधनक्रिया के बाद प्राप्त वस्तु। सरल शोधविधि से प्राप्त वस्तु। क्वाथ, कई ओषधियों को मिलाकर बनाया गया काढ़ा। नवनीत]।

फाँड़ा—(सं०) घुन की जाति का एक कीड़ा, जो लकड़ी और अनाज को खाता है (मै०)। पर्या०—फाँड़ी (मै०)।

[देशी। मिला०—फाँड़ (ने०) = टुकड़ा, काटना ; फाँड़ो (ने०) = लप्सी, गीली दलिया आदि]।

फाँड़ी—(सं०) (१) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए जल-प्रवाह के बीचोबीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (चंपा०, पट०)। दे०-बाँध। (२) अंतर, दूरी। (३) पहरे पर नियुक्त सिपाहियों के रहने का स्थान। (४) घुन की जाति का एक कीड़ा, जो लकड़ी और अनाज को खाता है (मै०)। दे०—फाँड़ा।

[फाँड़ी। दे०—फाँट]।

फाँद—(सं०) चिड़िया फँसाने का एक प्रकार का फंदा। पर्या०—फाँदा, चौगोड़ा।

[फाँद < फंदा < स्पन्द (?) ; फंदा < बन्ध (हिं० श० सा०)।

फाँदा—(सं०) चिड़िया पकड़ने का जाल। दे०—फनी।

[फाँदा < फाँद < फंदा < स्पन्द-(?)]।

फाँफड़—(सं०) दो वस्तुओं के बीच का रिक्त स्थान (चंपा०-१)।

[देशी-]।

फाँफर—(सं०) दूर-दूर पर की गई बुआई (प०)। दे०—पातर।

[देशी]।

फाँस—(सं०) बरतन के गले के चारों ओर लपेटी हुई रस्सी की गाँठ (पू० मै०, द० भाग०)। दे०-अरबन।

[फाँस < पाश-; < स्पाश-(नेपा०); फाँसो (ने०) = जाल, फंदा ; फास (दरदी) = जाल ; फोश (कश्म०)=अहाता, घेरा ; फाँसा (बँ०)=जाल, फंदा ; फाँस्सा (असo) = जाल ; फाँस (ओ०) ; फाँस (हिं०) ; फाँहा (पं०, ल०) ; पाँहो (सि०) ; फाँसो (गु०) ; फाँसा (मरा०)]।

फाँसो—(सं०) पालो (हल के जुए) में बँधी हुई रस्सी, जो बैलों की गरदन के नीचे से जाती है (द० भाग०)। दे०—जोती।

[दे०—फाँस]।

फागुन—(सं०) फाल्गुन, भारतीय वर्ष का अंतिम या बारहवाँ मास, शिशिर ऋतु का अंतिम मास (फरवरी के अंत और मार्च के आदि के १५-१५ दिन)। इस मास की पूर्णिमा को प्रायः उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र पड़ता है, अतः फाल्गुन नाम पड़ा।

[फागुन < फाल्गुन- < फाल्गुनी। फग्गुन (पा०, प्रा०) ; फागुन (कश्म०) ; फागुन (ने०) ; फागुन (कुमा०); फागुन (असo); फगुण (ओ०); फागुन (हिं०); फागुण (गु०, मरा०) ; फग्गण (पं०, ल०) ; फगुण (सि०); अंतिम दोनों शब्दों का फाल्गुन (संस्कृ०) से संबंध है। मिला०—फल्गुनी (नक्षत्र)—(नेपा०)]।

फाजिल—(सं०) (१) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी। पर्या०—अगवढ़ (उ० प०), जनौर (पू० मै०), अगौढ़ी (प० मै०), अगहट (द० पू० मै०), अगवन (शाहा०), अगार (पट०), अगौरी (द० मुं०), अगठौर (द० भाग०), कमियौट (गया)। (२) अधिक, अतिरिक्त।

[फाजिल < फाजिल (अ०)]।

फाट—(सं०) किसी हिस्सेदार के अधीन गया हुआ जमींदारी के गाँव का एक विभाग (गया)। दे०—पट्टी।

[फाट। दे०—फाँट]।

फाटी—(सं०) कोदो का खंडित चावल (चंपा०-१)।

[देशी]।

फाटो—(सं०) धान की बाल में लगनेवाला एक रोग।

[देशी]।

फाड़ल—(क्रि०) फाड़ना, दो भाग करना, चीरना।

[फाड़ + ल (प्र०) ; फाड़ < स्फाट < √स्फट् (स्फटति, स्फाटयति, स्फाटयते) ; फालेइ (प्रा०) ; फाड़ना (हिं०) ; फार्नु (ने०) ; फरवेस (रोमा०) ; फार्मेजेन (हिन्ना०) = फाड़ना ; फाड़नो (कुमा०) ; फाड़ा (बँ०) ; फाड़िबा (ओ०) ; फाड़ना (पं०) ; फाड़ (सि०) ; फाड़वुं (गु०) ; फाड़णे (मरा०) ; फलनु (सिंह०) ; अंतिम शब्द संभवतः √स्फल्- (संस्कृ०)—(स्फालयति) से संबद्ध है। और, यदि √स्फट् (> स्फटति) से है, तो फलेति (पा०) ; फालेइ (प्रा०) ; फालवनु (कश्म०) ; फालिबा (असo) ; फाला (बँ०) ; फालिबा (ओ०) ; फाल (हिं०) = सुपारी का गुच्छा ;

) में बँधी हुई रस्सी,
चि से जाती है (द०

वर्ष का अंतिम या
अंतिम मास (फरवरी
१५-१५ दिन)। इस
उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र
पड़ा।
ल्गुनी। फगुन (पा०,
गुन (ने०) ; फागुन
(ओ०); फागुन (हि०);
न (पं०, सं०) ; फग्गुड़
फाल्गुन (संस्कृ०) से
(नक्षत्र)—(नेपा०)]।
दी जानेवाली अंतिम
(उ० प०), जनौर
०), अगहट (द० पू०
गार (पट०), अगौरी
० भाग०), कमियौट
रिक्त।
०)]।
के अधीन गया हुआ
क विभाग (गया)।

चावल (चंपा०-१)।

लगनेवाला एक रोग।

ड़ करना, चीरना।
: < स्फार <√स्फट्
ड्यते); फाडेइ (प्रा०);
०); फरकेब (रोमा०);
ा; फाड़नो (कुमा०)
); फाड़ा (पं०); फाड़
फाडणे (मरा०); फजु
तः √स्फल्- (संस्कृ०)—
और, यदि √स्फट् (>
(पा०); फालेइ (प्रा०);
(असि०); फाला (बं०);
०) = सुपारी का गुच्छा;

फार (सि०)=टुकड़ा ; फाड़ो (गु०)=हिस्सा ; फाडणे (मरा०)=तोड़ना, फोड़ना आदि रूप—√स्फल् से व्युत्पन्न हैं। मिला०—फालि, फालनु—(नेपा०)]।

फान—(सं०) चिड़िया पकड़ने का जाल (चंपा०, मै०)। दे०—पनी।
[फान < फाँद < फंदा < स्पन्द-(?), < बन्ध (हि० श० सा०)। मिला०—फण् (गतौ)—(फणति, फाणयति)]।

फानी—(सं०) खेत की चौड़ाई की ओर से की जानेवाली जुताई (सा०, उ० प० मै०)। पर्या०—फटकी (चंपा०, द० पू०), ऊनाफानी (पट०), फँदिया (द० प० शाहा०); मंडोजोत; चौमंडी (द० भाग०)।
[फानी (?)। मिला०—फाबित—युक्त, रचा। √फण् < फणति, फाणयति = बँधवाता है, बाँधता है, कुदाता है]।

फानी—(सं०) चिड़िया पकड़ने का जाल। दे०—पनी।
[फानी < फाँद < फंदा < स्पन्द-(?); < बन्ध—(हि० श० सा०)। मिला०—√फण् (गतौ) = फणति, फाणयति]।

फार—(सं०) फाल, हल के निचले भाग में लगा लोहे का लंबा तेज हथियार, जिससे भूमि का कर्षण होता है। पर्या०—फारा या फाला (उ० पू० मै०), लोहामा (द० पू० मै०), फार (दर०-१, पूर्णि०-१, पट०)।
[फार < फाल-। फाल-(संस्कृ०); फाल (पा०, प्रा०); फाल (हि०); फालि (ने०); फाल (कश्मी०); फालो (कुमा०); फाल (असि०, बं०); फाड़ (ओ०); फाला, (पं०, सं०); फाल (सि०); फाल (मरा०)]।

फारखती—(सं०) वह लिखा हुआ कागज, जो इस बात का सबूत हो कि किसी के जिम्मे जो कुछ था, वह अदा हो गया (पट०-१)।

फारन—(सं०) पहली चास (गया, चंपा०)। दे०—पहिला चास।
[फारन < फालन < फाल (फालयति—ना० धा०) या <फारन <फालन <स्फालन < √स्फल् (=गिरना, हिलना, विकिरण होना, फूटना, फटना, तोड़ना।) संभवतः मिट्टी के तोड़ने से संबद्ध ऐसी क्रिया का प्रयोग किया जाता है। मिला०—(fallo—लैटि०); फुल्ति (fulti—लिथु०); फैलेन (fallen—जर०); फाल (fall—अँ०)]।

फार करालाएल—(क्रि०) फाल की नोक तेज कराना। दे०—धार पिटावल।
[फार+करा+ला+आएल (प्र०)—(वी०)]।

फारल—(क्रि०) फाड़ना, चीरना (चंपा०-१)।
[फार+ल < √स्फट्। दे०—फाड़ल]।

फारा—(सं०) फाल (उ० पू० मै०)। दे०—फारा।
[फारा < फालक-]।
(२) कटी हुई फाँक (चंपा०-१)।
[फारा < फाड़ा < फाड़ल; फारल]।

फारी—(सं०) फावड़े की धार का झुका हुआ भाग (गया)। दे०—फरी।
[फारी < फलक-, फलकिन्]।

फालसा—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[फालसा (फा०)—(हि० श० सा०)—पारुषक; परुष (=फालसे का वृक्ष, फल) (संस्कृ०); फारुसक (पा०); फालसा (हि०); फाल्सो (ने०); फालसा (ओ०); फलूहा (पं०); फरुओ (सि०); फाल्सूँ (गु०)। मिला०—परुष-(संस्कृ०) = कठोर, चित्रित; फरुस (पा०, प्रा०); फरहा (पं०) = छींट कपड़ा]।

फालसाही—(सं०) बेर-जैसा रंग। दे०—कुसुम।
[फालसा+ही (प्र०); < फालसा]।

फाला—(सं०) फाल (उ० पू० मै०)। दे०—फार।
[फाला < फालक; दे०—फार]।

फाव—(सं०) अनाज तौलने के बाद अतिरिक्त पूरक रूप में अंजलि या हाथ से दिया हुआ अनाज (द० पू०)। दे०—पहुआ।
[फाव < स्फार-। मिला०—स्फाति- (संस्कृ०)—(नेपा०)। फाति (पा०); फाइ (प्रा०); फाय (प्रा०)= (बढ़ा हुआ); फा (बँ०) = वृद्धि; फाउ (बँ०, ओ०)= बिक्री के साथ मिलनेवाला अतिरिक्त अंश; फाव (हि०)]।

फिक—(सं०) चाबुक के फीते के अंत का झालरदार गुच्छा (द० भाग०। दे०—झब्बू।
[देशी]।

फुँदना—(सं०) (१) चाबुक के फीते के अंत का झालरदार गुच्छा (शाहा०)। (२) गूँथे हुए सूतों का गुच्छा।
[फुँदना < फूल + फंद (?)—(हि० श० सा०)। संभ०—<फुल्ल+दामन् (=खिली रस्सी)। मिला०—फुल्लदामन (=एक प्रकार का छन्द)]।

फुज्जी—(सं०) किसी पेड़ आदि की फुनगी (पट०-२)।
[देशी]।

फुटकुन—(सं०) एक प्रकार की फली का पौधा। इसकी फली काले रंग की और मीठी होती है (पट०-१)।

फुटना—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (उ० प० मै०)। दे०—दौज।
[फुट+ना (प्र०); फुट < फुटन < √स्फुट्]।

फुटल—(क्रि०) (१) किसी वस्तु का फूटना, नष्ट होना। (२) फूल आदि का विकसित होना। (३) भुनने पर अनाज का फट जाना। पर्या०—फटल।
[फुट+ल (प्र०); फुट < √स्फुट्]।

फुटहरा—(सं०) (१) भुनने पर फूटा हुआ चना या मटर (द० प० शाहा०)। दे०—फुटहा। (२) फुटकर (पट०-१)।
[फुट+हरा; फुट < फुटन < √स्फुट्; हरा (?); हरा < फल—(हिं० श० सा०)]।

फुटहवा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[फुट+हवा (प्र०); फुट < फुटन < √स्फुट्]।

फुटहा—(सं०) (१) भुनने पर फूटा हुआ भूँजा। दे०—लावा। (२) भुनने पर फूटा हुआ चना या मटर। पर्या०—फुटहरा (द० प० शाहा०)। (३) चने आदि का फटा हुआ चबेना, भूँजा।
[फुट + हा (प्र०); फुट < फुटन, फुटन < √स्फुट्]।

फुटिया—(सं०) (१) एक पशुखाद्य घास (पू० मै०)। (२) एक प्रकार का साग (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) अलगी, भुनाया हुआ (पैसा आदि)।
[फुटिया < फुट < स्फुटक-(?)]।

फुदना—(सं०) (१) चाबुक के फीते के अंत का झालरदार गुच्छा (द० भाग०)। (२) किसी वस्तु में लगा हुआ सूत या रस्सी का झालरदार गुच्छा।
[फु+दना < फुल्ल+दामन (?)। फुँदना < फूल+फंद—(हिं० श० सा०)]।

फुनगी—(सं०) (१) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर (सिरे) का टुकड़ा, जो और भागों की अपेक्षा जल्दी उगता है (उ० प० मै०)। दे०—अँगेरी। (२) किसी पेड़-पौधा या टहनी आदि का अगला भाग।
[फुनगी < पुलक-(हिं० श० सा०)]।

फुन्ना—(सं०) चाबुक के फीते के अंत का झालरदार गुच्छा (गया)। दे०—झब्बू।
[फुन्ना < फुदना < फुल्लदामन (?)। मिला०—पुल, पुलक (=गुच्छा)]।

फुलकी—(सं०) सरपत का अगला भाग (पट०-१)।

फुलको—(सं०) बाजड़े का रुई-जैसा फूल (द० भाग०)। दे०—झोंपा।
[फुलको < फुल्लक-(?)]।



फुलकोबी—(सं०) एक पौधा, जिसके बीच में फूल-सा रहता है, इसकी तरकारी बनती है।
[फूल+कोबी; फूल < फुल; कोबी < गोभी गोजिह्वा-(?)। दे०—कोबी]।

फुलडाली—(सं०) फूल रखने की डलिया। पर्या०—फूलक डाली (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[फूल+डाली; फुल < फूल < फुल्ल; डाली (देशी)]।



फुलतार—(सं०) नर जाति का ताड़, जिसमें काँटेदार फूल लगे रहते हैं और फल नहीं लगते। दे०—बलतार।
[फुल+तार; फुल < फूल < फुल्ल-; तार < ताल-]।

फुलदो—(सं०) नर जाति का ताड़, जिसमें काँटेदार फूल लगे रहते हैं और फल नहीं लगते (उ० पू० मै०)। दे०—बलतार।
[फुल+दो < फुल्लद (?)]।

फुलपत्ता—(सं०) पोस्ते की पंखुड़ियों की टिकिया (चंपा०)। पर्या०—फुलपत्ती (सा०, मै०); पत्तल (पट०), रोटी (अन्यत्र)।
[फुल < फूल < फुल्ल-; पत्ता < पत्रक-]।

फुलपत्ती—(सं०) पोस्ते की पंखुड़ियों की टिकिया (सा०, मै०)। दे०—फुलपत्ता।
[फुल + पत्ती; फुल < फूल < फुल्ल-; पत्ती < पत्री]।

फुलबधा—(सं०) पशुओं की फलबाल की बीमारी, जिसमें श्वास लेने में कठिनाई होती है (गया, शाहा०)।
[फुल + बधा; फुल < फुलना (बिहा०); फुलना (हिं०) < √फुल्ल्; बधा (देशी)]।

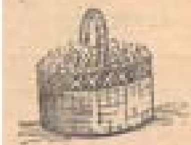
फुलबाई—(सं०) वह बैल, जिसका रंग उजले फूल की तरह हो (पट०-१)।

फुलभंगा—(सं०) दलहन के पौधों को खानेवाला एक कीड़ा, जिसके कारण पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं (मै०)। दे०—भिल्ली।

भाग (पट०-१)।



समें बीच में फूल-सा
नती है।
फूल ; कोबी < गोभी
।



१)]।
ताड़, जिसमें काँटेदार
फल नहीं लगते। दे०—
<फुल्ल-; तार<ताल-]।
ताड़, जिसमें काँटेदार
र फल नहीं लगते (उ०
।
(१)]।
पंखुड़ियों की टिकिया
पत्ती (सा०, मै०); पत्तल
।
ल- ; पत्ता <पत्रक-]।
खुड़ियों की टिकिया (सा०,
।
< फूल < फुल्ल- ; पत्ती

की फलबात की बीमारी,
कठिनाई होती है (गया,

< फुलन (बिहा०) ; फुलना
या (देशी)]।
जिसका रंग उजले फूल की

के पौधों को खानेवाला एक
पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं
।

[फुल+भंगा : फुल < फूल < फुल्ल ; भंगा < < भङ्ग, < भञ्जक-(?)]।

फुलवा—(सं०) बैलों की एक किस्म (चाच)।

फुलवारी—(सं०) वह स्थान, जहाँ फूल-फल आदि के पेड़ लगाये गये हों, बाग-बगीचा।
[फुल+वारी < फुल्लवाटिका]।

फुलहर—(सं०) (१) ऐसा ज्वार, मकई, बाजरा आदि, जिसपर पाला पड़ा या मारा लगा हो (पट०)। दे०—मखियाएल। (२) वह फसल, जिसमें काफी फल लगे, लेकिन फल न हो (पट०-१)। (३) फली-फूली फसल (पट०-१)।
[देशी (?)]।

फुलाएल—(क्रि०) (१) कपास का फूलना। दे०—फूल। (२) किसी पौधे में फूल लगना।
[फुल+आएल (प्र०) ; फुल < फूल< फुल्ल-]।

फुलेना—(सं०) एक प्रकार की घास (उ० प०)। पर्या०—सामतुलसी (प० मै०) ; बनतुलसी (पू० मै०)।
[फुलेना (देशी)। संभ०—< फुल < फुल्ल-]।

फुल्ला—(सं०) किसी मवेशी की आँख की पुतली पर उजला दाग। यह एक प्रकार का ऐब और आँख का रोग है (सा०-१)।
[फुल्ला < फुल्लक ; फुल्लग (प्रा०) = फूल की आकृति का चिह्न-विशेष, जो पशुओं के सिर पर होता है : फुल्ली, फुल्ला (हि०) ; फुलो (ने०) ; फुलो (कुमा०) ; फुल (बँ०) ; फुला (ओ०) ; फुल्लग, फुल्ल (पं०) ; फुल्लो (सि०) ; फुलूँ (गु०) ; फूल (मरा०) ; पोल (सिह०)]।

फुल्ली—(सं०) (१) फूल झड़ने के बाद फल की प्रारंभिक अवस्था का रूप (मुं०-१)। (२) दिये की जलती हुई बत्ती का अग्रभाग।
[फुल्ली < फुल्लित ; फुल्लित]।

फूँट—(सं०) (१) फूट का पका हुआ फल (पट०-१)। (२) विषम, बेजोड़। (३) एकान्त, अकेला।

फूट—(सं०) (१) जत्तर में फलनेवाला एक फल, खरबूजा। (२) बेजोड़, विषम, अलग, एकांत। (३) विरोध, कलह (मुं०-१)। (क्रि० वि०) समष्टि से दूरस्थ, एकांत में।



[फूट < फुटन < √स्फुट् (?) ; फुट (ने०) ; फुट (कुमा०) ; फुट (असं०) ; फुट (बँ०) ; फुट (ओ०) = रुई की ढेंढी का फूटना। फुट (हि०) ; फुट्ट (पं०) ; फुट (गु०) ; फूट (मरा०)]।

फूटल—(क्रि०) (१) फूटना, फटना, नष्ट होना। (२) फूलों का विकसित होना। (३) भूनने के बाद अन्न का फटना। (४) धान आदि के पौधों में बाल लगना। दे०—फुटल।
[फूट+ल (प्र०) ; फूट < √स्फुट्]।

फूटा—(सं०) नदी की धारा में उठनेवाली लहर का एक भेद। हवा की गति विषम होने के कारण धारा की लहर में यह स्थिति आती है। इस लहर में नाविक को काफी खतरा रहता है (सा०-१)।
[देशी]।

फूटि—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[फुटि < फुट < √स्फुट्]।

फूदेना—(सं०) एक प्रसिद्ध छोटा पौधा, जो चटनी आदि में या औषध आदि में प्रयुक्त होता है (मै०)। दे०—पोदीना, पुदीना।
[फुदेना < पोदीनः (अ०)]।

फूनगी—(सं०) वृक्ष, पौधा या उसकी शाखाओं का छोरवाला भाग।
[दे०—फुनगी]।

फूल—(सं०) (१) खिली हुई कली, जो सुगंध और देवपूजा के लिए प्रयुक्त होती है ; पुष्प (दर०-१)।
[फूल < फुल्ल-। फुल्ल (पा०, प्रा०) ; फुल्ल (कुमा०) ; फुल (हि०) ; फल (असं०, बँ०) ; फुल (ओ०) ; फुल, फुल्ल (पं०, ल०) ; फुल (सि०) ; फुल (गु०, मरा०) ; फुल (सिंह०)]।

फूल—(सं०) (२) कपास और किसी भी पौधे का पुष्प। फुलाएल (क्रि०) ; फुलना। (३) अफीम के पोस्ते की पंखुड़ी। (४) बर्रे का पीला फूल, जिससे कपड़े रँगने का काम लिया जाता है (मै०)। दे०—कुसुम।
[फूल < फुल्ल-]।

फूलभंगा—(सं०) फूल का वह पौधा, जिसमें केवल फूल लगता है, फल नहीं (चंपा०-१)।
[फूल+भंगा—(?)]।

फूस—(सं०) (१) पुआल, नरुआ। (२) सूखी हुई लंबी घास। (३) झूठ, तुच्छ।
मु०—'फूस व्याह बीस टका' (मुं०-१)।
[फूस < तुस-(?)]।

फूस के घर—(सं०) गरीबों के रहने की घास-फूस की बनी झोपड़ी। दे०—टटीघर।
[फूस के+घर (पौ०)]।

फूहा—(सं०) आल नाम के रंग का महीन और सुंदरतम मूल। दे०—आल।
[देशी]।

फूही—(सं०) (१) महीन बूंदों की झड़ी (चंपा०-१)। (२) झींसी, फुहारे की तरह वर्षा होना (मुं०-१)। [फूही <क्षुपित <√ क्षुप्। फुसित (प्रा०); फुसिया (प्रा०); फुही (हिं०); फुसि (ने०)]।

फेंकइल जाल—(सं०) छोटे फान का जाल, जिसे पानी में फेंककर मछली पकड़ी जाती है। इसमें नीचे लोहे की गुड़िया लगी रहती है (सा०-१)। [फेंकइल+जाल (यौ०) < फेंकल <√ क्षिप्]।

फेंकल—(क्रि०) किसी वस्तु को दूर हटाना, फेंकना। [फेंक+ल (प्र०); फेंक <√ क्षिप् (वर्ण-व्यत्यय के साथ)—(?); फेंकना, फेकना (हिं०); फेंक्नु, फ्याँकनु (ने०); फेका (बं०); फेंकबु (गु०); फेकणे, फेंकणें (मरा०)]।

फेंका—(सं०) पानी में फेंककर मछली पकड़ने का जाल। दे०—फेकैल।
[फेका < फेंकल (बिहा० क्रि०), फेंकना (हिं०), < (वर्ण-व्यत्यय के साथ) √ क्षिप् (क्षिपति)-(?)]।

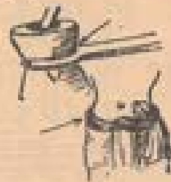
फेंकैल—(सं०) पानी में फेंककर मछली पकड़ने का जाल (दर०, गया, सा०)। पर्या०—खेप (प०), घुमौआ जाल (मै०, द० मुं०), खचियार (उ० पू० मै०), फेंका (द० भाग०)।
[फेक + ऐल (प्र०); फेंक < फेंकल (बिहा०); फेंकना (हिं०) < (वर्ण-व्यत्यय के साथ) √ क्षिप् (क्षिपति)—(?)]।

फेंट—(सं०) मिलावट, मिश्रण।

फेंटल—(क्रि०) मिलाना, तरल पदार्थों का मिलाना, घोटना (मुं०-१)। [फेंट (देशी)]।

फेंटल—(क्रि०) (१) घोंटना, तरल पदार्थों को मिलाना (मुं०-१)। (२) विजातीय द्रव्यों को एक साथ मिलाना। [फेंट+ल (प्र०); फेंट (देशी)]।

फेंटा—(सं०) (१) कतरी के उस भाग में, जो कोल्हू के चारों ओर घूमता है, लगाई गई लकड़ी की कुछ मोटी गाँठ। (२) कमर में बाँधा जानेवाला धोती का अंश।



(३) साफा, मुरेठा। पर्या०—फेटा (सा०)। फेंटा बाँधल (मु०) = कमर कसना, तैयार होना। [फेंटा < फेंटल]।

फेंटावल—(सं०) एक प्रकार की कपास (ग० उ०)। [फेंटावल < (?) < फेंटल (बिहा०) <√ स्फिट् (?)]।

फेंटी—(सं०) सूखे गोबर का टुकड़ा (गया)। [देशी]।

फेंड़—(सं०) (१) पेड़ का तना या धड़ (मुं०-१)। (स्त्री०) फेंड़ी। (२) पेड़ (पट०-१)। [फेंड़ < पेड़ < पिण्ड-(?)]।

फेंड़ी—(सं०) दे०—फेंड़ (मुं०-१)। [फेंड़+ई (प्र०); फेंड़ < पेड़ < पिण्ड-(?)]।

फेटा—(सं०) (१) कतरी के उस भाग में, जो कोल्हू के नजदीक रहता है और उसके चारों ओर घूमता है, लगाई गई लकड़ी की कुछ मोटी गाँठ (सा०)। (२) कमर में बाँधा जानेवाला धोती का अंश। (३) साफा, मुरेठा। दे०—फेंटा।
[फेटा < फेंटल (बिहा०) <√ स्फिट् (स्फेटयति, स्फिट्टयति)—(संस्कृ०); फेंटा, फेटा (हिं०) = साफा; फेटा (ने०) = साफा; फेंतो (रोमा०) = शिरोवस्त्र; फेटो (कुमा०) = चादर का छोर; फेंट (असा०) = साँप का फन; फेटो (सिं०); फेंटो (गु०); फेट (मरा०); < फेटू; फेंटू—(नेपा०)]।

फेटाईन—(सं०) वयस्क बाछी, जो गाय बनने के लिए तैयार हो (पट०)। दे०—ओसर। [फेटाईन (देशी)]।

फेदबातार—(सं०) वह ताड़, जिसमें फल-फूल दोनों लगते हैं (पट०-१)।

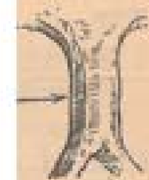
फेवा—(सं०) (१) ताड़ का फल। (२) ताड़ के फल से खेला जानेवाला एक खेल (पट०-१)।

फेहा—(सं०) तार का फल (पट०-१)।

फेन—(सं०) उबले रस, दूध या पानी आदि के ऊपर निकलनेवाले बुलबुलों का एक रूप।
[फेन < फेन। फेन-(संस्कृ०); फेण (पा, प्रा०); फेन (शिना०), फेन (कश्म०); फेन् (ने०); फेन (कुमा०); फेन (असा०, बं०); फेन (ओ०); फेन, फेना (हिं०); फिणु (सिं०); फेण (गु०); फेस (मरा०); फेन (सिंह०); पिण्ड्ह (काफ़ि०)]।

फेनावल—(क्रि०) (१) किसी खौलते हुए या मथे जानेवाले पदार्थ से फेन का निकलना (चंपा०)। (२) फेनाना, फेन का निकलना। [फेन+आवल (प्र०) < फेन-]।

फेकरियाह—(सं०) भड़कनेवाला बैल (उ० प०)। पर्या०—चिहुकार, हुरकाह (ग० उ०); बंदिया (द० प० शाहा०); भंभार (शाहा० के शे० भाग); भरकाहा (पट०, गया); हुरकाह (द० पू०)। [फेकरा+इयाह (प्र०); फेकरा < फेकका]।



फेकना—(सं०) एक प्रकार की घास (पू०, द० मै०)।
[देशी]।

फेरबैक—(सं०) घूम-घूमकर पशुओं का व्यापार करनेवाला मनुष्य (द० भाग०)। दे०—फेरहा।
[फेरब+ऐक (प्र०) ; फेरब < फेरल < √स्फुट् (?), < √स्तृ (स्तृणोति)]।

फेरल—(क्रि०) (१) फेरना, अदला-बदली करना। (२) पशुओं का द्रव्य या मूल्य से विनिमय करना। (३) नये बछड़े या पाड़े या घोड़े को हल या गाड़ी में बहने योग्य बनाने के लिए अभ्यास कराना। (४) कोई वस्तु वापस करना।
[फेर+ल (प्र०) ; फेर < √स्तृ (स्तृणोति, स्तृणुते); फेरण (प्रा०) ; फेरई (हिन्दा०) ; फेरन (कश्म०) ; फेरा (बँ०) ; फेरिबा (ओ०) ; फेरना (हि०) ; फेरना (पं०) ; फेरणु (सि०) ; फेरवुँ (गु०) ; फेरणे (मरा०) ; फेर्नु (ने०), फेरति (सिंह०) ; सम०—स्फेरयति, < स्फिरति-(निपा०)]।

फेरवार—(सं०) हल जोतने या गाड़ी चलाने में एक साथ प्रयुक्त चार बैल, जिनमें से दो काम करते हैं और दो विश्राम (द० प० मै०)। दे०—चौवर।
[फेर+वार (प्र०) ; फेर < फेरल < √स्तृ]।

फेरहा—(सं०) (१) घूम-घूमकर पशुओं का व्यापार करनेवाला मनुष्य (सं० उ०)। पर्या०—फेरबैक (द० भाग०), वरिहा (द० प० शाहा०); लेंहड़िवाला (पट०); मेँहड़िवाला (द० मुं०); हारवाला (अन्यत्र)। (२) मोट आदि चलने में बैलों को हाँकनेवाला मनुष्य (शाहा०)। दे०—हँकवा। (३) मवेशियों की खरीद-बिक्री करनेवाला दलाल। (चंपा०-१)।
[फेर+हा (प्र०) ; फेर < फेरल < √स्तृ]।

फेरा—(सं०) दौनी में घूमनेवाला सबसे तेज बैल (द० पू० मै०)। दे०—पाट।
[फेरा < फेरल < √ (स्तृणोति)]।

फेरा—(सं०) चार बैलों से चलनेवाले हेंगे में दाईं ओर का सबसे किनारे का बैल (चंपा०-१, पट०-१)।

फेरा-(सं०) हेंगे में दाईं ओर बहनेवाला बैल। पर्या०—भसनी (द० मुं०)।

फेराफारी—(सं०) (१) एक के बाद दूसरे कृषक का काम करना। दे०—भांजा सिरे। (२) किसी वस्तु की अदला-बदली।
[फेरा+फारी < फेरल]।

फेरार—(सं०) दे०—छोड़ देना (गादड़०)।

फेही—(सं०) जमींदार के अमलों को दी जानेवाली घूस (पट०-१)।

फोक—(वि०) भीतर पोली या खाली वस्तु, या जो ठोस नहीं है (मुं०-१)। (सं०) फोड़ा।
[फोक (देशी), फोक, फोका (हि०) = पोला ; फोक (कुमा०) = पोला ; फोको (ने०) = फोड़ा, फोकर (बँ०) = छेद ; फोका (पं०) ; फोकु (सि०) ; फोक (गु०)]।

फोंकना—(सं०) चेहरा, मुँह। फोंकना फुलावल=रूठना, रंज होना।

फोंकल—(क्रि०) चना आदि का छिलका मुँह से अलग कर उसे खाना। जैसे—सुग्गा धान फौंकै छै = तोता धान छीलकर खाता है।
[फोंक+ना (प्र०) ; फोंक (?)]।

फोंकल—(क्रि०) मुँह से चना आदि का अलग करके खाना। दे०—फांकना।

फोंफड़—(वि०) खोखला बाँस या लकड़ी आदि (चंपा०-१)।
[फोंफ+ड़ (प्र०) ; फोंफ-(?)—अनु०-(?)]।

फोंफियावल-(क्रि०) किसी मवेशी या सर्प आदि का फों-फों की आवाज करना (चंपा०-१)।
[फोंफ+इयावल (प्र०) ; फोंफ (अनु०)]।

फोकचा—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी]।

फोकसा—(वि०), खोखला, पोला, जिसका भीतरी भाग ठोस नहीं हो (मुं०-१)।
[फोकसा (देशी), दे०—फोक। फोक्स (ने०)]।

फोटो—(सं०) कपास का फूटना, फली का खिलना (द० मुं०)। दे०—कपास फुटल।
[फोटो < स्फोट < √स्फुट् (विकसने)]।

फोड़ल—(क्रि०) (१) फोड़ना, ढेला आदि को टुकड़े-टुकड़े करना। (२) किसी वस्तु को टुकड़े करना, जैसे—सिर फोड़ना आदि।
[फोड़+ल (प्र०) ; फोड़ < फोड्ड < स्फोट < √स्फुट् (विकसने)]।

फोर—(सं०) किसी तालाब या सरोवर के जल से पटाया हुआ खेत (द० प० शाहा०, गं० द०)। दे०—छानन।
[फोर < ?]।

फोरन—(सं०) जीरा, मिरचा, मेथी आदि पदार्थ। इनसे दाल आदि वस्तुएँ बघारी जाती हैं (पट०-१)।

फौरा–(सं०) फावड़ा, कुदाल। पर्या०–फौरा (प० बिहा०, गया), फहोड़ा (पट०, गया), फहुरा या फड़ुहा (शाहा०), फरसा (द० प० शाहा०), कुदार (मै०), कोदार (द० भाग०, द० मुं०), झाम (गया), आभी (गया)= कड़ी मिट्टी काटने के लिए नोकदार और मजबूत कुदाल; खुरपी, खुदनी (गया)।
[फौरा < फावड़ा < स्फाटि (णिजन्त) < √ स्फट् (स्फाटयति) वा < फाल (ड प्र० के साथ) वा < परशु-? ; फावड़ा (हिं०) ; फ्वाउरि (ने०), फाव्ड़ो (कुमा०) ; फाउड़ा (बँ०, ओ०) ; फरुवा, फरहा, फाओड़ा, फावड़ा, फौड़ा (हिं०) ; फावड़ा (मरा०)। 'ब्लॉक' के अनुसार ये शब्द स्फ्य- (संस्कृ०) = लकड़ी की तलवार से व्युत्पन्न हैं। फियाओअर (दा०); फयोडु (करम०) ; फी (दरदी) = काष्ठकुदाल ; फर (बं०) ; फरी (ज०)]।

ब

बँकवा—(सं०) कुएँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए प्रयुक्त अर्धवृत्त चौरस ईंट। दे०—बकौ।
[बँक+वा (प्र०) ; बँक < बाँक < वक्र (?), वा वङ्क- ; बँकना (हिं०) = एक प्रकार का धान, जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल सैकड़ों वर्षों तक रह सकता है—(हिं० श० सा०)]।

बँकवा धान—(सं०) एक प्रकार का धान, जिसका चावल उजला होता है (पट०-१)।

बँकौ–(सं०) कुएँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए अर्धवृत्त चौरस ईंट। दे०—बकौ।
[बँक+औ (प्र०) ; बँक < वङ्क-, वक्र-]।

बँगठी–(सं०) कपास का बीज (द० भाग०)। दे०–बनौर।
[देशी, बँग+ठी < बँग, बँगा। मिला०—बंगहन; बंगक (=एक प्रकार का पेड़)—(मो० वि० डि०)]।

बँगरा—(सं०) (द० प० मै०)। दे०—बँगला।

बँगराह—(सं०) वह हलकी जमीन, जिसकी उपजाऊ शक्ति नष्ट हो रही है (द० प०, गया)। दे०–भुस।
[बँगरा+आह (प्र०) ; बँगर < बाँगर (?)—देशी]।

बँगरेड़ा—(सं०) (१) एक प्रकार का पेड़। (२) वातघ्न (चंपा०-१)।
[बँग + रेड़ा (?) ; बंग < बंगा ; रेड़ा < रेड़ < एरण्ड (?)]।

बँगलवा धान—(सं०) कात्तिक मास में तैयार होनेवाला एक निम्न श्रेणी का पीला धान, जिसका चावल उजला होता है (पट०-१)।

बँगला—(सं०) एक प्रकार की लंबी सेम (उ० प०)। दे०—बोकला।
[देशी]।

बँगला—(सं०) एक प्रकार का अन्न। इसकी दाल बनाई जाती है। बकला (चंपा०-१)।

बँगला—(सं०) छोटे पत्तोंवाला पान, जो थोड़ा कड़वा होता है। पर्या०—बँगरा (द० प० मै०)।
[बँगला < बंगाल]।

बँगसेढ़ा—(सं०) कपास का सूखा पौधा (सा०-१)।
[बंग+सेढ़ा ; बंग < बंगा। सेढ़ा < (?)]।

बँगहेरि—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बँगहेरि (देशी)]।

बंगा—(सं०) कपास का पौधा (चंपा०-१)।

बंगा, बाँगा–(सं०) (१) कपास या रुई का पौधा। (२) फली में पड़ी हुई, बिना साफ की हुई रुई। पर्या०—बाँगो (द० भाग०), कपास (प०)।
[बंगा (देशी)]।

बंगोड़—(सं०) एक प्रकार का पौधा (सा०-१)।
[देशी]।

बंगौर—(सं०) कपास का बीज (मै०)। दे०—बनौर।
[बंग+और ; बंग < बंगा ; और (प्र०) (?)]।

बँगौर—(सं०) रुई का बीज।
[बँग+और < बंगा+और (प्र०)]।

बंगौरा–(सं०) कपास का बीज (द० मुं०)। दे०–बनौर।
[बंग+औरा (प्र०) < बंगा]।

बँगौरी—(सं०) मानसून के साथ आया हुआ बरफ का पत्थर, वर्षोपल (प० मै०, पट०)। दे०—पत्थल।
[बँग+औरी < वन+उपल (?)]।

बँगौरिया—(सं०) मानसून के साथ आया हुआ बरफ का पत्थर, वर्षोपल (प० म०, पट०)। दे०—पत्थल।
[देशी (?)। संभ०—<वनोपल < वन (=जल)- उपल-, वनोपल=जंगली पत्थर—(मो० वि० डि०]।

बँझड़—(सं०) वह फसल, जिसकी बाल पीली और बिना दानों की हो जाती है (शाहा०)। दे०—ढुँठा।
[बँ + झड़ < वन + झाड़, वन < वन- ; झा... (देशी) वा बँझ+ड़ (प्र०) ; बँझ < वन्ध्य-]।

बँझौड़ा—(सं०) बीज का मर जाना या नहीं उग... (द० प० शाहा०)। दे०—बिजमार।
[बँझ+औड़ा (प्र०) ; बँझ < बाँझ < वन्ध्य...

बँझौरी—(सं०) बीज का मर जाना या नहीं उगना (पट०-१)। दे०—बिजमार।
[बँझ+औरी (प्र० १); बँझ < वन्ध्य-]।

बँटवारा—(सं०) (१) किसी जायदाद को आपस में बाँटने के संबंध में मुकदमा (सा०-१)। (२) बाँटने की क्रिया।
[बँट+वारा (प्र०); बँट < बँटब; बाँटब (बिहा०); बँटना, बाँटना (हिं०) < √ वण्ट्]।

बँड़छा, बँड़्छा–(सं०) एक प्रकार की कपास (शाहा०)।
[देशी]।

बँड़्छा, बँड़छा–(सं०) एक प्रकार की कपास (शाहा०)।
[देशी]।

बंडा–(सं०) टूटी पूँछवाला बैल (पट०)। दे०—बाँड़।
[बँडा < वण्ड-, वण्ड-(संस्कृ०) = पुच्छविहीन। वण्ड=अविवाहित, बौना]।

बँदिया—(वि०) भड़कनेवाला बैल (द० प० शाहा०)। दे०—फेकरियाह।
[बँदिया < बँधिया < बंधन < √बन्ध्]।

बंदोबस्ती—(सं०) जमीन की बंदोबस्ती का प्रमाणपत्र (पट०-१)।

बंदोबस्त—(सं०) (१) खेतों को नाप-जोखकर उनका कर-निर्धारण करना। (२) किसी दूसरे किसान को खेती करने का अधिकार देना, या व्यवस्था करना। (३) व्यवस्था, इंतजाम।
[बंदोबस्त < बन्द-ओ-बस्त (फा०); बन्दोबस्त (हिं०), बन्दोबस्त (बं०)]।

बंदोबस्ती—(सं०) दे०—बंदोबस्त।

बँवौर—(सं०) कपास का बीज (द० प० शाहा०)। दे०—बनौर।
[देशी]।

बंधन—(सं०) जानवरों का हैजा रोग (पट०-१)।

बंधवारी—(सं०) खेतों की रक्षा के लिए नियुक्त पुरुष का पारिश्रमिक (पट०-१)।

बँधा—(सं०) (१) नदी की धारा में उठनेवाली लहर का एक भेद। हवा के बराबर बहते रहने से इस तरह की स्थिति आती है (सा०-१)। (२) पेड़ की डाल में से निकलनेवाली एक गाँठदार डाल, जो बाँझ-सी होती है। इसमें फल नहीं लगते हैं (पट०-१)।
[बँधा < बांधन (?)]।

बंधान—(सं०) नियमित रूप से बँधे हुए समय पर काम करने या चीजें देने का निर्णय। (वि०) नियमित, बँधा हुआ (मुँ०-१)।
[बंधान < बन्धन-(?)]।

बंधक—(सं०) किसी से ऋण के रूप में रुपये या कोई द्रव्य लेकर बदले में उसके पास रखी जानेवाली जमीन या कोई दूसरी संपत्ति, धरोहर। दे०—रेहन, बंधिक।
[< बन्धक-]।

बंधकोबी–(सं०) पत्तियों से भरी हुई गोभी की जाति या पत्र - शाक - जाति की एक तरकारी। दे०—करमकल्ला।
[बंधा+कोबी ; बंधा < बँधल (बिहा०); कोबी < कैबेज (अं०, पुर्त०)]।

बँधिया—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें उनके पेट में घाव हो जाता है (पट०-१)।

बँधिक—(सं०) ऋण के रूप में किसी से रुपये या कोई द्रव्य लेकर बदले में उसके पास रखी जानेवाली जमीन आदि कोई संपत्ति। दे०—रेहन।
[बंधिक < बन्धक-]।

बँधिक—(सं०) किसी से ऋण लेकर उसके बदले में रखी जानेवाली कोई संपत्ति। दे०—गिरो।
[बंधिक < बन्धक-]।

बँधौरी—(सं०) कटनी के मजदूरों को मिलनेवाला पारिश्रमिक, जो २१ बोझों में से एक बोझा होता है। यह बोझा अपेक्षाकृत बड़ा होता है। (पट०-१)।

बंबई—(सं०) (१) एक प्रकार का स्वादिष्ठ आम, जो 'जरदा' के बाद पकता है (पट०-१)। पर्या०—बंबइया। (२) एक प्रसिद्ध शहर।

बंबइया—(सं०) दे०—बंबई।

बँसइठा—(सं०) बाँस की मोटी लाठी (चंपा०-१)।
[बँस + इठा, बँस < बाँस < वंश-; इठा < यष्टिक-]।

बँसजोती—(सं०) हेंगा खींचने के लिए बरही की जगह काम में आनेवाली बाँस की लग्गी (द० भाग०)। दे०—कुंडी।
[बँस + जोती<वंश+योक्त्र, योक्त्र-< युज् + त्र]।

बँसजोर–(सं०) पतले बाँस के अंत में जोड़ा हुआ लकड़ी का टुकड़ा। पर्या०—खीप (पट०, द० प०)।
[बँस+जोर < वंश+जोड-(?)]।

बँसफट्ठा–(सं०) बाँस को फाड़कर बनाई हुई छड़ी या बत्ती (पट०, गया)। दे०—फट्ठी।
[बँस + फट्ठा, बँस < बाँस < वंश-; फट्ठा < स्फार-, स्फारि-< √स्फट्]।

बँसफेंटा—(सं०) बाँस को फाड़कर बनाई हुई छड़ी या बत्ती (पट०, गया)। दे०—फट्ठी।
[बँस+फेंटा; बँस < बाँस < वंश-; फेंटा<फट्ठा स्फाट-, स्फाटि < √स्फट्]।

बँसवार—(सं०) एक साथ उगे हुए बाँसों का समूह (द० प० शाहा०)। दे०—बाँस के कोठी।
[बँस+वार <वंश+वाट-(?) या < वंशावट ; या वंशावलि (?) < वंश+आवलि (=पंक्ति, पाँत)]।



बँसवारी—(सं०) एक साथ उगे हुए बाँसों का समूह (सं० उ०, चंपा०-१, सा०-१)। दे०-बाँस के कोठी।
[बँस+वारी < वंश+वाटिका]।

बँसबिट्टा—(सं०) दे०—बँसबीटा।

बँसबिट्टी-(सं०) एक स्थान पर उगे हुए बाँसों की घनी भाड़ी। दे०—बँसबीटा।

बँसबीटा—(सं०) एक स्थान पर उगे हुए बाँसों की घनी भाड़ी, वेणुवन (मुं०-१)। पर्या०—बँसबिट्टी (स्त्री०), बँसबिट्टा।
[बँस+बीटा < वंशवीटा-(?)]।

बंसा—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी]।

बँसिलवा—(सं०) भैंस का वह सींग, जो कुछ पीछे हटकर आगे की ओर घूमा हो (सा०-१)।
[बँसिल+वा (प्र०) < बँसिल < बँसिला < वासि-(?)=बसुला]।



बंसी-(सं०)(१) मछली पकड़ने का साधन-विशेष, जिसमें लंबी पतली छड़ी के छोर पर लंबा मजबूत सूत लटकता है, जिसके अंत में टेढ़ी कील लगी रहती है, जिसमें चारा लटकता है और जिसके खाने से मछली उस काँटे में फँस जाती है। (२) बाँसुरी, बंशी (चंपा०-१, सा०-१)।
[बंसी < वंशिक < वंश-]।



बइकठपुरिया बइर—(सं०) अच्छी किस्म का बड़ा बेर (पट०-१)।

बइगन—(सं०) बैंगन, एक प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी बनती है (पट०-१)।

बइगनबारा—(सं०) बैंगन का बनाया बारा।

बइरचुन—(सं०) बेर का चूर्ण (पट०-१)।

बइल—(सं०) बैल। दे०—बरद।
[बइल < बल्ल (देशी)]।

बकब्जा—(सं०) अधिकार में, कब्जे में (गाइड०)।

बकम—(सं०) (१) लाल रंग। इस रंग का उपयोग उस स्थान में होता है, जहाँ 'आल' नामक मूल रंग नहीं मिलता। यह रंग बकम नाम के वृक्ष की लकड़ी; छिलके और फलों से बनता है। (२) एक वृक्ष, जो भारत के मद्रास और मध्यप्रदेश तथा बर्मा में होता है। पेड़ कँटीला और छोटा होता है। लकड़ी मजबूत होती है।
[बकम (अ०)]।

बकरा—(सं०) एक प्रसिद्ध चतुष्पाद नरपशु। दे०—छेर।
[बकरा < बर्करक-]।

बकरी—(सं०) दूध देनेवाली छोटी जाति की पारिवारिक स्त्री पशुजाति। बकरे की स्त्री। दे०-छेरी।
[बकर+ई (प्र०) < बकर < बर्कर-]।

बकरू—(सं०) पठरू, भेंड़ या बकरी का बच्चा (द० मुं०)। दे०—पठरू।
[बकर+उ (प्र०) < बकर < बर्कर-]।

बकला—(सं०) एक प्रकार की लंबी सेम (चंपा०)। दे०—बोकला।
[बकला < वल्कलक-(?)]।

बकवा—(सं०) कुआँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए प्रयुक्त अर्धवृत्त चौरस ईंट। दे०—बकी।
[बक+वा (प्र०) < बक < वङ्क-, वक्र-]।

बकवा गोहूम-(सं०) पुष्ट दानों का उजला गेहूँ (पट०-१)।

बकसिस—(सं०) (१) लुहार, बढ़ई आदि को विवाह के समय बरात की ओर से अपने काम के लिए मिलनेवाला पुरस्कार (अन्यत्र)। दे०—बिरीत। (२) इनाम, पारितोषिक। (३) दान।
[बकसिस < बख़शिश (फा०)]।

बकसीसनामा—(सं०) (१) रजिस्ट्री किया हुआ वह कागज, जिसमें अपनी जमीन किसी को मुफ्त दी जाती है (पट०-१)। (२) इनाम के लिए लिखा हुआ पत्र या कागज।

बकाया—(सं०) (१) मालगुजारी चुकता करने के पश्चात् भी देय बाकी रकम (सा०-१)। (२) बचा

हुआ, शेष। किसी रैयत के पास बाकी रह गई मालगुजारी (सा०-१)।
[बकाया (अ०)]।

बकाया लगान—(सं०) पहले की बाकी मालगुजारी (सा०-१)। दे०—पिछला लगान।
[बकाया+लगान ; बकाया (अ०) ; लगान (बिहा०, हिं०) < लग्न-(?)]।

बकाश्त—(सं०) जमींदारों द्वारा स्वयं आबाद की गई या बटाई पर आबाद की जानेवाली जमीन।

बकाश्त मालिक—(सं०) बकाश्त जमीन का स्वामी (गाइड०)। पर्या०—ठीकेदार।

टि०—खतियान में मालिक (जमींदार) के अधिकार में जिस जमीन का विवरण दिया रहता है, वह जिरात नहीं होती है, जैसा कि १२०वीं धारा में परिभाषित है।

बकास—(सं०) बकाश्त जमीन (पट०-१)।

बकियौता—(सं०) दे०—बकाया।
[बकियौता < बकियात (अ०)]।

बकुचा—(सं०) पीठ पर बँधा हुआ गट्ठर (चंपा०-१)। छोटी गठरी (चंपा०-१)।
[बकुचा < बकुचना < विकुचन-(संस्कृ०)—(हि० श० सा०)]।

बकुट्टा—(सं०) हथेली में किसी चीज के अँटने का स्थान। ऐसी मुट्ठी, जिसमें ज्यादा-से-ज्यादा चीज समा सके। **बकुटा बांधल** (क्रि० मु०) = बकुट्टे में चीजें लेना (मुं०-१)। पर्या०—बकटा।
[बकुट्टा < प्रकोष्ठक या < अभिकोष्ठ (हि० श० सा०)]।

बकुला—(सं०) (१) बीजकोष के ऊपर का छिलका (पट०)। दे०—खोइया।
[बकुला < वल्कलक-]।
(२) लंबी आकृति का एक छोटा कीड़ा, जो धान को नष्ट करता है (शाहा०)। दे०—बक्की।
[बकुला < बकुलक-वा < बकुल-,< बक-(?)]।

बकुली—(सं०) (१) एक प्रकार की लंबी सेम (द० पू० मैं०)। दे०—बोकला।
[बकुल+ई (प्र०) < बकुल, < वल्कलक-(?)]।

बकुली—(सं०) (२) धान को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा। मिला०—कजरी।
[बकुल+ई (प्र०) < बकुल-(?)]।

बकुली—(सं०) (३) टेढ़ी लाठी या छड़ी। (४) बगले की मादा (चंपा०-१)।
[बकुल < बक-(?) < बक]।

बकेन—(सं०) वह भैंस या गाय, जिसे बच्चा दिये छह मास से ज्यादा हुए हों और बरदाई न हो तथा दूध दे रही हो। पर्या०—बकेना।
[बकेन < बष्कयणी < √ बष्क् (बष्कयति = जाता है)]।

बकेन—(सं०) वह गाय या भैंस, जो बच्चा देने के साल-भर बाद भी दूध देती है (चंपा०-१)।

बकेन के दूध—(सं०) प्रसव के छह मास के बाद की गाय का दूध।
[बकेन के (विभ०) + दूध (यौ०)। बकेन < बष्कयणी ; दूध < दुग्ध-]।

बकेना—(सं०) वह भैंस या गाय, जिसे बच्चा दिये छह मास से ज्यादा हुए हों (शाहा०)। दे०—बकेन।
[बकेना < बकेन < बष्कयणी]।

बकेनी—(सं०) बहुत दिनों की ब्याई और दूध देनेवाली गाय या भैंस, जिसका दूध गाढ़ा हो (मुं०-१)। पर्या०—बकेन।
[बकेन+ई (प्र०) < बकेन < बष्कयणी]।

बकेया—(सं०) लंबी आकृति का एक छोटा कीड़ा, जो धान को नष्ट करता है (शाहा०)। दे०—बक्की।
[बकेया < बक-(?)]।

बकोइया—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)।
[देशी]।

बकौ—(सं०) कुएँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए प्रयुक्त अर्धवृत्त चौरस ईंट। पर्या०—बँकौ, बकवा, बँकवा, चाकैठा, कोठिया ईंटा (द० पू० मैं०)।
[बक+औ (प्र०) < बक < बक-, वक्र-(?)]।

बक्कर—(सं०) बकरा। दे०—छेर। स्त्री०—बकरी।
[बक्कर < बर्कर-]।

बक्की—(सं०) लंबी आकृति का एक छोटा कीड़ा, जो धान को खाता है (प० मैं०)। पर्या०—बकेया, बकुला (शाहा०), बुढ़िया, बढ़ही (द० भाग०)। बाँका = बक्की जाति का बड़ा कीड़ा।
[बक्क+ई (प्र०) < बक्क < बक-(?)]।

बखरदार—(वि०) (१) जमींदारी या किसी प्रकार की संपत्ति के हिस्सों (दायों) का अधिकारी (प०)। दे०—हिस्सेदार। (२) भाग या अंश का अधिकारी।
[बखर + दार (प्र०) < बखर < बखरा < बखर (फा०)]।

बखरा—(सं०) (१) जमींदारी या किसी दूसरी तरह की संपत्ति आदि में अधिकृत अंश (प० मैं०)।

दे०—हिस्सा। (२) अंश, भाग। बखरदार (वि०)= हिस्सेदार (मै०)।

[बखरा < बखर (फा०)]।

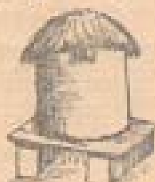
बखरा—(सं०) हिस्सा, किसी संपत्ति के बाँटने में मिलनेवाला अंश या दाय (चंपा०-१)।

बखरा—(सं०) बाँट का भाग, हिस्सा (मुं०-१)।

बखरी—(सं०) मकान (शाहा०)। दे०—मकान।

[देशी, बखरी (हिं०) = एक परिवार के रहने योग्य मकान]।

बखार—(सं०) अन्न रखने के लिए खुली जगह में पुआल या खड़ आदि का बना हुआ एक प्रकार का घर। पर्या०—बखरी, कोठी, बेढ़ी (सं० उ०), ठेक (द० भाग०), बखारी (द० भाग०), मुनहर (द० पू० मै०)।



[बखार < प्राकार—(हिं०श०सा०); बखरी (हिं०)= एक परिवार के रहने योग्य घर। बखार, बखारी (हिं०)= अन्न आदि रखने के लिए बनाया गया घिरा स्थान। बखेर, बखोल, बखरी (संता०)=वस्तु, एक परिवार के निवास-योग्य भवन। मिला०—वख (संस्कृ०)=भवन]।

बखारी—(सं०) अन्न रखने के लिए खुली जगह में पुआल या खड़ आदि का बना हुआ एक प्रकार का घर। दे०—बखार।

[बखार + ई (प्र०) < बखार < प्राकार (?)—(हिं० श० सा०)। बखार, बखारी (हिं०)=घर, पारिवारिक निवास-घर। अन्न रखने का घिरा हुआ स्थान। बखेर, बखोल, बखरी (संता०) = घर। एक परिवार के योग्य भवन]।

बखारी, बखार—(सं०) वह स्थान, जहाँ अन्न तैयार किया जाता है या तैयार अन्न इकट्ठा करके रखा जाता है। अन्न रखने का स्थान, ठेक (मुं०-१)।

बखौर—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी, या बख + औैर; बख < वक-; और < चाउर < चावल < तंडुल, तण्डुल < √तण्ड्-(?)]।

बगइचा—(सं०) बागीचा (पट०-१)।

बगछल्ला—(सं०) (१) वह गाय, जिसका चमड़ा बाघ के चमड़े के समान धब्बेदार हो। (२) बाघ का चमड़ा। लाल बगछल्ला = लाल रंग की बगछल्ला गाय, लाल बघछाला। सफेद बगछल्ला = सफेद रंग की बगछल्ला गाय; सफेद बघछाला।

[बग+छल्ला; बग < बघ < बाघ < व्याघ्र; छल्ला < छल्ली (देशी)। मिला०—छाल (बिहा०, हिं०)। मिला०—छादन, छालित]।

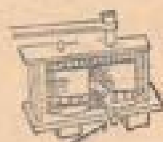
बगरैत—(सं०) साथी, संगी। गाय-बैल चराते समय चरवाहों द्वारा अपने साथी के लिए प्रयुक्त संबोधन (मुं०-१)।

[देशी (?)]।

बगहा—(सं०) (१) सिंचाई करनेवाले लाठे को कूँड़ से मिलानेवाली छोटी रस्सी, जिसमें सरकनेवाली गाँठ (फंदा) लगी रहती है। दे०—पनखोर। (२) बरहे को कूँड़ से बाँधने के लिए गाँठ दी हुई छोटी रस्सी (द० भाग०)। दे०—पनखोर। (३) चंपारन जिले का एक स्थान।

[बगहा < प्रग्रहक-(?)]।

बगास—(सं०) ईख की सिट्ठी, रसरहित ईख का छिलका (सा०-१)। पर्या०—चेफुआ, खोइया।



[देशी]।

बगिया—(सं०) वह बारी या क्यारी, जिसमें फूल आदि लगाये गये हों।

[बग+इया (प्र०) < बग < बाग (फा०)]।

बगुला धान—(सं०) एक प्रकार का धान, जो उजला और लंबा होता है (पट०-१)।

बगैचा—(सं०) छोटी फुलवारी। वह स्थान, जहाँ पेड़-पौधे लगाये गये हों। पर्या०—गाछी।



[बग + ऐचा (प्र०) < बग < बाग (फा०); मिला०—वाटी (संस्कृ०) = वृक्षों का समूह]।

बगौधा—(सं०) एक प्रकार का पालतू बैल। इस नस्ल के बैल बड़े सीधे होते हैं।

'बैल बगौधा निरघिन जोय,
वा घर ओरहन कबहुँ न होय।'—घाघ।

बग्धा—(सं०) डोरा, सूत या रस्सी आदि में विशेष प्रकार की गाँठ, जो कठिनाई से खुलती है।

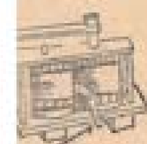


[बग्धा < व्याघ्रक (?) या < व्याघ्र (?)]।

बघंडी—(सं०) एक जंगली पौधा, जिसकी टहनियों से दूध-जैसा रस निकलता है (मुं०-१)।



[देशी]।









बचवा—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।
[देशी]।

बचा भुकल—(मु०) बच्चे का मरना।
[बचा+भुक+ल (प्र०)—(मु०)]।

बछरू—(सं०) गाय का डेढ़ वर्ष से तीन वर्ष तक का नर-बच्चा। दे०—बाछा।
[बछ + रू (प्र०) < बछ < वत्स। वा बछरू < बस्सतर। बछड़ा; बछड़ (हिं०, प०)। बछेरो (सिं०, गु०); वासरूँ (ने०); बछोल (कश्म०)]।

बछवा—(सं०) गाय का डेढ़ वर्ष से तीन वर्ष तक का नर-बच्चा। दे०—बाछा।
[बछ+वा (प्र०) < बछ < वत्स-]

बछिया—(सं०) गाय का डेढ़ वर्ष से तीन वर्ष तक का मादा-बच्चा। दे०—बाछी।
[बछ+इया (स्त्री०प्र०)< बछ< बच्छ< वत्स-]।

बछेड़ा—(सं०) घोड़ी का नर-बच्चा। स्त्री०—बछेड़ी।
[बछे+ड़ा (प्र०) बछे < बछ < बच्छ< वत्स- वा < वत्सतर-]।

बछेड़ी—(सं०) घोड़ी का मादा-बच्चा। दे०—बछेड़।
[बछे+ड़ी (स्त्री० प्र०) < बछे < बछ<बच्छ < वत्स- वा < वत्सतरी]।

बजड़ा—(सं०) एक प्रकार का ज्वार, जो छोटा और उजला होता है। पर्या०—दुधिया (सं० उ०), लरकटिया, नरकटिया (द० मै०)।
[बजड़ा < बजँरी—(हिं० श० सा०)। संभ०—वज्र-(?)। मिला०—बर्बरी = एक प्रकार का धान्य]।

बजड़ा—(सं०) (१) ज्वार की जाति का एक अनाज, जो छोटे दानोंवाला और मटमैले रंग का होता है। पर्या०—जोंधरिया (द० प० शाहा०), महुगा (द० भाग०)।
टि०—इसकी उपज प्रायः सं० द० भाग में होती है और जनेर या ज्वार की सं० उ० में। इसलिए, दोनों के विषय में कभी-कभी गड़बड़ी हो जाती है। बजड़ा को पटना में मधुरिया जनेर या जिनोरा कहते हैं।
(२) बाजड़ा (बाजरा), एक प्रकार का अन्न (चंपा०-१)। (३) पटकनिया, जोर का पटकना। (४) बाजरा (मुं०-१)। (५) बड़ी नाव।
[बजड़ा < बजाड़ल (बिहा०); बजाड़ना (हिं०) < बज्र-(?)]।

बजड़ी—(सं०) (१) मटर, मकई आदि का अनकुटा चबेना। कठिनाई से चबाया जानेवाला चबेना आदि (मुं०-१)। (२) पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े, कंकड़। (३) कार्तिक मास में भ्रातृद्वितीया को बहन द्वारा भाई को खिलाया जानेवाला केराव (मटर) का दाना। बहन भाई को इसे खिलाकर उसके दीर्घायु होने की कामना करती है और भाई से उपहार पाती है (चंपा०-१)।
[बजड़ी < वज्र-(?)]।

बजरबोंग—(सं०) भारी लाठी। दे०—बोंग।
[बजर+बोंग, बजर < वज्र; बोंग (?)]।

बजरिये बदलन—(सं०) विनिमय के द्वारा।
टि०—यह शब्द 'बजरिये बदलन' रैयत के नाम के बाद लिखा जाता था और उसके साथ उस खेत का नंबर और विनिमेय वस्तु का नाम रहता था (शाहा०)।

बजरी—(सं०) (१) छोटे दानोंवाला काला मटर (चंपा०)। पर्या०—बदुरी (शाहा०), कुनही (पट०, गया, द० पू०), भिठगरा (द० भाग०)। (२) पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े, कंकड़।
[बजरी < वज्र, वज्रिका]।

बज्जड़—(वि०) बहुत कड़ा; यथा बज्जड़ माटी, बज्जड़ खेत, बज्जड़ किवाड़ (लो० गी०) (चंपा०-१)।
[बज्जड़ < वज्र-]।

बज्जाड़—(सं०) वज्र। (वि०) वज्र-सा कठोर, सुदृढ़, खूब मजबूत (मुं०-१)।

बटकर—(सं०) अधपके मटर की बनी गाढ़ी दाल (द० प० शाहा०)।
[देशी (?)]।

बटनूं—(सं०) किसान और जमींदार के बीच निश्चित परिमाण में किया जानेवाला अनाज का विभाजन (द० प० शाहा०)।
[बट+नूं (प्र०) < बट < बँटल, बाँटल (बिहा०), बँटना; बाँटना (हिं०) < √ बण्ट्]।

बटवन—(सं०) जाल को जल में डुबाने के लिए उसमें लगाया हुआ लोहा या पकी मिट्टी का गोला (प०)। दे०—बटिवन।
[देशी (?)]।



बटाइ—(सं०) (१) किसान और जमींदार के बीच निश्चित परिमाण में किया जानेवाला अनाज का विभाजन। पर्या०—बटैया, बाँट (चंपा०, गया), बाँटी (चंपा०, द० भाग०), बटनूं (द० प० शाहा०)। (२) भावली जमीन की मालगुजारी, जो नगदी के बदले, अन्न के आनुपातिक परिमाण के रूप में जमींदार को दी जाती है। दे०—मनखप।

(३) खलिहान में होनेवाला बँटवारा। दे०—बटाई खलिहानी।

[बटाइ < बँटल, बाँटल (बिहा०) ; बँटना, बाँटना (हिं०) < √वण्ट्]।

बटाई—(सं०) (१) दे०—बटाई। (२) जमींदार और रैयत के बीच होनेवाले अनाज के बँटवारे के रूप में निर्धारित कर (गाइड०)।

बटाई खरिहानी—(सं०) जमीन की उपज का खलिहान में होनेवाला बँटवारा। पर्या०—अगोर बटाई, बटाइ।

टि०—जब किसान के खेत में फसल पककर तैयार हो जाती थी, तब जमींदार खेत पर अमीन और पंच भेजता था। वे किसान और ग्रामीण अधिकारियों से मिलते थे। गाँव का कठाथर गाँव की लग्गी से खेत को नापता था। पंच खेत के चारों ओर घूमकर देखता था और उसके बाद अमीन और ग्रामीण अधिकारियों से विचार-विमर्श कर खेत की फसल के अनाज का परिमाण निर्धारित करता था। यदि यह परिमाण किसान को स्वीकृत होता था, तो वह पटवारी के खसरा में लिखा जाता था। यदि किसान को अस्वीकृत होता था, तो उसके साथी किसान मध्यस्थता के लिए बुलाये जाते थे। फिर भी, यदि वे दोनों दलों को सहमत नहीं करा पाते थे, तो फिर जाँच की जाती थी, इसके लिए फसल का सबसे अच्छा भाग जमींदार की ओर से काट लिया जाता था और उतना ही फसल का सबसे बुरा भाग किसान की ओर से काटा जाता था। इस प्रकार, काटे हुए दोनों भागों की फसल की दौनी की जाती थी और तैयार अन्न नापा जाता था। इस प्रकार, जाँच करके निश्चित परिमाण पर समूचे खेत की पैदावार का मूल्यांकन किया जाता था और उसे पटवारी की बही में लिखा जाता था। तदनन्तर, अपनी सुविधा के अनुसार किसान शेष फसल को काटकर अपने घर ले जाने के लिए स्वतन्त्र रहता था। जमींदार की ओर से परिमाण के आँकने के समय समूचे आँके हुए परिमाण में से किसान की ओर प्रति मन २ सेर की साधारणतया छूट दी जाती थी, जो कम उपज, फसल काटने, दाँवने और इकट्ठा करने आदि के बदले में होती थी। इस प्रकार के बँटवारे में यह भार किसान को उठाना पड़ता था। शेष अनाज में से दोनों को अलग-अलग परिमाण में अपना-अपना भाग मिल जाता था। बँटवारा न होने पर जमींदार की ओर से किसान पर ऋण चढ़ा दिया जाता था। यदि वर्ष के अंदर वह देता, तो अन्न के रूप में देना पड़ता था, अन्यथा उसके नाम पर अगले साल के हिसाब में नगद रुपये में लिखा जाता था।

[बटाई + खरिहानी ; बटाई < बटाई (हिं०), < बँटल, बाँटल (बिहा०), बँटना, बाँटना (हिं०) < √ वण्ट्। खरिहानी < खरिहान + ई (प्र०) < खलेधान्य-(?)]।

बटाई तिकुली—(सं०) बटाईदार और जमींदार के बीच निर्धारित खेत की उपज का वह भाग, जिसमें बटाईदार को $\frac{1}{3}$ मिलता था (गाइड०)।

बटाईदार—(सं०) किसी जमीन की उपज से आधा बाँट देने की शर्त पर जमीन लेकर खेती करनेवाला किसान (सा०-१ चंपा० ३)।

[बटाई + दार (फा० प्र०) < बटाई (हिं०)]।

बटाई निस्फ—(सं०) बटाई जमीन की उपज में बटाईदार और जमींदार के बीच निर्धारित भाग, जिसमें दोनों का आधा-आधा भाग होता था। (गाइड०)।

बटाई नौसात—(सं०) बटाईदार और भूस्वामी के बीच निर्धारित उपज का वह भाग, जिसमें भूस्वामी को $\frac{7}{16}$ और बटाईदार को $\frac{9}{16}$ भाग मिलता था (गाइड०)।

बटा नंबर—(सं०) भिन्न की संख्या। भू-चित्र में खेतों के नंबर देने के बाद उपविभक्त खेत की संख्या (गाइड०)।

बटावन जाल—(सं०) बटवन लगा हुआ मछली पकड़ने का जाल।

[बटावन+जाल (पी०)]।

बटियारी—(सं०) दिन में चिड़िया के पकड़ने का जाल (सं० द०)।

[बटियारी (?)]।

बटिवन—(सं०) जाल को डुबाने के लिए उसमें लगाया हुआ लोहा या पकी मिट्टी का गोला। पर्या०—बटवन (प०), पौढ़ी (उ० प० मै०), मीटिया (द० (भाग०)।

[बटिवन (देशी)]।

बटुरी—(सं०) (१) छोटे दानोंवाला काला मटर (शाहा०)। दे०—बजरी। (२) छोटा चना (शाहा०)। दे०—बूँटी।

[बटुर + ई (प्र०) < बटुल < वर्तुल (?)। बटुरी (हिं०) = एक वदन्न। खेसारी। मोर (देशी)—(हिं० श० सा०)]।

बटैया—(सं०) (१) किसान के अधिकार की वह जमीन, जिसकी मालगुजारी उस जमीन में पैदा हुए अनाज के निश्चित परिमाण (बटाई) के रूप में जमींदार को दी जाती है। दे०—भावली। (२) किसान और जमींदार के बीच निश्चित परिमाण में होनेवाला अनाज का विभाजन। दे०—बटाइ। बटैया देओल, बटैया लगावल (मु०)=बटाई पर खेत को आबाद करने के लिए एक निश्चित अवधि तक दूसरे को देना।

[बटैया < बँटल (बिहा०) ; बँटना (हिं०) < √वण्ट्]।

बटैया देओल—(मु०) बटाई पर खेत को आबाद करने के लिए एक निश्चित अवधि तक किसी को देना।

[बटैया+देओ+ल (प्र०)—(बौ०)]।

बटैया लगावल—(मु०) दे०—बटैया देओल।

[बटैया+लग+आवल (प्र०)—(बौ०)]।

बटोरन—(सं०) कटनी के समय अनाज को एक जगह इकट्ठा करने की प्रक्रिया। पर्या०—लोढ़न।

[बटोर+न (प्र०) < बटोरल। बटोरना (हिं०) < वर्तुल-(संस्कृ०) ; वट्टुल (प्रा०)—(हिं० श० सा०), बटोरिनु, बटुलिनु (ने०)=बटोरन]।

बटोरल—(क्रि०) (१) बटोरना। इकट्ठा करना। (२) खेत या खलिहान में बिखरे हुए अनाज को इकट्ठा करना।

[बटोर + ल (प्र०) < बटोर < वर्तुल-(संस्कृ०); वट्टुल (प्रा०)—(हिं० श० सा०)। संभ०—< √वृत् (वर्त्तयति) = को आगम के साथ। बटोलणो (कुमा०) ; बटोर्नु, बटुल्नु (ने०), बटोरण (पं०)]।

बट्टा—(सं०) (१) वह रकम, जो किसी चीज की निश्चित कीमत के अतिरिक्त ली जाती है (गं० द०)। (२) रुपया आदि बड़ा सिक्का या किसी भी सिक्के के भँजाने पर लिया जानेवाला अतिरिक्त द्रव्य या शुल्क। पर्या०—कुंपारी, नौजवि, कलदार, मुराफ (गाइड०)। (३) विनिमय के समय सोना-चाँदी आदि के बने पदार्थों पर लिया जानेवाला अन्य धातु के मिश्रण का अतिरिक्त शुल्क या वास्तविक मूल्य की छूट।

[बट्टा<वर्त्त-(संस्कृ०) ; वट्ट (पा०, प्रा०)—(नेपा०)। बट्टा (ने०)=शुल्क, कमीशन। शृंगार-प्रसाधन-पेटी]।



(४) बाँस की कमाची या करची, मूँज या सीकी की बनी छोटी डलिया (पट०, गया, द० मुं०)। दे०—मौनी।

[बट्टा (पा०, प्रा०)। बट्टा (ने०)=शृंगार-प्रसाधन-पेटी]।

बट्टा—(सं०) (५) बाँस की कमाची से बनी हुई छोटी टोकरी (गं० द०, पट०, शाहा०)। दे०—छैंटी। (६) कोल्हू में ऊख के टुकड़ों को डालनेवाली टोकरी (पट०)। यह टुकड़े तब डाले जाते थे, जब कोल्हू लकड़ी या पत्थर का होता था। दे०—छैंटी।

बट्टी—(सं०) (१) मार्ग-कर। (२) रास्ते या बाट पर बिकनेवाली चीजों का बिक्री-कर या चुंगी। बिरती (मुं०-१)।

[बट्ट+ई (प्र०), बट्ट < बाट ; बा < वर्त्म-]।

बड़ आदमी—(वि०) ऊँची श्रेणी के काश्तकार (गं० उ०)। दे०—असराफ।

[बड़ + आदमी ; बड़ < बड़ा < वड्ड-(संस्कृ०) ; आदमी (फ़ा०)]।

बड़कन्ना—(सं०) वह बैल, जिसके कान बड़े हों (पट०-१)। (वि०) बड़े कानोंवाला।

बड़गहुमा—(सं०) (१) बड़े दानोंवाला गेहूँ (द० प० मैं०)। (२) जोंधरी, मसुरिया। पर्या०—चोलिया (संता०)।

[बड़+गोहुमा, बड़ < बड़ा <वड्ड (संस्कृ०), गहुमा < गोधूम (क)]।

(३) गेहूँ के पौधों के साथ उगनेवाली एक घास (द० पू०)।

[बड़ + गहुमा, बड़ < बड़ा < वड्ड-(संस्कृ०), < गोधूम+क, सादृ० (प्र०)]।

बड़द—(सं०) बधिया किया हुआ बैल। (पट०, उ० प० मैं०, शाहा०, द० भाग०, दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—बरध।

[बड़द < बलघ (देशी)—(पा० स० म०) ; < बलीवर्द-(संस्कृ०)—(हिं० श० सा०)। बलिद, बलद (प्रा०) ; बलद (अस०, बँ०) ; बड़द (ओ०) ; बलद (पं०) ; बलेदा (ल०)=बैलों का झुंड। बलेदो (सिं०)]।

बड़दक गाड़ी—(सं०) बैलगाड़ी (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बड़द+क (विभ०)+गाड़ी (बौ०)]।

बड़दवार—(सं०) बैल चरानेवाला चरवाहा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बड़द+वार (प्र०) < बड़द < बलीवर्द-]।

बड़सीमा—(सं०) सेम जाति की एक लंबी तरकारी (मुं०-१)। पर्या०—बड़सीम।

[बड़+सीमा, बड़ < बड़ा < वड्ड-(संस्कृ०); सीमा < शिम्बि-]।

बड़सेम—(सं०) (मुं०-१)। पर्या०—बड़सीम।

[बड़+सेम, बड़ < बड़ा < वड्ड-; सेम < शिम्बि-]।

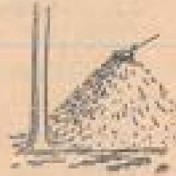
बड़हर—(सं०) (१) एक बड़ा वृक्ष, जिसके पत्ते लंबगोल होते हैं। (२) उसका फल, जो शरीफे के आकार का होता है। (दर०-१, पूर्णि०-१, चंपा०-१, पट०-१)।

[बड़+हर < बड़ा फल या < वटफल (?)। बड़हर बरहर, बरहल (हिं०); बड़हर (ने०); डेओ, मादर, मांदार गाछ, ढेलो मांदार, बडुआ गाछ, ढेओमादार, बडुक (बं०); वटारफल, चुद्रफणस, वटारफल (मरा०); चुद्रफणस (गु०); बड़हल (पं०); बड़हर (मार०)]।

बड़हरा—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के नजदीक का वह क्षेत्र, जिसमें बैल घूमता है (द० मुं०)। दे०—गोरधौर। (२) कंडा जमा करने का घर (चाप)। (३) खलिहान में दाँवने के लिए छींटी हुई तैयार फसल (द० मुं०)। दे०—पैर।

[देशी]।

बड़हरी—(सं०) एक प्रकार का छोटा केला (पट०-१)।



बड़हावन—(सं०) बुरी नजर से बचाने के लिए खलिहान में स्थित अन्नराशि के ऊपर रखा हुआ गोबर का लोंदा (गया, प०)। दे०—बटोव।

[बढ़हा+वन (प्र० ?) < बढ़हा < बढ़हा < बढल < वर्धन (?)]।

बड़ही—(सं०) लकड़ी का काम करनेवाला ग्रामशिल्पी। पर्या०—कमार (पू०), मड़ै या (द० भाग०)।

[बढ़ही < वर्धकि-। वड्ढकि (पा०); वड्ढइया (प्रा०); बारइ (असा०); बाढ़ई (बं०); बढ़ाइ (ओ०); बढ़ई (हिं०); बढ़ह, बढ़हि (ने०); बाढ़ही, तरखाण (पं०); बढ़ाया (मरा०); वडुवा (सिंह०)। मिला०—वर्धयति=काटता है। वड्ढेति (पा०)। बध (दरदी-कश्म०); बरद्दोकस=कुल्हाड़ी। बढ्ढण (पं०)=काटना; बढ्ढण (ल०), बढ्ढ्ढ (सि०); बढ़ुँ (गु०); बढुन (सिं०)=काट-छाँट। बद् (काफि०, शरकु०)=उठाना]।

बड़हीखाना—(सं०) बढ़ई के काम करने की जगह। दे०—कमरसायर।

कहा०—'ई बुरिबक गाम कमैताह, जनिका रुखानी न बसूला'—यह बेवकूफ बढ़ई गाँव-भर का काम करेगा? जिसके पास न तो रुखानी है और न बसूला।

[बढ़ही + खाना; बढ़ही < वर्धकि-(संस्कृ०); खाना (फा०)—(बो०)]।

बड़होरा—(सं०) खलिहान में दाँवने के लिए छींटी हुई तैयार फसल (पट०, गया)। दे०—पैर।

[बड़+होरा (?)]।

बड़ी जड़ी—(सं०) एक प्रकार की लत्तर (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बड़ी+जड़ा; बड़ी < बड़ा < वड्ड; जड़ी < जड़ या < जटी]।

बड़ैसा—(सं०) एक प्रकार की बड़ी कपास, जो बारी में उपजती है (पट०, गया)।

[बड़ैसा (?)—संभ०—बड़+ऐसा < बड़ा कपास-(?)]।

बड़ोगर—(सं०) एक प्रकार का धान (पट०-१, पूर्णि०-१)।

[बड़ोगर (?)]।

बढ़ंती—(सं०) (१) बाढ़ के कारण नदी की धारा बदल जाने से निकली हुई जमीन (सा०-?)। (२) वृद्धि।

[बढ़+ती (प्र०) (नकारागम के साथ) < बढ़ < बढल (बिहा०); बढ़ना (हिं०) < वर्ध < √वृध्]।

बढ़ई—(सं०) लकड़ी का काम करनेवाला जातिविशेष। पर्या०—सुतार। वस्तुतः लोहार लोहे का सामान बनाता है और बढ़ई लकड़ी का, किंतु बहुधा दोनों काम एक भी कर लेता है।

[बढ़ई < वर्धकि-। दे०—बढ़ही]।

बढ़ती—(सं०) (१) तौल, गिनती, माल आदि में होनेवाली अधिकता। (२) साधारणतः निश्चित मूल्य से अधिक। (३) वृद्धि, उन्नति।

[बढ़ + ती (प्र०) < बढ़ < बढल (बिहा०); बढ़ना (हिं०) < वर्ध < √वृध्। बढ़ती (हिं०); बढ़ती, बढ़ति (ने०); बढ़ती (कुमा०)]।

बढ़नी—(सं०) घर साफ करने के लिए काम में लाई जानेवाली झाड़ू। पर्या०—बाढ़न, बाढ़नि (उ० पू० मै०)। बोढ़नी (द० भाग०)।

[बढ़ + नी (प्र०); बढ़ < बढ्ढ < वर्ध < √वृध्। वर्धनी (संस्कृ०)=झाड़ू, कूँचा]।

बढ़नी—(सं०) ताड़ की बनी झाड़ू (चंपा०-१)।

बढ़लत्ती—(सं०) एक प्रकार की लत्ती। (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बढ़+लत्ती]।

बढ़ही—(सं०) (१) लंबी आकृति का एक छोटा कीड़ा, जो धान के पौधे को नष्ट करता है (द० भाग०)। दे०—बक्की। (२) बढ़ई, लकड़ी का काम करनेवाला शिल्पी (गाइड०)।

[बढ़ + ही (प्र०) < बढ़ < वर्ध < √ वृध् (वर्धयति=काटता है); बढ़ही < वर्धकि-]।

बढ़ाँव—(सं०) (१) बुरी नजर से बचाने के लिए अनाज की राशि के ऊपर रखा हुआ गोबर का पिंड (पट०, प० बिहा०)। (२) दौनी के समय मलत्याग के कारण निकला बैल के गोबर का लोंदा। पर्या०—बढ़ावल (गया, प०), महादे, महादेव, बढ़ावन (शाहा०, चंपा०), बढ़ाव (चंपा०)।

[बढ़ + आँव (प्र० १) < बढ़ < बढ़ल (बिहा०), बढ़ना (हि०) = वर्धन < √ वृध्]।

बढ़ाव—(सं०) (चंपा०)। दे०—बढ़ाँव।

बढ़ाव करल—(मु०) दौनी करते समय किसी बैल का मलत्याग करना (चंपा०-१)। पर्या०—बढ़ावल (चंपा०)।

[बढ़ाव+करल—(दौ०)]।

बढ़ावन—(सं०) (शाहा०, चंपा०)। दे०—बढ़ाँव।

बढ़ावल—(क्रि०) (१) (चंपा०)। दे०—बढ़ाव करल। (२) बढ़ाना।

बढ़ियार—(सं०) प्रातःकाल उगनेवाला इन्द्रधनुष, जो बाढ़ का सूचक समझा जाता है (पट०-१)।

बढ़ेयाबादर—(सं०) हल या गाड़ी में जोतने पर बैठ जानेवाला बैल (पट०-१)।

बतरी—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी]।

बतास—(सं०) तेज हवा (चंपा०-१)।

[बतास < बातश < बात+श (प्र०) या बातसार < बात+आसार (=मुसलाधार)। मिला०-मातरिश्वा (= वायु)। बतास (हि०), बतास् (ने०); बतास (कुमा०); बताह (अस०); बतास (बँ०); बतास (ओ०)। < वातः=वायुः—(निघ०)]।

बतासफेनी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)।

[देशी। बतासफेनी (हि०) = टिकिये के आकार की एक मिठाई]।

बतासा—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। (२) चीनी की चाशनी से बनी एक प्रकार की मिठाई, जो पानी या मुँह में बहुत शीघ्र घुल जाती है।

[बतासा-(१) < बाताश-(१)]।

बतिआ—(सं०) (१) थोड़े दिनों का कच्चा, छोटा कोमल फल (चंपा०-१)। (२) दीपक की बत्ती। (३) बाँस की पतली फट्ठी। (४) बात। (५) जानवरों का एक रोग, जिसमें दाढ़ी से गरदन तक अंग सूज जाता है (पट०-१)।

[बतिआ < वर्तिका। मिला०—संवर्तिका=कमल-पुष्प का नया दल]।

बतीसा—(सं०) बड़े आकार का केला, जो मुख्यतः तरकारी आदि के काम आता है (चंपा०-१)।

बत्ता—(सं०) किवाड़ी का पल्ला बनाने में पतले छोटे पल्लों को इकट्ठा बाँधने के लिए एक छोर से दूसरे छोर तक जड़ी गई लकड़ी की पतली पट्टी। एक पल्ले में प्रायः चार पट्टियाँ होती हैं। पर्या०—बाता। (२) बाँस का चीरा हुआ मोटा डंडा, छड़।

[बत्ता < वर्त्तित ; वा < वर्षित (कटा हुआ)]।

बत्ती—(सं०) (१) बाँस को फाड़कर बनाई हुई पतली फट्ठी। दे०—फट्ठी। (२) बाँस की चीरी हुई पतली छड़ (डंडा)। दे०—बाती। (३) दीपक की बाती। (४) दीपक।

[बत्ती < वर्त्ति-]।

बथनियाएल—(क्रि०) पशुओं को इकट्ठा करके रखना। पर्या०—लैंड़ियाएल (उ० प० मै०)।

[बथनिया+आएल (प्र०) < बथनिया < बथान < अवस्थान। बथानिनु (ने०) = इकट्ठा करना, एक साथ करना]।

बथान—(सं०) (१) वह स्थान, जहाँ पशु इकट्ठा करके रखे जाते हैं। बथनियाएल (क्रि०) पशुओं को इकट्ठा करना। लैंड़ियाएल (क्रि०) (उ० प० मै०, दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) पशुओं के रहने की जगह। पर्या०—गोआस (उ० प० मै०) घेरा, ठाठ, ठाठा। (३) वह स्थान, जहाँ गाय, बैल, भैंस आदि रखे जाते हैं (चंपा०-१, गाइड०)।

[बथान < अवस्थान। अवस्थान- (संस्कृ०); अवट्ठान (पा०); अवत्थान (प्रा०); बथान (बँ०) = चरागाह। बथान, बठान (हि०); बथानु (सि०); बठान (मरा०); बटन (सिंह०) = अवस्था। बथान् (ने०)=पशुओं का झुंड]।

बथुआ—(सं०) (१) अफीम के खेत में उगनेवाली एक घास (सामा०)। दे०—खड़ुका। (२) एक प्रकार की घास। (३) एक प्रसिद्ध साग, जो फसल के खेतों में होता है। (४) भादो में पकनेवाला एक प्रसिद्ध आम (पट०-१, दर०-१)।

[बथुआ < वास्तुक-]।

बदकौम—(सं०) सूअर (मु० प्र०)। दे०—सूगर।
[बद+कौम (फा०)]।

बदखुरी—(सं०) (१) वह बैल या भैंस, जिसके खुर लंबे होते हैं (पट०-१)। (२) जानवरों का एक रोग, जिससे उसके खुर जख्मी हो जाते हैं (पट०-१)।

बदखोम—(सं०) सूअर (मु० प्र०, उ० मै०, पट०)। दे०—सूगर।
[बद+खोम < बद+कौम (फा०)]।

बदमोहरी—(सं०) सूअर (मु० प्र०)। दे०—सूगर।

बदरिया—(सं०) (१) वह बैल, जिसका रूप-रंग बादल-जैसा हो (पट०-१)। (२) बादल।

बदरी—(सं०) (१) बदली। आकाश में छाया हुआ बादल। (२) लगातार कई दिनों तक कुछ-कुछ वर्षा होते रहना (चंपा०-१)।
[बदरी < बदली < बादल < वार्दल-(?)]।

बदली—(सं०) (१) एक किसान के द्वारा किसी दूसरे किसान से मजदूरी के विनिमय की क्रिया (गया)। दे०—बदलैया। (२) परिवर्तन।
बदला < बदला < बदलल (बिहा०); बदलना (हिं०) < बदला (अ०)]।

बदलैया—(सं०) एक किसान के द्वारा किसी दूसरे किसान से मजदूरों के विनिमय की क्रिया। पर्या०—पलटा, पलटी; पैंच (प०), बदलो (गया), पाएल (सं० द०), जनपैंचा (पू० मै०)।
[बदल+ऐया (प्र०) < बदल < बदला]।

बदहार—(सं०) खेत के बीच का वह सीमित भाग, जिसके चारों बगल हल के बैल के घूमने का स्थान पर्याप्त नहीं रहता है। इस केंद्रीय भाग की जुताई सीधे-सीधे एक कोने से दूसरे कोने तक होती है।
[बदहार < (?)]।

बदाम—(सं०) दे०—बेदाम। (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बदाम < बादाम (फा०)]।

बदामी, बेदामी—(सं०) बादामी रंग। दे०—कुसुम।
[बदाम+ई (प्र०) < बदाम < बादाम (फा०)]।

बदारी—(सं०) अन्न आदि रखने के लिए खुली जगह खढ़, पुआल आदि का बना हुआ एक प्रकार का घर। दे०—बखार।
[बदारी (?)]।

बधरा—(सं०) मजबूत और भारी फलवाली एक प्रकार की हँसिया। दे०—पघरिया।
[बधरा < वर्धक (?) वा < वर्धक (?)=काटनेवाला]।

बधरिया—(सं०) मजबूत और भारी फलकवाली एक प्रकार की हँसिया। दे०—पघरिया।
[बधर+इया (प्र०) < बधर < बधरा < वर्धक (?) वर्धक (?)]।

बधरी—(सं०) मजबूत और भारी फलकवाली एक प्रकार की हँसिया। दे०—पघरिया।
[बधर+ई (प्र०) < बधर < बधरा < वर्धक (?), वर्धक (?)]।

बधवार—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (पू० मै०)। दे०—रखवारी।
[बधवार < बधार < बधार < प्रस्तार-(?)]।

बधवार, बधवाहा—(सं०) जमींदार की ओर से वेतन पर नियुक्त किसानों के खेतों की देखभाल करनेवाला। बधवार (पट०-१)।
[बधवार < बधार < पधार < प्रस्तार-(?)]।

बधवारा—(सं०) चकलेदार (गाइड०)।

बधवारी—(सं०) फसल के रखवाले को गल्ले के रूप में मिलनेवाला पारिश्रमिक (पट०-१)।

बधवाहा, बधवार—(सं०) जमींदार की ओर से वेतन पर नियुक्त, किसानों के खेतों की देखभाल करनेवाला। दे०—बधवार।
[बध+वाहा (प्र०) < बध < बधार (?)]।

बधवाही—(सं०) (१) फसल या अनाज की देखभाल (गया)। दे०—रखवारी। (२) अनाज की देखभाल करनेवाले की मजदूरी।
[बध+वाही]।

बधाक—(सं०) मजबूत और भारी फलकवाली एक प्रकार की हँसिया। दे०—पघरिया।
[बधाक < वर्धक (?), वर्धक (?)]।

बधिया—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्दी उगता है (सं० उ०)। दे०—अँगेरी।
[बधिया < बधित (कटा हुआ, काटा गया) (?)]।

बधिया—(सं०) बधिया किया हुआ या पौरुषहीन किया हुआ पशु। साँड़ का विपरीत। दे०—खेरुआ।
[बधिया < वध्रिक (= छिन्नाण्डकोष), बद्धिया (प्रा०); बधिया (हिं०); बधिया, बँधिया (ने०)]।

बन—(सं०) (१) खेत से घासपात की सफाई के लिए दी जानेवाली मजदूरी (पू०)। दे०—सोहाई। पर्या०—बनी (द० प० शाहा०), बनिहारी (प० सामा०)। (२) बीस या पचीस मन अनाज में से खेतिहर मजदूर को दिया जानेवाला एक मन का एक निश्चित पारिश्रमिक (शाहा०, द० भाग०)।

(३) खेतिहर मजदूरों को दी जानेवाली मजदूरी। पर्या०—बाने (पू० मै०)। (४) खेतिहर मजदूरों को अनाज के रूप में मिलनेवाली दिन-भर की मजदूरी (मुं०-१)।

[बन, संभ०- < बन्ध- (=बंधन, प्रतिज्ञा, परिवर्त्तन, ऋण आदि)। मिला०—वर्ण, वर्णक = सुवर्ण, उत्तम सुवर्ण। वर्त्तन = दैनिक वृत्ति (?) ; बानि (बँ०) = मजदूरी ; बन्ना (ल०) = खेत ; बानो (सि०)=फसल ; बार्नु (पु०)=सूद का रुपया ; बनि (ने०)। मिला०— < बान (संस्कृ०)=शुष्क फल]।

(५) ऊख पेरने के कोल्हू को फटने से बचाने तथा उसकी मजबूती को बनाये रखने के लिए उसके चारों ओर लगाया जानेवाला लोहे का अँगूठीनुमा पत्तर। लोहे का यह गोल पत्तर उस समय लगाया जाता था, जब कोल्हू लकड़ी का होता था ; आज के तेल के कोल्हू में यह लगाया जाता है।

[बन < बन्ध-(?)]।

बन—(सं०) (१) वह स्थान, जहाँ बहुत दूर तक पेड़-पौधे अपने-आप उगे हुए हों। पर्या०—जंगल। (२) वह भूमि, जो बहुत दिनों से आबाद नहीं हुई हो।

[बन < वन। वन—(संस्कृ०) ; वन (पा०) ; वण (प्रा०) ; वन (कश्म०) ; वुडु (कश्म०)=वाटिका ; बन (प० पहा०) ; बण (कुमा०) ; बन् (ने०) ; बन (बँ०, असा०) ; बण (ओ०) ; बन (हिं०) ; बण (पं०); ब्रण (पं०, ल०)= एक प्रकार का वृक्ष, जो पश्चिमोत्तर प्रदेश और काँगड़ा की निचली पहाड़ियों में पाया जाता है, वनु (सि०)=वृक्ष। वन (सिंह०)]।

बन—(सं०) जंगल (चंपा०-१)।

बन उखाव—(सं०) धनरोपनी के अंत में किया जानेवाला सहभोज (पट०)। दे०—औजली।

[बन+उखाव ; बन < बन (?) ; उखाव < (?)। मिला०—बनमालेर (ने०)=वनभोज]।

बनउड़दी—(सं०) एक प्रकार की उड़द (पट०-१)।

बनउर—(सं०) कपास का बीज (चंपा०-१)।

[बन+उर < बन-पूर (?); बनपूर=एक प्रकार का बिजौरा नीबू। बनउर, बिनौला (हिं०) = कपास के बीज]।

बनउरी—(सं०) वर्षा के साथ गिरनेवाला ओला (चंपा०-१)।

[बन+उरी < बनोपल < बन (=जल)+उपल]।

बनउसरा—(सं०) धनरोप वाले छोटे किया जानेवाला सहभोज (गया)। के लिए ली।

[बन + उसरा ; बन टी हुई उसरा < उस्सर-ओस्सर (पा०); ओसर (दे०— वसर (संस्कृ०) < अव+√सृ]।

बनकर—(सं०) (१) गाँव से द्ध जंगल की भूमि में स्वयं उत्पन्न लकड़ी, गोंद आदि पर लगाया जानेवाला कर। (२) जमींदार द्वारा लिया जानेवाला जंगल का राजस्व (पट०-१)। पर्या०—बनछियोली (शाहा०)।

[बन + कर < वनकर। बनकर (हिं०) ; बनकर (ने०)]।

बनकरइली—(सं०) छोटी आकृति का करैला (पट०-१)।

बनकेराई—(सं०) जंगली केराई (पट०, गया, प०)।

[बन+केराई < वन+कलाय-। मिला०—वनकर्कटी (संस्कृ०) = बनककड़ी (हिं०, ने०)]।

बनगोइठा—(सं०) जंगल या चरागाह में खाद के लिए इकट्ठा किया गया और जलावन के लिए सुखाया हुआ गोबर (सारा०)। दे०—कँड़ड़ा।

[बन + गोइठा < बन; गोइठा < गोविष्ठा (?)। मिला०—बनोपल=जंगली कंडा]।

बनघरा—(सं०) बाहर के कमरे (द० पू० मै०)। दे०—बहरघरा।

[बन+घरा, बन < बन (?) ; घरा < गृहक-]।

बनछियोली—(सं०) गाँव से संबद्ध जंगल की भूमि में स्वयं उत्पन्न लकड़ी, गोंद आदि पर लगाया जानेवाला कर (शाहा०)। दे०—बनकर।

[बन+छियोली < (?)]।

बनछिहुली—(सं०) वह जमीन, जिसमें झाड़ी पैदा होती है। दे०—झारा।

[बन+छिहुली < (?)]।

बनजवाइन—(सं०) एक प्रकार का मसाला, अजवाइन की एक जाति (मै०)। दे०—अजमोदा।

[बन+जवाइन < वनयवानी]।

बनझोंसी—(सं०) झाड़ी, झाड़ (मुं०-१)।

[बन+झोंसी ; बन < वन ; झोंसी (?) मिला०—झाड़, झाट (देशी)=कुंज]।

बनताड़—(सं०) एक झाड़ीदार कँटीला पौधा, जिसके बीच से पाँच-सात फुट लंबा और पतला तना या धड़ निकलता है (मुं०-१)।

[बन+ताड़ < वन+ताल-]।

बनतिल—(सं०) तिल का एक भेद (पट०-१)।

बनतुलसी—(स) सूअर (मुं० र की घास (पू० मै०)। दे०—फुलेना (फा०)]।
[बन+तुलसी +तुलसी]।

बनपियजुआ—(सं०) वह ई । के खेत में उगनेवाली एक प्रकार की घास (द०-१) शाहा०)। दे०—बनपियाज।
[बन + पियजुआ बन < वन ; पियजुआ < पियाजः (फा०)]।

बनपियाज—(सं०) अफीम के खेत में उगनेवाली एक घास (मै०, शाहा०)। पर्या०—बनपियजुआ (मै०, शाहा०), बनरसना (गया, द० मुं०), रुआरा (पट०)। मिला०—खुरका।
[बन+पियाज ; बन < वन ; पियाज < पियाजः (फा०)]।

बनपोस्ता—(सं०) जंगली अफीम (चंपा०, गया)।
[बन+पोस्ता ; बन < वन ; पोस्ता < पोस्तः (फा०)]।

बनभुटका—(सं०) मकोय का लाल रंग का एक भेद। दे०—मकोय।
[बन+भुटका ; बन < वन ; भुटका < भुट्टा < भृष्टक-, < वृन्तक-(?)]।

बनमूंग—(सं०) एक प्रकार की मूंग (पट०)।

बनरसना—(सं०) अफीम के खेत में उगनेवाली एक प्रकार की घास (गया, द० मुं०)। दे०—बनपियाज।
[बन+रसना < बनरसोन-(संस्कृ०)—(?)]।

बनसारी—(सं०) फसल को हानि पहुँचानेवाली एक प्रकार की घास (पू० मै०, शाहा०)। दे०—ककना।
[बन+सारी < वनशालि-(?)]।

बनसुअरा—(सं०) एक प्रकार की घास (सा०-१)।
[बन + सुअरा < वनशूकारि (?)—(मो० वि० हि०)]।

बनहुँआ—(सं०) मालगुजारी के अतिरिक्त किसानों द्वारा जमींदार को समर्पित स्वसेवा (द० पू० शाहा०)। दे०—गोआम।
[बनहुँआ < (?)]।

बनारसी राई—(सं०) सरसों का एक भेद, जिसमें बहुत झाँस होती है (पट०-१)।

बनिज—(सं०) चीजें खरीदकर बेचने का काम, वाणिज्य, व्यापार। दे०—लेनदेन।
[बनिज < वाणिज्य-, < वणिज्या < वणिज् < √ वण् (शब्द करना) या < √ पण् (व्यवहार या स्तुति करना)]।

बनिया—(सं०) रुपये-पैसे का लेन-देन करनेवाला। दे०—महाजन। (२) अन्न तौलनेवाला पुरुष (पट०, द० पू०)। दे०—हटवा।
[बनिया < वाणिज् ; वाणिज (पा०) ; वाणिअ (प्रा०) ; बनिया (असा०) ; बानिया (बँ०) ; बणिया (ओ०) ; बनिया (हिं०) ; बनिया (ने०) ; बान (कश्म०) = दुकान, वानु, (कश्म०) = दुकानदार < आपण = दुकान—(नेपा०), वाणिया (पं०) ; वाण्यो (गु०) ; वाणी (मरा०) ; वेण्दा (सिंह०)। मिला०—बंग, बराज (पं०) ; बंजारा (=व्यापारी) < वाणिज्य। बनिया (काफि०) = बेचना। बनिया (ने०) < वाणिजः—(नेपा०)]।

बनियौटा—(सं०) (१) कर्ज लेनेवाला (द० मै०)। दे०—रिनिहा। पर्या०—खरिहन, खैहन (पट०, गया)। (२) भोज्य पदार्थों की खरीद के लिए दिया जानेवाला अग्रिम मूल्य (मै०)।
[बनिया + औटा (प्र०) < बनिया < वाणिज्, वाणिज]।

बनिहार—(सं०) खेतों में काम करनेवाला मजदूर। दे०—मजूरा।
[बनि+हार (प्र०) < बनि < वन। मिला०—बनि (संस्कृ०)=इच्छा, भाग, समर्पण। वन=सहभाग्, भागीदार ; या < वस्न + हर = दैनिक परिश्रम करनेवाला]।

बनिहार—(सं०) (२) खेतों में दैनिक मजदूरी पर काम करनेवाला मजदूर (मुं०-१)। (३) निश्चित या दैनिक मजदूरी लेकर काम करनेवाला (चंपा०-१)।

बनिहारिन—(सं०) मजदूरिन (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बनि + हार + इन (प्र०) < बनिहार < बनि + हार]।

बनिहारी—(सं०) बनिहारों का काम या मजदूरी (मुं०-१)।
[बनिहार+ई (प्र०) < बनिहार]।

बनी—(सं०) (१) किसी तरह की मजदूरी लेकर काम करनेवाला खेतिहर मजदूर (द० प० शाहा०)। दे०—जन। (२) घास-पात की सफाई के लिए दी जानेवाली मजदूरी (द० प० शाहा०)। दे०—सोहाई। (३) खेतिहर मजदूर को दी जानेवाली मजदूरी। पर्या०—बनिहारी (प०)।
[बनी < वन<पणि < पण (?); <बन्धन-(?)]।

बनुसार—(सं०) धान की रोपनी के अंत में दिया जानेवाला सहभोज (गया)। दे०—औजनी।
[बन+उसार (पी०)। दे०—बनउसार]।

बनैया—(वि०) जंगली (चंपा०-१)।
[बनैया < बन + एया (प्र०) < वन्य ; बनैया (हिं०) ; बनैया (ने०)]।

बनैया—(वि०) जंगली (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—बनैला। इसका विपरीतार्थक घरैया (= घर का) होता है।
[बन+ऐया (प्र०) < वन्य-]।

बनैया महिसा—(सं०) जंगली भैंसा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बनैया+महिसा ; बनैया < वन्य, महिसा < महिषक-]।

बनैया सुगर—(सं०) जंगली सूअर (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बनैया+सुगर; बनैया < वन्य, सुगर < सूकर-]।

बनैला—(वि०) जंगली, बनैया।
[बन+ऐला (प्र०) < वन-]।

बनैला सुगर—(सं०) दे०—जंगली सुगर।
[बनैला+सुगर < वन्य सूकर]।

बनौर—(सं०) कपास का बीज (प०)। पर्या०—बँगौर (मै०), बंगौरा (द० मुं०), बंगठी (द० भाग०), बँदौर (द० प० शाहा०)।
[बन+औौर (?) < वनपुर-]।

बनौरी—(सं०) मानसून के साथ आया हुआ बरफ का पत्थर, वर्षोपल (प० मै०, पट०)। दे०—पत्थल।
[बन + औरी < बनोपल (= ओला)। दे०—बनगोइठा]।

बनौरी—(सं०) (१) ओला। (२) बनावटी, मनगढ़ंत बात (मुं०-१)।

बन्ना—(सं०) (१) वह लाठी, जिसमें जगह-जगह लकड़ी की गोली बनाकर ठोंकी गई हो। (२) किसी पेड़ की डाली के ऊपर से निकल आनेवाली विजातीय शाखा। इससे शाखा निकलती है और इसके पत्ते महुआ के पत्ते के आकार के होते हैं। इसमें फल आदि नहीं लगते। (३) दुलहा, जिसका लोकगीतों में प्रयोग होता है (मु० प्र०)।
[बन्ना (१) < बन्ध (?) ; बन्न ; (२) < बन्ध्य-. बन्ना (३) < वरणीय ?]।

बन्हखरचा—(सं०) जमींदारी के संबंध में होनेवाला खर्च, विशेषकर बाँध बँधवाने आदि का खर्च (द० भाग०)। दे०—गाईं खरच।
[बन्ह + खरचा ; बन्ह (< बाँध < बन्ध- ; खरचा < खर्चः (फा०)]।

बन्हना—(सं०) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी को बाँध रखने के लिए चारों ओर से लपेटी हुई रस्सी (चंपा०)। दे०—मोजर। (२) बाँधने की रस्सी।



[बन्हना < बन्धनक-]।

बपंस—(सं०) संपत्ति के बँटवारे में पिता का अंश। पर्या०—बपहंस (सा०), बपौटी, बपौती (उ० पू० मै०), जट्टी (प० मै०)।
[बप+अंस < बाप+अंस, बप < बाप ; < वप्र- (?) ; अंस < अंश। बपंस (हिं०)=बपौती]।

बपहंस—(सं०) संपत्ति के बँटवारे में पिता का अंश (सा०)। दे०—बपंस।
[बप+हंस < बाप+अंस ; बाप < बाप ; < वप्र; हंस < अंश-]।

बपौटी—(सं०) संपत्ति के बँटवारे में पिता का अंश (उ० प० मै०)। दे०—बपंस।
[बपौटी < बप + औटी, बाप + औटी, बाप < बाप- ; वप्र- (?) ; औटी < औती < अवाप्ति (=प्राप्ति)-(?)]।

बपौती—(सं०) दे०—बपंस।
[बपौती < बाप+औती; बाप < बाप- ; < वप्र- ; औती < अवाप्ति (?)]।

बफुआ—(वि०) भाप पर सेंका हुआ। (सं०) उसना चावल (चंपा०-१)।
[बफुआ < बफ+उआ (प्र०) < बफ < बाफ < बप्फ (प्रा०); भाफ (बिहा०) < बाष्प-]।

बबुआना—(सं०) जमींदार के छोटे भाई आदि को गुजारे के लिए दी गई भू-संपत्ति (गाइड०)।

बबुआना इनाम—(सं०) किसी राजा या जमींदार की सेवा से प्राप्त पारितोषिक-स्वरूप धन या जमीन (सा०-१)।
[बबुआना + इनाम, बबुआ+ना (प्र०) बबुआ < बाबू (देशी), इनाम (फा०)]।

बबुटोला—(सं०) गाँव का वह भाग, जहाँ ऊँची श्रेणी के लोग रहते हैं (द० भाग०)। पर्या०—बाबुटोला।
[बबु + टोला ; बबु < बाबू (देशी), टोला < टोलन (देशी) (?) ; < प्रतोली = (संस्कृ०) = गली, महल्ला]।

बबुरबन्ना—(सं०) बबूल के पेड़ों से भरी हुई जगह, बबूल का जंगल (पट०-१)।

बभनी—(सं०) धान, ऊख, ज्वार, बाजरा और अफीम में लगनेवाला एक रोग। दे०—औरंग, मुरका। (२) ज्वार, मकई और ऊख के पत्तों पर श्वेत चिह्न-जैसा एक रोग, जिससे फसल के ऊपर का भाग नष्ट हो जाता है (उ० प० मै०)। दे०—औरंग।

[बभनी < भ्राह्मणिका (= लाल सिरवाली चींटी)-(?)। बभनी <भमरी, भमर, (प्रा०) ; भ्रमरी (संस्कृ०), (=एक प्रकार का पित्त रोग ?), भ्रमरी (=भौंरी, एक प्रकार का कीड़ा)]।

बभनी—(सं०) (१) हलकी लाल मिट्टी (चंपा०-१)।

टि०—मृत्तिका के वर्ण-विचार के विवेचन के प्रसंग में ब्राह्मणी मृत्तिका का उल्लेख होता है, जो लाल होती है। बम्हनी (हि०)।

(२) छिपकली की तरह का एक पतला कीड़ा, जो आकार में प्रायः आधा होता है। इसकी पीठ काली, दुम और मुँह लाल, चमकीले रंग के होते हैं। पीठ पर चमकीली धारियाँ होती हैं। (३) आँख का एक रोग, जिसमें पलक पर एक छोटी फुंसी निकल आती है, बिलनी, गुहांजनी। (४) वह गाय, जिसकी आँख की बरौनियाँ झड़ गई हों। (५) हाथी का एक रोग, जिसमें उसकी दुम सड़कर गिर जाती है। (६) एक प्रकार का रोग, जो ऊख को बहुत हानि पहुँचाता है। (७) लाल रंग की भूमि (हि० श० सा०)।

[बभनी < ब्राह्मणी]।

बम—(सं०) कुएँ के अंदर, सतह पर स्रोत के मिलने से पानी के ऊपर उठने का छिद्र (द० भाग०)। दे०—भूर।

[बम < वम्रा (?)]।

बमउर—(सं०) चोट आदि लगने से अंग में उसका चिह्न निकल आना और उस चोट-लगे स्थान का कुछ सूज जाना (चंपा०-१)।

[बम+उर < बिम्बपूर- (?)]।

बमकल—(क्रि०) (१) किसी मवेशी का खुशी में उछलने लगना (चंपा०-१)। (२) घाव आदि का बढ़ जाना। (३) उत्साहयुक्त हो क्रियाशील होना।

[बमक+ल (प्र०) <बमक <बमक < √(बम्?); बमक्नु [ने०)]।

बमबइया—(सं०) रस से भरा उत्कृष्ट कोटि का आम, जो वृंत की ओर मोटा और नीचे की ओर पतला होता है (पट०-१)। दे०—बंबइया।

बमा—(सं०) (१) धुआँ निकलने की चिमनी (री०)। (२) मिट्टी, लोहा, लकड़ी या सीमेंट आदि की बनी हुई जल-प्रणाली।

बय—(सं०) जमीन को सदा के लिए बेच देना (पट०-१)।

बयतरनी धान—(सं०) एक प्रकार का महीन धान (पट०-१)।

बयनामा—(सं०) (१) जमीन बय करने की शर्त। (२) जमीन बेचने का कागज-पत्र।

बयबैआना—(सं०) जमीन बेचने की पक्की बात तय कर लेना। (पट०-१)।

बयलगाड़ी—(सं०) बैलों से चलनेवाली गाड़ी (पट०-१)। दे०-बैलगाड़ी।

बया-(सं०) अन्न तौलनेवाला पुरुष (प०)। दे०—हटवा।

[बया <बाय (अ०)=बेचनेवाला। बयार (हि०)= अन्न आदि तौलनेवाला]।

बयाई—(सं०) जमींदार की ओर से अन्न-विक्रेता की नाप पर निर्धारित कर (शाहा०)। दे०—कौड़ी।

[बया+ई (प्र०) बया < बायः (अ०)]।

बयाना—(सं०) वह रकम, जो खरीदार द्वारा बेचनेवालों को, क्रय वस्तु की कीमत पक्की हो जाने पर, दी जाती है और पूरी कीमत देते समय काट ली जाती है। दे०—बेआना।

[बया+ना (प्र०) < बया < बायः (अ०)]।

बरई-(सं०) पान पैदा करनेवाली एक जाति। (२) पान बेचनेवाला व्यक्ति।

[बरई < वारुजि (?) = तांबूलिक (मो० वि० हि०)। < बाड़=क्यारी—(हि० श० सा०)]।

बरउख—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो पतला और लाल छिलकावाला तथा मीठे रस से पूर्ण होता है (इ० प० मै०)। दे०—बरौंधी।

[बर+उख (यौ०) ; बर < वर-(?); उख < इक्षु या वर < बड़ा। बरौंखा (हि०) = एक प्रकार का गन्ना, जो बहुत बड़ा या लंबा होता है, बड़ौंखा—(हि० श० सा०)]।

बरउछ—(सं०) माल-गोरू की पूँछ के केश की बनी रस्सी। पर्या०—सेल्हा।

[बर+उछ ; बर < बार < बाल ; उछ < गुच्छ (?)। बरौंछी (हि०) < बार + ओछना (हि० श० सा०)। बरौंछी = सूअर के बालों की बनी कूँची, जिससे सुनार गहना साफ करते हैं-(हि० श० सा०)]।

बरखा—(सं०) (१) वर्षा-ऋतु (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) वर्षण, वृष्टि।

[बरखा < वर्ष < √वृष्। बरखा, बरषा (पं०, हि०), वर्षा, बर्खा (ने०)]।

बरखी—(सं०) (१) वर्ष-भर में किये हुए काम के बदले पूरे वर्ष के अंत में मिलनेवाली मजदूरी (चंपा०)। दे०—सालियाना। (२) मृत्यु के एक वर्ष बाद मरण-तिथि को होनेवाला एकोद्दिष्ट श्राद्ध।
[बरख+ई (प्र०) < बरख < वर्ष-]।

बरखु—(सं०) एक प्रसव के बाद डेढ़ वर्ष तक लगातार दूध देनेवाली गाय या भैंस (उ० पू० मै०)। दे०—डेवढ़।
[बरख+उ (प्र०) < बरस < वर्ष-(?)]।

बरगांवा—(सं०) मछली पकड़ने के जाल को बगल की ओर मुँह करके लगाने की प्रक्रिया।
[बर+गांवा-(?)]।

बरघरा—(सं०) पशुओं के लिए बनाई गई पलानी। पर्या०—बहरघरा (गया)।
[बर+घरा < बहिर्+क]।

बरछाबहादुर—(सं०) लंबी आकृति का एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[बरछा+बहादुर (फ़ा०)—(देशी)]।

बरता—(सं०) सन का बँटा हुआ मोटा रस्सा (गया, द० मुं०)। दे०—बरही
[बरता < बरत्रा]।



बरती—(सं०) सन का मोटा रस्सा (गया, द० मुं०)। दे०—बरहा।
[बरत+ई (प्र०) < बरत्रा]।

बरद—(सं०) गाड़ी, हल आदि के उपयोग में आनेवाला बधिया किया हुआ बैल (पट०, उ० प० मै०, शाहा०, द० भाग०, दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—बरद।
[बरद < बलीवर्द-(संस्कृ०); बलीवद्द (पा०, प्रा०); बलिद्द, बलद (प्रा०); बलद (असु०, बं०); बड़द (ओ०); बरद, बलध (हिं०); बल्द (पं०); बलेदा (ल०)=बैलों का झुंड]।

बरदहट्टा—(सं०) गाय, बैल आदि पालतू पशुओं के क्रय-विक्रय की हाट (मुं०-१)।
[बरद + हट्टा, बरद < बलीवर्द, हट्टा < हट्ट, हट्टक-]।

बरदाएल—(क्रि०) गाय का बरदाना, संगम की इच्छा करना (गं० द०)। (वि०) बरदाई हुई। दे०—बरधियावल।
[बरद+आएल (प्र०)—बरद < बलीवर्द। बरदाना (हिं०)। मिला०—वृषस्यति गौः (संस्कृ०) = गाय साँड़ की कामना करती है]।

बरवाएल—(वि०) बरदाई हुई; गभिणी गाय। पर्या०—गाभिन, फरली (द० भाग०)।
[बरद+आएल (प्र०) < बरद]।

बरदाना—(सं०) (१) पशुओं के चराने के बदले चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (मै०, पट०, पू०)। दे०—चरचरी। (२) गाड़ीवानों के द्वारा प्रति लदनी जमींदारों को दिया जानेवाला यातायात-शुल्क। (३) अन्न-विक्रेता की नाप पर निर्धारित कर (पट०)। दे०—किआली।
[बरद+इया (प्र०) < बरद]।

बरदिया—(सं०) पशुओं के चराने के बदले चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (शाहा०)। दे०—चरची।
[बरद+इया (प्र०) < बरद]।

बरध—(सं०) खेती के काम में आनेवाला बधिया किया हुआ बैल। पर्या०—बरद, बड़द (पट०, उ० प० मै०, शाहा०, द० भाग०), बइल, बैल (प०), धूर, पैरा (गया)।
[बरध < बलिद्द, बलद (प्रा०) < बलीवर्द, दे०—बरद]।

बरधा—(सं०) परिवार के लिए उपयोगी पालतू पशु (द० प० शाहा०)। दे०—मवेशी।
[बरधा < बरद < बलीवर्द-]।

बरन—(सं०) हल के नीचे हरीस के मुख में दिया हुआ पच्चड़। दे०—बराइन।
[देशी। मिला०—बरन = प्राकार, घेरा, रोक]।



बरबरवा—(सं०) गाँव की उपज और फसल के अंतर्गत प्रदर्शित भूखंड का मोटा-मोटी हिसाब (गाइड०)।

बरमसिया—(वि०) बारहों मास फलने-फूलनेवाला (फल-फूल), सदाबहार (मुं०-१)।
[बर+मस + इया (प्र०); बर + मस < बारह+ मास < द्वादश-मास]।

बरमसिया—(सं०) (१) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) बारहों मास फलने-फूलनेवाला आम (पट०-१)।

बरमा—(सं०) छेद करने के लिए लोहे का बना बढ़इयों का एक हथियार, जिसमें लकड़ी की बेंट लगी रहती है और अंतिम छोर पर गुना बना रहता है (री०)।

बर्रे—(सं०) कुसुम फूल का बीज। (पट०, गया, प०)। दे०—कुसुम।
[बर्रे < बरड-, वा < बर्ह (?)]।

बररी—(सं०) कुसुम फूल का बीज (द० मुँ०)। दे०—कुसुम।
[बररी < बरट ; < बर्ह- (?)]।

बरल रस्सी—(सं०) बँटी हुई रस्सी (प०)। दे०—ठरा।
[बरल+रस्सी, बरल < बरल < बर्त < √वृत् ; रस्सी < रश्मि]।

बरवाह—(सं०) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर फैलानेवाला मनुष्य (गं० द०, प० शाहा०)। दे०—पनमोरा।
[बर+वाह (?)-देशी (?) वा संभ०- < वारिवाह-, वार्वाह- = जल देनेवाला, बादल]।

बरवाहा—(सं०) हत्थे से पानी फेंककर खेत को सींचनेवाला पुरुष (शाहा०)। दे०—हथवाहा।
[बर + वाहा (?) < वार्वाह-, < वारिवाह-]।

बरवे, बरेव—(सं०) पान का उद्यान।
[बरवे (?) संभ०—<वल्लीमत् वा<वल्लकी (?)]।

बरसाति—(सं०) वर्षा-ऋतु (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बरस + आति < वर्षर्तु < वर्ष+ऋतु ; < वर्षरात्रि—(नेपा०) ; बहराय (कश्म०) ; बर्सांति (बं०); बरसात (हि०) ; बरसाद (गु०) ; बर्सात, बर्साति, (ने०) ; वरिसारत्त (प्रा०)]।

बरह—(सं०) लाठे में लगा हुआ पानी निकालने का रस्सा (द० मुँ०)। दे०—बरहा।
[बरह < बरहा < वर्भक-]।

बरह—(सं०) सिंचाई के समय लाठे में व्यवहृत होनेवाली रस्सी (द० मुँ०)। दे०—बरहा।

बरह—(सं०) ऊख के कोल्हू की मथानी से और उसके सीधे खड़े खंभे (हरला) से बाँधनेवाला रस्सा।
[बरह बरत्रा-, < वर्भक-]।

बरहन—(सं०) हल के मूठे के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (सा०-१)। दे०—बराइन।
[बरहन (?)। मिला०—बरण-]।

बरहमसिया बइगन—(सं०) बारहों महीना फलने-फूलनेवाला बैंगन (पट०-१)।

बरहा—(सं०) लाठे में लगा हुआ पानी निकालने का मोटा रस्सा। पर्या०—बरह (द० मुँ०), हथबरही, उबहनि (चंपा०, उ० पू० मै०)।
[बरहा < वर्भक-]।



बरहा—(सं०) सन का बना मोटा रस्सा। पर्या०—बरही, बरता (गया, द० मुँ०), बरती।
[बरहा < वर्भ (क), वा बरत्रा (?)]।

बरहा—(सं०) सिंचाई के समय लाठे में व्यवहृत होनेवाली रस्सी। (२) नेवारी की बनी हुई मोटी रस्सी (पट०-१, भाग०)। पर्या०—बरह (द० मुँ०), हथबरही उबहनि (चंपा०, उ० पू० मै०)।
[बरहा < वर्भक-]।

बरहा—(सं०) पानी-सिंचाई की मोटी रस्सी। दे०—रस्सा।
[बरहा < वर्भक-]।

बरहा, बरही—(सं०) हेंगा खींचनेवाली रस्सी (पू० मै०)। दे०—बरही।
[बरहा < वर्भक, बरही < वर्भी]।

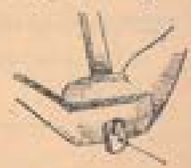
बरही—(सं०) (१) हेंगा खींचनेवाली रस्सी (गं० उ०, दर०-१, पूर्णि०-१, शाहा०)। पर्या०—हेंगही (गं० उ०), चौकनारन (पट०), मरिखर (द० मुँ०, उ० पू० मै०), जगडोरी (द० भाग०), मझोतर (द० मुँ०, प०, गया, पू० मै०), (२) सन का मोटा रस्सा। दे०—बरहा। (३) हेंगा के साथ पालो में बाँधी जानेवाली रस्सी (दर०-१, पूर्णि०-१)। (४) एकवाई को छोड़कर खेत की दूसरी नालियाँ (सा०-१)। (५) वह मोटी रस्सी, जिससे हेंगा देने के समय हेंगा और पालो बाँधे जाते हैं (चंपा०-१)।
[बरही < वर्भी]।



बरहौघर—(सं०) छोटी मड़ई (शाहा०)। दे०—गोहिया।
[बरहौ+घर; बरहौ < बहिर् (?); घर < गृह-]।

बरौंटी—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। (२) भादो महीने में होनेवाला एक प्रकार का मोटा धान (पट०-१)।
[बरा + औंटी (?) < बड़ी+औंटी (= फसल का पूला)—देशी (?)]।

बराइन—(सं०) हल के मूठे के नीचे हरीश के शुरू में दिया हुआ पच्चड़। पर्या०—बरैन (चंपा०, मै०), बरेन (उ० पू० मै०), बरहन (सा०), बरैनी (पट०), बरन (शाहा०)। बराइन, बरैन (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बराइन < (?)]।

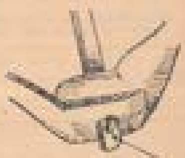


रस्सा। पर्या०—
ती।
(?)]।
में व्यवहृत होने-
नी हुई मोटी रस्सी
रह (द० मुं०),
० मै०)।
मोटी रस्सी।
वाली रस्सी (पू०
भी]।
ी रस्सी (गं० उ०,
)।



क-
द०
गेरी
मुं०,
सन
-बरहा। (३) हेंगा
वाली रस्सी (दर०-१,
ो छोड़कर खेत की
५) वह मोटी रस्सी,
हेंगा और पालो बाँधे

हा०)। दे०-गोहिया।
र (?); पर < गृह-]।
वाला एक प्रकार का
महीने में होनेवाला एक
-१)।
ढ़ी+आँटी (= फसल का
नीचे हरीश के शुरू में



बरायल–(क्रि०) (१) सींचने के निमित्त अहरा, नाला, कुआँ आदि से खेत में पानी ले जाना। (२) किसी वस्तु को धूप में सूखने देना। (३) सूखना, हवा लगकर किसी वस्तु का सूखना (मुं०-१)।
[बरा + आयल (प्र०); बरा < वारि, वार् (?) (ना० धा०)]।

बरारी—(सं०) एक प्रकार की मछली (चंपा०-१)।
[बरारी < (?)]।

बराहा—(सं०) मोटा और मजबूत रस्सा, जोराठा (मुं०-१)।
[बराहा < बरआ (?) या < वर्धक-]।

बराहिल—(सं०) (१) माँग के अनुसार अनाज न देने पर किसान के अनाज को रोककर देखरेख करने के लिए जमींदार के द्वारा नियुक्त पुरुष (जहाँ-कहीं)। दे०—ढेंकनिहार। (२) जमींदार की ओर से नियुक्त वेतनभोगी कार्यकर्त्ता, जो जमींदारी की देखरेख करता है। (३) बड़े किसानों द्वारा अपनी खेती की देखरेख के लिए नियुक्त कार्यकर्त्ता। (४) जमींदार का कारोबार देखनेवाला सिपाही (पट०-१)।
[बराहिल (फा०)]।

बरियार—(सं०) (१) उपजाऊ और ताकतवर मिट्टी। पर्या०—गहरा, जैयद (द० मुं०), जीवगर (पट०), चोखा (उ० प०, गया, द० मुं०)। (२) उपजाऊ मिट्टीवाला खेत। (३) उपजाऊ मिट्टी से युक्त। (४) एक प्रकार की ओषधि का क्षुप, जिसे 'बला' कहते हैं। (५) एक प्रकार की घास (सा०-१)। (वि०) बलवान्, समर्थ।
[बरियार < बलीयस्। < बला (?) (ओषधि अर्थ में)]।

बरियार पानी—(सं०) कुआँ के अंदर के स्रोत का जल। पर्या०—सँगरा (द० भाग०), जिवगर (द० मुं०), ये दोनों विशेषण हैं, जो पानी और उसके पर्याय के साथ मिलकर प्रयुक्त होते हैं।

मुहावरेदार प्रयोग—'ताआ टूट गेल' = स्रोत का पानी निकल पड़ा (गं० उ०)। 'बरियार या जिवगर पानी आबि गेल' = स्रोत का पानी निकल पड़ा (सं० द०)।
[बरियार+पानी (यौ०), बरियार < बलीयस्; पानी < पानीय-]।

बरुआ—(सं०) (१) न जम सकनेवाला अनाज (द० प०, शाहा०)। दे०—अंखी।
[बरुआ (?)]।

(२) खाट बुनने के समय रस्सी को रोके रखने के लिए पट्टी पर लगाया हुआ रस्सी का एक उपकरण (उ० प०, द०)। पर्या०—ओभा (मै०, पू०), जमौआ (द० भाग०)। (३) वर, विवाह-जनेऊ आदि संस्कार के योग्य माणवक।



[बरुआ < बरल (बिहा० क्रि०) = बँटना। < वर-]।

बरेठी—(सं०) वह लाठी, जिसमें काठ की कई गोलियाँ, उसे भारी बनाने के लिए लगाई जाती हों (चंपा०-१)।
[बरेठी (देशी-?)]।

बरेन—(सं०) हल के मूठ के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (उ० पू० मै०)। दे०—बराइन।
[बरेन (?)। मिला०—वरण- (संस्कृ०) = घेरा, प्राकार, रोक]।

बरेव—(सं०) (१) किसी लत्ती आदि के ऊपर चढ़ने के लिए बनाया गया मचान। (२) पानी की खेती के लिए बनाया गया घेरा (चंपा०-१)।
[बरेव (देशी-?)। मिला०—वर (=घेरा, प्राकार, स्थान, अवकाश)]।

बरेब, बरबे—(सं०) पान का बागीचा।
[दे०—बरेव। मिला०—वर-(संस्कृ०) = घेरा, स्थान, अवकाश]।

बरैइन–(सं०) दे०—बराइन या बरैन (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बरैइ+न (सा० प्र०) < बरैइ < वाग्गुलि-(?)]।

बरैठा–(सं०) (१) वह टीला, जिसपर पान की लत्ती लगाई जाती है (गं० उ०)। दे०—भिंडा। (२) वह घिरा हुआ स्थान, जहाँ पान की खेती होती है (मुं०-१)।
[बर+पैठा, बर < वर-(=स्थान, अवकाश, घेरा) (?); पैठा < प्रविष्ट (?) या पैठा (प्र०)]।

बरैन–(सं०) (१) हल में लागन जोड़ने की किल्ली (मुं०-१)।

बरैन—(सं०) (२) हल के मूठ के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (चंपा०, मै०)। दे०—बराइन।
[बरैन (देशी-?) मिला०—वरण (संस्कृ०) = घेरा, प्राकार, रोक]।

बरैना—(सं०) परवल की आकृति की एक तरकारी (पट०-१)।

बरैनी—(सं०) हल के मूठ के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (पट०)। दे०—बराइन।
[बरैनी (देशी-?)। मिला०—बरन-]।

बरोबर—(सं०) (१) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। (२) सम, बराबर।
[देशी]।



बरोह—(सं०) बड़ या बरगद की जटा, जो नीचे की ओर लटककर भूमि पर आ जाती है (चंपा०-१)।
[बर+ओह < बट+प्ररोह या बट+रोह]।

बरोहर—(सं०) बरगद की जटा, जो पेड़ से नीचे की ओर लटकती है (पट०-१)।

बरौखी—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो पतले और लाल छिलके से युक्त तथा मीठे रस से पूर्ण होता है (सा०-१)। पर्या०—बरऊख (द० प० मै०), नरगौरी (सं० उ०, सामा०)।
[बरा+औखी, बरा < बड़ा < बड्ड-; औखी < ऊख < इक्षु-]।

बरौनी—(सं०) (१) वह खेत, जिसमें नदी, पैन या नहर आदि का पानी गिराया जाता है (भाग०-१)। (२) आँख की बरौनी। (३) उत्तर बिहार का प्रसिद्ध औद्योगिक स्थान-विशेष।

बर्रे—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध पौधा, जिसके फल से 'कुसुम' प्राप्त होता है, और जिसके रंग में कपड़े रँगे जाते हैं। इसकी कोमल पत्तियों का साग बनता है तथा दानों को सुखाकर खाते हैं (चंपा०-१)। (३) एक प्रकार का उजला और लंबा अनाज, जो महुए के साथ कूटकर खाया जाता है (पट०-१)। (४) हड्डा या बर्रे नाम का विषैला कीड़ा।
[बर्रे (देशी-?)। मिला०—वरट]।

बर्हां—(सं०) लोहे में लगी मोटी रस्सी, जिसके अंतिम छोर पर खूँट बँधा रहता है (गाइड०)। दे०—बरहा।

बलकट—(सं०) (१) धान आदि की, डंठल के बिना ही केवल बाल की कटाई। पर्या०—टूँगनी (सं० उ०, प०), अगला (चंपा०, गया), कटुई (प० शाहा०), पाँगल (प०), नन्हकटनी (द० मुं०), बलकटनी (पू० मै०), सिसकटनी (चंपा०), छिपकट्टा (द० पू० मै०), अगड़ा, अलगा (द० भाग०), पैनछोर, पैनछोप (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) भावली जमीन में प्रतिमन दो छटाँक के हिसाब से पटवारी को मिलनेवाला पारिश्रमिक (सा०)। दे०—नौंचा।
[बल+कट, बल < बाल; कट < कटल, काटल (बिहा०); काटना (हिं०) < √ कृत् (=काटना)]।

बलकट नगदी—(सं०) फसल की बाल देखकर नगद लगान तय करना (पट०-१)।

बलकट रेंट—(सं०) उपजे हुए अनाज के परिमाण के बराबर दिया जानेवाला व्यय-कर (गाइड०)।

बलकल—(क्रि०) मिट्टी से रेह के अंश का बाहर निकल आना (चंपा०-१)। (सं०) वल्कल, छाल।
[बलक+ल (प्र०)—<बलक < √ बल् (बलयति) (?); बलकल < वल्कल, वल्क-]।

बलकेसी—(सं०) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी (द० पू० मै०)। दे०—बलसुंदर।
[बल+केसी; बल <बालू- < बालु; केसी (?)]।



बलको—(सं०) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (द० प० मै०)। दे०—खोइया।
[बलको < वल्कल-]।

बलखोइया—(सं०) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (सामा०)। दे०—खोइया।
[बल+खो+इया (प्र०-?) <बलखो <वल्कल-]।

बलथर—(सं०) बाल-मिश्रित मिट्टी या जमीन (द० प०, पट०, गया)। दे०—बाला।
[बल+थर < बालू+थर < बालु+स्थल- (?)]।

बलधूस—(सं०) बालू-मिश्रित मिट्टी (चंपा०-१)। दे०—बाला।
[बल+धूस; बल < बालू < बालु-; धूस < धूसर- (?)]।

बलरक्खा—(सं०) (१) फसल या अनाज की देखभाल करनेवाला (पट०)। दे०—रखवार। बलरक्खी= रखवाली (पट०)। (२) जमींदारों की ओर से माँग के अनुसार अनाज न देने तक किसान के अनाज को रोककर उसकी देखरेख करने के लिए नियुक्त पुरुष (द० पू०)। दे०—छेंकनिहार।
[बल+रक्खा; बल < बाल; रक्खा < राखल, (बिहा०); < रखना (हिं०) < √ रक्ष्]।

बलरक्खी—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (पट०)। दे०—रखवारी।
[बल+रक्खी; बल < बालू; रक्खी <राखल]।

बलरी—(सं०) मकई के भुट्टे में से दानों के निकालने के बाद बचा हुआ डंठल (द० पू० मै०, द० मुं०)। दे०—लेंढ़ा।
[बलरी < वल्लरी (?)। वल्लरी=कुन्त]।

रट < कटल, काटल
ल् (=काटना)।
वाल देखकर नगद
व के परिमाण के
र (गाइड०)।
के अंश का बाहर
०) वल्कल, छाल।
√वल् (वलयति) (?);
कुछ चिकनी मिट्टी
र।
< बालु ; केसी (?)]।



<वलसो <वल्कल-]।
ट्टी या जमीन (उ०
।
बालु+स्थल-(?)]।
मिट्टी (चंपा०-१)।
< बालु- ; भूस <
अनाज की देखभाल
रखवार। बलरखनी=
दारों की ओर से माँग
किसान के अनाज
रेख करने के लिए
०—छेंकनिहार।
; रक्खा < राखल,
< √ रक्]।
नाज की देखभाल
लु ; रक्खी <राखल]।
से दानों के निकालने
पू० मै०, द० मुं०)।
बलरी=बल्त]।

बलवा—(सं०) बालू-मिश्रित जमीन या मिट्टी। दे०—बाला।

[बल+वा (प्र०) < बल<बालु,< बालुका (?)]।

बलवाहा—(सं०) बालू-मिश्रित जमीन या मिट्टी (द० भाग०)। दे०—बाला।

[बल+वाहा (प्र०) < बल < बालु,< बालुका]

बलसार—(सं०) ऊख रोपने के पहले बीज के रखने का गड्ढा (पट०)। दे०—खार।

[बल+सार (?)]।

बलसुंदर—(सं०) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी। पर्या०—बलसुन्दरी, बलसुन, बलसुम्ही (द० मै०), बलकेसी (द० पू० मै०), बलसुम (उ० पू० मै०), बलुअट (प०), बलिमट (शाहा०)।

[बल+सुंदर ; बल < बालु, < बालुका; सुंदर < सुन्दर-(?)]।

बलसुंदरी—(सं०) (१) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी। दे०—बलसुंदर। (२) बालू-मिश्रित मिट्टी या जमीन (गाइड०)।

[बल+सुंदरी, बल < बालु, < बालुका ; सुंदरी < सुन्दरी (?)]।

बलसुन—(सं०) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी। दे०—बलसुंदर।

[बल+सुन, बल < बालु , < बालुका ; सुन < सुन्दरी (?)]।

बलसुनरी—(सं०) वह चिकनी मिट्टी, जिसमें बालू मिली होती है। (पट०-४)।

[बल + सुनरी, बल < बालुका ; सुनरी < सुन्दरी (?)। सुन्दरी < सु+नर (=अच्छा मनुष्य)—'द' आगम के साथ—(मो० वि० हि०)]।

बलसुम—(सं०) बाल मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी (उ० पू० मै०)। दे०—बलसुंदर।

[बल+सुम ; बल < बालुका ; सुम < सुम्ही < शुम्न या शुम (?)]।

बलसुम्ही—(सं०) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी (द० मै०)। दे०—बलसुंदर।

[बल+सुम्ही ; बल < बालुका ; सुम्ही < शुम्न, या शुम (?)]।

बलान—(सं०) काफी बालू जमा हो जाने के कारण बेकार पड़ी हुई जमीन (उ० पू० मै०)। दे०—कोरा बालू।

[बल+आन (प्र०) ; बल < बालुका]।

बलिमट—(सं०) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी (शाहा०)। दे०—बलसुंदर।

[बलि+मट ; बलि < बालुका ; मट < माट < माटी < मृत्ति-]।

बलिहा—(सं०) नर जाति का ताड़, जिसमें काँटेदार फूल लगे रहते हैं (सा०-१)। दे०—बलतार।

[बलि + हा (प्र०) < बलि < बाल वा < फल्गु (?)]।

बलुअट—(सं०) (१) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी (प०)। दे०—बलसुंदर। पर्या०—बलुही माटी (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) वह जमीन, जिसमें मिट्टी के साथ अधिक मात्रा में बालू का मिश्रण रहता है (गाइड०)। पर्या०—बलुआ। (३) बालू-मिश्रित मिट्टी (चंपा०-१)।

[बलु+अट ; बलु < बालुका ; अट < मट < मृत्ति-]।



बलुअठ—(सं०) ताड़ के फल को काटनेवाली हँसिया को घिसकर तेज करनेवाली लकड़ी (द० भाग०)। दे०—लौठा।

[बलु + अठ < बाल। वा < फल्गु ; अठ < काष्ठ-(?)]।

बलुआ—(सं०)(१) दलहन के डंठल को खानेवाला एक कीड़ा, जिसके कारण पत्तियाँ टेढ़ी होकर सिकुड़ जाती हैं (प०, गया, द० पू०)। दे०—बाला।

[बल+उआ (प्र०) बल < बलन- (?)]।

(२) ऐसी जमीन, जिसके कुछ नीचे बालू-मिट्टी मिली हुई हो। (३) वह जमीन, जिसमें मिट्टी के साथ अधिक मात्रा में बालू का मिश्रण रहता है (गाइड०)। दे०—बलुअट। (वि०)—बालूयुक्त।

[बलु + आ (प्र०) < बलु < बालू < बालुका। बलुआ, बलुई (हि०); बलुआ, बलुवा (ने०)]।

बलुआइन—(सं०) नदी के सूख जाने पर या अवर्षण के समय नदी की निचली सतह से पैन में पानी ले जाने का कार्य (गाइड०)।

बलुआ बाँगर—(सं०) बालू-मिली मिट्टी की ऊँची जमीन।

[बलुआ + बाँगर (दी०) ; बलुआ < बालू < बालुका ; बाँगर (देशी)। मिला०—मझार < मझा (=सन, भाँग) (?) मझार < सन या भाँग-युक्त क्षेत्र आदि। सन (पटुआ) और भाँग ये दोनों ऊँची भूमि में पैदा होते हैं। मझा+र (प्र०) ; यथा कप+र]।

बलुआभीठ—(सं०) बालू-मिश्रित मिट्टी का टीला।
[बलुआ+भीठ ; बलुआ < बालु-; भीठ < भित्त-, भित्ति- (?)। < भिट्ट, भीट (नेपा०)]।

बलुई—(सं०) दलहन के पौधे में लगनेवाला एक कीड़ा, जिसके कारण पत्तियाँ टेढ़ी होकर सिकुड़ जाती हैं (शाहा०)। दे०—बालू। (वि०) बालू-मिश्रित भूमि आदि।
[बलुई < बालू या वल्ल (?)]।

बलुखा—(सं०) चने का भूसा (द० पू० मै०)। पर्या०—भुसा, भूसा, भुस्सा।
[बलुखा < वल्क, वल्कल (?)]।

बलुरिया तार—(सं०) वह ताड़, जिसमें केवल फूल ही लगते हैं (पट०)।

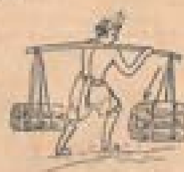
बलुरी—(सं०) (१) मकई के भुट्टे में से दानों के निकालने के बाद बचा हुआ डंठल (पट०, द० पू० मै०)। दे०—लेढ़ा। (२) ताड़ का फूल (पट०-१)।
[बलुरी < वल्लरी (?)]।

बलेठा—(सं०) ताड़ के फल को काटनेवाली हँसिया को घिसकर तेज करने की लकड़ी। दे०—लौठा।
[बल+एठा (?) < बल- ; एठा < इष्टक (?) या काष्ठक- (?)]।

बलौंधी—(सं०) एक प्रकार की चोईंटा-रहित मछली (सा०-१)।
[बलौंधी < (?)]।

बल्ला—(सं०) (१) मजुसी के अंदर नील को कुचलने के लिए लगी हुई शहतीर। पर्या०—कैंच (सा०)। (२) शहतीर, बल्ला।
[बल्ला < बलका=बल्ला]।

बल्ली—(सं०) छोटी-छोटी लकड़ियों का गट्ठर, जो बहँगी के सहारे कंधों पर ढोया जा सके (मुं०-१)।
[बल्ली < बल्ला+ई (प्र०) < बलक]।



बशरहनंबर—(सं०) उपर्युक्त संख्या आदि (गाइड०)।
[ब + शरह + नंबर < ब + शरह (फा०) + नंबर (अं०)]

बसंती—(सं०) (१) वसंत में निकलनेवाली ताड़ी। (२) पीला रंग। (वि०) वसंत में होनेवाली वस्तु। वसंत ऋतु से संबद्ध।
[बसंत+ई (प्र०) < वसंत < वसन्त-]।

बसउंढ़ी—(सं०) जमींदार द्वारा लिया जानेवाला बाँस का कर (पट०-१)।

बसकठमहाल—(सं०) बसने की जगह (गाइड०)।

बसगित—(सं०) वह स्थान, जहाँ लोग घर बनाकर रहते हैं। पर्या०—बसती।
[बसगित < वसति (ग-आगम के साथ)]।

बसघंटा—(सं०) वासंतिक अन्न के खेत में उगनेवाली एक घास (शाहा०)। दे०—बसौता।
[देशी-(?)]।

बसती—(सं०) (१) गाँव, जहाँ लोग बसते हैं। (२) वह स्थान, जहाँ लोग घर बनाकर रहते हैं। दे०—बसगित।
[बसती < वसति < √वस्+ति (?)]।

बसनी—(सं०) कुएँ से पानी निकालने का ताँबे या पीतल का घड़ा (गया)। दे०—गगरा। (२) पानी खींचने या रखने का बरतन।
[बसनी < वासन (?)। मिला०—(१) वपा-श्रपणी (शत०)= वपा को पकाने का पात्र। (२) अधि-वासन]।

बसमतिया—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का महीन सुगंधित उत्तम धान (अन्यत्र)। इस धान का चावल उजला और महीन होता है और पकने पर भात की सुगंध फैलती है (पट०)।
[बसमतिया < बासमती < बास+मती]।

बसरन—(सं०) वर्षा का पानी (गाइड०)।

बसरह सदर—(सं०) उपर्युक्त, पूर्वोक्त (गाइड०)।
[ब+शरह+सदर < ब+शरह+सदर (फा०)]।

बसरी—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[बसरी (देशी)। मिला०—वंशपत्रक- = एक प्रकार का वनस्पति या घास। एक प्रकार की मछली]।

बसहा—(सं०) वह बैल, जिसके ककुद पर जटा की तरह अतिरिक्त मांस-ग्रन्थि निकली होती है और शिवजी के बैल (नन्दी) का प्रतिनिधि माना जाता है। पूज्य माने जाने के कारण हल आदि जोतने में इसका उपयोग नहीं होता है। दे०—जटहा।
[बसहा—वृषभ- (संस्कृ०); वसहा (प्रा०)]।

बसांठी—(सं०) वसंत की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (मै०)। पर्या०—बसौता (प० मै०)।
[बस+आंठी < वंशाष्ठ- (?)। मिला०—वंशदला, वंशपत्र-, वंशपत्रक- = एक प्रकार की घास]।

बसाड़—(सं०) एक साथ उगे हुए बाँसों का समूह (गं० द०)। दे०—बाँस के कोठी।
[बस+आड़ < वंश+वाट या वंशाट्ठ- (?)]।

बसाहभोग—(सं०) एक प्रकार का पतला, सुगंधित उत्कृष्ट धान (पट०-१)।

बसुड़ी—(सं०) गाँव के रहनेवाले शिल्पियों, दुकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा लिया जाने-वाला भूमि का राजस्व (पू० मै०)। दे०—मोतरफा।
[बसुड़ी < बसुला (?)]।

बसुला—(सं०) कुल्हाड़ी की तरह लकड़ी काटने या छीलने का एक हथियार (री०)।

बसेड़—(सं०) उगे हुए बाँसों का समूह, जो एक साथ रहता है (पट०)। दे०—बाँस के कोठी।
[बस+पड़ < बंश+वाट-(?)]।

बसौंता—(सं०) वासंतिक अन्न-क्षेत्र में उत्पन्न होने-वाली एक घास (गं० उ०)। पर्या०—बसगंटा (शाहा०), बसौता (उ० पू० मै०)।
[बस+औंता < वंशपत्रक-(?)]।

बसौता—(सं०) वसंत में होनेवाली फसल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (प० मै०)। दे०—बसाड़ी।

बस्तर—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो जेठ में बोया जाता है, कभी इसका बावग होता है और कभी रोपा। यह समूचे तिरहुत में प्राप्य है। (२) वस्त्र। (३) मध्यप्रदेश का स्थान-विशेष।
[बस्तर < (?)]।

बस्ती—(सं०) निवासस्थान, गाँव। दे०—बसती।
[बस्ती < बसति < √बस+ति (प्र०)]।



बहँगी—(सं०) बोझा ढोने के लिए बाँस की फट्ठी का बना वह साधन-विशेष, जिसके दोनों ओर दो छींके लटके रहते हैं। पर्या०—बँहगा (उ० पू० मै०), सिकाटइ (पू० मै०)।
[बहँगी < बधक, बधकी < बध (=वह साधन-विशेष, जिससे ढोने का काम लिया जाय।) < √बह्+घ (प्र०), बधं करणम् (शाक्ति० सू०); बहँ+गी < बह+ङ्ग (स्कन्ध से चलनेवाला)]।

बहंतु—(सं०) बहनेवाला पानी (चंपा०-१)।
[बहंतु (?)। मिला०—बहती = नदी, बहन्ती = बहनेवाला पानी (सं० सं०)]।

बह—(सं०) (१) नहर, जलाशय या कुएँ के पास से खेत तक जानेवाला जलप्रवाह का मार्ग या नाली (द० पू० मै०)। दे०—पैन। पर्या०—पनिबहा (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) बाँस की जड़ से निकला हुआ दूसरा बाँस (चंपा०-१)।
[बह < बह (?) √ बह्]।

बहकल—(क्रि०) (१) पशुओं का खो जाना, भटक जाना (शाहा०)। दे०—हेरा जाएल। (२) बहकना, भटकना।
बहक+ल (प्र०), बहक < √बह् (?)]।

बहका—(सं०) जोते हुए खेत की मिट्टी को बराबर करनेवाले हेंगे का निचला भाग, जिसमें लोहे की कड़ी लगाई जाती है (पट०-१)।

बहट जाएल—(क्रि०) पशुओं का खो जाना, भटक जाना (पट०, गया)। दे०—हेरा जाएल।
[बहट+जाएल (प्र०); बहट < √बह्-(?) या < भ्रष्ट- < √भ्रंश्]।

बहता—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनकी जीभ फूल जाती है, लार चलती है और आँखें लाल हो जाती हैं। (पट०-१)।

बहना—(सं०) (१) नदी की छोटी शाखा (गं० उ०)। दे०—बाहा। (२) अन्न रखने का मिट्टी का बना छोटे मुँह का बरतन (पट०-१)।
[बह+ना (प्र०) < बह < √बह्]।

बहरघरा—(सं०) पशुओं के लिए बनाई गई पलानी (गया)। दे०—बरघरा।
[बहर+घरा (प्रा०)<बाहर+घरा<बहिर्गृहक-]।

बहरनी—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लंबा उजला धान (उ० प० मै०)। पर्या०—बहोरनी (उ० प० मै०)। (२) बढ़नी, झाड़ू।
[बहरनी (?) या < बर्धनी (?)]।

बहरभूं—(सं०) (१) गाँव के बाहर की जमीन (सा०, मै०)। दे०—बहरसी। (२) गाँव के बाहर की जमीन (द० मुं०)। दे०—सरह।
[बहर+भूं < बहिर्भूमि-]।

बहरभूम—(सं०) गाँव की ऊँची जमीन (द० मै०)। दे०—उपरवार।
[बहर+भूम < बहिर्भूमि-]।

बहरसाल—(सं०) मवेशियों का एक ऐब। इस ऐब से ग्रस्त मवेशी अपने दोनों पिछले पैरों को बाहर की ओर फेंकता चलता है।
[बहर+साल < बहिःशाल या बहिःसार-(?)]।

बहरसी—(सं०) (१) गाँव के बाहर की जमीन (प०, पट०, द० मुं०)। पर्या०—ताधी (चंपा०), बहरभूं (सा०, मै०), टाल (द० पू०), सिपा (हजा०), बहियार (उ० पू० मै०, भाग०), बैहार (द० भाग०)। (२) वह खेत या मैदान, जहाँ मवेशी चराये जाते हैं (पट०)। दे०—चराई।
[बहर+सी < बहिःसीमा (?)]।

बहरियानी—(सं०) भोखला या पैन का अंतिम छोर (गाइड०)।

बहसौं—(सं०) गाँव या आबादी के बाहर की भूमि।

टि०—सन् १८५७ ई० में श्री मिलने (शाहाबाद) की जमींदारी में आबादी के बाहर की भूमि के लिए, जो प्रायः जंगल से ढकी रहती थी, यह शब्द व्यवहृत होता था (गाइड०)।

बहल—(क्रि०) बहना, जोतना। दे०—जोतन। हर-बहल (यौ०), हल बहना, हल जोतना।

[बह + ल (प्र०), बह < √वह् (वहति भारम्, वहति हलम्)]।

बहारन—(सं०) (१) खाद। दे०—खाद (पू०, सा०)। (२) झाड़ू देने के बाद एकत्र की गई गंदगी (चंपा०-१)।

[बहार+न (प्र०) < बहार < बहारन < वर्धन < √वर्ध् (?)]।

बहारनी—(सं०) एक प्रकार का महीन और सुगंधित धान (चंपा०-१)।

[बहारनी-(?)]।

बहावल—(क्रि०) दे०—छेकरावल (सा०-१)।

[बह+आवल (प्र०) < बह < वाह (=घोड़ा, बैल)-(?) या < √वह्]।

बहासी—(सं०) एक प्रकार का सफेद मोटा अगहनी धान, जिसका चावल भी सफेद होता है (सा०-१)। मिला०—बहारनी।

[बहासी (?)]।

बहिंगा—(सं०) बोझा ढोने के लिए बाँस की पट्टी का बना वह साधन-विशेष, जिसके दोनों ओर छीके लटके रहते हैं। इन्हीं छींकों को पर वस्तु रखकर ढोया जाता है (उ० पू० मै०)। दे०—बहँगी।

बहिंगा ढोंढ़ी—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बहिंगा+ढोंढ़ी(यौ०)-देशी]।

बहियाँ—(सं०) साथी, संगी। (वि०) बाँह पकड़कर साथ ले चलनेवाला।

टि०—बैलगाड़ी के गाड़ीवान सड़क पर गाड़ी हाँकते समय एक दूसरे को बहियाँ कहकर पुकारते हैं। (मुँ०-१)।

[बहियाँ < बाहु- (?)]।

बहियार—(सं०) (१) खेती के योग्य जमीन का घिरा हुआ या सीमित टुकड़ा (द० मुँ०)। दे०-खेती।

[बहियार < बहिर्वाट-(?)]।

बहियार—(सं०) (२) गाँव के बाहर की जमीन (उ० पू० मै०, दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—बहरसी।

[बहि+वार < बहिर्वाट-(?)]।

(३) वह खेत या मैदान, जहाँ गायें चराई जाती हैं (द० भाग०)। दे०—चराई। (४) खेतों का समूह, दूर तक फैली हुई खेतों की जमीन। (मुँ०-१, द० भाग०)। (५) जंगल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बहि+वार < बहिर्वाट-(?)]।

बहियावल—(क्रि०) दूर भगा देना, पीछा करना, खदेड़ना, हँकाना (मुँ०-१)।

[बहिया+आवल (प्र०) < बहिया (बाहर) < √वह्+णिच् (प्र०)=√वाहि]।

बहिरा—(सं०) ताड़ का वह पेड़, जिससे रस (ताड़ी) नहीं निकलता (उ० पू० मै०)। दे०—कोढ़ी। (वि०) बधिर।

[बहिरा < बधिरक (?), या<बहिला (बिहा०)= बच्चा न देनेवाली गाय या भैंस]।

बहिलंठ—(सं०) वंध्या, बाँझ (चंपा०-१)।

[बहिलंठ < बहिला-(?)]।

बहिला—(सं०) (१) बाँझ औरत या मादा पशु (मुँ०-१)। (२) बाँझ गाय या भैंस। पर्या०—ठहरा (द० प० शाहा०)।

[बहि+ला (प्र०) < बहि < बन्ध्या (?) या < वेहद् (संस्कृ०)=वंध्या या गर्भोपघातिनी गाय]।

बही—(सं०) (१) मोट खींचने के समय बैलों के चलने के लिए बना हुआ ढालू मार्ग (गया)। दे०-पौदर। (२) ऊख के कोल्हू के चारों ओर का वह क्षेत्र, जिसमें बैल घूमता है (पट०)। दे०—गोरपौर। (३) हिसाब - किताब लिखने की पुस्तिका। (४) लिखने की पुस्तिका।

[बही < बह + ई- < बह < वह-(संस्कृ०) = बही (३) संभ०— < वाहिका (यथा—राजवाहिका= राजा की दैनिक पुस्तिका—सिहास०) बहिया, बहिआ (प्रा०); बही (हिं०); बहि (ने०); बहि (असा०, बँ०, ओ०); बही (पं०); वही (पं०, ल०, सि०, गु०, मरा०)]।

बहुरी—(सं०) अधपका भुना हुआ अन्न (शाहा०)। दे०—होरहा। पर्या०—परमल (शाहा०), होरहा (प०), ओरहा (पू०), होलहा (पट०, गया)।

[बहुर+ई (प्र०) < बहुर या बहुल (?) (=बड़ा, फैला हुआ, अधिक)। मिला०—बहुर (संस्कृ०)=मध्य]।

बहेंगवा—(सं०) (१) किसी मवेशी की पूँछ के पास मलद्वार के बाहर छोटी गोली-जैसा मांसपिंड का निकल आना। यह मवेशियों का एक प्रकार का रोग है (सा०-१)। (२) बहिला। (३) एक प्रकार की गाली।

[बहेंगवा < बहिर्गत (?) या < बहिर्गक (?)]।

बहेड़—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

बहेड़ा—(सं०) बहेरा, औषधि-विशेष। इसका वृक्ष आम के पेड़ के समान होता है और फल पकने पर ईषत् पीत होता है। यह त्रिफला का एक फल है।
[बहेड़ा < बिभीतक-(?)। बहेड़ा (हि०, ने०)]।

बहेला जाल—(सं०) मछली मारने का एक प्रकार का जाल। इसमें बाँस की कमाचियों की बनी गोल पट्टी रहती है, जिसके सहारे जाल लगाया रहता है (सा०-१)।
[बहेला+जाल (यौ०)]।

बहोरनी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लंबा उजला धान (उ० पू० मै०)। दे०—बहुटनी।
[बहोर+नी (प्र०), बहोर < बहुल (?), बहुला = गाय, इलायची, श्वेतमरिच]।

बहोरनी—(सं०) एक सुगंधित अगहनी धान, जिसकी टूँड़ की नोक काली और चावल उजला होता है (सा०-१)।
[बहोर+नी (प्र०) < बहोर < बहुल, बहुला]।

बाँकड़ा—(सं०) उचित उपाय न होने के कारण नष्ट हुई फसल (शाहा०)। दे०—बिगरल हासिल।
[बाँक+डा (प्र०) < बाँक < वक्र (?)]।

बाँका—(सं०) बक्की जाति का एक बड़ा कीड़ा, जो धान को नष्ट करता है।
[बाँका < वक्रक-(?)]।

बाँकी—(सं०) एक प्रकार का शस्य-रोग, जो पत्तों पर (विशेषतः पीपर, मरीच आदि के पत्तों पर) प्रहार करता है और पत्तों को सिकोड़कर नष्ट कर देता है।
[बाँक+ई (प्र०) < बाँक < वक्र-(?)]।

बाँग—(सं०) कपास, कच्ची रूई (पू० मै०)।
[बाँग < वङ्ग-]।

बाँगर—(सं०) वह जमीन, जो सूखी रहती है और पानी पड़ने पर नरम हो जाती है।
[बाँगर (देशी-?)। मिला०—भङ्गुर = टूटनेवाला, कोमल, या < मङ्गा; मिला०—माङ्ग-, माङ्गीन (भाँग का खेत) या वङ्ग (=कपास)]।

बाँगर—(सं०) (१) वह भूमि, जो कुछ ऊँचाई पर अवस्थित हो और नदी, झील आदि के बढ़ने पर भी पानी में न डूबे। (२) वह मिट्टी, जो धूप लगने पर अत्यंत कड़ी और वर्षा होने पर नरम हो जाती है। (३) अधिक उर्वर भूमि (गाइड०)।

बाँगर करैल—(सं०) वह भूमि, जिसमें दरार फटती हो और जो अत्यंत कड़ी हो (शाहा०)।
[बाँगर+करैल (यौ०)]।

बाँगा—(सं०) (१) कपास का डंठल (प०)। (२) कपास की रूई या पौधा।
[बाँग < बंगा < वङ्कक-]।

बाँगा फुटल—(मु०) कपास का फुटना, फली का खिलना (मै०)। दे०—कपास फुटल।
[बाँगा+फुट+ल (यौ०); बाँगा < वङ्कक, फुट < √ स्फुट् (विकसने)]।

बाँगा, बंगा—(सं०) (१) कपास या रूई का पौधा। (२) फली में पड़ी हुई बिना साफ की हुई रूई दे०—बंगा।
[बाँगा < वङ्कक-]।

बाँगो—(सं०) (१) कपास या रूई का पौधा। (२) फली में पड़ी हुई बिना साफ की हुई रूई (द० भाग०)। दे०—बंगा।
[बाँगो < वङ्कक। यहाँ ओकार वस्तुतः वर्तुल 'अ' है, जो भागलपुरी या अंगिका का उच्चारण-कृत ध्वनिभेद है]।

बाँगो फुटल—(मु०) कपास का फुटना, फली का खिलना (द० भाग०)। दे०—कपास फुटल।
[बाँगो+फुट+ल]।

बाँझी—(सं०) (१) बीज का मर जाना या नहीं उगना (शाहा०, गो० भाग०)। दे०—बिजमार। (२) आम आदि की शाखों में उगनेवाली विजातीय शाखा, जिसमें फल-फूल नहीं लगते। (३) बाँझ, वन्ध्या।
[बाँझ+ई (प्र०) < बाँझ < वन्ध्या। बाँझ (प्रा०); बाँझ (हि०); बाँझो (ने०); बाँझो (कुमा०); बाँझा (बँ०); बाँझ (पं०); बाँझ (सिं०); बाँझ (गु०); बाँझा (मरा०); वन्द (सिंह०); बाँझ (ने०)= एक प्रकार का बड़ा वृक्ष। बाँज (कुमा०)]।

बाँझी—(सं०) तंबाकू के पत्ते का एक रोग (दर०-१, पूर्णि०-१)।

बाँझी सिसवा—(सं०) ताड़ का वह पेड़, जिससे रस (ताड़ी) नहीं निकलता (द० पू० मै०)। दे०—कोढ़ी।
[बाँझी+सिसवा; बाँझी < वन्ध्या; सिसवा < शिंशिपा (?) या सिस + वा (अना० प्र०) < सिस < शीर्ष-(?)]।

बाँट—(सं०) (१) किसान और जमींदार के बीच एक निश्चित परिमाण में अनाज का विभाजन (चंपा०, गया)। दे०—बटाई। (२) बाँटना, भाग, अंश।
[बाँट < वांटल < वंटन < √ वण्ट्। बाँट (हि०); बाँड़ो (ने०) = भाग, अंश। बाँड़ा (ने०) = सुनार या ठठेरा। वारी (काफि०) = शिल्पी। बान (कुमा०); बाँट (बँ०); वाण्ट (ओ०); वण्ड (पं०, ल०); वण्ड (सिं०); बाँट (गु०)]।

बाँटल—(क्रि०) (१) बाँटना, हिस्सा लगाना। (२) बटाई-दारों और भू-स्वामी के बीच अनाज का बँटवारा करना। (३) तृण, सन आदि को ऐंठकर रस्सी बनाना।
[बँट+ल (प्र०) < बाँट < √वण्ट्। बाँटल (३) < वर्त < √वृत्। √वण्ट्—वण्टति-(संस्कृ०); वंटाति (पा०); वंटइ (प्रा०); बाँटना (हि०); बाँटनु, बाड्नु (ने०); बंटिम (दरदी-पशा०) = मेरा भाग; बण्ड्नु (प० पहा०) = बाँटना; बण्ड्नु, बण्डना (प० पहा०) = बाँटना; बाण्टणो (कुमा०); बाँटिब (अस०); बाँटा (बँ०); बाण्ट (ओ०) = भाग, अंश; बण्टना (पं०); वण्डण (ल०); वण्डणु (सि०); बाँटवुँ (गु०); बाँटणे (मरा०); बेटि (काफि०) = बाँटना]।

बाँटल रस्सी—(सं०) ऐंठी हुई रस्सी (गं० उ०, द० मुं०)। दे०—ठर्रा।
[बाँटल+रस्सी, बाँटल < बाँटल (विशे० क्रि०) < √वण्ट्; रस्सी < रश्मि-]।

बाँटी—(सं०) किसान और जमींदार के बीच निश्चित परिमाण में अनाज का विभाजन (चंपा०, द० भाग०)। दे०—बटाई।
[बाँट+ई (प्र०) < बाँट < बाँटल < √वण्ट्]।

बाँड़—(सं०) नदी का सूखा हुआ तल (पट०, शाहा०)। दे०—छारन।
[बाँड़ < वण्ड- (?)]।

बाँड़—(सं०) वह फसल, जिसकी बालें पीली और दाना-रहित हो जाती हैं (गया)।
[बाँड़ < वण्ड (?)]।

बाँड़—(सं०) वह बैल, जिसकी पूँछ टूट गई हो। पर्या०—बाँड़ा (गं० उ०, द० प०), माड़ो (पू० मैं०, द० पू०), बंडा (चंपा०, गया), लंडा, बंडा (पट०), लाँड़ा (द० मुं०)।
[बाँड़ < वण्ड वा वण्ट-(?)]।

बाँड़ा—(सं०) (१) टूटी पूँछवाला बैल। (गं० उ०, द० प०)। दे०—बाँड़।
[< वण्ड-, वण्ट-]।

बाँड़ा—(सं०) (२) वह जानवर, जिसकी पूँछ बीच से ही कट गई हो (चंपा०-१)। (३) दक्षिण-पश्चिम की हवा। इस हवा के चलने से पानी बरसने की संभावना नहीं रहती है (पाच)।
[बाँड़ा < वण्ड-, वण्ट-]।

बाँड़ी—(सं०) छोटी लाठी (सा०-१)।
[बाँड़+ई (प्र०) < वण्ड-, वा < वण्ट-(?)]।

बाँध—(सं०) (१) जल के संग्रह के लिए बाँधा हुआ जलाशय। (२) खजाना या अहरे की मेंड़ या बाँध। दे०—अहरा।



(३) चरागाह के लिए छोड़ दी गई जमीन या खेत, जहाँ गायें चराई जाती हैं (गया)। दे०—परती। (४) अन्न रखने के लिए खड़ का बनाया और चारों ओर से घिरा हुआ घर (द० मुं०)। दे०—खौनरी।
[बाँध < बाँधल < √बन्ध्-। बन्ध-(संस्कृ०); बंध (पा०, प्रा०); बाँध, बाँधन (ने०); बनु (कश्म०) = ढेर, टीला; बाम (कुमा०); बाँध (अस०)=गाँठ, बान (अस०) = बाँध; बाँध (बँ०); बन्द (पं०); बन्ह (ल०) = तालाब; बन्धु (सि०) = बाँध; बाँध् (गु०, मरा०)]।

बाँध—(सं०) (५) बाँध, मेंड़। (६) चारों ओर ऊँची मेंड़ से घेरकर बनाया गया जलाशय, जिसके पानी से सिंचाई की जाती है। (७) दूसरी तरफ पानी ले जाने के लिए नदी की धारा के बीच बनाया गया बाँध (गाइड०)।

बाँध, बाँद—(सं०) (१) दो चड़ाबों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड़ (जहाँ-तहाँ)। दे०—गाँवाँ। (२) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए जलप्रवाह के बीचोबीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (सामा०)। पर्या०—खाँड़, जड़नी। घेरा (उ० प०), गरांड़ी (उ० प०, पट०, गया), फाड़ी (चंपा०, पट०), गरेंड़ी (द० मुं०), लाड़ो (द० भाग०)।
[बाँध < बन्ध-]।

बाँध बहेरी—(सं०) बाँध मरम्मत करवाने के लिए लिया जानेवाला सरकारी कर (सा०-१)।
[बाँध+बहेरी (यौ०); बाँध < बाँध < बाँधल, बहेरी < बहियार (?) < बहिर्वाट-(?)]।

बाँधल—(क्रि०) (१) जल आदि को रोकने के लिए मिट्टी आदि से बाँध बाँधना।
[बाँध+ल (प्र०) < बाँध < √बन्ध्। √बन्ध् (बध्नाति, बन्धति)—(संस्कृ०); बन्धति (पा०); बन्धइ (प्रा०); बाँधना (हि०); बाँध्नु (ने०); बाँधणो (कुमा०); बाँधिब (अस०); बाँधा (बँ०); बाँधिबा (ओ०); बान्धणा (पं०); बन्धणा (ल०); बन्धणु (सि०); ब्नु (कश्म०)=ढेर; बन्धनु (प० पहा०); फन्देल (रोमा०)]।



बाँधी—(सं०) किता (गाइड०)।

बांस-(सं०) तृण जाति का एक प्रसिद्ध वनस्पति, जिसमें तना आदि नहीं होते। इसमें थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पोर होती है और वहां से छोटी पतली शाखा-जैसी पत्रयुक्त करचियां निकलती हैं। इससे घर छाने आदि-जैसे बहुतेरे कार्य किये जाते हैं।

[बांस <वंश-। वंश-(संस्कृ०) ; वंस (पा०, प्रा०); बांस (हिं०) ; बांस् (ने०) ; बांस् (कुमा०) ; बाँह (असा०) ; बांस (बं०) ; बाउँस (ओ०) ; बाँक (पं०); वञ्झ (ल०), वञ्जु (सिं०); बांस (गु०); बांसा (मरा०) ; बास (सिंह०) ; बांस (कश्म०)]।

बांस-(सं०) (१) ढेंकुल में लगी बांस की लग्गी। पर्या०—छीप (चंपा०, उ० पू० मै०), ढेंकुल (प०), डंडा (द० पू०), लाठ, लाठा=छोटा और मजबूत बांस।



(२) भूमि की नाप के लिए प्रयुक्त छह हाथ लंबा बांस या लग्गा (सं० उ०)। यह बांस लंबाई में सर्वत्र एक-जैसा नहीं होता। कहीं यह चार हाथ का होता है, तो कहीं पाँच हाथ और कहीं छह, सात या दस हाथ का भी। (३) जमीन नापने का लग्गा (पट०-१)।

[बांस < वंश-]।

बांसक बीठ—(सं०) बांस का समूह, जो एक स्थान पर उगा रहता है (उ० पू० मै०)। दे०—बांस के कोठी।

[बांस+क (विभ०)+बीठ ; बांस < वंश ; बीठ< विट्ठ, वीण्ड—(मैथि०)। विटो (ने०)=घास, फसल या लकड़ी का पूला। विटो (कुमा०)। < वृन्त-(?)]।

बांस के कोठी—(सं०) बांस का समूह, जो एक साथ एक ही स्थान पर उगा रहता है (उ० प०)। पर्या०—बँसवारी (सं० उ०), बांसक बीठ (उ० पू० मै०), बसेड़ (पट०), बँसवार (द० प० शाहा०), बसाड़ (सं० द०), बीठी, बेरी (द० भाग०), औंघ (मै०)।

[बांस+के (विभ०)+कोठी (वी०)। बांस < वंश। कोठी < कोष्ठ-, कोष्ठिक-]।

बांसकोठी—(सं०) बांसों का वन (गाइड०)। दे०—बांसक बीठ, बांस के कोठी।

बांसगंडा—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो लंबा और मोटा होता है (पट०-१)। दे०—बांसगेंड़ा।



बांसगेंड़ा-(सं०) लंबी पोरोंवाली एक प्रकार की श्वेत-हरित मोटी ईख (सा०-१)।

[बांस+गेंड़ा, बांस < वंश; गेंड़ा < गण्डक-]।

बांसड़—(सं०) उभरी हुई रीढ़वाला बैल (घाघ)।

बांसफूल—(१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्तम धान (द० भाग०)। (२)(मुं०-१)। दे०—बांसबरेड़ी।

[बांस+फूल=एक प्रकार का सुगंधित मुलायम धान, जो संयुक्तप्रांत (उ०प्र०) में बहुतायत से पैदा होता है, एक प्रकार की मोटे डंठल की घास। एक प्रकार का गेहूं, जिसकी बाल कुछ काली होती है-(हिं० श० सा०)]।

बांस फूलधान-सं०) एक प्रकार का धान, जो उजला और टेढ़ा होता है (पट०-१)।

बांसबरेड़ी—(सं०) महीन और सुगंधित अगहनी धान का एक भेद (मुं०-१)। पर्या०—बांसफूल।

[बांस+बरेड़ी, बांस < वंश-; बरेड़ी <बरट-(?)]।

बांसबिरौत—(सं०) एक प्रकार का लंबा सफेद अगहनी धान, जिसका चावल नुकीला होता है (सा०-१)।

[बांस+बिरौत (वी०) ; बांस < वंश; बिरौत (?); बा < बीर < बिरवा (=बीज)-(?)]।

बांसि-(सं०) कोल्हू के टेंगुआ और कतरी का संयोजक बांस (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बांसि < बांस < वंश-]।

बांसी—(सं०) (१) धान की फसल को हानि पहुंचानेवाली एक काँटेदार घास (सामा०)। दे०—गोंसुना। (२) एक प्रकार की घास, जिसका डंठल मोटा होता है। यह फसल के खेत में होती है (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बांसी < बांस+ई (प्र०) < वंश-]।

बांह—(सं०) (१) एक बार की जोत या चास (गया, प०)। दे०—चास। (२) बाहु, भुजा। (३) कुरसी आदि-जैसे उपस्कर की बाँह।

एक बांह—पहली जुताई। **दो बांह**—दूसरी जुताई।

[बांह< बाह (?), <बाहु। बाह—खेत की जुताई की क्रिया—(हिं० श० सा०)]।

बाउग-(सं०) (१) बोने की प्रक्रिया, बोना (पु०)। दे०—बोअनी। (२) एक मोटा धान, जो आर्द्रा में बोया जाता है। इसका बावग होता है, कदम नहीं (पट०-१)।

बाओग—(सं०) बोने की प्रक्रिया, बोना (पू०)। दे०—बोअनी।

[बाओग < वापक <√वप्]।

बाओग, बावग-(सं०) वह धान, जो एक बार ही छींटकर बोया जाता है। दे०—बावग।

[बाओग < वाप + क <√वप् + घञ् (= अ) (सा० प्र०)]।

बाकनट—(सं०) एक प्रकार का बड़ा केला (चंपा०-१)।

बाखर—(सं०) निवास-घर, हवेली, बखारी (मुं०-१)।
[बाखर (?)। मिला०—वास+कर- या वास्तुकट-]।

बाग—(सं०) लगभग एक सौ भेड़-बकरियों का झुंड।
[बाग-(?)]।

बाग—(सं०) वह स्थान, जहाँ पेड़-पौधे आदि लगाये गये हों, उद्यान।
[बाग़ (अ०)]।

बागनर—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)।
[देशी, मिला०—बागना (बिहा०)=एक प्रकार का केला]।

बागना—(सं०) एक प्रकार का केला (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी। बागना (हिं० क्रि०) = चलना-फिरना, घूमना—(हिं० श० सा०)]।

बागर—(सं०) (१) बकरियों की एक जात, जिसके कान लंबे होते हैं। यह अधिक दूध देनेवाली होती है। इस जाति का बकरा। (वि०) बेवकूफ, बुद्धक (मुं०-१)। पर्या०—बगरा। (२) बैलगाड़ी के फर के ऊपर दिया जानेवाला आठ हाथ का बाँस का एक टुकड़ा (पट०-१)।
[बागर (देशी); मिला०—बाँगर (?) या < बर्कर (?)]।

बाछल—(क्रि०) (१) किसी पौधे के बीच से कुछ पौधों को निकालकर उसे अलग-अलग कर देना। (२) किसी चीज के ढेर से चुन-चुनकर अच्छी चीजों को निकाल लेना (चंपा०-१)। (३) चुनकर अलग करना, चुनना (मुं०-१)।
[बाछ+ल (प्र०) < बाछ < अवच्छेद < अव+√छिद् (=अलग+करना)]।

बाछा—(सं०) (१) गाय का डेढ़ वर्ष से तीन वर्ष तक का नर बच्चा। पर्या०—बछवा, बछरू। स्त्री०—बाछी। (२) गाय का बछड़ा (चंपा०-१)।
[बाछा < बच्छअ < वत्सक-। वत्स-, वत्सक- (संस्कृ०); वच्छो = वच्छक (पा०); वच्छ (प्रा०); बाछा (हिं०); बाछो, बाछा (ने०); बाछो (कुमा०); बाछा (बँ०); वच्छा, वच्छा (पं०); वच्छा (ल०), वछ (सिं०); वसु (सिंह०); वछु (कश्म०); बौस (प० पहा०); वस्स (दरदी)। 'र' या 'ड़' के आगम के साथ—बत्थर (शिना०); बछर, वछड़ (कश्म०); बसड़ो (प० पहा०); बाछुर (बँ०); बाछरा (ओ०); बाछुरि (ओ०); बाछड़ (गु०); बछड़ा, बछड़ (हिं०) बछड़ो (ने०); वासरू (मरा०)। र<रूप—<वत्सरूप < वत्स+रूप (प्र०)]।

बाछी—(सं०) (१) गाय का डेढ़ वर्ष से तीन वर्ष तक का मादा बच्चा। पर्या०—बछिया। (२) गाय की बछिया (चंपा०-१)।
[बाछ+ई (प्र०); <बाछा < वत्सक-]।

बाजार—(सं०) वह स्थान, जहाँ बहुत-सी चीजों की दुकानें हों और क्रय-विक्रय होता हो (सा०-१)।
[बाजार (फा०)-]।

बाझल—(सं०) फँसना, उलझना। किसी काम में लगा रहना (मुं०-१)।
[बाझ+ल (प्र०) < बाझ<बद्ध<√बन्ध् (?)]।

बाट—(सं०) तौलने के लिए एक निश्चित मान का पत्थर या लोहे का साधन-विशेष। दे०—बटखरा।
[बाट < वट्ट (देशी)= पत्थर का टुकड़ा। मिला०—वृत्त (संस्कृ०) = गोलवस्तु; वट्ट (प्रा०); वटक, वट्टक (संस्कृ०) = गुटिका, गोली। संभ०—<वृत्तक या < वर्त्तक-(?)]।

बाठ—(सं०) जमींदार द्वारा ली जानेवाली बेगारी (पट०-१)।

बाड़ा—(सं०) (१) खेत के चारों ओर लगा काँटों का घेरा (घाघ)। (२) घेरा। (३) साधु-संन्यासियों का तीर्थादि स्थानों में सन्निवेशित निवास।

बाड़ी—(सं०) (१) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि (द० भाग०)। दे०—गोएँड़। (२) खेती की प्रणाली, जिसमें निलहे अथवा जमींदार स्वयं खेती करते थे (भाग०)। दे०—जिरात। (३) घर के पास की वह भूमि, जिसमें तरकारी आदि उपजती है या मकई की खेती होती है।
[बाड़ी < बाट, < वाटिका]।

बाढ़—(सं०) बाढ़। वर्षा के कारण नदी आदि में होने वाली जलवृद्धि। दे०—दहाड़।
[बाढ़ <वृद्धि; < वर्ध<√वृध्। वृद्धि-(संस्कृ०) वड्ढि (पा०); वड्ढि (प्रा०); बाढ़ी, बाढ़ (हिं०); बाढ़ि (ने०); बड़ (कश्म०) = बढ़ना, बारी (अस०)= सूद। मिला०—बारनी पानी (अस०)=बाढ़ का पानी; बारी (बँ०) = वृद्धि; बाढ़ि (ओ०); बाढ्ढ (पं०); वाढ्ढी (पं०, ल०) = धूस, उत्कोच; वधी-घटी (सि०) = हानि-लाभ; वाढ़ी (मरा०) = अभिवृद्धि; वढि (सिंह०)=वृद्धि]।

बाढ़न—(सं०) घर साफ करने के लिए, विशेषतः घर की औरतों या मेहतरों द्वारा काम में लाई जानेवाली, झाड़ने की वस्तु, झाड़ू (उ० पू० मै०)। दे०—बढ़नी।
[बाढ़न < वर्धन, < वधनी <√वर्ध्]।

बाढ़नि—(सं०) सफाई के लिए स्त्रियों द्वारा काम में लाई जानेवाली झाड़ू (उ० पू० मै०)। दे०—बढ़नी।
[बाढ़नि < वर्धनी < √वर्ध्]।

बाढ़ल—(क्रि०) (१) अनाज झाड़कर इकट्ठा करना, झाड़ू देना (पट०, गया, द० पू०)। दे०—बोहारल। (२) बढ़ना।
[बाढ़ + ल (प्र०) < बाढ़ < √ वृध् (वर्धयति); वड्ढ (प्रा०)]।

बाढ़ि—(सं०) (१) बाढ़, वर्षा के कारण नदी आदि में होनेवाली जलवृद्धि (उ० प० मै०)। दे०—दरार। (२) बाढ़ (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बाढ़ि < वृद्धि < √वृध्+ति (=क्तिन् प्र०) < √ वृध् (=बढ़ना)। दे०—बाढ़]।

बाढ़ियाइन—(सं०) नदी, पैन आदि का अतिरिक्त जल या बाढ़ का पानी (गाइड०)।
[बाढ़ + इयाइन (प्र०) < बाढ़ < वृद्धि-]।

बात—(सं०) पशुओं का एक रोग, जिसमें हाँफना और कंपन अधिक होता है (उ० पू० मै०)। दे०—हाँफ।
[बात < वात-]।

बाता—(सं०) पशुओं के घुटना फूलने का एक रोग।
[बाता < वात-, वातक-]।

बाता—(सं०) बाँस का चीरा हुआ मोटा डंडा। पर्या०—बत्ता।
[बाता < बत्ता < वर्त्त-या वर्तिका]।

बाता—(सं०) बाँस की फाड़ी हुई पट्टी (चंपा०-१)।
[बाता < वर्त्तक-, वर्तिका (?)]।

बाति—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—बाती।

बाती—(सं०) (१) बाँस की चीरी हुई पतली पट्टी। पर्या०—बत्ती, कोंभन (उ० पू० मै०)। (२) दीपक की बत्ती, बाति। (३) लता या किसी पौधे की बतिया या छोटा कोमल फल।
[बाती < वर्त्ति-, < वर्त्तिका। वर्त्ति-; वर्त्तिका (संस्कृ०) = गोलवस्तु, बत्ती, बटेर। वट्टिका (पा०); वट्टि, वत्ति, वट्टिआ, वत्तिआ (प्रा०); बाती, बत्ती (हिं०); बाति (मै०); बातो (कुमा०); बाति (बं०); बत्ति (ओ०); बत्ती (पं०); वटी (सिं०); बाट (गु०); वात (मरा०); वत्तिया (सिंह०); बति (जिना०)]।

बादशाहपसंद—(सं०) कलमी आम की एक जाति (मुं०-१)।
[बादशाह+पसंद (फ़ा०)]।

बादशाहभोग—(सं०) एक प्रकार का उत्तम धान।
[बादशाह < बादशाह, पादशाह (फ़ा०) + भोग < √भुज् (संस्कृ०), मिला०—राजा भुज्यन्ते राजभोजनाः शालयः—(काशिका, सिद्धान्त०)]।

बाध—(सं०) (१) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि। दे०—गोएँड़। (२) रस्सी। (३) बधार, खेत (गाइड०)। दे०—बधार। (४) मूँज को कूटकर उसके रेशे से बनाई गई रस्सी (चाप)।
[बाध < वृद्धि-(?), बाध < वर्ध-]।

बाधा—(सं०) (१) तराजू के पलड़े में लगी हुई रस्सी (पट०)। दे०—तखी। (२) संकट, पीड़ा।
[बाधा < वर्ध-बाधा]।

बान—(सं०) (१) बीज के पौधों की वह राशि, जो एक जगह पर रोपने के लिए पर्याप्त है (द० प०, छोड़कर सर्व०)। (२) एक जगह पर रोपे गये धान के बीजों का परिमाण (द० पू० को छोड़कर सर्व०)। बनुसार=धान के बीजों की रोपनी।
उदा०—'हम्मर बनुसार भेल' = हमारी रोपनी खतम हो गई।
(३) बाण, तीर। (४) आदत, प्रवृत्ति।
[बान (?) मिला०—वान (संस्कृ०) = वनसमूह घना जंगल, सूखा फल]।

बानगी—(सं०) (१) बाजार के ठीकेदार द्वारा दुकानदारों से मुफ्त लिया जानेवाला फल या तरकारियाँ (चंपा०-१)। (२) किसी वस्तु की खरीद के पहले लिया जानेवाला उस वस्तु का नमूना।
[बानगी > बयाना+गी (प्र०)। मिला०—वणिज्; वाणिज्यक]।

बानर—(सं०) एक प्रसिद्ध स्तनपायी पशु, जिसकी कुछ बातें मनुष्य से मिलती हैं और जिसकी बुद्धि पशुओं की अपेक्षा कुछ विकसित होती है। मर्कट, कपि (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बानर < वानर-]।

बाना—(सं०) (१) आल नामक रंग का मूल। दे०—आल। (२) वेष-भूषा, परिधान।
[देशी]।

बाना—(सं०) (३) फैलना (चंपा०-१)।
[बाना < वान-(= सूत फैलाना, बुनना) < √वेञ् (तन्तुसन्ताने)]।

बाना—(सं०) (४) पेड़ पर आप-से-आप उपजनेवाली परभोजी लता। (५) वंश को बिगाड़नेवाला, कुलबोरन (मुं०-१)। पर्या०—बोना। (६) जुलाहे को कपड़ा बुनने के बदले मिलनेवाली मजदूरी। दे०—बानी। (७) लोहे का एक लंबा नुकीला हथियार, बानापट्टा। (८) वेष, परिधान।
[बाना < वण्ण < वर्ण्य (?)]।

बानी—(सं०) (१) जुलाहे को कपड़ा बुनने के बदले मिलनेवाली मजदूरी (उ० प० मै०)। पर्या०—बाना (अन्यत्र)।

[बानी < पण्य (?)। वा < वान < √वेञ् (=कपड़ा बुनना)+अन (=ल्युट्- प्र०)]।

(२) राख, भस्म (पट०, गया)। दे०—राख।

[बानी < वान < √वा (गतिगन्धनयोः) + क्त (= त = न)। यथा—निर्वाण]।

(३) वाणी, संत-कवियों के पद। (४) भोज० क्रि० 'बा' का वर्त्तमानकाल-रूप।

[बानी < वाणी]।

बान्ह—(सं०) बाँध (चंपा०-१)।

बान्ह, बाँध—(सं०) (१) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए जलप्रवाह के बीचोबीच इस पार से उस पार तक बांधा गया बाँध (सामा०)। (२) दो चढ़ावों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड़ (जहाँ-कहीं)। दे०-खाँवा।

[बान्ह < बाँध < बन्ध-]।

बाबड़ी-(सं०) लोहे के खरादने पर उससे निकला उसका बुरादा (री०, बिहु०, हरि०)। दे०-खुँट।

बाबूटोला-(सं०) गाँव का वह भाग, जहाँ ऊँची श्रेणी के किसान रहते हैं। दे०-बबुटोला।

[बाबू+टोला-]।

बामय—(सं०) एक प्रकार की चोईंटा-रहित मछली (सा०-१)।

[मिला०—बम-, बमक—एक प्रकार की चींटी। बा संभ० < भाम्री=एक प्रकार की मछली या चींटी—(मो० वि० डि०)]।



बामी—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली। यह साँप की तरह होती है और इसके शरीर में एक ही काँटा होता है (चंपा०-१)। (२) एक प्रकार की चोईंटा-रहित मछली (सा०-१)।

[बामी < भाम्री (= एक प्रकार की मछली या चींटी)]।

बामी—(सं०) (१) गैंची जाति की एक मछली। (२) ककड़ी (मुं०-१, द० भाग०)।

[बामी < भाम्री (= एक प्रकार की मछली या चींटी। अनेकविध वनस्पति]।

बाया, बया—(सं०) (१) अन्न तौलनेवाला पुरुष (प०)। दे०—हटवा। (२) एक प्रसिद्ध छोटी चिड़िया।

[बाया < वायः (अ०)]।

बारजा—(सं०) जमींदारी के खर्च का विवरण-पत्र (पट०-१)।

बारदेन—(सं०) जमीन के भरोसे रैयत द्वारा की जानेवाली लेन-देन। इस लेन-देन में शिकमी जमीन भी आती है (सा०-१)।

[बार + देन (?)। मिला०—बरदाना (उर्दू) < बारदानः (फा०) = सेना आदि की रसद। कोई पात्र या बरतन, जिसमें वस्तुएँ भरकर रखी जाती हैं]।

बारा—(सं०) गाय चरानेवाले या दुहनेवाले व्यक्ति को पारिश्रमिक के रूप में गाय के दूध में से दिया जानेवाला एक अंश (द० प० शाहा०)। यह पारिश्रमिक सात या आठ दिनों के बाद एक दिन के दुहे हुए दूध के रूप में दिया जाता है। पर्या०—परौधा (द० मुं०), परोधी (द० भाग०), अठवारा (सा०), पार (उ० मै०), भौज (प० मै०), पारा, दुहिया (द० मै०)।

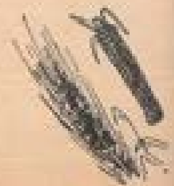
[बारा < वार (संस्कृ०)=दिन]।

बारी—(सं०) (१) वह जमीन, जिसमें फुलवारी में लगाये जानेवाले पौधे पैदा होते हैं। दे०—कोराड़। (२) घर के पास में जमीन का छोटा-सा टुकड़ा, (चंपा०, मै०)। दे०—कोला। (३) खेती के योग्य जमीन का घिरा हुआ या सीमित टुकड़ा, घर के पास का खेत, (द० भाग०)। दे०—खेत। (४) घर से लगी हुई खेती की जमीन (गाङ्ड०)। (५) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (मै०)। दे०-घेरान। (६) घर के पीछे या उसके नजदीक की जमीन, जिसमें घेरा डालकर, तरकारी आदि पैदा की जाती है। (७) मल्लाहों द्वारा मछली पकड़ने के लिए छोटी नदी की धारा को बाँधकर मछली पकड़ने के साधन (जाल आदि) का प्रयोग करना (चंपा०-१)। (८) निम्न श्रेणी की एक जाति। (९) विवाह, उपनयन या महभोज आदि उत्सवों पर काम करनेवाला श्रमिक या शिल्पिवर्ग। (१०) कान में पहनने की बाली (चंपा०)।

[बारी < वाट, वाटिका। दे०—बाड़ी]।

बारीबस्त—(सं०) गाँव में स्थायी रूप से रहनेवाला रैयत (द० पू०)। दे०—छपरबंद।

[बारी+बस्त; बारी < वार<द्वार (?); बस्त < बस्त (?), या बस्त < वसति-]।



बाल—(सं०) (१) फसल के अनाज का गुच्छा (उ० प० मै० छोड़कर)। पर्या०-बाली (उ० प० मै०), सीस (द० पू० मै०), सीस (द० भाग०), टेंगुना (द० मुं०)। (२) जनेर या

किसी अनाज का गुच्छा। पर्या०-सीस (पू०)। जब बाल निकलने लगती है, तब इस प्रकार मुहावरों का प्रयोग होता है—

'लहलहात बा'=बाल फूट रही है (शाहा०), 'रेंड़ा भेल है' (गया), 'लहलहा रहल है' (पट०), 'अड़ा गेल' (द० मुं), 'हलहलाय छै' (द० भाग०)। (३) मकई की पकी हुई बाल (भुट्टा)। दे०—भुट्टा। (४) सोनार की हथौड़ी के ऊपर का भाग (पट०-१)।

[बाल<वल्ल (संस्कृ०); वल्ल, वाला (प्रा०) =एक प्रकार का अन्न, गेहूँ का एक भेद। बाल, बाली (हिं०); बालि (नें०)=खड़ी फसल; बालो (नें०)=बाली, बाल; बाल (कुमा०) = अन्न की बाली; बालरो (कुमा०) = फसल; बाळि (सिं०) = अन्न की बालियों की राशि; बाल (गु०)=एक प्रकार की दाल। संस्कृत-साहित्य में प्रायः सर्वत्र 'धान्यशीर्ष' या धान्यमञ्जरी' का प्रयोग होता है। धान्यशीर्ष का ही शेष 'सीसा' है, जो पू० बिहार में बाल के लिए प्रसिद्ध है]।

बालकट—(सं०) वह भूमि, जिसका भूमिकर फसल देखकर नगद निश्चित किया जाता है। दे०—हालहासिली।

[बाल + कट; बाल < वल्ल; कट < कारत <√कृत् या कट (प्र०), यथा—विकट, संकट में]।

बालल—(क्रि०) शकरकंद आदि की लत्ती का टुकड़ा करना। इस प्रकार टुकड़ा करके ही वह लत्ती बीज के रूप में रोपी जाती है (चंपा०-१)। गँड़ासी से ऊख का टुकड़ा-टुकड़ा करना, गँड़ी करना (चंपा०-३)।

[बाल+ल (प्र०)<बाल <√वल्ल् (वल्लते)(?)]।

बालम खीरा—(सं०) एक विशेष प्रकार का खीरा, जिसके काटने पर भीतर प्रकृत्या चार फाँक होते हैं। यह मोटा और लंबा होता है (शाहा०)। दे०—खीरा।

[बालम+खीरा; बालम < वल्लभ-(?); खीरा < क्षीरक (?)]।

बाला—(सं०) (१) बालू। (२) बालू-मिश्रित मिट्टी। पर्या०—बलवा, बलथर (उ० प०, पट०, गया), बलवाहा (द० भाग०), बलसुन्द (चंपा०)।

[बाला < बालू < वालुका (= वालुकामय)। यहाँ मत्वर्थक प्रत्यय का लोप होता है। यथा—सैकतिक, सिकतिल विशेषण शब्द का प्रत्यय-लोप के पश्चात् 'सिकता' रूप रह जाता है। यह लाक्षणिक प्रयोग भी हो सकता है]।

(३) दलहन के पौधों में लगनेवाला एक कीड़ा, जिसके लगने से पत्तियाँ टेढ़ी होकर सिकुड़ जाती हैं (द० प० शाहा०)। दे०—बालू। (४) हाथ का एक आभूषण-विशेष, वलय।

[देशी, वा < वालुका या < वाल-, वलय-]।

बाली—(सं०) (१) फसल के अन्न का गुच्छा (उ० प० मै०)। दे०—बाल। (२) पौधों में दाना फूट जाने की संज्ञा (सा०-१)। (३) ईख के ऊपर उगनेवाला भूरे रंग का सिरा।



[बाल + ई (प्र०) < बाल <वल्ल (?), < वाल-]।

(४) कान में पहनने का गोल आभूषण।

[बाली < वलय < कर्णवलय-]।

बालू—(सं०) दलहन के डंठलों को खानेवाला एक कीड़ा, जिसके कारण पत्तियाँ टेढ़ी होकर सिकुड़ जाती हैं (पट०, गया, द० पू०)। पर्या०—बलुआ (पट०, गया, द० पू०), बलुई (शाहा०), बाला (द० प० शाहा०)। (२) बालू-मिश्रित मिट्टी (दर०-१ पूर्णि०-१)।

बालूमेज—(सं०) लकड़ी या ईंट का बना दबाव डालनेवाला एक प्रकार का टेबुल, जिसमें उबालने के पहले नील रखी जाती थी। दे०—मेज।

[बालू < वालुका (?)]।

[बालू+मेज]।

बावकरल—(क्रि०) बावग करना, छींटकर बीज बोना। दे०—बावगकरल।

बावख—(सं०) आँधी (चंपा०-१)।

[देशी (?) या संभ०—< बा+वख; बा < वायु, वख (?)]।

बावग—(सं०) (१) बोने का समय। दे०—बोअनी। (२) छींटकर बोने की प्रक्रिया। पर्या०—छिट्टा, छिटुआ (सं० उ०), छींटा (सं० द०)। (३) ऊख के बीज से निकला हुआ अंकुर। पर्या०—रोप (मै०)। (४) बोने की प्रक्रिया, बोना (पू०)। दे०—बोअनी।



[बावग < वापक < वाप + क (प्र०) < वाप <√वप्]।

बावग करल—(क्रि०) बोना, बुनाई करना। दे०—बोअल।

[बावग+करल (दे० क्रि०)]।



बावग, बाओग—(सं०) वह धान, जो एक बार ही छींटकर बोया जाता है (गया)। पर्या०—बोनेड़ा, बोगड़ा (पट०)। बौग, बाओग (दर०-१, पूर्णि०-१)।

बावली—(सं०) ईंट, पत्थर आदि से घेरकर बनाया गया छोटा तालाब। कभी-कभी इसमें नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ होती हैं, बापी (उ० प० गाइड०)।
[बाव+ली (प्र०) < बाव < बापी]।

बासन—(सं०) बसन, वस्त्र, बरतन, भाँड़ा आदि सामान (मुँ०-१)।
[बासन < बसन ; वा < अव + असन < अव (उप०) + √अ (बचाना)। मिला०—वपाअसनी = (आ० गृ०)]।

बास बरइली—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[बास+बरइली ; संभ०—< बांसबरेली (उ० प्र० के स्थान-विशेष के नाम पर)]।

बासमती—(सं०) (१) रोपा जानेवाला महीन दानों का एक उत्तम सुगंधि धान। इस धान का चावल पकाने से सुगंध फैलती है (द० प० शाहा०)। (२) दे०—मकरी गालभोग (सा०-१)। (३) रोपा जानेवाला एक प्रकार का महीन सुगंधि धान (गया)। (४) एक प्रकार का सुगंधि अन्डा धान (द० मुँ०, दर०-१, पूर्णि०-१)। (५) एक प्रकार का महीन और सुगंधि धान (चंपा०-१)। (६) एक प्रकार का महीन सुगंधि धान या चावल (मुँ०-१)।
[बास+मती < बास+मती (?)]।

बासा—(सं०) अस्थायी निवास, स्थान, डेरा।
[बासा < बासक—बास < √वस्]।

बासापकिन—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)।
[देशी]।

बाह—(सं०) (१) एकत्र किये हुए जल के निकलने का रास्ता। (२) किसी मवेशी का गर्भ धारण करने के लिए मैथुन करना (चंपा०-१)।
[बाह < बाह <√वह् (?)]।

बाहल—(क्रि०) (१) गर्भ धारण करना या गर्भ रहना (चंपा०-१)। (२) पशुओं का गर्भ-धारण के लिए संगम करना। पर्या०—ओहाएल (उ० पू० मैं०)।
[बाह+ल (प्र०) < बाह < बाह्<√वह्(?)]।

बाहा—(सं०) (१) नदी की छोटी शाखा। पर्या०—बहना (सं० उ०)। (२) एक प्रकार का प्राकृतिक छिछला जलस्रोत, जिसके द्वारा अतिरिक्त जल अन्यत्र एकत्र होता है (गाइड०)। (३) खेत तक जानेवाला जल-प्रवाह का मार्ग या नाली (द० प० शाहा०)। दे०—पैन। (३) आल के पौधे की जड़ से निकलनेवाली लती (पट०-१)।
[बाहा < बाह < √ वह्]।

बिआ—(सं०) अनाज निकालने के बाद पुआल की आँटी (द० पू०)। दे०—पूला।
[देशी, (?) वा बिआ < पिण्डक-(?)]।



बिड़िया—(सं०) तीन बैलों से चलनेवाली गाड़ी में अगला बैल (प०)। दे०—बीड़।
[बिड़िया (देशी ?) वा बिड़िया < पिण्ड-(?)]।

बिंडी—(सं०) कुएं की दीवार को बचाने के लिए कभी-कभी प्रयुक्त बाँस की फट्ठियों से या पेड़ की टहनियों से बनाया गया गोल ढाँचा (कहीं-कहीं)। दे०—कोठी।
[देशी, (?) वा < पिण्डित < पिण्ड-]।

बिंडी—(सं०) भोज-भंडारे में आसन के रूप में प्रयुक्त पुआल की बनी छोटी-छोटी पूली।
[बिंडी—(देशी ?) वा < पिण्ड-(?)]।

बिंडोआ—(सं०) गोल चक्करदार हवा या आँधी। अधिक गरमी पड़ने पर या कभी-कभी बिना गरमी के भी, जब वायु का चलना बन्द रहता है, एक प्रकार की हवा उठती है, जो एक निश्चित दिशा की ओर, आसपास के पात-पात और धूल को लेकर गोल परिधि में जोर से बहने लगती है। ग्रामीण समाज इसमें भूतों के उत्पात का विश्वास करता है। कहीं-कहीं यह भी भ्रान्त धारणा है कि इसमें सेंधा नमक छिड़क देने से भूत प्रकट हो जाता है।
[बिंडो+आ ; वा बिंड+ओआ ; बिंड < बिंड <, बींड़ा < कुण्डल-देशी वस्तु ; < वृत्त = गोल वस्तु ; ओआ < वायु-(?)]।

बिधा—(सं०) पशुओं का एक रोग, जिसमें वायु से पेट फूल जाता है। दे०—फलवाल।
[बिधा < बीधल < √व्यध् (?)]।

बिअड़ा—(सं०) धान का तैयार बीज (चंपा०-१)।
[बिअ+ड़ा (प्र०) बियड़ा<बीज+ड़ा (देशी प्र०)]।

बिअड़ाड़—(सं०) वह खेत, जिसमें बीज उगाया जाता है (चंपा०-१)।
[बिअड़ा + ड़ (प्र०) < बिअड़ा < बियड़ा < बीज+ड़ा (देशी प्र०)]।

बिअहन—(सं०) (१) बीज खरीदने के लिए सरकार या जमींदार की ओर से दिया जानेवाला अग्रिम मूल्य (पू० मै०)। पर्या०—बीहन (पट०, गया), बीयावैया (शाहा०), बीयाबाल (शाहा०)। (२) बीज, बीया।

[बिअ + हन < बीज + हन < बीज + धान्य (शा० प्र०)]।

बिआई—(सं०) अनाज की बिक्री पर लगा शुल्क (गाइड०)।

बिआवल—(क्रि०) बच्चा जनना। (चंपा०-१)।

[बिआ+आवल, वल (प्र०) < बिआ < बीज (१) या < बि+जायते < बि+√जन् (उत्पन्न होना)]।

बिकरी के भाव—(उ०) वस्तु जिस दर पर खरीदी गई हो, उसके बेचने का वही भाव। पर्या०—भाव के भाव (द०), असल के असल (द० पू०)।

[बिकरी के (बिम०)+भाव (पी०)]।

बिगड़ल—(क्रि०) (१) गाड़ी या हल में चलने के समय बैलों का आनाकानी करना। (२) बिगड़ना, नष्ट होना। दे०—बिगदल। (वि०) बिगड़ा हुआ।

[बिगड़+ल (प्र०) < बिगड़ < विकृत < वि + √कृ]।

बिगदल—(क्रि०) (१) गाड़ी या हल में चलने के समय बैलों का आनाकानी करना। (२) नष्ट होना, (शा०-१)। पर्या०—बिगड़ल।

[बिगद+ल (प्र०) < बिगद < विकृत (?)]।

बिगरल हासिल—(सं०) बिना उपाय के नष्ट हुई फसल (ग० उ०)।

[बिगरल+हासिल (पी०)]।

बिगहटी—(सं०) फसल काटने आदि की प्रति बीघा निश्चित मजदूरी।

टि०—बहुत पहले, ऊख की पहली फसल (मोरहन) की कटनी में चार आना प्रति बीघा और दूसरी फसल (खूंटी) की कटनी में दो आना प्रति बीघा मजदूरी निश्चित थी।

[बिगह + टी (प्र०) < बिगहा या बीघा < विग्रह (?)]।

बिगहट्ठी—(सं०) रकबा (चंपा०-१)।

[बिगह+ट्ठी (प्र०) < बिगह < विग्रह < वि + √ग्रह्]।

बिगहा—(सं०) (१) खेत आदि की बीस कट्ठे की एक नाप। (२) इस नाप का खेत या भूमि। पर्या०—कूरो (पू० मै०), बीघा।

[बिगहा < विग्रह < वि + √ग्रह्। विग्रह- (संस्कृ०)=विभाग ; बिग्गह (प्रा०) ; बीघा, बिगहा (हि०) ; बिघा (ने०) ; बिघा (असा०, बं०, ओ०) ; बिगाह, बिग्गहा (पं०) ; विग्घा (ल०) ; बिघु (पु०) ; बिघा (मरा०) ; बिगा (कश्म०)]।

बिघा—(सं०) (१) बीस कट्ठे की एक नाप। (२) बीस कट्ठे नाप की जमीन (गाइड०)।

बिचकल—(क्रि०) चौंकना, चौंककर बैलों का जुये आदि से अलग हो जाना (शा०-१)। दे०—बिगदल।

[बिचक + ल (प्र०) < बिचक < वि+√चक् (वि+चकति (?)]।

बिचड़ा—(सं०) (१) रोपने के लिए खेत से उखाड़ा जानेवाला धान्य-बीज का पौधा (मुं०-१)। (२) बिचड़े का खेत। दे०—बिचड़ी।

[बिच+ड़ा (प्र०) < बिच < बीज-]।

बिचड़ि—(सं०) धान आदि का बिचड़ा या बीया (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बिच+ड़ि (प्र०) < बिच < बीज-]।

बिचड़ी—(सं०) (१) धान आदि के बीज के पौधे, जिन्हें रोपने के लिए उखाड़ा जाता है, मोरी, बीया (मुं०-१)। पर्या०—बिचड़ा, बीया। (२) धान्यबीज का खेत।

[बिच+ड़ी (प्र०) < बिच < बीज-]।

बिछरा—(सं०) धान के बीजों की क्यारी (द० भाग०)। दे०—बिड़ार।

[बिछ+रा (प्र०) < बिच < बीज-]।

बिजिया कयरा—(सं०) एक प्रकार का मोटा केला, जिसमें बीज बोया जाता है (पट०-१)।

बिच्चा—(सं०) (१) बीज (द० भाग०)। दे०—बीया। (२) बीज, बीया (मुं०-१)।

[बिच्चा ('ज' के स्थान में पुनरुक्त 'च' के साथ) < बीज]।

बिच्ची—(सं०) (१) तंबाकू का बीजकोश (मै०)। दे०—पुनी। (२) बीज (पट०-१)।

[बिच्ची < बीज-(?)]।

बिच्छी—(सं०) (१) केले की जड़ से निकलनेवाला केले का छोटा पौधा। (२) एक प्रकार का खेल (चंपा०-१)। (३) बिच्छू।

बिछल—(सं०) चुनना (चंपा०-१)।

[बिछ+ल (प्र०)<बिछ<वि+चि (विचिनोति) = चुनता है]।

बिछुवतिया—(सं०) (१) एक पराश्रित घास, जो पौधे को हानि पहुँचाती है। (२) घरों की दीवारों पर रहनेवाला सरीसृप जाति का जीव, छिपकिली।

[बिछुवतिया (देशी), मिला०—बिच्छूबूटी]।

बिछौतिया—(सं०) (१) एक पराश्रित घास, जो पोस्ते को हानि पहुँचाती है। दे०—उरकुस्सी। (२) घरों की दीवारों पर रेंगनेवाली सरसृप जाति का एक जीव, छिपकिली।

बिजमार—(सं०) (१) बीज का मर जाना, या नहीं उगना (गया, प०)। पर्या०—बीयामार (द० मुं०), निर्बिज्ज, निर्बीज, अबिज्ज (गं० उ०), बँझौरा (द० प० शाहा०), बाँझी (शाहा० के शे० भा०), बँझौरी (पट०)। (क्रि०) देहाएल (द० भाग०); कौरजाएल (उ० पू० मैं०), मरवड़ जाएल (पू० मैं०)—बीज का मर जाना या नहीं उगना। (२) न उगनेवाला बीज या अन्न। दे०—अब्बा।

[बीज+मार; बिज < बीज; मार < मारन <√मृ]।

बिजली—(सं०) (१) मेघ में चमकनेवाली या उससे गिरनेवाली बिजली, ठनका। दे०—ठनका। (२) वैज्ञानिक पद्धति से उत्पन्न की गई बिजली।

[बिजली < बिज+ली (प्र०) < विद्युत्]।

बिजौरा—(सं०) एक प्रकार का मझोला नींबू (पट०-१)।

बिज्जू—(सं०) (पट०-१)। दे०—बीजू।

बिज्जू आलू—(सं०) वह आलू, जिसका बीज बिना काटे रोपा जाता है (पट०-१)।

बिज्जू लेंबो—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जो बीज से उगता है (पट०-१)।

बिज्झा—(सं०) लोहे आदि में लगनेवाली जंग।

बिज्झी—(सं०) दे०—बिज्झा।

बिड़ार-(सं०) (१)वह जमीन, जो एक बरसात से दूसरी बरसात तक केवल जोती ही जाती है और दूसरी बरसात के समय उसमें धान का बीज गिराया जाता है (द० पू० बिहा०)। दे०—चौमास।

[बिड़ार (देशी ?); मिला०—बिचड़ा। वा < बिचड़ा वा < बिड़+आर < बिड़ < वीर्य (?); आर (प्र० ?) वा केदार]।

(२) वह जमीन, जिसमें बीज बोने के लिए चास की जाती है (प० द०)। पर्या०—पट्ट (गं० द०, चंपा०), चौमास (गं० उ०)।

[बिड़+आर (वि०) < बिड़ < (?) < (?) < बीड़ वा बिड़ार < बिड़ + आर (?) < बीज वा वीर्य (?)। आर (प्र०-?) वा < केदार]।

बिड़ार—(सं०) (१) धान के बीजों की क्यारी। पर्या०—बिचार, बेंगा (प०)। बिचरा (द० भाग०), बिहंतर (द० भाग०)। (२) बिचार, बेंगा (द० प० शाहा०)।



[बिड़+आर, बिड़ < वीर्य या बीज (?); आर (प्र०) वा <केदार। बिआर, बियार (हिं०); ब्याड़, बियाड़ (ने०), बिदार, बिआर (पं०); बियाड़ (गु०)=बीजों या बीज के पौधों का ढेर]।

बितना—(सं०) बित्ते-भर का या बहुत नाटा आदमी या कोई वस्तु (मुं०-१)।

[बित+ना (प्र०) < बित्ता < वितस्ति-]।

बितरल—(क्रि०) बीज बोने पर फसल का ठीक से न उगना या उगकर भी नष्ट हो जाना (चंपा०-१)।

[बितर+ल (प्र०) < बितर < वि+√तृ (?) वा < वितरल < वि+√स्तृ (=फैलना)। लोक में बिखर जाने के अर्थ में प्रयुक्त। बितरल—बिखर जाना, नष्ट हो जाना]।

बित्ता—(सं०) हाथ की उँगलियों को पूरी तरह फैलाकर अंगूठे के सिरे से कनिष्ठिका के सिरे तक की लंबाई। पर्या०—बिलस्ता, बिलहस्त (उ० पू०), बिलस्त (द० पू०)।

[बित्ता< वितस्ति-। वितस्ति- (संस्कृ०); विहत्थि (प्रा०); ब्याँत (कुमा०); बीता, बित्ता (हिं०); बित्थ, विल्थ (पं०) = दूरी; विल्थ (ल०); विथि (सि०); वेंत (गु०); वीत (मरा०); वियत (सिंह०)। 'ल्वाॅक' के अनुसार< विश्वस्ति (म० मार०); विश्वोस्त (पश्तो०); वियस्त (अलबेरूनी के वर्णन में-ल्वाॅक)]।

बिसी—(सं०) (१) हाट, बाजार आदि में माल रखने और बेचने की चुंगी। पारी या बिक्री-कर। (२) लड़कों का एक खेल (मुं०-१)।

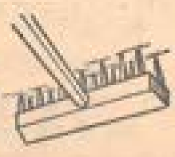
[बिसी (?) वा विसि< √विद् (विद्लृ लाभे)-(?)]।

बिदहनी—(सं०) (१) एक फुट ऊँचे ज्वार, बाजरे, टँगुनी आदि से युक्त खेत की जोत (चंपा०, प०, मैं०, पट० द० पू०)। दे०—बिदाह। (२) धान की खेती में, धान बोने के पश्चात् घास-पात आदि की सफाई और बीज को नीचे दबाने के लिए पुनः की जानेवाली हलकी-सी जुताई (चंपा०, द० पू०)। दे०—उभाड़।

[बिदह+नी (प्र०) बिदह (?); वा < बि+देह < वि + √ दिह्; वा < वि+दंह < वि + √दंश् (?)]।

बिदहल—(क्रि०) (१) धान बोने के पश्चात् घासपात आदि की सफाई और बीज को नीचे दबाने के लिए दुबारा हल चलाना। (२) एक फुट ऊँचे ज्वार, बाजरे, टँगुनी आदि के पौधों से युक्त खेत की निकौनी के लिए जोतना।

[बिदह+ल (प्र०) < बिदह < वि + √दह् वा < वि+ √दिह् वा < वि+ √दंश्]।



बिदहा—(सं०) वह हल, जिसमें कीलें लगी रहती हैं और जिससे निकौनी की जाती है (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—कदहो हल।

[बिदहा < बिदहल]।

बिदाँही—(सं०) मकई आदि की कोड़नी।

बिदाँही देओल—(क्रि०) मकई आदि पौधों की जड़ के आसपास की मिट्टी को हलकी करने के लिए हलकी कोड़नी देना (मुँ०-१)।

[बिदाँह+ई (प्र०) < बिदाँह < बिदहल]।

बिदाह—(सं०) (१) एक फुट ऊँचे ज्वार, बाजरे, टैंगुनी आदि फसलोंवाले खेत की जोत। पर्या०—बिदहनी (चंपा०, पट०, प०, द० पू०), कोड़न (गया, चंपा०), कोड़नी। (२) धान की खेती में, धान के बोने के बाद घास-पात आदि की सफाई और बीज को नीचे दबाने के लिए पुनः की जानेवाली हलकी-सी जुताई (प०, पट०, गया)। दे०—उनाह।

[बिदाह < बिदहल]।

बिदाहल—(क्रि०) धान आदि की फसल पर हलके ढंग से हल चलाकर फिर हेंगा देना (चंपा०-१)।

[बिदाह+अ० (प्र०) < बिदाह < बिदहल]।

बिननिहार—(सं०) खेतों में गिरे अनाज की बाली को चुननेवाला। पर्या०—बिनियाँ (प०), लोढ़निहार (सारा०), लोढ़ताहर (पट०, गया, द० मुँ०), लोढ़रा (द० भाग०)।



[बिननि + हार < बिननि < बीनल ; बिनल < √बिन् (बिनक्ति, बिङ्क्ते)-(?) ; हार (प्र०) वा हार < √हृ]।

बिनवाहा—(सं०) धान के बीजों के पौधों (बीहन) को उखाड़नेवाला मजदूर (द० भाग०)। पर्या०—बिहनवाहा।

[बिनवाह+आ (प्र०) < बिनवाह < बिहनवाह < बिहन+वाह (प्र०) < बिहन < बीज+धान्य-]।

बिनवाही—(सं०) बीहन या बिचड़ी उखाड़ने का काम या मजदूरी (मुँ०-१)।

[बिनवाह + ई (प्र०) < बिनवाह < बिहनवाह < बीज+धान्य-]।

बिनल—(क्रि०) (१) बुनना। सींकों, रस्सियों या सूत से किसी वस्तु को बुनना। (२) मिश्रित वस्तुओं में से एक दूसरे पदार्थ को अलग करना, चुनना।

[बिन + ल (प्र०) ; बिन < √बिन् (बिनक्ति, बिङ्क्ते) वा < वि + √चि (विचिनोति)। बेंचल (कश्म०) ; बीनना (हिं०) ; बिनर्दृ० (गु०) ; बिन्नु (ने०)]।

बिनहाई—(सं०) बीज (द० भाग०)। दे०—बीया।

[बिनहा + ई (प्र० ?) < बिनहा < बीहन < बीज+धान्य-]।

बिनावट—(सं०) (१) मेआन की पेंदी का बुना हुआ जाल। (२) किसी वस्तु की बिनावट, बिनने की क्रिया।

[बिना + वट < बिना < बिनल (बिहा०) ; बिनना, बुनना (हिं०)]।

बिनियाँ—(सं०) (१) खेतों में गिरे अनाज की बाली को चुननेवाला (प०)। दे०—बिननिहार।

[बिनि+याँ (प्र०) < बिनि < बिनल]।

बिनुआ गोयठा—(सं०) जंगल से चुनकर लाया हुआ सूखा गोयठा (प०)। दे०—कँडडा।

[बिनुआ+गोयठा (बौ०) ; बिनुआ < बिन+उआ (प्र०) ; बिन < बिनल ; गोयठा < गोविष्ठा (?)]।

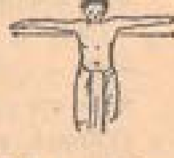
बिपन—(सं०) वह फसल, जो बहुत कमजोर हो (चंपा०-१)।

[बिपन < विपन्न- (?) < वि+पद्+न (=क्त)]।

बियाड़—(सं०) (१) बिचड़ा, धान आदि के बीजों का खेत। (२) बीज। दे०—बिढ़ार।

[बिय+आड़ ; बिय < बीज ; आड़ < आर < केदार-(?)]।

बियान—(सं०) (१) दोनों हाथों के फैला देने पर एक हाथ के छोर से दूसरे हाथ के छोर तक की नाप, लगभग दो गज की नाप (मुँ०-१)। (२) बियाने (प्रजनन) की क्रिया।



[बियान (१) < व्याम < वि + आम। बियान (२) < बियावल < वि + √जन् (उत्पन्न होना, जन्म देना—विजायते)]।

बियार—(सं०) (१) बीज के पौधों की क्यारी। दे०—बिढ़ार। (२) धान के बीजों की क्यारी। दे०—बिढ़ार।

[बिया+आर ; बिया < बीज ; < आर < केदार-(?)। दे०—बिढ़ार]।

बिरतिहा—(सं०) करमुक्त भूमि का अधिकारी किसान। दे०—बिरित।

[बिरति+हा (प्र०) < बिरति < वृत्ति < √वृत्+ति (= वितन्) वा वृत्ति < वृ + ति (वरण)]।

ब्राह्मण या गुरु को दान करने के उपलक्ष्य में जीविका के लिए भूमि आदि दी जाती थी, अतः वृत्ति या वृत्ति दोनों से इसका संबंध हो सकता है]।

बिरनियाएल—(सं०) वह फसल, जो किसी रोग के कारण बढ़ न सकी (द० भाग०)। दे०—बैठल-हासिल।

[बिरनिया+आएल या एल (प्र०)<बिरनिया (?)]।

बिरवा—(सं०) बीज। बीज का पौधा।

[बिरवा < बिर+वा < वीर्य-(?) ; वा (प्र०)]।

बिरवाई—(सं०) रोपने लायक बीज का पौधा (गया)।

[बिरवा + ई (प्र०) < बिरवा < वीर्य-(?) ; (१) बिरवाही (हि० स्त्री०) = छोटे पौधों का कुंज या बाग। (२) छोटे पौधों का समूह। (३) वह स्थान, जहाँ छोटे-छोटे पौधे उगाये गये हों—(हि० श० सा०)]।

बिरहरा—(सं०) सींक का बना पान रखने का वह टोकरा, जिसमें पान रखने से सड़ता नहीं है (पू० मै०)। दे०—बेलहरा।

[बिरहरा < (?) या देशी]।

बिराड़—(सं०) बिड़ार, धान का बीज-क्षेत्र (पट०-१)।

बिराह—(सं०) धान की खेती में, धान बोने के पश्चात् घास-पात आदि की सफाई और बीज को नीचे दबाने के लिए पुनः की जानेवाली हलकी-सी जुताई (गया)। दे०—उनाह।

[बिराह < (?)]।

बिरित—(सं०) (१) करमुक्त भूमि। बिरितदार, बिरितिहा=करमुक्त भूमि का अधिकारी। (२) वृत्ति, जीविका, वरण। (३) वृत्ति के लिए ब्राह्मण आदि को दी जानेवाली करमुक्त भूमि।

[बिरित < वृत्ति < √वृत्+ति (= क्तिन्) ; या <वृति < √वृ+ति (=क्तिन्)। बिर्त, बिर्ता (हि०)= धार्मिक दान ; कुश बिर्ता (ने०)=ब्राह्मण या गुरु को दी जानेवाल करमुक्त भूमि। सुनाबिर्ता (ने०)=गाँव के मुखिया को दी जानेवाली स्वल्पकरयुक्त भूमि। बिर्ता (कुमा०)]।

बिरितदार, बिरितिहा—(सं०) करमुक्त भूमि का अधिकारी किसान।

[बिरित+दार (फा० प्र०) < बिरित < वृत्ति-]।

बिरित फकिराना—(सं०) किसी साधु या संन्यासी को दी गई लगान-रहित भूमि (सा०-१)।

[बिरित + फकिराना ; बिरित < वृत्ति-, वृति- ; फकिराना < फ़क़ीर (फा०)]।

बिरितिहा, बिरितदार—(सं०) करमुक्त भूमि का अधिकारी किसान। दे०—बिरित।

[बिरिति+हा (प्र०) < बिरित< वृत्ति-, वृति-]।

बिरौ—(सं०) गोल आँधी (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—बिंडोआ।

[बिरौ < (?)। दे०—बिंडोआ]।

बिर्त—(सं०) धार्मिक कार्यों के खर्च के लिए सदा के लिए दी गई करमुक्त भूमि। यह भूमि अनिवार्यतः उत्तराधिकार में चलती है। यह ऐसे व्यक्ति को भी उत्तराधिकार में मिलती है, जो वस्तुतः धर्म-संबंधी कार्यों में नहीं भी खर्च करता है (गाइड०)। दे०—बिरित।

[दे०—बिरित]।

बिर्तदार—(सं०) करमुक्त भूमि का अधिकारी रैयत (गाइड०)। दे०—बिरितदार।

बिर्त बंदोबस्ती—(सं०) धर्मार्थ दी गई करमुक्त भूमि की किसी व्यक्ति के अधीन की गई व्यवस्था (चंपा०, गाइड०)।

बिर्तबिसुनप्रित—(सं०) भगवान् विष्णु की पूजा के निमित्त दी जानेवाली करमुक्त भूमि (गाइड०)।

बिर्त बरहमोत्तर—(सं०) ब्राह्मणों को दी जानेवाली करमुक्त भूमि (गाइड०)।

बिर्त भटोत्तर—(सं०) भाँटों को दी जानेवाली करमुक्त भूमि (गाइड०)।

बिर्त सिबोत्तर—(सं०) भगवान् शिव की पूजा के निमित्त दी जानेवाली करमुक्त भूमि (गाइड०)।

बिलगोहिया—(सं०) गोह की जाति का एक प्रकार का चतुष्पाद सरीसृप जंतु (चंपा०-१)। पर्या०—गोहरी।



[बिल+गोहिया < बिल+गोधिका (?)]।

बिलरैंग—(सं०) बिलार की तरह आँखोंवाला बैल (पट०-१)।

[बिलर + बैल < बिडालाक्ष-]।

बिलायती—(सं०) एक प्रकार का उजला शकरकंद। दे०—देसी। (वि०) विदेशी।

[बिलायत+ई (प्र०) < विलायत (फा०)]।

बिलायती पटुआ—(सं०) एक प्रकार का पटुआ, कुदरुम।

[बिलायती+पटुआ (यौ०)]।

बिलायती बैंगन—(सं०) एक प्रसिद्ध जायकेदार लाल फल, जिसकी तरकारी, चटनी आदि बनती है, टमाटर।



[बिलायती+बैंगन (यौ०)]।

बिलावज मोवलिग रुपिया—(वाक्यां०) बहुत-से रुपयों के विचार के निमित्त।

-१, पूर्णि०-१)। दे०—
ोआ]।
र्य के लिए सदा के
यह भूमि अनिवार्यतः
। यह ऐसे व्यक्ति को
है, जो वस्तुतः धर्म-
र्य करता है (गाइड०)।

का अधिकारी रैयत
ए।
गई करमुक्त भूमि की
गई व्यवस्था (चंपा०,

विष्णु की पूजा के
क्त भूमि (गाइड०)।
ों को दी जानेवाली कर-

दी जानेवाली करमुक्त

शिव की पूजा के
क्त भूमि (गाइड०)।
ाति
ाद



)।

+गोपिका (?)]।
तरह आँखोंवाला बैल
ाक्ष-]।
का उजला शकरकंद।
।
बिलायत (फा०)]।
क प्रकार का पटुआ,
)]।
ाद
की
ा है,



]।
ाम्यपां०) बहुत-से रुपयों

टि०—यह प्रयोग समूची होल्डिंग के विनिमय की दशा में प्रयुक्त होता है। होल्डिंग के किसी हिस्से की बिक्री में भी होता है, किंतु वह केवल विशेष वक्तव्य (रिमार्क्स) वाले कालम में ही (गाइड०)।

बिसखावल—(क्रि०) गाय, भैंस आदि का दूध सुखा देना या बंद कर देना (मुं०-१, पट०, द० पू० मै०)। दे०—बिसुखल।

[बिसखा + आवल, वल (प्र०) < बिसखा < बष्कय (बष्कयति) वा बिसखा < वि + √शोष् (विशोषयति)]।

बिसरी—(सं०) (१) मछली मारने का वह जाल, जिसमें तीन लकड़ियाँ लगी रहती हैं और जो एक व्यक्ति के द्वारा व्यवहृत होता है। दे०—बिसारी। (२) छोटा बिसार। एक प्रकार का मछली मारने का जाल, जिसे एक आदमी काम में लाता है। बिसार के समान यह भी तिकोना होता है (चंपा०-१)।

[बिसरी < बिसारी (=बिसारिन्) < वि+ √सृ+ इन् (=उलटा चलनेवाला)]।

बिसवा—(सं०) बीस धुर जमीन की नाप (शाहा०)। दे०—कट्ठा।

[बिसवा < बीस < विंशति-]।

बिससेरा—(सं०) बीस सेर के वजन का बटखरा। इसे अधमना भी कहते हैं (रो०)।

बिसही—(सं०) मधुबन (चंपा०) इस्टेट में लगाया गया बीस रुपये का कर (चंपा०)—(गाइड०)।

बिसाखा—(सं०) सोलहवाँ नक्षत्र, विशाखा। यह आश्विन और कार्तिक मास में पड़ता है।

[< विशाखा]।

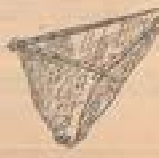
बिसायंध—(सं०) मछली की गंध। मछली की गंध-जैसी दूसरी वस्तु की गंध। दे०—बिसायन।

[बिसा+गंध < बिसगन्ध-]।

बिसायन—(सं०) मछली की गंध, बिसैली गंध (मुं०-१)। पर्या०—बिसायंध।

[बिस+आयन (प्र०) <बिस (बिसयति-ना० धा०) वा बिसा + यन < बिसायंध < बिसा + गंध < बिसगन्ध-]।

बिसार—(सं०) (१) एक आदमी द्वारा व्यवहृत मछली पकड़ने का वह जाल, जिसमें तीन लकड़ियाँ लगी रहती हैं (चंपा०, गया, द० पू० मै०)। दे०—बिसारी। (२) डेंगी पर से काम में लाया जानेवाला



मछलियों को पकड़ने का वह जाल, जिसमें तानने के लिए बाँस लगा रहता है (चंपा०-१)।

[बिसार < बिसारिन् (?) वा बिसार < वि + √सृ (?)]।

बिसारी—(सं०) कुरैल-जैसा तीन लकड़ियों में लगा जाल (गं० उ०, द० मुं०)। पर्या०—बिसरी (चंपा०), बिसार (चंपा०, गया, द० पू० मै०), खनसारी (उ० पू० मै०), चौघा (द० भाग०)।

[बिसारी < बिसारिन् (?)]।

बिसारी जाल—(सं०) एक प्रकार का जाल, जिसमें दो बाँस बाँधे जाते हैं और चारों ओर रस्सी बाँधी रहती है (सा०-१)।

[बिसारी+जाल (यौ०)]।

बिसुकल—(क्रि०) गाय, भैंस आदि का दूध देना बंद कर देना। दे०—बिसुखल।

[बिसुक + ल (प्र०) < बिसुक < बिसुख < विशुष्क < वि (उप०)+ √शुष्+क (=क्त), वा < विशोष < वि+ √शोष्-]।

बिसुखल—(सं०) गाय या भैंस का दूध सूख जाना या बंद हो जाना। पर्या०—डाईठ होएल (द० पू० मै०), बिसखावल (पट०, द० पू० मै०), चुहठावल (शाहा०), ठमरा (द० प० शाहा०)।

[बिसुख + ल (प्र०) < बिसुख < विशोष < वि+ √शुष्]।

बिसुन अंश—(सं०) खलिहान में तैयार नये अन्न में से पहले-पहल निकाला गया ब्राह्मण-अंश (गं० उ०)। दे०—बिसुनपिरित।

[बिसुन+अंस < विष्णु+अंश-]।

बिसुन अरपन—(सं०) भगवान् विष्णु की पूजा के निमित्त अर्पित करमुक्त भूमि। दे०—संकल्प।

[बिसुन+अरपन < विष्णु+अर्पण-]।

बिसुनपिरित—(सं०) खलिहान में तैयार नये अन्न में से पहले-पहल निकाला गया ब्राह्मण-अंश। पर्या०—अँगौंआ (प०)।

[बिसुन+पिरित < विष्णु+प्रीति-, विष्णु+प्रीत-]।

बिसुनप्रीत—(सं०) भगवान् विष्णु की पूजा के निमित्त अर्पित की हुई करमुक्त भूमि। दे०—संकल्प।

[बिसुन+प्रीत < विष्णु+प्रीत-, विष्णु+प्रीति-]।

बिहंतर—(सं०) धान के बीजों की क्यारी (द० भाग०)। दे०—बिहार।

[बिहं+तर ; बिहं < बीहन < बीजधान्य- ; तर < तल- (?)]।

बिह—(सं०) धान फूटने के पूर्व ही घने धान के पौधे को अलग करना (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बिह < (?), वा < विघ < विघन-(?)]।

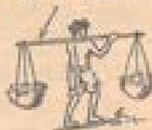
बिहड़—(सं०) ऊँची-नीची या ऊबड़-खाबड़ जमीन। (वि०) बीहड़, विषमचरित्र व्यक्ति। पर्या०—बीहड़ (गया), अरिअन (द० भाग०)।

[विहड <विह+ड (प्र०) <विह < विषम (?)]।

बिहदाना—(सं०) मीठा अनार (पट०-१)।

बिहनउरी—(सं०) (१) मोरी (धान्य बीज) उखाड़ने का पारिश्रमिक। (२) बीज (पट०-१)।

बिहनढोआ—(सं०) वह बाँस, जिसके दोनों किनारों पर धान्य-बीज की आँटी का जोड़ा बाँध-बाँधकर उसे एक जगह से दूसरी जगह ढोया जाता है (प०)। पर्या०—पकनाठ (प०), घरँग (द० भाग०)।



[बिहन+ढोआ ; बिहन < बीजधान्य ; ढोआ < ढोअल (बिहा०) ; ढोना (हिं०) <√ढौक् (?)]।

बिहनवाहा—(सं०) धान की बिचड़ी या मोरी असगाने-उखाड़नेवाला मजदूर (मुं०-१)।

[बिहन + वाहा (दौ०) ; बिहन < बीजधान्य ; वाहा (प्र०) या <√वह्]।

बिहनाह—(सं०)(१)बीज (गया, चंपा०)। दे०—बीया। (२) अन्यत्र रोपने के लिए बीज की क्यारी (बिड़ार) से उखाड़ा गया बीजों का पौधा। दे०—बीया। (३) बीज, बीज का पौधा। दे०—बीहन।

[बिहन + आह (प्र०) < बिहन < बीहन < बीजधान्य-]।

बिहनौरी—(सं०) (१) मोरी (धान्य-बीज) उखाड़ने का पारिश्रमिक। (२) मोरी, बीज (पट०-१)।

बिहरी—(सं०) किसान द्वारा किस्त के अनुसार दिया जानेवाला कर (पट०-१)।

बिहाड़ि—(सं०) आँधी (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बिहा+ड़ि (प्र०) < बिहा < वाह- (?)]।

बिहान—(सं०) सवेरा (चंपा०-१)।

[बिहान < बि+भान ; बिहाण (अप०)]।

बिहारप्लाउ—(सं०) एक विशेष प्रकार का लोहे का हल, जो जमीन को अधिक गहराई तक जोतता है और एक ही तरफ मिट्टी फेंकता है (री०)।

[बिहार+प्लाउ ; प्लाउ (अं०)]।

बिहारि—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—बिहाड़ि।

बिहारी कदुआ—(सं०) गरमी में फलनेवाला चिकना और स्वादिष्ट कद्दू (पट०-१)।

बींड़—(सं०) (१) तीन बैलों से चलनेवाली गाड़ी में अगला बैल, प्रष्ठवाह (प०)। पर्या०—बिंड़िया (प०), फिड़ी (प०, सा०), नाटा (पू०)। (२) कुएँ की दीवार को गिरने से बचाने के लिए कभी-कभी प्रयुक्त बाँस की फट्ठियों या पेड़ की टहनियों से बनाया गया गोल ढाँचा (उ० प०, पट०, शाहा०)। दे०—कोठी।

[बींड़ < (देशी ?) या < विण्ड-(?)]।

बीअर—(सं०) बिल, विवर (चंपा०-१)।

[बीअर < विवर < वि+√वृ+अ (प्र०)]।

बी० ओ० १०—(सं०) ऊख का एक नया पारिभाषिक भेद। इस प्रकार के अंकयुक्त नाम 'ऊख-अनुसंधान-केंद्र, पूसा' द्वारा आविष्कृत-परीक्षित करके रखे जाते हैं।

बी० ओ० ११—(सं०) ऊख का एक नया पारिभाषिक भेद। इसे यहाँ सतहरवा भी कहते हैं। इसकी लंबाई अधिक होती है, जिससे यह टेढ़ा-मेढ़ा हो जाया करता है। इसलिए, सत्तर के समान टेढ़ा-मेढ़ा होने से सतहरवा कहा जाता है (री०)।

बी० ओ० १७—(सं०) हरे रंग के ऊख का एक नया पारिभाषिक भेद। इसकी पोरें पतली होती हैं और गाँठ मोटी। इसकी उपज भी काफी होती है। इससे नौ प्रतिशत चीनी प्राप्त होती है (हरि०)।

बी० ओ० २१—(सं०) बी० ओ० २२ के समान एक प्रकार की ईख। यह लाल रंग की होती है। इसमें भी नौ प्रतिशत चीनी प्राप्त होती है (हरि०)।

बी० ओ० २२—(सं०) हरे रंग की एक प्रकार की ईख। इसमें कुछ कमी होती है। पोख्ता होने पर इसकी पोरें फट जाती हैं। इसकी उपज भी काफी होती है। इससे लगभग आठ प्रतिशत चीनी प्राप्त होती है (हरि०)।

बी० ओ० २८—(सं०) एक प्रकार की नई ईख, जो लाल रंग की होती है। इसमें हाथी के दाँत के समान चिह्न बने होते हैं। इसकी उपज अच्छी होती है और इससे नौ प्रतिशत चीनी प्राप्त होती है (हरि०)।

बीछल—(क्रि०) चुनना, लोढ़ना। फलादि को एक-एक करके चुनकर इकट्ठा करना (मुं०-१)।

[बीछ्+ल (प्र०)<बीछ<विचय<वि+√चि]।

बीजू—(सं०) वह आम, जो बीज से उगता है, न कि कलम से। मिला०—कलम।

[बीज+ऊ < बीज-]।

बीटा—(सं०) बाँस आदि की झाड़ी, जंगल (मुं०-१)।

[बीटा < वृक्ष या < वोटी (?) ; बिटी (प्रा०) = पुत्रा, गट्ठर ; बिटो (ने०) = पुत्रा, गट्ठर]

बिहो (कुमा०) ; बीटी, बीटी (पं०) = खेत में प्रयुक्त मोटी ; बीरबु (सिं०)=रोकना ; बीटो (गु०)=केवल ; बीटी (गु०) = अंगूठी < बिट्ट। मिला०—बीट (नेपा०)]।

बीठड़—(सं०) खैनी के पत्ते को चीरकर बाँटी गई गाँठ (चंपा०-१)।



[बीठड़ < वेष्टित (?)]।

बीठो—(सं०) एक साथ उगे हुए बाँसों का समूह (द० भाग०)। दे०—बाँस के कोठी।

[बीठो < वृन्त- ; वृक्त- या < बीटी या बेढ़। मिट्ट (प्रा०)। दे०—बीढा]।

बीफे—(सं०) बृहस्पतिवार (चंपा०-१)।

[बीफे < बिफ़ < बृहस्पति-]।

बीसड़—(सं०) एक प्रकार का बकरा, जो साँड़ की तरह स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है, बोका (द० प० शाहा०)। दे०—छागर।

[देशी ?]।

बीया—(सं०) (१) बीज। पर्या०—बीहन ; बीहनाइ (गया, चंपा०), बिया, गाँटा, बिनहाइ (द० भाग०)। (२) अन्यत्र रोपने के लिए बीज की क्यारी (बिड़ार) से उखाड़ा गया बीजों का पौधा। पर्या०—गाछी, बीहन, बिहनाइ, मोरी, विशेषकर धान का बीज, (मं० द०, उ० प०), जरई (चंपा०)। (३) बीज, बीज का पौधा। दे०—बीहन। (४) बीज (चंपा०-१)।

[बीया < बीज- ; बीजक-। बीया, बीज (हिं०); बिधुँ (एक व०) ; बियाँ (बहु व०)=बिना कूटा हुआ धान का दाना]।

बीया के आलू—(सं०) बीज के लिए सुरक्षित आलू।

[बीया के (विभ०)+आलू]।

बीया बाल—(सं०) बीज खरीदने के लिए दिया जानेवाला अग्रिम द्रव्य (शाहा०)। दे०—बिअहन।

[बीया+बाल (?)]।

बीया बेंगा—(सं०) बीज खरीदने के लिए दिया जानेवाला अग्रिम द्रव्य (शाहा०)। दे०—बिहन।

[बीया+बेंगा (?)]।

बीयामार—(सं०) (१) बीज का मर जाना, नहीं उगना (द० मुँ०)। दे०—बिजमार। (२) न जम सकनेवाला अनाज। दे०—अब्बी।

[बीया+मार ; बीया < बीजक ; मार < मारल, मरल < √मृ]।

बीरा एकफसिला—(सं०) वह जमीन, जिसमें वर्ष में एक बार धान पैदा होता है (पूणि०), (गाइड०)। पर्या०—बीरा मोचरा, बीरा हेती (पूणि०), बीरा रोपा (पूणि०)।

बीरा खरीत—(सं०) वह जमीन, जिसमें खड़ की पैदाइश होती है (पूणि०), (गाइड०)।

बीरा चौमास—(सं०) वह जमीन, जिसमें रब्बी की फसल होती है (पूणि०), (गाइड०)।

बीरा तरकारी—(सं०) वह जमीन, जिसमें तरकारी उपजती है (गाइड०)।

बीरा मोचरा—(सं०) दे०—बीरा एकफसिला (गाइड०)।

बीरा रोपा—(सं०) दे०—बीरा एकफसिला (गाइड०)।

बीरा लगाई—(सं०) वह जमीन, जिसमें चारों ओर फलों के वृक्ष लगाये जाते हैं (पूणि०), (गाइड०)।

बीरा बारी—(सं०) उपज की दर का एक निश्चित प्रकार का निर्धारण (पूणि०), (गाइड०)।

टि०—यह एक बार ही सदा के लिए निर्धारित कर दी जाती थी।

बीरा साली—(सं०) वह जमीन, जिसमें धान की उपज होती है (पूणि०), (गाइड०)।

बीरा हेती—(सं०) दे०—बीरा एकफसिला।

बीर—(सं०) (१) केले आदि की नई निकलती हुई पत्ती, जो आपस में लिपटी रहती है (चंपा०-१)। पर्या०—गझ्मा (तं० प०)। (२) बीज का पौधा।



[बीर < वीर्य-; या < बीर-(संस्कृ०) = समर्थ, शूर, पुत्र]।

बीसा—(सं०) अन्न नापने में बीस हटई की एक नाप (चंपा०-१)।

[बीसा < बीस < विंशक < बिंश<विंशति-]।

बीहड़—(सं०) ऊँची-नीची और ऊबड़-खाबड़ जमीन। (वि०) बीहड़, विषमचरित्र व्यक्ति (गया)। दे०—बिहड़।

[बीहँ+ड़ (प्र०) < बीह < विषम (?)]।

बीहन—(सं०) (१) बीज के लिए काटा गया ऊख का टुकड़ा दे०—गेंड़ा।



[बी + हन < बीज+ धान्य-। यह ऊख के लिए ला० प्र० है]। (२) रोपने के लिए बीज की क्यारी (बिड़ार) से उखाड़ा गया बीजों का पौधा। दे०—बीया। (३) बीज। दे०—बीया। (४) बीज, बीज का

पौधा। पर्या०—बिहनाई, बीया, बीहनि (दर०-१, पूर्णि०-१)। (५) बीज खरीदने के लिए दिया जानेवाला अग्रिम मूल्य (पट०, गया)। दे०-बिहन।

[बी+हन < बीज+धान्य-]।

बुझारत—(सं०) (१) जमींदार को हिसाब-किताब समझाना (पट०-१)। (२) सरकार की ओर से तैयार किया जानेवाला किसानों के खेतों का विवरण। (३) राज्य-नियुक्त अधिकारियों द्वारा खाता-खतियान में की जानेवाली प्रविष्टियों में दिया जानेवाला कृषि-भूमि से संबद्ध दलों का प्रारम्भिक विवरण (गाइड०)।

टि०—बुझारत दो प्रकार की होती है : टेबुल बुझारत और फील्ड बुझारत। पहली बुझारत में जमीन का 'टेबुल सर्वे' या खसरा-खतियान में विवरण उपस्थित किया जाता है, जबकि फील्ड बुझारत में जमीन की नाप-जोख करके विवरण उपस्थित किया जाता है और दोनों को मिलाकर जमीन के वास्तविक अधिकारी और सीमा का निर्धारण होता है।

बुड़वा—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुं०)। (वि०) बूढ़ा, अनादृत बूढ़ा।

[देशी, वा बुड़+वा (प्र०) < बुड़ < वृद्ध (?) शब्द के अर्थ से यहाँ इसका कोई तात्पर्य नहीं है। संभव है, यह धान अधिक दिनों में तैयार होता है, अतः ऐसा नाम पड़ा हो। बिहारी में 'वा' प्रत्यय का अर्थ 'अनादर' होता है]।

बुड़िया—(सं०) (१) एक प्रकार की लत्तर (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) लंबी आकृति का एक छोटा कीड़ा, जो धान को नष्ट करता है (द० भाग०(३)। (धान का एक रोग, जिसमें धान के पौधे पीले हो जाते हैं। (वि०) बूढ़ी स्त्री। बुड़वा का स्त्री०।

[बुड़िया < बुड़+इया (प्र०) < बुड़ < वृद्ध-]।

बुड़िया लगल—(क्रि०) (१) धान के पौधों का पीला होना (मुं०-१)। (२) धान के पौधों में पीला रोग लगना। दे०- बुड़िया।

[बुड़िया+लग+ल (प्र०), (दो० क्रि०)]।

बुलबुली-(सं०) (१) पानी का बुलबुला। (२) मूंछ उगने के पूर्व उगे हुए कोमल रोमों (मूंछों) की रेखा (चंपा०-१)। (३) वह व्यक्ति, जिसके प्रौढ़ वय में भी दाढ़ी-मूंछ नहीं उगी होती।

[देशी (?)]।

बुला—(सं०) एक प्रकार की मछली (चंपा०-१)।

[देशी]।

बुल्ला- (सं०) (१) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। (२) नन्हीं मछलियों की एक जाति (मुं०-१)।

[देशी]।

बूँट—(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जो रक्त-पीत वर्ण का, बड़े दानों का एवं भीतर पीला और सूंगयुक्त होता है। इसका उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है, चना। पर्या०—चना (सा०), बेदाम (पू० मै०), रहिला (प०), बूट (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बूँट < वृन्त- वा वृक्त-(?)। चने के ऊपर वृंत-जैसा टेढ़ा होता है, इसलिए वृन्तिन् वा वृक्त से व्युत्पत्ति संभव है। दे०—बौकुड़ा]।

बूँटी—(सं०) (१) छोटा चना। पर्या०—चनी (पट०), बहुरी (शाहा०)। (२) ओषधि, जड़ी-बूटी। (३) भांग।

[बूँट+ई (प्र०) < बूँट < वृन्तिन्; वृक्त (?)]।

बूढ़—(सं०) (१) वह बैल, जिसकी अवस्था ढल गई हो और प्रौढ़ होने का भी समय बीत गया हो (सा०-१)। (२) बूढ़ा, वृद्ध।

[बूढ़ < वृद्ध- <√ वृध्+त (=क्त)]।

बूनल—(क्रि०) (१) अनाज बोना, बुनाई करना। दे०-बोअल। (२) कपड़ा बुनना या सींक, घास आदि से कोई पात्र बनाना।

[बून + ल (प्र०) < बून <√वेञ् (वयति) वा <√वप् (=वपति)। बुनना (पं०); बुन्नु (ने०); बुण्णो (कुमा०); बुना (बँ०); बुनिबा (ओ०); उणवा (अ०); उणणु (सि०); वोवुन (कश्म०); बुण्णा (प० पहा०); बूँणइ (शिना०)। इन सभी क्रियाओं का अर्थ कपड़ा बुनना या किसी प्रकार का बुनना होता है]।

बेंग—(सं०) एक प्रसिद्ध बरसाती जल-स्थल-चारी छोटा जंतु, मेढ़क (चंपा०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बेंग < भेक-]।

बेंगची-(सं०) छोटा बेंगा। दे०—बेंगवा।

बेंगवा—(सं०) (१) भूमि के नीचे की मिश्रित ढीली मिट्टी, जिसमें कच्चा कुआँ काम नहीं कर सकता है और जिसकी मिट्टी धँस जाया करती है। दे०-बेंगा। (२) छोटा मेढ़क।



[बेंग+वा (प्र०) < बेंग < भेक-]।

बेंगा—(सं०) (१) धान के बीजों की क्यारी (प०)। दे०—बिढ़ार।

[बेंगा < बीजाङ्कन-(?)]।



(२) भूमि के नीचे की मिश्रित ढीली मिट्टी, जिसमें मिट्टी का कुआँ काम नहीं कर सकता है। पर्या०—बेंगवा, भुसनी (सै०, द० पू०), बेंगी (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बेंगा < भेक-(=मेढक)-(?)]।

(३) बीज के पौधों की क्यारी (द० प० शाहा०)।

[बेंगा < बीज+गच्छ- या बीजाङ्कुर-(?)]।

बेंगी—(सं०) (१) बालू-मिश्रित काली मिट्टी (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) छोटा मेढक।

[बेंगी < बेंग < भेक- (?)]।

बेंचल—(क्रि०) बेचना।

[बेंच+ल (प्र०) < बेंच < वि+√क्री (?)]।

बेंचा—(सं०) किसी चीज के खरीदने के बाद उसकी कीमत के रूप में दिया जानेवाला अन्न (चंपा०-१)।

[बेंचा < बेंचल (क्रि०)]।

बेंट—(सं०) (१) खुरपे का वह भाग, जो लकड़ी का बना होता है और हाथ से पकड़ा जाता है। (२) हाथ से पकड़े जानेवाले डंडे को बेंट कहते हैं। (३) कुदाल के पासे में लगा हुआ लकड़ी या बाँस का बना डंडा (पट०-१)। (४) गँड़ासी की बेंट (सं० उ०)। दे०—मूठ। (५) गँड़ासी के फलक के ऊपर लगी हुई लकड़ी की भारी बेंट (पू०)। दे०—जाली। (६) किसी हथियार या औजार में लगा लकड़ी आदि का बना हाथ से पकड़नेयोग्य उपांग या डंडा।

[बेंट < विट < वृन्त-]।

बेंत—(सं०) एक प्रकार का लचीला पौधा, जिसकी छड़ी आदि होती है (पट०-१)।

बेंतल—(क्रि०) (१) समेटना, सैंतना। (२) सौंपना, जिम्मा देना, भार देना। (३) काम का बँटवारा करना (मुं०-१)।

[बेंत+ल (प्र०) < बेंत < व्युत < वि+ऊत < वि+√वेञ् (वयति=बुनता है)]।

बेंती—(सं०) (१) अरहर या उसी से मिलते-जुलते पौधे के डंठल की बनी हुई रस्सी, जो बोझा बाँधने के काम में आती है (पट०, गया, द० मुं०)। पर्या०—बेंतड़ी (द० भाग०), बेंचेरी (गया)। (२) बेंत की तरह शरीर को लचकाना।

[बेंती < व्युति < वि+ऊति (?)]।

बेंहगा राड़ी—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बेंहगा+राड़ी (स्त्री०) < (?)]।

बेंहुआ—(सं०) एक प्रकार का जंगली वृक्ष। इसका फल मीठा और आकार गोल होता है (पट०-१)।

बेआई—(सं०) अन्न तौलनेवाले पुरुष का श्रम-शुल्क (प०)। दे०—हटवाई।

[बे+आई (प्र०) < बे < बया (फा०)]।

बेआना—(सं०) (१) वह रकम, जो खरीदार द्वारा बेचनेवाले को चीज की कीमत पक्की हो जाने पर दी जाती है और पूरी कीमत देते समय काट ली जाती है। पर्या०—बयाना। (२) किसी चीज को खरीदने के लिए भाव और कीमत तय कर कुछ अग्रिम रुपये दे देना, ताकि वह चीज दूसरे ग्राहक के हाथ न बेची जाय (चंपा०-१)।

[बे+आना < बया ; बे (फा०)+आना (प्र०)]।

बेआर—(सं०) बयार, हवा (चंपा०-१)।

[बेआर ; बयार (हिं०) < बया + र (प्र०) < वायु (?)]।

बेओपार—(सं०) चीजें खरीदकर बेचने का काम, क्रय-विक्रय, व्यापार।

[बेओपार < व्यापार < वि + आ + √पृ + अ (=घञ्—प्र०)]।

बेकहल—(सं०) ढाक की जड़ की छाल (घाव)। (वि०) मूर्ख, जो कहना नहीं मानता।

बेगछावल—(क्रि०) चुनना, चुनकर अलग करना (मुं०-१)।

[बेगछ+आवल, वल (प्र०) < बेगछ < वि+√गम् (विगच्छति = अलग होता है) ; मिला०—√वछ्, वृछति, वृछते = चुनकर अलग करता है, ग्रहण करता है)]।

बेगार—(सं०) वह मजदूर, जो पहले सरकार के लिए और तत्पश्चात् जमींदारों के लिए बिना किसी तरह की मजदूरी लिये कुछ दिनों तक काम किया करता था।

[बेगार (फा०)]।

बेगार—(सं०) किसी रैयत से मालिक (जमींदार) द्वारा मजदूरी दिये बिना काम लेना (शा०-१)।

बेगारी—(सं०) (१) किसी को मजदूरी दिये बिना काम कराने की क्रिया। (२) जमींदार द्वारा मुफ्त में लिया जानेवाला श्रम (पट०-१)।

बेगास—(सं०) पिट्ठू, पेकुआ (री०)।

बेगासकुली—(सं०) बेगास ढोनेवाला कुली (री०)।

बेचल—(क्रि०) बेचना, बिक्री करना। दे०—बेंचल।

बेचा—(सं०) सौदा खरीदने के लिए पैसे के बदले दिया जानेवाला अन्न (मुं०-१)।

[बेचा < बेचल ; बेचल]।

बेकरा—(सं०) मटर, चना, जौ, गेहूँ या और किन्हीं दो या तीन अन्नों का मिश्रण या मिला अन्न (पू० मै०)। दे०—तरेरा।
[बेकरा < मेकरना—(हिं० श० सा०)]।

बेढ़—(सं०) (१) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (मै०)। दे०—घेरान। (२) अन्न आदि रखने की बखारी।
[बेढ़ < वेष्ट (वेष्टते, वेष्टयति) ; मिला०—विढिम; वेंढिम ; वेंढिम (प्रा०) < वेष्टित=घेरा हुआ, लिपटा हुआ; वेढ़ (प्रा०)=वेष्टन, लपेटन]।

बेढ़िया—(सं०) एक पशुखाद्य घास (पट०)। दे०—बेरी।
[देशी]।

बेढ़ी—(सं०) अन्न आदि के लिए खुले स्थान में पुआल या नार आदि से घेरकर बनाई हुई एक प्रकार की मड़ई। दे०—बखार।
[बेढ़ी < बेढ़+ई (प्र०); बेढ़ < वेष्ट< √वेष्ट्। वेढ़, वेढ़ु (प्रा०)]।

बेदखल—(वि०) संपत्ति या किसी अधिकृत वस्तु से अधिकार-वंचित होनेवाला (सा०-१)।
[बे (प्र०)+दखल (फा०)]।

बेदखली—(सं०) (१) संपत्ति पर से दखल या कब्जे के हटाये जाने के संबंध में किया जानेवाला मुकदमा। (२) अधिकृत वस्तु से अधिकार-वंचित होना (सा०-१)।
[बे+दखल+ई (प्र०)—(फा०)]।

बेदाम—(सं०) (१) एक प्रकार की दलहन, जो रक्त-पीत वर्ण का, भीतर पीला, बड़े दानों का और सुगंधयुक्त होता है, चना (पू० मै०)। दे०—बूँट। (२) बादाम। पर्या०—बदाम (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बेदाम < बदाम < बादाम (फा०)=अखरोट की जाति का एक प्रकार का प्रसिद्ध फल]।
(वि०) दाम के बिना प्राप्त की जानेवाली वस्तु।
[बे (प्र०)+दाम (फा०)]।

बेदामी, बदामी—(सं०) बादामी रंग। दे०—कुसुम।
[बेदाम+ई < बेदाम < बादाम (फा०)]।

बेना—(सं०) किसी वस्तु की खरीद का दाम तय होने पर विक्रेता को अगोड़ के रूप में मिली हुई नाममात्र की पेशगी (मुं०-१)। दे०—बेआना, बयाना।
[बेना < बयाना, बया+आना (फा०)]।

बेरई, बेररा—(सं०) जौ और चने का मिश्रण (शाहा०)। दे०—बरेरा।
[देशी (?)]।

बेररा, बेरई—(सं०) जौ और चने का मिश्रण (शाहा०)। पर्या०—जवबुट्टा (गं० उ०), जौबुट्टा (उ० पू०)।
[देशी (?), बेरो=मिले हुए जौ और चने का आटा। कोई का फल—(हिं० श० सा०)। मिला०—बराटक=कौड़ी, कमलगट्टा, रस्सी]।

बेरावल—(क्रि०), चरवाही में किसी चरवाहे के मवेशियों को सामूहिक चरवाही से अलग कर देना (चंपा०-१)।
[बेर+आवल, वल (प्र०) < बेर < बहिर् (?)]।

बेरी—(सं०) एक पशुखाद्य घास (गया)। पर्या०—बेढ़िया (पट०)।
[देशी]।

बेरुआ—(सं०) चारा बचाने के निमित्त खाते समय बैलों के मुँह के चारों ओर लपेटी जानेवाली रस्सी (प० मै०)। पर्या०—कजई, लगामी (द० पू०), टेमा (उ० पू०), जूना (पू०)।
[बेरुआ < बरुआ-(?)]।

बेहाँ, बखारी—(सं०) अनाज रखने के लिए बाँस की फट्ठी या खड़ से बुनकर बनाया गया घेरा। इसके ऊपर छावनी भी रहती है, बखारी।
[बेहाँ < बेढ़ी < वेष्ट-(?)]।

बेल—(सं०) (१) रात में बैल बाँधने के लिए प्रयुक्त होनेवाली लोहे की जंजीर (गया)। दे०—सीकर।
[बेल < बल्ली (?) या वलय-(?)]।
(२) रोपने के लिए प्रस्तुत पान के बीज के नये-नये पौधे (अन्यत्र)। दे०—कलम।
[बेल < बल्ली (?)]।
(३) एक प्रसिद्ध कटीले वृक्ष का फल, जिसका छिलका मोटा और कड़ा होता है। इसका फल प्रायः गोल और नीचे चिपटा होता है (चंपा०-१, पट०-१, सर्वत्र, दर०-१, पूर्णि०-१)। (४) इस फल का वृक्ष।
[बेल < बिल्व-]।

बेलउर—(सं०) एक लंबा लाल अगहनी धान, जिसका चावल उजला होता है (सा०-१)।
[बेल+उर < बिल्वपूर < (?)]।

बेलगान—(सं०) कर-रहित भूमि (सा०-१)।
[बे+लगान < बे (फा० प्र०)। मिला०—बि (उ० प्र०) ; लगान < लग्न (?)]।

बेलगानी—(सं०) वह जमीन, जिसका कर नहीं लिया जाता (सा०-१)।
[बे+लगान+ई (प्र०) < लगान < लग्न-(?)]।

बेलनी—(सं०) ढेंकी की धुरी (उ० प० मै०)। दे०—अखौत।
[बेलनी < बेलन < बेल्लन < √बेल्ल् (बेल्लति, बेल्लयति)]।

बेलपात—(सं०) बेल पत्ता, जो शिव पर चढ़ाया जाता है, बेलपत्र (पट०-१)।
[बेलपात < बिल्वपत्र-]।

बेलवन—(सं०) धान एवं ज्वार-बाजरे के खेत में उगनेवाली एक प्रकार की घास (शाहा०)। पर्या०—बेलौथा (गं० उ०, पट०, मुं०), बेलौधन (गया), बेलौन्हा (द० भाग०)।
[बेल+बन < बिल्व+बन्धु (?)]।

बेलसरी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[बेल+सरी < बिल्वश्री या बिल्वशालि-(?)]।

बेलसुठ—(सं०) बेल और आम के पेड़ की कलम। इस कलम का आम बड़ा और बेल-जैसा स्वादवाला होता है (पट०-१)।
[बेल + सुठ ; बेल < बिल्व- ; सुठ < (?) ; मिला०—सुस्थ-, शुण्ठी]।

बेलसोंठ—(सं०) बेल का सूखा हुआ गूदा (पट०-१)।
[बेल+सोंठ < बिल्वशुण्ठी- (?)]।

बेलहरा—(सं०) सींक का बना पान रखने का टोकरा, जिसमें सड़ने से बचाने के लिए पान रखा जाता है। पर्या०—बिरहरा (पू० मै०), डाकी—पान पैदा करनेवाले के व्यवहार में आनेवाला पान रखने का बड़ा टोकरा।
[बेल+हरा ; बेल < बल्ली (= नागवल्ली) ; हरा (प्र०) या < √हृ। बेलहरा=पान के बीड़ों को रखने के लिए एक लंबोतरी पिटारी, जो बाँस या धातु आदि की बनी होती है—(हि० श० सा०)]।

बेलहरा—(सं०) एक प्रकार की चोईंटा-रहित मछली (सा०-१)।
[देशी (?)]।

बेलहरी—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध पान, जिसके पत्ते गोल और मीठे होते हैं (द० प०)। पर्या०—बेलहर साँची (उ० पू० मै०), मगही।
[बेल+हरी < बल्ली + हरी (प्र०) ; बेलहरी = साँची पान—(हि० श० सा०)। बेलहरि (ने०) = बेलबूटा ; बेलहरे (ने०) = ऊपर चढ़नेवाली एक प्रकार की लतर ; मिला०—बेलहर = स्थान-विशेष का नाम]।

बेलहरी साँची—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध पान, जिसके पत्ते गोल और मीठे होते हैं (उ० पू० मै०)। दे०—बेलहरी।
[बेलहरी+साँची (सौ०)]।

बेलहा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद, जो बेल के समान होता है (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बेल+हा (प्र०) < बेल < बिल्व-]।

बेलिया—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनकी लिबलिबी बढ़ जाती है (पट०-१)।
[बेल+इया (प्र०) < बेल < बिल्व-]।

बेली—(सं०) बेल का छोटा-छोटा फल (पट०-१)।
[बेली < बेल < बिल्व-]।

बेलौथा—(सं०) धान एवं ज्वार-बाजरे के खेत में उगनेवाली एक घास (गं० उ०, द० मुं०)। दे०—बेलवन।
[बेल+औथा < बिल्व+बन्धु (?)]।

बेलौधन—(सं०) धान एवं ज्वार-बाजरे के खेत में उगनेवाली एक घास (गया)। दे०—बेलवन।
[बेल+औधन < बिल्व+बन्धु (?)]।

बेलौन्हा—(सं०) धान एवं ज्वार-बाजरे के खेत में उगनेवाली एक घास (द० भाग०)। दे०—बेलवन।
[बेल+औन्हा < बिल्व+बन्धु (?)]।

बेलौर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है। यह प्रायः दरभंगा और उत्तर-पश्चिम में मिलता है।
[बेलौर (देशी ?)]।

बेवहरिया—(सं०) (१) रुपये-पैसे का लेनदेन करनेवाला। दे०—महाजन। (२) रेहन या बंधक रखकर कर्ज देनेवाला, महाजन।
[बेवहरिया < व्यावहारिक- < व्यवहार < वि+अव (उप०)+ √हृ+अ (=घञ्)]।

बेवहार—(सं०) व्यवहार, लेनदेन, महाजनी।

बेवहारगत—(सं०) चीजों की खरीद-बिक्री का काम (पट०)। दे०—लेनदेन।
[बेवहार+गत < व्यवहार+गत]।

बेसाहल—(क्रि०) (१) खरीदना। (२) जान-बूझकर अपने सिर लेना (चंपा०-१)।
[बेसाह + ल (प्र०) < बेसाह (?) ; बिसाह < वि + √सह् (विषहते, विषाहयति) ; बिसाहना, बेसाहना (हि०)=खरीदना। जान-बूझकर अपने पीछे लगाना। बेसाहनु (ने०)=खरीदना]।

बेहरी—(सं०) (१) उपज की दानाबंदी में व्यवहृत एक प्रकार का पत्रक, जिसे जमींदार देता था (गाइड०)। (२) चंदा, सम्मिलित रूप में इकट्ठा किया जानेवाला धन (भाग०-१)।

बेहवाल—(सं०) अनुपयोगी दुर्बल गाय या भैंस (उ० प० मै०)। दे०—दुराह।
[देशी (?)। मिला०—विह्वल-]।

बैंगन—(सं०) एक प्रसिद्ध लंबा या गोल फल, जिसकी तरकारी होती है। इस फल का पौधा। पर्या०—भंटा, गोल भंटा, गोल हुंटा (द० मुं०), गोल बैंगन, बेंगवा बैंगन, भांटा (पू० मै०)। बैंगन के विषय में कहावत प्रसिद्ध है—'काहू के भंटा बैरी, काहू के भंटा पंथ।'—किसी के लिए भंटा शत्रु के समान है, तो किसी के लिए पथ्य।

[बैंगन < वृन्ताक-(?)। वृन्ताक-(=लंबे वृन्त की वस्तु—(संस्कृ०) ; वाइंगन (पा०) ; वाइंगन (प्रा०); बैंगन, बैगन (हिं०) ; बैंगन (पं०) ; बैंगुन (नं०) ; बैगन (बँ०) ; बेंगन (गु०); बैंगनी (प० पहा०)=बैंगनी रंग ; बैंगनी, बैंगनी (हिं०, बिहा०) < वङ्गन—(संस्कृ०)—नेपा०। बांगुन (कश्म०) ; वाणवु (सिं०) ; < वङ्ग-(संस्कृ०) ; वंग (देशी) ; वंगा (पं०) ; वांगी (मरा०); वम्बटु (सिंह०) < मण्टाकी (संस्कृ०)—नेपा०]।

बैंगनी—(सं०) बैंगनी रंग। दे०—कुसुम।

[बैंगन+ई (प्र०) < बैंगन]।

बैगा—(सं०) कैमूर पहाड़ी (शाहा०) के खरवारों का ग्राम-पुरोहित (गाइड०)।

बैचा—(सं०) मकोय की तरह एक लाल जंगली फल, जो स्वाद में मीठा होता है (मुं०-१)।

[देशी (?)]।

बैठ—(सं०) (१) दूध, लकड़ी, बाँस आदि सामान लगातार खरीदने के सिलसिले में इन चीजों के बेचनेवालों को कुछ रुपये अगोड़ या पेशगी के रूप में देने का काम या पेशगी दिया जानेवाला रुपया (मुं०-१)। (२) किसी वस्तु का नियमित क्रय करना, जिसका मूल्य पीछे चुकाया जाता है।

[बैठ < बैठल]।

बैठकी सलामी—(सं०) जमींदार की कचहरी में बैठने की अनुमति के लिए लगनेवाला अतिरिक्त कर (गाइड०)।

बैठनी—(सं०) जाँता चलानेवाली औरतों के बैठने के लिए मिट्टी की बनी पीठिका (चंपा०-१)। दे०—बैसनी।



[बैठनी < बैठल < विष्ट < √विश्, या बेठनी < बेष्टन < √बेष्ट्]।

बैठमाफी—(सं०) बेगार के बदले में दिया जानेवाला कर (गाइड०)।

बैठल—(क्रि०) (१) बैठना। (२) गोबर इकट्ठा करने के लिए गाँव-भर के मवेशियों को निश्चित अवधि तक एक साथ बैठाना। (वि०) बैठा हुआ। पर्या०—बैसल, बइसल (मै०)।

[बैठ+ल (प्र०) < बैठ < विष्ट < √विश्, या < √वेष्ट्-?; उपविष्ट- (संस्कृ०); उवइट्ठ (प्रा०); बैठ्नु (ने०) ; बैठणा (पं०) ; बैठना (हिं०) ; बैठिया, बिट्ठा (प० पहा०) ; बैठ (ल०) = बैठने की क्रिया ; बैठो (सिं०) ; बेठूं (गु०) ; बैठ (दरदी)=वह बैठा है। बेठूँ (शिना०) ; ब्युठु (कश्म०) ; बेश्टो (रोमा०) ; बेश्टी (सोरि०)]।

बैठल हासिल—(सं०) वह फसल, जो किसी कारण से बढ़ न सकी हो (गं० उ०)। पर्या०—ठुरियाएल, (शाहा०, प० मै०), सितुरियाएल (सा०), ठिगुरियाएल (गया), भेटवाँस (पट०), ठरियाएल (प० मै०, द० मुं०), बिरनियाएल (द० भाग०)।

[बैठल+हासिल (फ़ा०)-(?)]।

बैठा—(सं०) धोबी। धोबी जाति की उपाधि।

बैठार—(सं०) भैंसों को इकट्ठा करके रखने की जगह (पू० मै०)। दे०—हिरात।

[बैठ+आर (प्र०) < बैठ < बैठल]।

बैठारी—(सं०) अवकाश; वह समय, जब कोई काम न रहे; निठाला; बेकार बैठे व्यक्ति का कार्य या भाव (मुं०-१)।

[बैठ+आरी (प्र०) < बैठ < बैठल]।

बैठी—(सं०) बेंट लगा हुआ ऐसा हँसुआ, जो जमीन पर बिना किसी सहारे बैठाया जा सके (मुं०-१)।

[बैठी < बैठल]।

बैतरनी—(सं०) (१) रोपा जानेवाला लाल रंग का एक धान (द० प० शाहा०)। (२) एक पौराणिक नदी का नाम।

[बैतरनी < बैतरणी (?)]।

बैदार—(सं०) संपत्ति खरीदकर उसका स्वामित्व प्राप्त करनेवाला (गं० उ०)। दे०—खरिदार।

[बै+दार < बय < बया (फ़ा०); दार (फ़ा० प्र०)]।

बैनामा—(सं०) कर्ज के भुगतान में या नगद रुपया लेकर किसी के नाम अपनी जमीन लिख देना (पट०-१)। दे०—बयनामा।

बैबिलवफा—(सं०) ऋण लेने के लिए एक प्रकार का, संपत्ति का, बंधक रखना, जिसमें निश्चित समय के अंदर ऋण के चुकता न कर देने पर ऋण के बदले में वह संपत्ति महाजन की हो जाती है।

[बैबिल+वफ़ा (फ़ा०)]।

बैरिया गोल–(सं०) वह गाय या बैल, जिसका माथा लाल और शेष अंग हलके लाल वर्ण का हो।
[बैरिया+गोल (गौ०) ; बैरिया < बैर < बेर <बदरी (?) ; गोल < गोला < गौर-वा गोल-]।

बैल—(सं०) बधिया किया हुआ बैल। दे०—बरध।
टि०—बैलों के चुनाव में निम्नांकित नियम प्रायः बिहार में सर्वत्र प्रचलित है—

"बैल बेसाहे चललहऽ कन्त।
बैल बेसहिहऽ दू दू दन्त॥
काछ कसौटी साँओर बान।
ई छाड़ि किनिहऽ मति आन॥
जब देखिहऽ रूप धौर।
टका चारि दीहऽ उपरौड़॥
जब देखिहऽ मैना।
तब एहि पार सँ करिहऽ बैना॥
जब देखिहऽ बैरिया गोल।
उठ बैठ कै करिहऽ मोल॥
जब देखिहऽ करियवा कन्त।
कैला गोला देखह जनु दन्त॥"

अर्थात्, कोई प्रियतमा बैल खरीदने के लिए जाते हुए अपने प्रियतम से कह रही है—"हे प्रियतम, तुम बैल खरीदने जाते हो, देखना दो-दो दाँतवाला बैल खरीदना। जाँघ के ऊपर का भाग (पुट्ठा) सुंदर और श्वेताभ हो—यह बैल की कसौटी है, इसे छोड़कर दूसरा मत खरीदना। जब देखना कि बैल का वर्ण धवल है, तो चार रुपये अधिक (उपरौड़= उपरौन) भी दे देना। जब देखना कि बैल मैना (शिथिलशृंग) है, तो सड़क या नदी-नाला पार किये बिना भी बयाना दे देना। (इसे देखने की उतनी आवश्यकता नहीं है, अवश्य ही वह अच्छा होगा।) जब देखना कि लाल सिर और हलके लाल शरीरवाला है, तो जरा अच्छी तरह देख-भालकर खरीदना। और, ऐ प्रियतम, यदि तुम्हें काला, कैला (पीत-श्वेत) और गोला (लाल) बैल मिले, तो दाँत मत देखने लगना, झट से खरीद लेना।"

बैल खरीदने में यह निषेध है—

"सरग पताली भौंआ टेर।
आपन खाय परोसिया हेर।"

—सरगपताली (ऊपर-नीचे सींगोंवाला) और भौंआटेर (टेढ़ी भौंहवाला) बैल अपने मालिक और पड़ोसी को भी खोज-खोजकर खाता है।
[बैल < बल्ल < बलिन्, < बलीवर्द-]।

बैल–(सं०) हल या हेंगे आदि में चलनेवाले बैल (प०)। दे०—बरद। हरेआ बैल—जो बैल, गाड़ी आदि में न चलकर केवल हल और हेंगे में ही चलते हैं (उ० प०, गया)।

बैलबंधी—(सं०) रैयतों पर हल के अनुपात से लगाया गया कर (गाइड०)।



बैसक–(सं०) वह आधार, जिसपर कोठी या बखारी आदि अवस्थित रहती है (पू० मै०, द० मुं०)। दे०—गोड़ा।
[बैसक < बैसक<बैसल, बइसल (मै०) = बैठना <√विश्]।

बैसका–(सं०) जाँता चलानेवाली औरतों के बैठने के लिए मिट्टी की बनी पीठिका। दे०—बैसनी।
[बैसका < बैसल, बइसल (क्रि०)=बैठना]।

बैसको—(सं०) जाँता आदि चलानेवाली औरतों के लिए मिट्टी की बनी पीठिका (द० भाग०)। दे०—बैसनी।
[बैसको < बैसक < बैसल, बइसल]।

बैसन—(सं०) (१) जाँता आदि चलानेवाली औरतों के बैठने के लिए मिट्टी की बनी पीठिका (द० पू० मै०)। दे०—बैसनी। (२) मिट्टी की बनी बैठकी, जिसपर बरतन आदि बिठाये या रखे जाते हैं (मुं०-१)। (३) कोठी आदि के रखने की पीठिका। (४) जाँता चलाते समय औरतों के बैठने की पीठिका। पर्या०—बैसना।
[बैसन < बैसल, बइसल]।

बैसना—(सं०) (मुं०-१)। दे०—बैसन।

बैसनी—(सं०) जाँता चलानेवाली औरतों के बैठने के लिए मिट्टी की बनी पीठिका। पर्या०—बैठनी (चंपा०), बैसन (द० पू० मै०), बैसका (द० मुं०), बैसको (द० भाग०)।
[बैस+नी (प्र०) < बैसल ; बइसल (= बैठना) < बेशनी <√विश्]।

बैसल—(क्रि०) (मै०)। दे०—बैठल।

बैसला बाय—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे इनका पिछला अंग बेकार हो जाया करता है (पट०-१)।

बैसाख—(सं०) वैशाख, भारतवर्ष का द्वितीय और वसंत ऋतु का अंतिम मास (अप्रैल के अंतिम तथा

मई के आदि के १५-१५ दिन)। इसकी पूर्णिमा में प्रायः विशाखा नक्षत्र पड़ता है।

[बैसाख < वैशाख < विशाखा (नक्षत्र) + अण् (अ) ; बैसाख (हिं०), बैसाक (ने०)]।

बैसाखी—(सं०) (१) ग्रीष्म ऋतु में होनेवाली फसल (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) लँगड़ों के सहारे के लिए विशेष प्रकार की बनी लाठी।



[बैसाख + ई (प्र०) < बैसाख < वैशाख < विशाखा (नक्षत्र)+अण् (=अ)]।

बैहार—(सं०) गाँव के बाहर की जमीन, खेत-पथार (द० भाग०)। दे०—बहरसी।

[बैहार < बहिः केदार-(?)]।

बोंग-(सं०) (१) भारी लाठी। पर्या०—बजरबोंग (उ० प०, मुं०-१)। (२) छोटी, लेकिन मोटी लाठी (चंपा०-१)।



[बोंग (देशी)]।

बोअनी—(सं०) (१) बोने की प्रक्रिया, बोना (प०, द० भाग०, चंपा०)। पर्या०—बावग, बाओग, बाउग (पू०), बोआइ (गं० द०, चंपा०), बोनी (पट०, द० मुं०), बोअनी (द० भाग०, चंपा०)। (२) बोने का समय (गं० उ०)। पर्या०—बोगहा (गं० द०), बावग।

[बोअ+नी (प्र०) < बोअन < √वप्]।

बोअल—(क्रि०) बोना, बुनाई करना। पर्या०—बावग करल, बुनल (प्रा०)।

[बोअ + ल (प्र०) < बोअ < √वप् (वपति); बोना (हिं०)]।

बोआइ—(सं०) बोने की प्रक्रिया, बोना (गं० द०, चंपा०)। दे०—बोअनी।

[बोअ+आइ (प्र०) < बोअ < √वप्]।

बोआरी—(सं०) चोईंटा-रहित एक प्रसिद्ध मछली (सा०-१)।

[बोआरी < (?)]।

बोइन-(सं०) कपास चुननेवाले मजदूर या मजदूरिन को दी जानेवाली चुनी हुई कपास की मजदूरी (उ० पू० मै०)। दे०—पई।

[देशी]।

बोकड़ा-(सं०) (१) पहली बार कूटा गया चावल, जिसमें धान-चावल मिला रहता है (सा०)। दे०-मुहचुर।

[बोकड़ा < बोकला (बिहा०) = छाल, छिलका, भूसी]।

(२) एक प्रकार का बकरा, जो साँड़ की तरह स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है, बोका (उ० प० मै०)। दे०—छागर।

[बोक + ड़ा (प्र०) < बोक < बुक्क (संस्कृ०) = बकरा, बोक्कड़ (प्रा०) ; बोको (ने०) ; बोको (कुमा०); बोका (बँ०)=बकरा, मूढ़ ; बोका (ओ०)=मूढ़ ; बोका (हिं०) ; बोका (बिहा०)=बकरा, मूढ़ ; बोक (पं०) ; बोक् (पं०, ल०) ; बोक (सिं०) ; बोकड़ (गु०) = बकरा, बोकड़ (मरा०)]।

बोकला—(सं०) (१) बीजकोष का उपरला छिलका (शाहा० के शे० भा०, द० पू० बिहा०)। दे०—खोइया। (२) छिलका।

[बोकला < वल्कल-। वल्कल (संस्कृ०) ; बुक, बक (भा०) ; बक्कल (प्रा०, पा०); बकु (शिना०) ; बकला, बोकला (हिं०) ; बोक्रो (ने०) ; बकल (कुमा०) ; बाकल (बँ०, असा०) ; बक्क (पं०) ; बाक (गु०) ; बाक (मरा०) ; वाकनिया (सिंह०) = एक प्रकार का पौधा, जिसके छिलके से धनुष की प्रत्यंचा बनाई जाती थी]।

(३) एक प्रकार की लंबी सेम, जिसकी छीमी की तरकारी और दानों की दाल, बेसन आदि बनते हैं। पर्या०—बँगला (उ० प०), बकला (चंपा०), बकुली (उ० प० मै०), बोकला बीन (द० पू० मै०), रहिला सीम (दर०)। (४) भुट्टे के ऊपर का छिलका (सामा०)। दे०—खोइया। (५) वृक्ष की छाल। (६) फलों का छिलका (चंपा०-१)।

[बोकला < वल्कल-१]।

बोकलाबीन-(सं०) एक प्रकार की लंबी सेम (द० पू० मै०)। दे०—बोकला।

[बोकला+बीन ; बोकला<वल्कल ; बीन (अं०)]।

बोकहवा धान—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान, जिसका चावल लाल होता है (पट०-१)।

बोका—(सं०) (१) साँड़ की तरह छोड़ दिया गया बिना बधिया किया हुआ बकरा (सामा०)। (२) मूर्ख, बेवकूफ।

[बोका < बुक्क-। दे०—बोकड़ा]।

बोगहा-(सं०) (१) बोने का समय (गं० द०)। दे०—बोअनी। (२) वह धान, जो एक बार ही छींटकर बोया जाता है (पट०)। दे०—बावग।

[बोग+हा (प्र०) < बोग < वापक (?)]।

बोगिया—(सं०) गोबर ढोने की छोटी टोकरी (पट०)।

[देशी]।

बोगेड़ा—(सं०) वह धान, जो एक बार ही छींटकर बोया जाता है, न कि रोपा जाता है (पट०)। दे०—बावग।

[बोग + ड़ा (प्र०) < बोग < वापक (?) या देशी]।

बोझनिया हौद—(सं०) नील के कारखाने का ऊपरवाला ढालुआ कुंड (पू० मै०)। दे०—बोझाइ के हौद। यह शब्द अब नील की खेती के न होने से, अप्रयुक्त हो गया है।

[बोझनिया+हौद (यौ०) ; बोझनिया < बोझा ; हौद < हौज]।

बोझबटाइ—(सं०) खेत में कटे अनाज के बोझों के रूप में बाँटने की प्रक्रिया। पर्या०—नारबटाइ (चंपा०, द० पू० मै०), जजाती बटाइ (उ० प०)।

टि०—अन्न के बाँटने के दो तरीके हैं—खेत में फसल का बाँटना और खलिहान में दबोंही-दौनी करके अन्न बाँटना।

खेत में भी फसल के बोझों का ही बाँटना या फसल का मूल्य-निर्धारण करके बाँटना, ये दो तरीके व्यवहृत होते हैं। सभी का यथास्थान विवरण दिया जायगा।

[बोझ + बटाइ (यौ०) ; बोझ < बोझा ; बटाइ < बाँटल]।

बोझल—(क्रि०) बोझना, भार देना, किसी वस्तु को भरना।

[बोझ+ल (प्र०) ; बोझ < वाह्य <√वह्]।

बोझवाहा—(सं०) धान के बीज के बोझों को ढोनेवाला (पट०-१)।

बोझा—(सं०) (१) घास-भूसा आदि का भार या बोझा। पर्या०—मोट (पट०, गया, शाहा०)। (२) एक आदमी के ढोने लायक उपज या किसी अनाज का बँधा हुआ भार या बोझ। (३) पाँजा से बड़ी फसल की राशि, जिसे एक आदमी अच्छी तरह ढो सके।

टि०—बिहार में प्रायः सर्वत्र एक ही परिमाण का बोझा होता है और सर्वत्र इसी शब्द का व्यवहार होता है। इसके विपरीत बोझा से बड़े परिमाण 'सोरही' 'एकैसी' या 'एकैसिया' और 'तिसौर' में विभिन्नता आ गई है। प्रति बोझा एक अँटिया फसल काटनेवाले को 'मजदूरी' में दी जाती है।

(४) कटनी के समय प्रतिहल किसान के द्वारा बढ़ई, चमार आदि शिल्पी या श्रमिक-वर्ग को एक निश्चित परिमाण में (बोझा-भर) दिया जानेवाला धान (सा०, पट०, गया, द० पू०)। पर्या०—पाँजा, अँटिया (चंपा०), पंजौर (उ० पू० मै०)।

[बोझा<बोझल<वाह्य<√वह्; बोज्झ (प्रा०)]।

बोझाइ के हौद–(सं०) नील के कारखाने का ऊपरवाला ढालुआ कुंड। पर्या०—बोझनिया हौद (पू० मै०)।

[बोझाई+के+हौद (यौ०)]।

बोड़ी–(सं०) एक प्रकार की दाल, जिसकी छीमियाँ तरकारी के काम में भी लाई जाती हैं (चंपा०-१)।



[बोड़ी (देशी) या < वरट (?) = एक प्रकार का अन्न; संभवतः कुसुम का बीज—(मो० वि० डि०)]।

बोड़ो—(सं०) साठी की तरह एक धान, जो बैशाख में काटा जाता है (सा०-१)।

[बोड़ो < वरट-(?)]।

बोढ़न—(सं०) बुहारने के लिए मेहतरों तथा अन्य लोगों द्वारा काम में लाया जानेवाला साधन-विशेष, झाड़ू (सं० द०, पू०)। दे०—झाड़ू।

[बोढ़न < वर्धन या वर्धनी]।

बोढ़नी—(सं०) (१) बुहारने के लिए मेहतरों तथा अन्य लोगों द्वारा काम में लाया जानेवाला साधन-विशेष, झाड़ू (सं० द०, पू०)। दे०—झाड़ू। (२) झाड़ू, झाड़न।

[बोढ़नी < वर्धनी <√वर्ध्]।

बोढ़नी झाँड़ल—(क्रि०) (१) बोढ़नी से मारना (मुं०)। (२) अनादर करना, अनादर करके निकाल देना। (३) बोढ़नी से मारना, अनादर करना। एक प्रकार की गाली में प्रयुक्त।

[बोढ़नी < वर्धनी <√वर्ध्]।

बोढ़ल—(क्रि०) झाड़ू देना, झाड़ू देकर साफ करना। दे०—बोहारल।

[बोढ़+ल (प्र०) ; बोढ़ < वर्ध <√वर्ध्]।

बोता—(सं०) ऊँट का छोटा बच्चा (उ० पू० मै०)।

[बोता < पोतक (?)]।

बोतू—(सं०) एक प्रकार का बकरा, जो साँड़ की तरह स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है ; बोका (पट०)। दे०—छागर।

[देशी (?) मिला०—बोतु (संस्कृ०) = बिलार, वन्योतु=वनबिलार]।

बोतो—(सं०) एक प्रकार का बकरा, जो साँड़ की तरह स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है, बोका (द० पू० बि०)। दे०—छागर।

[बोतो < बोतू (देशी ?)]।

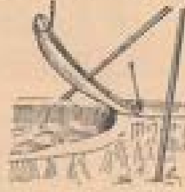
बोथ—(सं०) नदी का वह भाग, जहाँ घास उगी हुई हो (चंपा०-१)।

[बोथ (देशी ?)]।

बोथल—(क्रि०) किसी को किसी तरल पदार्थ से अच्छी तरह भिगोना या भर देना (चंपा०-१)।

[बोथ+ल (प्र०) < बोथ < (?)]।

बोदर-(सं०) भूमि की ऊँचाई, जहाँतक करीन आदि से पानी ऊपर उठाया जाता है (सा०, शाहा०)। पर्या०—अनुआ (चंपा०), गार (उ० प० मै०), चढ़ाव (सं० द०), अनौआ (द० प० शाह०), ठाँव।



[बोदर < (?)]।

बोन—(सं०) खेतिहर मजदूरों को दी जानेवाली मजदूरी (पू० मै०)। दे०—बन।

[बोन < बन (यहाँ 'ओ' का उच्चारण वस्तुतः 'अ' का ओष्ठ्य उच्चारण है। पू० बिहा० में सामान्यतः प्रचलित है। बन < पण (?) < √पण्]।

(२) जंगल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बोन ('अ' के ओष्ठ्य उच्चारण के साथ)<वन-]।

बोनी—(सं०) बोने की प्रक्रिया, बोना (पट०, द० मुं०)। दे०—बोअनी।

[बोनी < बोअनी <बोअल (क्रि०)< √वप्]।

बोर—(सं०) (१) किसी तरल पदार्थ में सूखे पदार्थ को डुबोकर निकालने की प्रक्रिया; जैसे रोटी आदि दाल आदि में बोरकर खाई जाती है। पर्या०—बोरबोर (गया, पट०), सानि (द० भाग०), सोन (द० मुं०)। (२) बेलदार लोगों द्वारा कोड़ी हुई जमीन में मिट्टी नापने के लिए छोड़ा गया मिट्टी का टोला (पट०-१)।

[बोर < बुड़ (प्रा०) < बुड < √मुड् (मुडति)]।

बोरबोर—(सं०) किसी तरल पदार्थ में किसी सूखे पदार्थ को डुबोकर निकाल लेने की प्रक्रिया (गया, प०)। दे०—बोर।

[बोर + बोर (द्विरुक्ति); बोर < बोरल < √मुड्]।

बोरल—(क्रि०) तरल पदार्थ में सूखे पदार्थ को डुबाना।

[बोर+ल (प्र०); बोर < बुड < √मुड्]।

बोरसी—(सं०) मिट्टी का चौड़े मुँह का बरतन, जिसमें आग जलाकर रखी जाती है (पट०-१)।

बोरा—(सं०) चावल आदि अन्न ढोने या रखने का बड़ा थैला। पर्या०—तंगी।

[बोरा < पुटक <पुट+क (प्र०); पुटक-(संस्कृ०)= थैला या थलिया; बोरा (हिं०, बँ०, ओ०, पं०, म०); बोरो (ने०); बोरी (सिं०, गु०); बोरा (मरा०); बोरी (क्रिमा०)]।

बोरो—(सं०) (१) एक प्रकार का निकृष्ट धान, जो आश्विन या कार्त्तिक में नदी, बहाव या पोखरे आदि के किनारे गीली भूमि में बोया जाता है और पूस-माघ में उखाड़ा जाता है या काटा जाता है। (२) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। (३) एक प्रकार का धान, जो गरमी में तैयार होता है (चंपा०-१)। (४) बोड़ा नाम का दलहन, जिसकी छीमी की तरकारी भी बनती है।

[बोरो < वरट-(?)]।

बोहा—(सं०) (१) बाढ़, वर्षा के कारण नदी आदि में हुई जलवृद्धि (द० पू०)। दे०—दहार। (२) पानी की बाढ़, जल-प्लावन (मुं०-१)।

[बोहा < बाह < √वह्]।

बोहारल—(क्रि०) झाड़ना, झाड़ू से जमीन आदि साफ करना। पर्या०—बाढ़ल (पट०, गया, द० पू०), बोढ़ल (पू०), बहारल (प०), बाढ़ल (मै०), झारल या झारि झुरि देल (मै०)।

[बोहार+ल (प्र०); बोहार < बहार < बर्ध < √वर्ध् (?)]।

बोहावल—(क्रि०) बाढ़ के पानी की तरह बरबाद कर देना। भसाना।

[बोहा+आवल, वल; बोहा < बाह < √वह्]।

बौखल—(क्रि०) (१) आँधी के झोंके के साथ उड़ जाना। (२) पथभ्रष्ट होना। (३) मन चंचल हो उठना, बहकना, भटकना। (४) व्याक्षिप्त होना। (वि०) बौखा हुआ (मुं०-१)। पर्या०—बउखल।

[बौख + ल (प्र०); बौख (?); < वायु (वात)-क्षिप्त (?); मिला०—व्याक्षिप्त (संस्कृ०); बखिखत, बक्खित्त (प्रा०)=वायुग्रस्त=पागल,वातव्याधि-पीड़ित]।

बौखी—(सं०) तेज हवा, आँधी (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बौखी < बौ + खी; बौ < वायु; खी < आख्या; मिला०—वातास्य]।

बौखी—(सं०) आँधी, गैर, बवंडर (मुं०-१)।

बौघा—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले होनेवाली धान की बुआई (पट०)। दे०—खरहुल बावग।

[बौघा < बावग < वापक (?)]।

बौर—(सं०) आम की मंजरी।

[बौर < (देशी)]।

बौरल—(क्रि०) (१) बौरना, आम का मँजराना। (२) पागल होना, मदांध होना।



[बौर+ल (प्र०) < बौर]।

भ

भँउरी—(सं०) पानी का चक्कर (चंपा०-१)।
[भँउरी < भ्रमरी, भ्रमर-]।

भंख—(सं०) एक प्रकार का रोग, जो साँवाँ की फसल पर प्रहार करता है (पू०)। पर्या०—भाँख, भाँखी (उ०)।
[भंख (देशी)। मिला०—भृङ्ग= कीट-विशेष]।

भंख—(सं०) निर्जनता, सूनापन। भंख लोटल-(मुहा०)= उजाड़ दिखाई पड़ना (मुँ०-१)।
[भंख-(?), < भङ्ग-(?)]।

भँखचटुआ—(सं०) पाला पड़ा या मारा लगा हुआ ज्वार, मकई, बाजड़ा आदि (मै०)। दे०—भखियाएल।
[भंख+चटुआ (दी०) < ?]।

भँगठल—(क्रि०) काम बिगड़ना, झंझट या उलझन पैदा होना (मुँ०-१)।
[भँगठ+ल (प्र०); भँगठ<भग्न< √भञ्ज्]।

भँगठाहा—(वि०) (१) वह कोल्हू, हल आदि, जिसमें अक्सर मरम्मत आदि के कारण झंझट पैदा होता हो। (२) झंझटिया, बिगाड़ू वस्तु (मुँ०-१)।
[भँगठ + आहा (प्र०); भँगठ < भग्न < √भञ्ज्]।

भंग, भाँग—(सं०) (१) भाँग की पत्ती, जिसे पीसकर पिया जाता है। (२) भाँग का पौधा। दे०—भाँग।
[भंग < भङ्गा, भङ्ग। दे०—भाँग]।

भँगर—(सं०) धान को हानि पहुँचानेवाली एक छोटी लत्तर-घास, जिसमें उजला फूल होता है (पट०, गया, प० मै०, द० मुँ०)। यह एक ओषधि है। इससे तेल भी बनाया जाता है। पर्या०—भँगेरिया (उ० बि०, शाहा०), भँगरैया (मै०, पू०), भँगरिया (मै०)।
[भँगर < भृङ्गराज-]।

भँगरिया—(सं०) धान को हानि पहुँचानेवाली एक छोटी लत्तर-घास, जिसमें उजला फूल होता है (मै०)। दे०—भँगर।
[भँगरिया < भृङ्गराज-]।

भँगरैया—(सं०) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक छोटी लत्तर-घास, जिसमें उजला फूल होता है (मै०, पू०)। दे०—भँगर।
[भँगरैया < भृङ्गराज-]।

भंगा—(वि०) फूटा हुआ, टूटा हुआ (मुँ०-१)।
[भंगा < भग्न < √भञ्ज्]।

भँगेरिया—(सं०) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक छोटी लत्तर-घास, जिसमें उजला फूल होता है (उ० बि०, शाहा०)। दे०—भँगर।
[भँगेरिया < भृङ्गराज-। भँगेर + इया (प्र०); भँगेर < भृङ्गराज-]।

भँजहरिया—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर अपनी खेती करने की बारी। दे०—भाँज।
[भँज+हरिया ; भँज < भाँज (?); हरिया < हर < √हृ (?) या (प्र०)]।

भँजैठ—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर अपनी खेती करने की बारी (द० पू० बि०)। दे०—भाँज।
[भँज+पठ; भँज <भाँज ; पठ< (?) या (प्र०)]।

भँजैत—(सं०) सम्मिलित खेती में अपनी बारी से खेती करनेवाला किसान (मै०)। दे०—भाँजोवाला।
[भँज+ऐत; भँज < भाँज; ऐत (प्र०)]।

भँजौती—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के लिए अपनी खेती करने की बारी (उ० पू० मै०)। दे०—भाँज।
[भँज+औती < भाँज+औती (प्र०)]।

भँटकोया—(सं०) मकोय (चंपा०-१)।
[देशी]।

भंटा-(सं०) (१) बैंगन का एक भेद, जो गोल होता है। दे०—बैंगन। (२) गोल बैंगन। यह प्रायः भुरते के काम में आता है (मुँ०)। पर्या०—भट्टा।
[भंटा<वृन्ताक, वृन्ताक (?) ; भंटा (हिं०, ने०)]।

भंडार—(सं०) भाँडार। वस्तुओं के रखने का घर।
[भंडार < भाण्डार < भाण्डागार-, भंडार; भण्डाकर (प्रा०); भंडार (हिं०, पं०); भँड़ार (ने०); भण्डार (प० पहा०); भनार (कुमा०); भँराल (असा०); भाँड़ार (बँ०); भण्डार (ओ०); भण्डार (गु०); भंडार (सिं०); भँडार (गु०); भाँडार (मरा०)]।

भँडारी—(सं०) (१) एक गाड़ी की पेंदी में अन्न गिरने से बचाने के लिए बिछाई हुई चटाई (द० भाग०, गया, पू० मै०)। दे०—चटाइ। (२) भंडार का मालिक, देखरेख करनेवाला।
[भँडारी, मिला०—भंडारी (हिं०); भाण्डागारिक (संस्कृ०); भाण्डागारिक (पा०); भण्डागारिअ (प्रा०); भंडारी (हिं०, पं०, गु०); भाँडारी (मरा०); भण्डारी (प० पहा०); भँडारि (ने०); भँराल (असा०); भाँड़ारी (बँ०); भण्डारि (ओ०); बड़ार (सिंह०)]।



भँड़ार—(सं०) (१) वह मादा पशु, जिसके बच्चा पैदा होने के समय उसकी जननेंद्रिय के रास्ते गर्भकोष निकल आता है (सा०-१)। (२) भैंसों का एक रोग। मूत्रद्वार के जरिये एक प्रकार का लाल रंग के मांसपिंड का आना (सा०-१)।

[देशी-१, मिला०—भंडार (हि०); भाण्डागार (संस्कृ०)]।

भँड़ ुकी—(सं०) छोटा कच्चा कुआँ (द० भाग०)। पर्या०—भड़कुई।

[भँड़ ुकी < भँड़ुका (=बरतन) < भाण्डक (?)]।

भँवरा—(सं०) (१) एक प्रकार का कीड़ा, जो सूखे समय में संगृहीत अन्न या ज्वार पर आक्रमण करता है (पू० मैं०, शाहा०)। पर्या०—भँड़ा, भँड़वा (पट०, पू०)। (२) भौंरा।

[भँवरा < भ्रमरक]।

भँसल—(क्रि०) डूबना, बहना, दहना (मुं०-१)। पर्या०—भँसियल।

[भँस+ल (प्र०); भँस < भ्रंश < √भ्रंश्]।

भँसावल—(क्रि०) (१) बहाना, बोहाना, डुबाना, बरबाद करना। (२) कम कीमत में खपा देना। (३) देवी-देवता की मूर्त्ति का जलप्रवाह करना (मुं०-१)।

[भँस+आवल (प्र०); भँस < भ्रंश < √भ्रंश्-]।

भँसुआठा—(वि०) भाँसा-जैसा, निकम्मा (मुं०-१)। भँसुआठी (स्त्री०)।

[भँसु + आठा (प्र०); भँसु < भँस < भ्रंश < √भ्रंश]।

भई—शृंग-पुच्छयुत कृष्ण वर्ण की दूध देनेवाली एक प्रकार की पारिवारिक पशु-जाति, भैंस। भैंसा का स्त्री० (सं० उ०)। दे०—भैंस।

[भई < भैंस। दे०—भैंस]।

भकठल—(क्रि०) खराब होना, बिगड़ जाना (चंपा०-१)। पर्या०—भड़ठल।

[भकठ + ल (प्र०) < भकठ < भक+ठ (प्र०); भक < भग्न < √ भञ्ज् (?)]।

भकठा—(सं०) (१) हल आदि की खराबी या बिगड़ जाना (चंपा०-१)। (२) व्याघात।

[भक+ठा (प्र०); भक < भग्न < √भञ्ज्]।

भकुरा—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१, चंपा०-१)। पर्या०—कतला।

[भकुरा < भेकुरा (?) वा भेक]।

भखड़ जाएल—(क्रि०) बीज का मर जाना या नहीं उगना (पू० मैं०)। दे०—बिजमार।

[भखड़ + जाएल (सौ०); भखड़ < √भ्रंश्; जाएल < √ या]।

भखियाएल—(०) पाला पड़ा या मारा लगा हुआ ज्वार, मकई, बाजरा आदि (उ० प०)। पर्या०—भँखचटुआ (मैं०), सुक्खा, खोखड़ा (शाहा०), अलगल (गया), फुलहर (पट०)।

[भखि+आएल (प्र०); भखि—(देशी)]।

भगजोगनी—(सं०) जुगनू, खद्योत। वह कीड़ा, जिसका पिछला भाग बरसात की रात में कभी चमकता है और कभी बुझ जाता है (चंपा०-१)।

[भग+जोगनी (सौ०); भग < भग (?); जोगनी < योजनी या ज्योतिर्। मिला०—ज्योतिरिङ्गण (संस्कृ०)=जुगनू]।

भगना—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।

[देशी-१]।

भगाड़ा—(वि०) बिना बाँधा हुआ मिट्टी का कच्चा कुआँ, जो टूटकर गिर पड़ता है (प०)। दे०—भसल।

[भगाड़ा < भँगठ < भँगठल < √भञ्ज्]।

भजहा—(सं०) पशुओं के मुख या पैर का एक प्रकार का (खुजली) रोग (द० पू० मैं०)। दे०—खोरहा।

[भजहा (?)]।

भटका—(सं०) धान का वह बीज, जो उखाड़ते समय टूट जाता है और पीछे उसी टूटी हुई जड़ से दूसरा पौधा निकल जाता है (चंपा०-१)।

[देशी]।

भटकुआँ—(सं०) मकोय का बैंगनी रंग का एक भेद। दे०—मकोय।

[भट+कुआँ (?)]।

भटकोआ—(सं०) मकोय का बैंगनी रंग का एक भेद। दे०—मकोय।

[भट+कोआ (?)]।

भटी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।

[देशी]।

भट्ठा—(वि०) बिना बाँधा हुआ मिट्टी का कच्चा कुआँ, जो टूटकर गिर पड़ता है (चंपा०, पट०, गया)। दे०—भँसल। (२) पकाने के लिए इकट्ठा किये हुए ईंटों, खपड़ों आदि का विशेष प्रकार से बनाया गया पुंज या आवाँ (३) लिखने की खड़िया मिट्टी।

[भट्ठा < भ्रष्टक (?); < भट्टिक-। भट्ठा < भठल (= भठना, गिरना-(बिहा०) < भ्रष्ट < √भ्रंश]।

भट्ठी—(सं०) (१) भाथी के आगे का वह स्थान, जहाँ आग जलती है (रो०)। (२) विशेष आकार-प्रकार का ईंटों आदि का बना हुआ चूल्हा, जिसपर हलवाई पकवान्न बनाते हैं। (३) लोहारों द्वारा

लोहा गलाने का विशेष चूल्हा। (४) वैद्यों द्वारा रस आदि फूंकने के उपयोग में आनेवाला विशेष चूल्हा। (५) वह स्थान, जहाँ देशी शराब बनती या बिकती है।

[भट्ठी < भ्राष्ट्र (संस्कृ०); भट्ठ (प्रा०)]।

भठल—(सं०) (१) किसी गड्ढे का स्वयं भर जाना। (२) तट, भीत आदि से मिट्टी का गिरना (चंपा०-१)। (३) किसी मर्द के साथ स्त्री का व्यभिचार करना।

[भठ+ल (प्र०); भठ < भट्ठ < भ्रष्ट < √भ्रंश्]।

भठा—(सं०) (१) चीनी बनाने का घर (द० भाग०)। दे०—चूल्हा के घर। (२) पकाने के लिए ईंटों, खपड़ों आदि का विशेष प्रकार का बना हुआ पुंज।

[भठा < भट्ठा < भटिक- (?)। < भ्राष्ट्रक— (नेपा०); भट्ठा (हिं०); भट्ठा (मै०)]।

भठाएल—(सं०) धारी लगाकर बोने का वह प्रकार, जिसमें पहली धारी के साथ-साथ बोने के लिए एक दूसरी धारी भी जोती हुई हो। इस प्रकार का उपयोग अधिकतर रबी फसल में होता है। पर्या०—दोधरिया, दोहार, समार।

[भठ+आएल (प्र०); भठ < भ्रष्ट-(?)]।

भठावल—(क्रि०) (१) जोते हुए खेत को हेंगा देने के बाद कुदाल या हाथ से ढेला तोड़कर बराबर करना (चंपा०-१)। (२) किसी खड़ी वस्तु को गिराकर ध्वस्त करना। (३) गड्ढे, कुएँ आदि को भरना। (४) किसी को भ्रष्ट करवाना।

[भठ+आवल (प्र०); भठ<भट्ठ<भ्रष्ट<√भ्रंश्]।

भठिला—(सं०) जिधर पानी बहता है, वह दिशा (मछली पकड़ने में प्रयुक्त)—(चंपा०-१)।

[भठिला < भठल < भ्रष्ट < √भ्रंश्]।

भड़का—(सं०) जल की धारा में नीचे किसी चीज के रहने के कारण ऊपर पानी का बिखरना (सा०-१)।

[भड़का < भड़कल (बिहा०); भड़कना (हिं०)]।

भड़कुई—(सं०) छोटा कच्चा कुआँ।

[भड़+कुईं, भड़ < भठल; कुईं < कुवी<कूप-]।

भड़भड़ावल—(क्रि०) (१) भूनने के समय चबेने आदि का 'भड़भड़' शब्द के साथ फूटना, 'भड़भड़' का शब्द होना या करना (मुं०-१)। (२) मिट्टी, ईंट आदि की बनी दीवार, मकान आदि का भड़भड़ाहट के साथ गिर पड़ना।

[भड़+भड़ (अनु०)]।

भतिया—(सं०) (१) लत्तर में फलनेवाला एक लंबा फल, ककड़ी। यह ककड़ी की छोटी जाति है (पट०-१)। (२) बतिया, छोटा कोमल नवीन फल।

[भतिया<बतिया<वर्तिका; मिला०—संवर्तिका= कमल का नया दल—'संवर्तिका नवदलम्'—अमर०]।

भतुआ—(सं०) कोंहड़े की जाति का एक श्वेत-हरित फल। इसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा आदि बनाने में होता है। पर्या०—भूआ, भूरा (गया), सिसकोंहड़ा (भाग०, चंपा०), सिजकोंहड़ा (मै०), भूरजकोंहड़ा (द० पू० मै०), कुम्हड़ा (पू०)।

[भतुआ (देहा); भतुआ (हिं०); भतुवा (ने०) = भिच्चुक]।

भथकुआँ—(सं०) वह कच्चा कुआँ, जिसकी दीवारें टूट-टूटकर गिर पड़ती हैं और वह भर जाया करता है।

[भथ + कुआँ (यौ०); भथ < भथल < भ्रष्ट < √भ्रंश्; कुआँ<कूप-]।

भथल—(क्रि०) (१) भठना, दीवार की मिट्टी के गिरने से गड्ढे, कुएँ आदि का भर जाना। (२) तट की भूमि का जलवेग के कारण टूट-टूटकर गिरना। दे०—भठल।

भदई—(सं०) (१) भादो महीने में होनेवाली फसल (पट०-१, गाइड०)। (२) धान का एक प्रकार, जो भादो-आसिन में तैयार होता है (चंपा०-१)।

[भदई<भादो<भाद्रपद-]।

भदय—(सं०) भदई फसल (पट०-१, पूर्णि०-१)।

भदरल—(सं०) फल आदि का जमीन पर अधिक मात्रा में चू पड़ना (चंपा०-१)।

[भदर+ल (प्र०) < भदर (अनु०)]।

भदवा—(सं०) धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्र, पंचक।

[भदवा < भाद्रपद-(?)]।

भदवारी—(सं०) भादो महीने से संबद्ध, भदैया (मुं०-१)।

[भदवारी < भाद्रपदीय-(?)]।

भदवी—(सं०) भादो में फलनेवाली उड़द (द० मुं०)।

[भद+वी (प्र०) < भाद < भाद्रपद-]।

भदेड़ल—(क्रि०) भादो महीने में खेत का जोतना (चंपा०-१)।

[भदेड़+ल (प्र०)<भदेड़ < भादो < भाद्रपद-]।

भदैया—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो जेठ महीने में बोया जाता है और भादो-आसिन में काटा जाता है (उ० प०)। दे०—साकोन, भदई। (२) एक प्रकार की लाल कपास, जो भादो महीने में पकती है। इसकी खेती दरभंगा में होती है तथा इसका सूत महीन और सुंदर होता है। दे०—कोकटी।

(३) भादो में होनेवाली फसल। (वि०) भादो महीने से संबद्ध।

[भद+ऐया (प्र०)<भादो<भाद्द-, भाद्रपद-]।

भभरा—(सं०) रहर, चना और मूँग के बेसन की बनी रोटी या लिट्टी (पट०, गया)। दे०—लिट्टी।

[भभरा<भर-भर (अनु०)]।

भभसल—(सं०) वह फसल, जो कारणवश अधिक बढ़ गई हो या फैल गई हो और इसी कारण उसमें फली न लगी हो।

भभूतिया—(सं०) एक प्रकार का केला, जो राख-सा धूमिल होता है (चंपा०-१)।

[भभूत+इया (प्र०)<भभूत (राख)<विभूति-]।

भम्हारी—(सं०) आहर के तट के नीचे खोदने के कारण बना हुआ गुफा-जैसा गड्ढा (गाइड०)।

[देशी]

भर—(सं०) कोल्हू के चारों ओर का वह क्षेत्र, जिसमें बैल घूमता है (प०, भाग०)। दे०—पौर। (क्रि० वि०) भरकर, पूरा, संपूर्ण।

टि०—इसका प्रयोग यौगिक शब्दों में अंतिम पद के रूप में होता है। यथा—दौरा-भर=एक दौरा परिमाण; अँजुलि-भर=एक अंजलि परिमाण।

भरकदस्त—(सं०) वह बैल, जिसके दाँत गिर पड़े हों (पट०-१)।

भरकल—(क्रि०) (१) भड़कना, डरकर या विस्मयकारी वस्तु को देखकर बैल आदि का भड़क उठना। (२) अनाज की पूँज का नीचे से खाली होने के कारण नीचे की ओर खिसकना। (३) किसी मनुष्य का किसी व्यक्ति या वस्तु से अलग रहना। (४) अग्नि का प्रज्वलित होना।

[भरक+ल (प्र०)<भरक<भड़क<भ्रष्ट-(?)<√भ्रंश्; भड़कना (हि०); भड्कनु (ने०)=प्रस्थान करना, उठना]।

भरका—(सं०) वर्षा की अधिकता और दक्षिणी हवा के घातक प्रभाव के कारण उत्पन्न होनेवाला एक कीड़ा, जो धान की फसल को खा जाता है और धान पीला पड़ जाता है, फल नहीं लगता। (प० मै०, द० पू०)। भरका लगल (मु०)=भरका कीड़ा का आक्रमण करना।

भरकी—(सं०) धान के पौधे का एक रोग (द० भाग०)। दे०—भरका।

भरखर—(सं०) किसी फल का पूरी तरह और एक साथ पक जाना (चंपा०-१)।

[भरखर (देशी)]।

भर खुरपी सोहल—(क्रि०) खुरपी से गहरी कोड़ाई करके सोहना, घास आदि निकालना। पर्या०—कोड़ देल (उ० प०, उ० प० मै०), खाभल (सा०, चंपा०), बिसमादी (सं०)=गहरी कोड़ाई करके घास आदि निकालने की प्रक्रिया (पट०, अन्यत्र कोई विशेष नाम नहीं है)।

[भर+खुरपी+सोह+ल (प्र०) (यौ०)]।

भर जाएल—(मु०) अधिक भार के कारण बैल का लँगड़ाना। पर्या०—सरक जाएल, उखर जाएल, खञ्जा (सं०)=लँगड़ा (द० पू० मै०)।

[भर+जाए+ल (प्र०)—(मु०)]।

भरदीना—(सं०) दिन-भर काम करने के लिए नियुक्त मजदूर।

[भर+दीन+आ (प्र०)<भर (देशी)+दिन (संस्कृ०)]।

भरन—(सं०) बिना बाँधा हुआ कच्चा कुआँ, जिसकी दीवारें टूट-टूटकर गिर पड़ती हैं (चंपा०, उ० प० मै०)। दे०—भसल।

[भरन<भरल, भड़ल (बिहा०)=भरना, भसना]।

भरना—(सं०) किसी से कर्ज लेकर उसके बदले में उसके पास कोई मवेशी या कोई संपत्ति रखना। दे०—लावन।

[भरना<भरण<√भृ (=भरना, पूरा करना)]।

भरनी—(सं०) दूसरा नक्षत्र, भरणी। इसकी आकृति त्रिकोण होती है।

[भरनी<भरणी<भरण<√भृ; भरनी, भरणी (हि०); भरणी (ने०)]।

भरभाँड़—(सं०) एक पराश्रित घास, जो पोस्ते को हानि पहुँचानेवाली होती है (द० प० शाहा०)। दे०—उरकुस्सी।

[देशी]।

भरल—(सं०) जिस खेत में अधिकता से खाद पड़ी हो (द० पू० मै०)। दे०—खदौड़ खेत।

[भर+ल (प्र०)<भर<√भृ]।

भरल—(क्रि०) (१) सींचना। दे०—पटाएल। (२) किसी रिक्त वस्तु को भरना, पूरा करना। (३) कुएँ से पानी निकालना। (वि०) भरा हुआ, पूरा।

[भर+ल (प्र०)<भर<√भृ (बिभर्ति, भरति); √भर् (भरति पा०); भरइ (प्रा०); भरना (हि०); भर्नु (ने०); भर्नो (कुमा०); भर्णो (द० गढ़ा०); भरिबा (असा०); भरा (बँ०)=पूरा करना,

मरना; भरिवा (ओ०); भरना (पं०); भरन (उ०); भरडु (सि०); भरवुँ (गु०); भरणे (मरा०); भरणेव (सिंह०) = पात्र; बरुन (कश्म०) = भरना; फेरेल (रोमा०)]।

भरवन—(सं०) जलाशय या अहरे का बाँध (चंपा०)। दे०—अहरा।
[देशी]।

भरसलिया—(सं०) पूरे वर्ष के लिए नियुक्त खेतिहर मजदूर। दे०—हड़वर।
[भर+सलिया; भर, भरि (देशी) वा < भर < √ भृ (पूरा करना, भरना); सलिया < साल+इया (प्र०) < साल (फा०)]।

भरिया—(सं०) भार या बोझा ढोनेवाला मजदूर (मुँ०-१)।
[भर + इया (प्र०); भर < भार वा भारिन्, भारिक < √ भृ; भारिक (पा०); भारिअ (प्रा०); भरिया (हि०); भरिया (ने०); भारि (कुमा०); भारि (असा०, बँ०)]।

भरैया—(सं०) पानी पटाया हुआ खेत (द०—प० शाहा०)। दे०—पटौआ।
[भर + ऐया (प्र०) < भर < भरण < √ भृ]।

भसकल—(क्रि०) (१) धसकना, दरकना, बिना आवाज के (धस-धस, भस-भसकर) फूट जाना (मुँ०-१)। (२) कगार की मिट्टी का गिरना।
[भसक+ल (प्र०); भसक < भस < √ भ्रंश्]।

भसकाहा—(वि०) 'भस' करके टूटनेवाला या दरक जानेवाला (मुँ०-१)।
[भसक + आहा (प्र०) < भसक < भ्रश्यक-(?) < √ भ्रंश्]।

भसना—(सं०) मछलियों का जाल में प्रवेश करना (चंपा०-१)।
[भसना < भसन < √ भ्रंश्]।

भसनी—(सं०) हेंगा में दाएँ ओर बहनेवाला बैल (द० मुँ०)। दे०—फेरा।
[देशी]।

भसमी—(सं०) सत्तू (पट०-१)।
[भसमी < भसम < भस्मन्-]।

भसल—(सं०) बिना बाँधा हुआ कच्चा कुआँ, जिसकी बगल की दीवार टूट-टूटकर गिर पड़ती है और वह भर जाया करता है। पर्या०—भसन (चंपा०, उ० प० मैं०), भट्टा (चंपा०, पट०, गया), भथल, भगाड़ (प०)।
[भस + ल (प्र०) < भस < √ भ्रंश्]।

भसल—(क्रि०) (१) भसना, बह जाना। (२) धँसना, कगार की मिट्टी का गिरना। (३) नष्ट होना।
[भस + ल (प्र०) < भस < √ भ्रंश् (भ्रंशते, भ्रश्यति); भस्स् (पा०-भस्सति); भस्स (प्रा०-भस्सइ); भसना (हि०); भस्नु (ने०); भासा (बँ०)=तैरना, पानी के ऊपर बहना; भासिबा (ओ०); भसिनु (सिंह०) = उतरना, गिरना]।

भसवा जोंक—(सं०) पशुओं का खून चूसनेवाली एक प्रकार की जोंक (मुँ०-१)।
[भसवा + जोंक (यौ०); भसवा < भैसवा; जोंक < जलौकस्-]।

भसावल—(क्रि०) (१) भसाना, बहा देना या बहा ले जाना। (२) देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को जल में विसर्जित करना।
[भस + आवल (प्र०) < भस < √ भ्रंश्]।

भसियावल—(क्रि०) किसी गड्ढे का मिट्टी आदि से भरना (चंपा०-१)।
[भस् + इयावल (प्र०) < भसिया < भस्मन्- (?)]।

भाँख—(सं०) (१) साँवाँ की फसल में लगनेवाला एक प्रकार का रोग। दे०—भंख। (२) धान की बाल में लगनेवाला एक कीड़ा, जिससे धान दाना-रहित हो जाता है (चंपा०-१)।
[देशी]।

भाँखी—(सं०) साँवाँ की फसल में लगनेवाला एक रोग (उ०)। दे०—भंखी।
[देशी]।

भाँग—(सं०) एक प्रसिद्ध मादक पौधा या उसकी पत्तियाँ। ये पौधे जंगल-झाड़ियों में स्वयं उगते हैं और इनकी खेती भी होती है। भाँग का पौधा एक फुट से तीन-चार फुट तक होता है। यह उत्तर भारत में प्रायः सर्वत्र उगता है, लेकिन उत्तरी बिहार और नेपाल की तराई में विशेष रूप से होता है। यह तीन प्रकार का होता है—स्त्री, पुरुष और उभयलिंग। इनमें से स्त्रीजाति के पौधे की पत्तियाँ अधिक मादक होती हैं। ये पत्तियाँ पीसकर पी जाती हैं।
[भाँग < भङ्गा; भङ्गा, भङ्ग-(संस्कृ०); भंग- (पा०, प्रा०); भाँग (हि०); भाङ् (ने०); भाँग(कश्म०); भाङ् (कुमा०, असा०, बँ०); भाँग (ओ०); भांग (पं०); भाँग (सि०); भाँग (मरा०, गु०); बँगहर (सिंह०)= एक मादक पेय]।

भाँज—(सं०) (१) गाय चराने या दुहनेवाले को पारिश्रमिक-रूप में गाय के दूध में से दिया जानेवाला एक निश्चित अंश (प० मै०)। दे०—बारा। (२) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर अपनी खेती-बारी करने की पारी। पर्या०—भँजहरिया; हरसज्झा (प०), भँजौती (उ० पू० मै०), हरभाँजा (पट०, गं० उ०), हरपहटा (चंपा०, गया), भँजैठ (द० पू० बिहा०), भाँजी (द० भाग०)। (३) खेती का वह प्रकार, जिसमें कृषक एक दूसरे का काम बारी-बारी से करते हैं। पर्या०—पारी, पलटी (गया)। (४) पारी, युक्ति, मेल, मिलना (मुँ०-१)।

[भाँज (देशी)। मिला०—भाग, भाजन < √ भज्। भाँज < भाँजना (हि०)—(हि० श० सा०)]।

भाँज, भाँजा—(सं०) किसानों द्वारा मिलकर अपनी फसल की देखभाल करने का क्रम। दे०—पारी।

भाँज लगावल—(मु०) (१) दूध का आदान-प्रदान करना। एक रोज एक आदमी दूसरे के दूध को लेता है और दूसरे रोज उसे अपना दूध दे देता है। (२) किसी के यहाँ एक दिन काम करना और उसके बदले में उस व्यक्ति से दूसरे दिन काम लेना। (चंपा०-१)।

[भाँज + लगा + आवल, वल (प्र०)]।

भाँजा—(सं०) पारी, विनिमय, अदल-बदल (मुँ०-१)।

भाँजा, भाँज—(सं०) किसानों द्वारा मिलकर अपने अनाज की देखभाल करने का क्रम। दे०—पारी।

भाँजा लगावल—(मु०) (१) भाँज लगाना। पारापारी से कोई काम करना। (२) दूध आदि वस्तु को किसी दूसरे व्यक्ति को समय पर देना और फिर अपने लिए भी यथासमय बदले में उस व्यक्ति से दूध आदि वस्तु लेना (मुँ०)।

भाँजा सिरे—(सं०) एक के बाद दूसरे कृषक का काम करना (गं० उ०)। पर्या०—फेराफारी (मै०), पारापारी।

[भाँजा + सिरे (क्रि०)]।

भाँजी—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर अपनी खेती-बारी करने की पारी (द० भाग०)। दे०—भाँज।

[भाँज + ई (प्र०) < भाँज < √ भज् (?); < भाँजना—(हि० श० सा०)]।

भाँजोवाला—(सं०) सम्मिलित खेती में अपनी-अपनी बारी से खेती करनेवाला किसान। पर्या०—भँजैत (मै०), अँगवारा (प०)—इस शब्द का वास्तविक अर्थ है—तीन दिन हल चलाने के बाद एक दिन के लिए हलवाहे को हल-बैल देने की प्रक्रिया। दे०—अँगबरिया।

[भाँजो + वाला (प्र०) < भाँजो < भाँज < √भज्-(?)]।

भाँट—(सं०) अपने-आप उगनेवाला एक प्रसिद्ध पौधा, जिसका उजला फूल गुच्छों में खिलता है। इसकी पत्तियाँ पान की तरह होती हैं। इसके डंठल का दतुवन भी होता है, जिसका स्वाद कसैला-कड़ुआ होता है (चंपा०-१)। पर्या०—टिटभाँट (भाग०)।

[भाँट (देशी) या < भृन्त-(?)]।

(२) एक प्रसिद्ध जाति या उस जाति के लोग, जो धनी-मानी या राजाओं की स्तुति, यशोगान या विरुदावली गाते हैं, भाट।

[भाँट <भाट < भट्ट-, भट्ट-(प्रा०); भाट (हि०); भाट् (ने०); भाट् (ओ०); भाट (बँ०); भट्ट (पं०); भट्ट (सि०); भाट (मरा०, गु०); बाठ (काश०)]।

भाँटा—(सं०) गोल बैंगन। दे०—भंटा। पर्या०—भाटा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[भाँटा < वृन्ताक-, वृन्ताक-(?)]।

भाँटिन—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (सा०)। (२) एक अगहनी धान, जिसके रोपने के समय पौधे की जड़ काली होती है। इसका चावल मोटा तथा उजला होता है (सा०-१)। (३) बड़ा भंटा बैंगन (चंपा०-१)।

[देशी; < वृन्ताक-(?)]।

भाँड़—(सं०) (१) मिट्टी का बरतन। (२) एक निम्न-श्रेणी की जाति, जो अभिनय, प्रहसन आदि करके अपनी जीविका चलाती है। वाराणसी के भाँड़ बहुत प्रसिद्ध हैं।

[भाँड़ < भाण्डक-। भाँड़ (२) < भण्ड, भण्डक-=प्रहसन या हास्य-व्यंग्य का अभिनय करनेवाला। भंड (प्रा०); भाँड़ (हि०); भाँड् (ने०); भाँड (काश०); भान (कुमा०); भाँड़ (बँ०); भाँड़ (ओ०); भण्ड (पं०); भानु (सि०); भाँड (गु०, मरा०)]।

भाँड़ा—(सं०) अन्न आदि रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन या खोरा (पट०-१)।

[भाँड़ा < भाण्डक-]।

भाँड़ी—(सं०) (१) अन्न आदि रखने का मिट्टी का बरतन (पट०-१)। (२) दीवार में बनाया गया वह खाली स्थान, जहाँ कबूतर रहते हैं। यह स्थान प्रायः हाँड़ी देकर ही बनाया जाता है (भाग०)।

[भाँड़ + ई (प्र०) < भाँड़ < भाण्डक; भाँड़ि (ने०) = सोनार की छोटी हथौड़ी]।

भाँवर--(सं०) (१) जूता आदि बनाने के बदले चमार को मिलनेवाली मजदूरी (प०)। पर्या०—खरिहानी (शाहा०, गया), पाल (चंपा०, मै०), कमाई, पंजौरा (उ० प० मै०), पाँजा, बोझा (द० पू० मै०), मँगनी (पट०, गया)। बिधौआ (प०), दस (पू०)= प्रसव के समय चमारिन को दाई का काम करने के बदले में मिलनेवाली मजदूरी। (२) ऊख के कोल्हू को ठीक रखने के लिए किसान की ओर से बढ़ई को मिलनेवाला पारिश्रमिक (शाहा०)। दे०—पवरावन। (३) कृषि-साधनों की मरम्मत आदि करने के बदले लोहार, बढ़ई को मिलनेवाली मजदूरी (द० पू० मै०)। दे०—कठा। (४) किसान द्वारा अधिकार जताकर लिया गया अतिरिक्त अनाज (शाहा०)। दे०—खरिहानी। (५) विवाह-संस्कार में लाजा-होम के समय अग्नि-प्रदक्षिणा करने की एक विधि।

[भाँवर < भँवर < भ्रम-, भ्रमि- (?) < √भ्रम्]।

भाँवाँ डेरा—(सं०) टेढ़ी भौंहवाला बैल (द० मं०)। दे०—भौंआँ टेर।

[भाँवाँ + डेरा (यौ०); भाँवाँ < भौं < भ्रू-; डेरा < डेढ़ < द्व्यर्ध- (?)]।

भाँस--(सं०) बुहारन, कूड़ा-करकट (द० भाग०)।

[भाँस < भ्रंश < √भ्रंश्]।

भाँसल--(क्रि०) (१) नदी के प्रवाह में बह जाना। (२) बाढ़ आदि की धारा में खेत की फसल या घर आदि का बहकर नष्ट हो जाना (मुं०-१, भाग०)। (३) बह जाना, नष्ट हो जाना।

[भाँस + ल (प्र०) < भाँस < भ्रंश- < √भ्रंश् (भ्रंशते)]।

भाँसा—(सं०) बुहारन, कूड़ा-करकट (मुं०-१)।

[भाँसा < भाँस < भ्रंश- < √ भ्रंश्]।

भाउली—(सं०) (१) वह जमीन, जिसका राजस्व गल्ले के रूप में लिया जाता है। (२) जमींदार और खेतिहरों के बीच होनेवाला उपज का बँटवारा।

[भाउली < भावली (देशी)—(हिं० श० सा०)]।

भागर--(सं०) किसी नदी के हट जाने से निकली हुई जमीन (शाहा०)।

[भाग + र (प्र०) < भाग < भागल- (?)]।

भाङ—(सं०) भाँग, एक प्रसिद्ध मादक पौधा या उसकी पत्तियाँ। दे०—भाँग।

[भाङ < भाँग < भङ्गा]।

भाजी--(सं०) (१) तरकारी, व्यंजन (चंपा०-१)। (२) मटर, चना, खेसारी आदि के पौधे के कोमल अग्रभाग (टूसा) की तरकारी (प०)। दे०—साग।

[भाजी < भर्जित-, भज्जिया (प्रा०); भाजी (हिं०) = तली हुई तरकारी; भाजि (ने०) = तला हुआ बैंगन; भाजि (असं०, बँ०, ओ०); भाजी (गु०, मरा०, सिं०)]।

भाठ—(सं०) (१) खेती करने की ऊँची जमीन (सा०)। दे०—भीठ। (२) फसल के बोझों के हटाने पर खलिहानों में पड़ा अनाज (द० पू० मै०)। दे०—अगवार।

[भाठ < भ्राष्ट्र- (?)]।

भाठा—(सं०) (१) ईंटों को पकाने के लिए विशेष रूप से ईंटों को चुनवाकर बनाया गया आँवा या भट्ठा। पर्या०—भट्ठा। (२) लिखने की खड़िया मिट्टी। (३) व्याघात, बाधा। पर्या०—भड़ठा (भाग०)।

[भाठा < भट्ठ < भ्राष्ट्र- (?); भ्राष्ट्र- (संस्कृ०); भट्ठ (प्रा०); भट्ठा (हिं०); भाटि (ने०)= भट्ठी; भ्रुठ (कश्म०)= चूल्हा; भाटि (बँ०, ओ०)= आँवा; भट्ठ (स०)= कानू का भाड़; भट्ठ (सि०)=पकाने का बरतन या आग। मिला०- भाड़ (गु०, मरा०) < भाड (पा०-१)-(नेपा०)]।

भाड़—(सं०) (१) एक काँटेदार चितकबरी पत्तीवाला पौधा, जिसके फूल पीले और कटोरे के आकार के होते हैं। इसके बीज से तेल निकाला जाता है, भड़भड़ा, भटकटैया, अटकुटरा।

'थोड़ा जोते बहुत हेंगावे, ऊँच न बाँधे आड़।
ऊँचे पर खेती करै, पैदा होवै भाड़॥'
—(घाघ)

[भाड़ (देशी)]।

(२) कानू का चूल्हा, भड़भूजा।

[भाड़ < भ्राष्ट्र-]।

भाथी—(सं०) चमड़े का विशेष प्रकार का बना वह साधन, जिससे लोहार आदि आग जलाते हैं। पर्या०—धौंकी (मग०)।

[भाथी < भ्राष्ट्र-; भट्ठ (प्रा०)]।

भादों—(सं०) भादो, भाद्रपद। भारतीय वर्ष का छठा और वर्षा ऋतु का अंतिम मास। अगस्त के अंतिम और सितंबर के आदि के १५-१५ दिन। इस मास की पूर्णिमा में प्रायः उत्तर भाद्रपद नक्षत्र पड़ता है, अतः भाद्र या भाद्रपद नाम पड़ा है।

[भादों < भाद्र < भाद्रपद-]।

भादो—(सं०) दे०—भादों।

भार—(सं०) (१) कानू को दी जानेवाली अनाज की मजदूरी। पर्या०—भारो (द० भाग०)।
—'जौ जरि गेल, भार ला बन्हल छी।'
=जौ जल गया; किंतु भूँजने की मजदूरी के लिए बंधा हुआ हूँ।
(२) आग जलाने का वह स्थान, जहाँ भूँजा भूना जाता है। दे०—चूल्हा। (३) बोझा, बोझ। (४) संबंधियों के पास भेजा जानेवाला खाजा, मिठाई आदि संदेश-सामग्री (सनेस) का झाँप, दौरा आदि (मुँ०-१)। (५) जवाबदेही। (६) वह बोझा, जो बहँगी के दोनों पल्लों पर रखकर कंधे पर उठाकर ले जाया जाता है। (७) किसी वस्तु का वह गुरुत्व, जो तौल के द्वारा जाना जाता है। (चंपा०-१)।
[भार < भाड़; भार < भार- < √ भृ]।

भारल—(क्रि०) चिउड़ा के उबाले हुए धान को कूटने के पहले पानी चलाते समय आग पर चढ़ाना (मुँ०-१)।
[भार + ल (प्र०) < भार < भार- < √ भट् (?) (भटति, भाटयति)]।

भारा—(सं०) (१) भड़सार में चबेना आदि भूनने का लिया जानेवाला पारिश्रमिक, जो अनाज के रूप में होता है (मुँ०-१)। (२) भाड़ा, किराया।
[भारा < भार < भाट < √ भट्]।

भारो—(सं०) अनाज के रूप में दी जानेवाली कानू की मजदूरी (द० भाग०)। दे०—भार।

भालसरी—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (मैं०)। (२) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[भालसरी < भालश्री-वा मल्लश्री (?)]।

भाव के भाव—(सं०) जिस भाव में खरीदा गया हो, उसी भाव पर बेचने की प्रक्रिया या दर। दे०—बिकरी के भाव।
[भाव + के (विभ०) + भाव (पौ०)]।

भावली—(सं०) (१) किसान के अधिकार की वह जमीन, जिसकी मालगुजारी, उस जमीन में पैदा हुए अनाज के निश्चित परिमाण (बटाई) के रूप में जमींदार को दी जाती थी। पर्या०—बटैया। (२) वह जमीन, जिसका राजस्व अनाज के रूप में चुकाया जाता था। दे०—मनखप। (३) उपज के रूप में दिया जानेवाला राजस्व।
टि०—भावली खेती की बंदोबस्ती का एक तरीका है, जिसमें फसल के पकने पर जमींदार के कारिंदे आकर खेत में लगी फसल का मूल्य-निर्धारण कर देते थे और उसी मूल्य-निर्धारण के आधार पर रैयत को अपनी मालगुजारी चुकानी पड़ती थी, न कि वास्तविक उपज के परिमाण के अनुसार।
[भावली (देशी)—(हि० श० सा०)]।

भास—(सं०) (१) कुआँ खोदने के समय की कभी-कभी की वह स्थिति, जिसमें नीचे बालू निकल आती है और कुआँ बैठ जाता है (उ० प०)। (२) पंकिल या दलदली जमीन, धारा के साथ बहकर जमा हुई मिट्टी। पर्या०—दलकी (प०, पट०, गया, द० मुँ०), दलदल (मैं०, सा०, पट०), पँकहा (पट०, शाहा०), कँचड़ा (द० प० शाहा०)। (३) नदी में मिट्टी के चक्कड़ का गिरना (चंपा०-१)।
[भास < भांसल < √ भंश्]।

भासल—(क्रि०) भासना, बहना। बहकर दूर चला जाना या नष्ट हो जाना। दे०—भसिल।

भिड़ा—(सं०) (१) पत्तलों को तहकर बाँधी गई गठरी (मुँ०-१)। भिंडी (स्त्री०)। (२) वह टीला, जिसपर पान की लत्तर लगाई जाती है। पर्या०—बरैठा, पाड़ (गं० उ०), भीठ (गं० द०)। (३) तालाब या तलाई के चारों ओर का बाँध। दे०—भीड़। (४) ऊँची जमीन या टीला।
[भिंडा < भिंड < पिण्ड- (?)]।

भिंडी—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध लंबी रोएँदार फली, जिसकी तरकारी बनती है। पर्या०—रामतरोई, रामघरोर। (२) पत्तलों की तहकर बाँधी गई गठरी। दे०—भिंडा।
[भिंडी < भिंड < पिण्ड- (?)]।

भिक्खा—(सं०) (१) माँगनेवाले फकीरों को देने के लिए अलग निकाला गया अनाज (मु० प्र०)। पर्या०—भीख, रसूली, फकिराना। (२) भीख, भिक्षा।
[भिक्खा < भिक्खा < √ भिक्ष्]।

भिठगरी—(सं०) (१) छोटे दानोंवाली मटमैली मटर (द० भाग०)। दे०—बजरी। (२) भीठा (ऊँची) जमीन पर उपजनेवाली फसल।
[भिठ + गरी (प्र०) < भिठ < भिठा (देशी)]।

भिठार—(सं०) काफी हलकी मिट्टी, जिसमें वैसाखी फसल पैदा होती है। दे०—भीठ।
[भिठ + आर; भिठ < भीठ (देशी); भिठा- भृष्ट- (=भूना हुआ), भ्राष्ट्र (=भड़भूजा, भाड़ा); आर (प्र०) वा < केदार-]।

भिनकल—(क्रि०) किसी गंदी चीज को देखकर नाक-भौं सिकोड़ना। (चंपा०-१, मुँ०-१)। (सं०) भिनकना।

[भिनक + ल (प्र०) < भिनक < भिन-भिन (अनुकर०)]।

भिनभिनावल—(क्रि०) गंदगी के कारण भिनभिनाना, घृणा होना (मुं०-१)।

[भिन-भिना + आवल (प्र०) < भिन-भिन (अनुकर०)]।

भिनसर—(सं०) सवेरा, प्रातःकाल (दर०, पूर्णि०, मुं०-१, सर्वत्र)। दे०—भोर, भिनसरवा।

[भिन + सर < भिन्न + श्री वा भिन्न + उषा (= भिन्नोषा = खिली हुई उषा = भौरें, किरनें और तदुपलक्षित समय)]।

भिनसरवा—(सं०) उषःकाल, सूर्योदय के पूर्व का समय, बिहान (मुं०-१)। पर्या०—भिनसर, भिनसार।

[भिन + सरवा < भिन्नश्री, भिन्नोषा (?)]।

भिनसार—(सं०) दे०—भिनसरवा।

भिनुसार—(सं०) सवेरा, प्रभात। सवेरे का वह समय, जो अंधकार और प्रकाश के बीच का होता है, रात्रि का चौथा पहर (चंपा०-१)।

[भिनु + सार < भिन्न + उषा वा भिन्नश्री-]।

भिरंगी—(सं०) एक प्रकार की मूँग (पट०-१)।

[भिरंगी (देशी) वा < भृङ्गिन्- (?)]।

भिरींगराज—(सं०) (१) भँगेरिया, फैलनेवाली एक प्रसिद्ध लत्तर। (२) श्राद्ध में 'उरला' (ऊन) के साथ पिंड पर चढ़ाई जानेवाली भँगेरिया की पत्तियाँ (पट०-१)।

[भिरींग + राज < भृङ्गराज; भँगेरिया (हि०)]।

भिरखी—(सं०) पशुओं के कंठ या छाती का एक रोग, जिसके बढ़ जाने पर खाने या निगलने में कठिनाई होती है (मैं०)। दे०—कंठार।

[देशी]।

भींगल—(क्रि०) दे०—भीजल।

भींजल—(क्रि०) पानी में भींगना, (चंपा०-१)। (वि०) भींगा हुआ।

[भींज + ल (प्र०) < भींज < अभ्यञ्ज- < अभि (उप०) + √ अञ्ज् (अभ्यज्यते), भींगना, भींजना (हि०); भिज्नु (ने०); भिज्नों (कुमा०); भिजबा (असु०); भिजा (बँ०); भिजिबा (ओ०); भिजणा (पं०); भिजणु (सि०); भिज्वुँ (गु०); भिजणे (मरा०) < अभ्यञ्ज- < अभि (उप०) + √अञ्ज् (अभ्यञ्जति); अभ्यञ्जति (पा०); भिजाईं (गु०)]।

भींड़—(सं०) (१) तालाब या तलाई के चारों ओर का बाँध। पर्या०—भिंडा, पींड़ (पट०, गया), खाँवा, खावा (प०)। (२) भीठा, ऊँची जमीन।

[भींड़ < भिंड < पिण्ड- (?) वा < भित्त-, भित्ति; भीट, भींठा (हि०); भिटो (ने०); भिठो (कुमा०); भिटा (बँ०) = घर का एक भाग; भिट (सि०) < भिट्ट- (भैषा०)]।

भीख—(सं०) (१) भिखमंगों को देने के लिए अलग निकाला गया अनाज। दे०—भिक्षा। (२) भीख, भिक्षा।

[भीख < भिक्षा; भिक्खा (पा०); भिक्खा, भिच्छा (प्रा०); भीख (हि०); भिख (ने०); भीख (कुमा०); भिख (बँ०); भिक (ओ०); भिक्ख (पं०); भिख्या (सि०); भीख (गु०); भीक (मरा०); बेछ (कश्म०); भिक (सिंह०)]।

भीजल—(क्रि०) भींगना (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—भींजल। पर्या०—तीतल।

[भीज+ल (प्र०) < भीज < अभ्यञ्ज < अभि+ √ अञ्ज्। दे०—भींजल]।

भीट—(सं०) (१) ऊँचा खेत या कृषि-भूमि, जिसमें भदई या रबी की फसल होती है (गाइड०)। (२) ऊँची जमीन। (३) खंडहरों के कारण बनी ऊँची जमीन, डीह।

[भीट < भिट्ट- (?), भीठ (हि०) = ऊँची जमीन]।

भीठ—(सं०) (१) वह टीला, जिसपर पान की लत्तर लगाई जाती है (सं० द०)। दे०—भिंडा। (२) वह ऊँची जमीन, जो ठीक बस्ती से मिली हुई हो। चंपा०-१)। दे०—डीह। (३) ऊँची जमीन, जिसकी मिट्टी हलकी होती है और जहाँ रबी की फसल होती है। पर्या०—भाठ (उ०, सा०), भीठा, भिठार (गया)। (४) किसी उजड़े हुए गाँव की जगह (द० मुं०)।

[भीठ < भिट्ट; भीठ, भीठा (हि०); भिटो (ने०); भिटो (कुमा०); भिटा (बँ०); भिट (सि०)]।

भीठा—(सं०) (१) वह ऊँची जमीन, जो आबादी की जगह से मिली होती है (मैं०)। (२) उजड़े हुए गाँव की जगह (द० मुं०)। दे०—डीह। (३) वह ऊँची जमीन, जिसकी मिट्टी हलकी होती है और जहाँ रबी की फसल होती है। (४) टीला।

भीड़—(सं०) (१) दे०—झोंझारी (सा०-१)। (२) भीड़-भड़क्का, जनसमूह।

[भीड़ < भिड़ < पिण्ड- (?)]।

भीड़ुंक—(सं०) टीला (चंपा०-१)।

[भीड़ + उंक (प्र०) < भीड़ < भिट्ट-]।

भीत—(सं०) भीत, दीवार।

भीता—(सं०) सींचने के निमित्त बनी हुई नाली का गहरा आंतरिक भाग (पू० मै०)। दे०—आरा।
[भीता < भीत < भित्ति-]।

भीस—(सं०) ऊँची जमीन (चंपा०-१, शाहा०)।
[देशी]

भीसांड़—(सं०) कमल की जड़ से निकलनेवाला कंद (चंपा०-१)।
[भीसांड़ < बिस + षण्ड- (?)]।

भुंईं सीकर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छींटकर बोया जाता है (शाहा०)।

भुंईंचित्ता—(सं०) वह बैल, जिसकी आँखें बराबर नीचे की ओर रहें (पट०-१)।
[भुँईं + चित्ता; भुँईं < भूमि; चित्ता (देशी)। मिला०—चीतना (हि०); यथा — चितेरा = देखनेवाला]।

भुंइलोटन—(सं०) (१) एक प्रकार का केला, जिसका घौद पौधे से जमीन तक लटका रहता है (चंपा०-१)। (२) एक प्रकार की कीड़ा।
[भुँईं + लोटन; भुँईं < भूमि-, लोटन < लोटल (बिहा० क्रि०) < √ लुट् (लुठति)]।

भुंजना—(सं०) भुना हुआ अनाज। दे०—भुँजा।
[भुँज + ना (प्र०) < भुँज < √ भुज्]।

भुंजनाठी—(सं०) चबेना आदि भूनने के लिए प्रयुक्त सींकों का मुट्ठा (मुं०-१)।
[भुंजना + आठी; भुंजना < भुँजन < √ भुज्; आठी (प्र०) वा < काष्ठ]।

भुंडा—(सं०) बिना सींगों का बैल (चंपा०)। दे०—मुँड़ेड़ा।

भुंड़िया—(सं०), शूकरहित उत्तम गेहूँ (गया)। दे०—मुँड़िया।
[भुँड़िया < भुँड़ (?) < षण्ड- (?)]।

भुंड़ी—(सं०) लाठा चलाने में कूंड़ डुबाने के लिए खोदा गया गड्ढा (पट०-१)।
[भुँड़ + ई (प्र०) < भुँड़ < भूर (बिहा०) < विवर- (?)]।

भुंड़ी—(सं०) पशुओं के कंठ का एक रोग (पट०)।

भुंड़ो—(सं०) बाँधने की गाँठ, बंधन (मुं०-१)।
[भुँड़ + ओ (अ का ओष्ठ्य उच्चारण) < भुँड़ < कुन्त-(?)]।

भुंबो—(सं०) लकड़ी का वह गहरा बरतन, जिसमें मूसल से धान कूटते हैं (द० भाग०)। दे०—ओखरी।

भुंसाहुल—(सं०) भूसा रखने का घर (प० शाहा०)। दे०—भुसौलघर।
[भुँस + आहुल; भुँस < भूसा < बुस-; आहुल (?)]।

भुंसौर—(सं०) भूसा रखने का घर (द० प० शाहा०)। दे०—भुसौलघर।
[भुँस+औरः भुस<बुस-, और<कवट-वा (प्र०)]।

भुंसौल—(सं०) भूसा रखने का घर।

भुअवा—(सं०) एक प्रकार का कड़ा ऊख, जो पतला, उजला और कम मीठा होता है। इसके सिरे पर भुआ निकल आता है और पोर के निकट थोड़ा फट जाता है। (सा०-१)।
[भुअ + वा (प्र०) < भुअ < भुआ (देशी)]।

भुआ—(सं०) (१) श्वेत कुष्मांड, भतुआ (पट०-१)। (२) ऊख का उजले वर्ण का रूईदार सिरे पर का फूल। (३) गीली चीजों में लगनेवाला एक प्रकार की रोएँदार वस्तु। (४) रोएँदार कीट-विशेष, जिसके स्पर्श से खुजलाहट होने लगती है।
[भुआ (देशी) (?)]।

भुआड़ो—(सं०) ईख की बाती (सा०-१)।
[देशी]।

भुइला—(सं०) केश के समान लंबा पतला एक कीड़ा, जो रेंड़ और दलहन की पत्तियों को खाता है और यदि कदाचित् पशुओं के पेट में चला जाय, तो घातक परिणाम लाता है (पू० मै०, उ० प०)। दे०—भुआ।
[देशी]।

भुइली—(सं०) दे०—भुइला, भुआ।

भुईं ओखरी—(सं०) ढेंकी के नीचे का गड़ा हुआ ओखल (गया)। दे०—ओखरी।
[भुईं+ओखरी (यौ०); भुईं < भूमि; ओखरी < ओखली < उलूखल-]।

भुगत बंध—(सं०) खेती या जमींदारी का वह ठीका, जिसमें भुगतान होने तक ठीकेदार उसका उपभोग करता था (गाइड०)।
[भुगत + बंध; भुगत + भुगतल (बिहा० क्रि०)= भुगतना; बंध < बन्ध-]।

भुजना—(सं०) भुना हुआ अनाज (शाहा०)। दे०—चबेना।

भुजिया—(सं०) (१) भुना जानेवाला उसना या उसवा चावल (मुं०-१, भाग०)। (२) तली हुई तरकारी।
[भुज + इया (प्र०) < भुज < भुजल < √ भुज्]।

भुटका—(सं०) (१) मकोय जाति की लाल रंग की एक फली। दे०—मकोय। (२) एक प्रकार का साग (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

भुटियावल—(क्रि०) (१) जड़ से काटना। (२) जड़ से मूड़ना। (३) किसी से कुछ ठग लेना (मुं०-१)।
[भुट + इयावल (प्र०) < भुट (देशी)]।

भुट्टा—(सं०) (१) मकई की बाल। पर्या०—बाल। (२) नाटा-मोटा आदमी (मुं०)।
[भुट्टा < भृष्ट- < √ भ्रस्ज् + त (प्र०); भृष्ट- (संस्कृ०)= भूना हुआ, तला हुआ; भुट्ट (प्रा०); भुट्टा (हिं०); भुट्टा (ने०); भुट्टा (बं०); भुट्टो (गु०)]।

भुटुरी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[देशी०]।

भुड़की—(सं०) ढेंकी के नीचे गड़ा हुआ ओखल, जिसमें धान कूटा जाता है (पट०)।

भुड़िया—(सं०) ढेंकी के नीचे का गड़ा हुआ ओखल, जिसमें धान कूटा जाता है। दे०—ओखरी।

भुतलावल—(क्रि०) भटक जाना, रास्ता खो जाना (मुं०-१)।
[भुत + ल + आवल (प्र०) < भुत < भूत- (?) < √ भू]।

भुनवा—(सं०) गंधी जाति का एक कीड़ा।

भुआ—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी]।

भुरकी—(सं०) केश के समान लंबा पतला एक कीड़ा, जो रेंड़ और दलहन की पत्तियाँ खाता है तथा पशुओं के पेट में चले जाने पर घातक परिणाम लाता है (द० प०)। दे०—भुआ।
[देशी]।

भुरफूट—(सं०) कुएँ के अंदर का प्रबल जलस्रोत।
[भुर + फुट (यौ०); भुर < विवर-(?); फुट < फुटन < √ स्फुट्]।

भुरली—(सं०) रस से भरा बहुत मोटा एक प्रकार का ऊख, जो वैशाख में चूसने लायक होता है (उ० प० बिहा०)।

भुरली—(सं०) (सा०-१)। दे०—भुआ।
[देशी]।

भुरहा—(सं०) (१) कुएँ के अंदर सतह पर निकलनेवाले जलस्रोत का मुँह। (२) ऐसे जलस्रोत से युक्त कुआँ।
[भुर + हा (प्र०) < भुर < विवर-(?)]।

भुरहा कुइयाँ—(सं०) वह कुआँ, जिसमें नीचे सतह पर जलस्रोत फूट निकलता है (शाह०-)।

भुरहुरल—(क्रि०) आग में कोई वस्तु रखकर अधपका निकाल लेना (चंपा०-१)।

भुरहुरा—(सं०) गोबर या मल में कीड़ा लगने पर उसके ऊपर कीड़े के द्वारा फेंकी गई मिट्टी (चंपा०-१)।

भुराहा—(सं०) वह कुआँ या कोई दूसरा जलस्रोत, जिसमें सतह पर पानी फूट निकलता है (मुं०-१)। दे०—भुरहा।

भुरिला—(सं०) (द० प०)। दे०—भुआ, भुरला।

भुरिली—(सं०) (द० पू०)। दे०—भुआ, भुरला।

भुर्रा—(सं०) भुनी हुई दानेदार शक्कर। दे०—खाँड़।
[भुर्रा < भुरा = भूरे वर्ण का]।

भुलाइल—(क्रि०) (१) किसी वस्तु या जीव-जंतु का भुला जाना। (२) विस्मृत होना। पर्या०—हेरायल।
[भुल + आइल (प्र०) < भुल (देशी)]।

भुला जाएल—(क्रि०) (१) भुला जाना, भटक जाना (सा०)। दे०—हेरा जाएल। (२) भुलाना, विस्मृत होना।
[भुला + जा + आएल (प्र०)]।

भुल्ल—(सं०) भैंस का एक रंग (दर०-१, पूर्णि०-१)।

भुसउल—(सं०) भूसा रखने का घर या बखारी (चंपा०-१)।
[भुस + उल < भुस + कुल-]।

भुसकार—(सं०) भूसा रखने का घर (चंपा०)। दे०—भुसौलघर।
[भुस + कार < कुसागार-]।

भुसकारी—(सं०) (द० भाग०)। दे०—भुसकार, भुसौलघर।

भुसखार—(सं०) (१) (पू०)। दे०—भुसकार, भुसौलघर। (२) भूसा तक खा जानेवाला, पेटू, खाऊमल। (३) कुंठितबुद्धि, बेवकूफ।

भुसघर—(सं०) भूसा रखने का घर (चंपा०, द० मुं०)।

भुसनी—(सं०) हलकी मिट्टी, जिसकी दीवार आदि नहीं बन पाती है। इसके कारण कच्चा कुआँ, दीवार आदि भी धँस जाया करते हैं (द० पू० मुं०)। दे०—ढेंगा।
[भुसनी (अनु०)]।

भुसांड़—(सं०) कमल की जड़। इसकी तरकारी भी बनती है। (पट०-१)।
[भु + सांड़ < भुसण्ड-, बिस + षण्ड-]।

भुसुरी—(सं०) तुरत भुस जानेवाली मिट्टी (प०)। पर्या०—कचौस (पू०, चंपा०-१)।
[अनु०]।

भुसौलघर—(सं०) भूसा रखने का घर (उ० पू० मैं०)। पर्या०—भुसकार, भुस्स भुलवा (चंपा०), भुसखार (पू०), भुँसौर (द० प० शाहा०), भुँसाहुल (प० शाहा०), भोसौला (चंपा०, पट०), भुसाघर (गया पट०, चंपा०), भुसघर (द० मुं०, चंपा०), भुसकरी, (द० भाग०)।

[भुस + औल + घर < बुस + कुल +गृह-]।

भुसौला—(सं०) भूसा रखने का घर (पाप)।

भुस्सा—(सं०) (१) रब्बी फसल का, अनाज निकालने के बाद बचा हुआ महीन पशु-खाद्य अंश। दे०—भूसा। (२) मँड़ुआ के दानों के निकालने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी (द० पू०)। दे०—डाँटी।

[भुस्सा < बुस-]।

भुस्सभुलवा—(सं०) भूसा रखने का घर (चंपा०)। दे०—भुसौलघर।

लोको०—'छुट्टल घोड़ भुस्सभुलवहि ठाढ़'=छुट्टा घोड़ा भूसाघर में जाकर ही रुकता है।

[भुस्स + भुलवा (धौ०)]।

भुस्सा, भूसा—(सं०) (१) अनाज के ऊपर का छिलका। (२) गेहूँ आदि रब्बी की दौनी के बाद उसके डंठल का महीन चूर्ण। दे०—भूसा।

भुस्सी—(सं०) अनाज के ऊपर का महीन छिलका या उसका चूर्ण (चंपा०-१)।

भूँजल—(क्रि०) (१) चबेना, सत्तू आदि बनाने के लिए अनाज को भड़भूजे में गरम बालू में भूनना। (२) घी-तेल में हरी या दूसरी तरकारी तलना। (वि०) भूनी हुई वस्तु।

[भूँज + ल (प्र०) < भूँज < √ भुज्जें (भृज्जति, भृज्जते)]।

भूँजा—(सं०) भूना हुआ अनाज। दे०—चबेना। पर्या०—भुँजना, भुजना (शाहा०-१)।

भूँजुआ—(सं०) तेल-घी में तली सब्जी, भुँजिया (चंपा०-१)।

[भूँज + उआ (प्र०) < भूँज < भूँजल]।

भूँड़—(सं०) (१) कुआँ, पोखर आदि की सतह का वह मोटा छेद, जिससे जलस्रोत फूटता है (चंपा०-१)। (२) छेद।

[भूँड़ < भूर < विवर-]।

भूँड़—(सं०) (३) तालाब या बावली के चारों ओर का ऊँचा किनारा या बाँध (गाइड०)। (४) बिना सींगों का बैल (शाहा०)। दे०—मुँड़ेड़ा।

[भूँड़ा < बण्ड-(?)]।

भूँभुर—(सं०) राख के नीचे छिपी आग। (चंपा०-१)।

भूँसा—(सं०) (१) दौनी करके अनाज निकालने के बाद फसल का बचा हुआ महीन पशु-खाद्य अंश (पट०, गया)। दे०—भूसा। (२) अनाज के दानों के ऊपर का छिलका। दे०—भूसा।

[भूँसा < बुस-]।

भूँसा, भूसा, भुस्सा—(सं०) चने या किसी दलहन का भूसा।

भूँसी—(सं०) अनाज के कूटने-पीसने के बाद चालकर या फटककर निकाला गया छिलके का महीन अंश (पट०, प०)। दे०—चोकर।

भूअर—(सं०) एक प्रकार का रंग, मटमैला रंग (चंपा-.)।

भूआ—(सं०) (१) सेमल की रूई। (२) सरकंडा या ईख के पौधे के ऊपर का उजला फूल (चंपा०)। (३) केश के समान एक लंबा पतला कीड़ा, जो रेंड़ या दलहन के पत्तों को खाता है और कदाचित् पशुओं के पेट में चले जाने पर घातक परिणाम लाता है (मैं०, पट०, गया, पू०)। पर्या०—भुइला, भुइली (प० मैं०, उ० प०), भुरली (सा०), भुरिला, भुरिली, भुरड़ी (द०प०)। (४) कोंहड़े की जाति का एक उजला फल, जिसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा आदि बनाने में होता है (गया)। दे०—भतुआ। पर्या०—सुरुजकोंहड़ा, बनियाकोंहड़ा। (५) भुट्टे के ऊपर के रेशों का गुच्छा (प०)। पर्या०—धूआ (द० प० शाहा०), सन (गया, चंपा०), मोछ (पट०), मौछा (द० मुं०), मोच, मोचा (मैं०, द० भाग०), केसी। (६) साग-सब्जी की पत्तियों को चाटनेवाला एक कीड़ा, भतुआ। (७) गीली वस्तुओं या मिठाई आदि के अधिक दिनों के हो जाने पर उनमें उगनेवाला उजले रेशों का समूह।

[भूआ < (?)]।

भूआपाग—(सं०) भतुआ का मुरब्बा (द० पू० मैं०)। दे०—पेठा।

[भूआ + पाग, भूआ (देशी), पाग < पाक < √ पच्]।

भूजा—(सं०) भूना हुआ अनाज, चबेना (उ० पू० मैं०)। दे०—चबेना। पर्या०—भुजा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[भूजा < भृज्ज < √ भृज्ज्]।

भूजा दर्रा—(सं०) भूनने-पीसने का काम (मुं०-१)।

[भूजा + दर्रा (यौ०); भूजा < भृजा < भृज्ज < √ भृज्ज्; दर्रा < दरण < √ दल्]।

भुड़, भुर—(सं०) (१) कुएँ के अंदर सतह पर निकले हुए जलस्रोत का छेद। दे०—भुर। (२) छेद, विवर।

भुतहवा मनसारा—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[भुत + हवा (प्र०) < भूतः मनसारा < मनः शालि या मनः शिला (=मैनशिल)]।

भुपसेम—(सं०) सेम की जाति की एक फली। दे०—कवाछु।
[भुप + सेम (दे०)]।

भुर—(सं०) (१) जेठ महीने में पान की लत्तर की जड़ से निकलनेवाला नया अंकुर (पू० मै०)। पर्या०—भुरा (द०मै०)। (२) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ जलस्रोत (द० भाग०)। दे०—सोता। (३) बाँध या मेंड़ आदि में हुआ छेद, जिससे भीतर का पानी बाहर बहने लगता है (शाह०)। (४) छेद, विवर।

भुर फूटल—(मु०) (१) कुआँ आदि में जमीन फोड़कर पानी का सोता निकलना। (२) किसी वस्तु का अकस्मात् अधिक मात्रा में होने लगना।
[भुर < विवर-, फूटल < √ स्फुट्]।

भुर, भुड़—(सं०) कुएँ के अंदर सतह पर निकलनेवाले जलस्रोत का छेद। पर्या०—भुरहा (पट०, द० भाग०)।

भुरा—(सं०) (१) कुम्हड़े की जाति का उजला फल, श्वेत कुष्मांड, भतुआ। इससे मिठाई, मुरब्बा आदि बनाये जाते हैं (गया)। दे०—भतुआ। (२) जेठ महीने में पान की लत्तर की जड़ से निकलनेवाला नया अंकुर (द० मै०)। दे०—भुर। (३) सूखी दानेदार भूरी शक्कर। दे०—खाँड़।
[भूरा (देशी)]।

भुस—(सं०) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला दलहन का भूसा। पर्या०—भूसा, कटुआ (पट०), कटुआ (द० प०)।
[भुस < बुस-]।

भुसहन—(सं०) छिलकोंवाला अनाज, जिससे भूसा होता है। (चंपा०-१)।
[भुस + हन < बुस + धान्य-]।

भुसा—(सं०) (१) धान या दलहन के छिलकों या डंठल को दौनी करने पर बना महीन अंश। पर्या०—भूंसा (पट०, गया), भुस्सा। (२) मँड़ुआ के दानों के निकालने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी (पट०, गया)। दे०—डाँठी।
[भुसा < बुस-]।

भुसाघर—(सं०) भूसा रखने का घर (पट०, गया, चंपा०)। दे०—भुसौलघर।

भूसा, भुस्सा—(सं०) (१) अनाज के ऊपर का छिलका। (२) गेहूँ आदि रब्बी की दौनी के बाद डंठल का चूर्ण। पर्या०—भूँसा (सं० द०), कटुआ (पट०, गया), गुंडो (चंपा०, द० भाग०), खखरा, दुल्हा (द० मुं०)।
[भूसा < बुसक-]।

भूसा, भूस—(सं०) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला रहर या किसी दूसरे दलहन का भूसा। दे०—भुस।

भूसी—(सं०) (१) मँड़ुआ के दाने निकालने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी, छिलका (शाहा०)। दे०—डाँठी। (२) अनाज के ऊपर के छिलकों का महीन अंश।

भूस्सा—(सं०)(१) अनाज के ऊपर का छिलका। (२) गेहूँ आदि रब्बी की डाँट की भूसी। दे०—भूसा।

भेंगरिया—(सं०) एक प्रकार का लताजातीय पौधा, भँगेरिया। इसका पुष्प उजला होता है। इसके रस में बाल काला करने की शक्ति होती है और यह आँखों, बालों के लिए गुणकारी होता है तथा घाव पर भी लगाया जाता है।
[भेंगरिया < भृङ्गराज-]।

भेंट—(सं०) (१) एक प्रकार का जलीय अनाज, जो भूनकर खाया जाता है। यह पवित्र फलाहार माना जाता है। (२) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) कुमुद (कोईं) का फूल। उस फूल के भीतर के दाने (मुं०-१)। पर्या०—भेंटवाँस, भेंटमास, खेतमास, खेतमासु (उ० मै०)। (४) मिलना-जुलना। (५) उपहार, उपायन।
[भेंट- (देशी)]।

भेंट के दाने—(सं०) कुमुदिनी का बीज (पट०-१)।

भेंटमास—(सं०) दे०—भेंट।

भेंटवाँस—(सं०) (१) एक प्रकार का जलीय अनाज, जो भूनकर खाया जाता है और पवित्र फलाहार माना जाता है। दे०—भेंट। (२) वह फसल, जो किसी कारण से न बढ़ सकी हो (पट०-१)। दे०—बैठल हासिल।
[भेंट + बाँस (देशी); चूँकि भेंट या भेंटवाँस के दाने छोटे-छोटे होते हैं, इसलिए यहाँ लाक्षणिक प्रयोग किया गया है।]।

भेंटाइल—(क्रि०) प्राप्त होना, मिलना (सा०-१)।
[भेंट + आइल (प्रा०) < भेंट < भिट्ट- (प्रा०), भिट्टिअइ (प्रा०); भेंटना (हिं०); भेंट्नु (ने०); भेटणो

(कुमा०); भेटिबा (असु०)= रोड़ा अटकाना; भेटा (बँ०); भेटिबा (ओ०); भेटणा (पं०); भेट्णु (सिं०)= पूर्ण करना; भेटवुँ (गु०); भेटणी (मरा०)]।

भेंड़—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध स्तनपायी पशु, जिससे ऊन मिलता है। भेंड़ा (पु०)। (२) वह बैल, जिसके दोनों सींग, भेड़े के सींग की तरह गोल और टेढ़े उलटे हों। दे०—भेंड़वा। (३) गाँवों में प्रचलित एक वाद्य-विशेष, जो विवाहादि उत्सवों पर बजाया जाता है (भाग०)।

[भेंड़ < भेड़-(संस्कृ०); भेडा (हिं०); भेंड़ा (बँ०, ओ०); मेढ़ा (हिं०); भेड़ो (सि०); भेड़ (प० पहा०); भेड़ो (कुमा०); भेड़ा (असु०); भेड़ (पं०, ल०) भेड़ी (सिं०) = एक प्रकार का खेल, जो भेड़ की हड्डी से खेला जाता है; भेड़ (गु०)]।

भेंड़कावर—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का मोटा लाल धान (द० प० शाहा०)।

[भेड़ + कावर; भेड़ < भेड़; कावर < कर्बर-]।

भेंड़पुरै—(सं०) भेड़ों को चरानेवाला वर्ण-विशेष (द० भाग०)। दे०—गड़ेंरी।

[भेंड़ + पुरै; भेंड़ < भेड़ < भेड़-; पुरै < धोरै < धौरत < √ धाव् (?)।

भेंड़वा—(सं०) (१) वह बैल, जिसके दोनों सींग मेढ़े के सींग की तरह गोल टेढ़े उलटे होते हैं। पर्या०—भेंड़, भेड़वा। (२) एक प्रसिद्ध कीड़ा, जो अनाज को खाता है। (पट०, भाग०)। दे०—भैंवरा।

[भेंड़ + वा (प्र०) < भेंड़ < भेड़-]।

भेंड़ा—(सं०) (१) अनाज में लगनेवाला एक कीड़ा (पट०, भाग०)। दे०—भैंवरा। (२) एक स्तनपायी चौपाया पशु, जिससे ऊन मिलता है।

[भेड़ + आ (प्र०) < भेंड़ < भेड़-]।

भेंड़ाड़ी—(सं०) भेंड़, बकरी आदि का मल। पर्या०—भेनाड़ी, लेंड़ी (प०)।

[भेंड़ + आड़ी (?)]।

भेंड़िक बच्चा—(सं०) भेंड़ का बच्चा। पर्या०—पठरू, बकरू (बै०), मेमना (द० पू०, मुं०)।

[भेंड़ि + क (विभ०) + बच्चा (यौ०)]।

भेंड़िया—(सं०) (१) वह बैल, जिसका रंग और बाल भेंड़ की तरह हों (पट०)। (२) एक प्रसिद्ध हिंस्र जानवर, हुँड़ार।

[भेंड़ + इया (प्र०) < भेंड़ < भेड़-]।

भेंड़िहर—(सं०) भेंड़ पालनेवाला या कंबल बनानेवाला वर्ण-विशेष (गं० द०)। दे०—गड़ेंरी।

[भेंड़ि + हर (प्र०) < भेड़ि < भेड़<भेड़-]।

भेंड़ी—(सं०) एक स्तनपायी चौपाया जानवर, जिससे ऊन मिलता है। भेंड़ा (पु०)।

भेंड़ी बैसाओल—(मु०) खेतों में खाद के निमित्त भेड़ों को रात-भर के लिए रोक रखना। पर्या०—भेंड़ी हिराओल, जिबगर होएल, खुर बैसाओल (गं० द०), खेत गोबरावल (द० मुं०)।

[भेंड़ी + बैस + आओल (प्र०)- (यौ०)]।

भेंड़ी हिराओल—(मु०) खेतों में खाद के निमित्त भेड़ों को बैठाना या रात-भर के लिए रोक रखना। इस प्रकार भेंड़ के मल-मूत्र से खेत उर्वर बनते हैं। दे०—भेंड़ी बैसाओल।

भेंड़िहर—(सं०) भेंड़ों को पालनेवाला वर्ण-विशेष। दे०—गड़ेंरी।

[भेंड़ि + हर; भेंड़ि < भेंड़ी < भेड़, मेढ़ा < मेण्ढक; हर (प्र०) या < √ हृ (?)]।

भेंड़िहार—(सं०) भेंड़ों को पालनेवाला वर्ण-विशेष (गं० द०)। दे०—गड़ेंरी।

भेंड़िहारा—(सं०) दे०—भेंड़िहर, गड़ेंरी।

भेंवल—(क्रि०) पानी में भिगोना (चंपा०-१)।

[भेंव + ल (प्र०) < भेंव < (?)]।

भेखरी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (गया, उ० प०)। दे०—अँकरा।

भेटवाँस—(सं०) (१) दे०—भेंट। (२) एक प्रकार का दलहन (चंपा-१)।

भेनाड़ी—(सं०) भेड़, बकरी आदि का मल। दे०—भेंड़ाड़ी।

[भे + नाड़ी < भेंड़ + लेंड़ी-(?)]।

भेभरा—(सं०) दुर्गन्धयुक्त उड़नेवाला एक कीड़ा, जो फूल होने के पहले ही ज्वार आदि की फसल पर आक्रमण करता है और क्षति पहुँचाता है (द०मुं०)। दे०—गांधी।

[भेमरा < भ्रमरक-]।

भेर—(सं०) (१) ऊख के खेत में बनी हुई क्यारी (पू० मै०)। दे०—हाताबाला। (२) भाइयों के बीच बँटवारे में पड़े गाँवों पर या संपत्ति पर अंश के अनुसार लगा राजस्व का भाग (द० प० शाहा०)। पर्या०—हिस्सा, पटिदारी (अन्यत्र)।

[देशी]।

भेली—(सं०) (१) गुड़ का बना हुआ गोल या लंब-गोल पिंड। इसमें स्वाद के लिए आदी, काली मिर्च सौंफ आदि भी दे दिये जाते हैं। पर्या०—मिठाई। (२) वह गाय-भैंस, जिसकी आँत उतरती हो। (पट०-१)।

भैंस-(सं०) दूध देनेवाला प्रसिद्ध चतुष्पाद मादा मवेशी। पर्या०—भैंसी, भईं (गं० उ०), महिस, महिसी (मै०)। भैंसा (पुं०)।

कहा०—'खेत महिसी चरे पड़रू़हि मार'—खेत चरती है भैंस, लेकिन मार पड़ती है पड़रू पर। अर्थात्, बलवान् दोषी छोड़ दिया जाता है और निर्बल निर्दोष मार खाता है। मिला०—'खेत खाय गदहा, मार खाय जोलहा।'

[भैंस < (देशी); मिला०- महिष, महिषी (संस्कृ०)]।

भैंसवार—(सं०) भैंस का चरवाहा (दर०-१, पूर्णि०-१, भाग०)।

भैंसा—(सं०) एक प्रसिद्ध स्तनपायी पशु। यह घरेलू और जंगली दोनों प्रकार का होता है। किसान इससे हल जोतते तथा गाड़ी खींचने का काम लेते हैं। दे०—भैंस। भैंस (स्त्री०)। पर्या०—महिसा (मै०)।

[भैंस (देशी); मिला०—महिष, महिषी]।

भैंसाएल—(क्रि०) दे०—भैंसाएल।

भैंसी—(सं०) दे०—भैंस।

भैंसोटा—(सं०) भैंस का चमड़ा। पर्या०—भैंसोठा (द० भाग०)।

[भैंस + ओटा (प्र०) < भैंस (देशी)]।

भैंसोठा—(सं०) (द० भाग०)। दे०—भैंसोटा।

भैंसौधा—(सं०) चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (मै०, पट०, पू०)। दे०—खत्तरी।

[भैंस + औधा; भैंस (देशी) औधा (प्र०)]।

भैबांट—(सं०) भाइयों के बीच परस्पर संपत्ति का बँटवारा। पर्या०—भैयाबाँट (पट०, द० मुं०), भैबख (पू०)।

[भै + बाँट < भाईबाँट; भाई < भ्रात् + बाँट < वण्ट < √ वण्ट्]।

भैयाबाँट—(सं०) भाइयों के बीच परस्पर संपत्ति का बँटवारा (पट०, द० मुं०)। दे०—भैबांट।

भैबख—(सं०) दे०—भैबांट।

भैसलेढ़—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है (पू० मै०, उ० प०)।

भैंसाएल—(क्रि०) भैंस को संगम की इच्छा का होना, पाल खाने की अवस्था का होना (प०)। पर्या०—भैंसाएल।

[भैंस + आएल (प्र०) < भैंस (देशी)]।

भोंड़िया—(सं०) (१) मछली के जाल को पानी में डुबोने के लिए उसमें लगी हुई लोहे या मिट्टी की गोली। दे०—बटिखन। (२) नेपाल या तिब्बत का रहनेवाला। (३) नाटा घोड़ा।

[भोट + इया (प्र०) < भोट < भोट=तिब्बत-प्रदेश]।

भोड़—(सं०) खीरा या तरकारी आदि का बीज के लिए छोड़ा गया परिपक्व दानों का फल (मुं०-१)।

[देशी]।

भोसौला—(सं०) भूसा रखने का घर (चंपा०, पट०)। दे०—भुसौलघर।

[भोस + औला < भूसा + वला < बुसकुलक- (?)]।

भोकला—(सं०) पैन से निकलनेवाली छोटी नाली (गाइड०)।

[देशी]।

भोकिला—(सं०) छोटा जलस्रोत या पैन (पट०, गया)। पर्या०—टँड़ुआ = छोटे जलस्रोत की शाखा।

[देशी]।

भोकौआ—(सं०) एक बार जोतकर बोई जानेवाली जमीन (उ० प०)। पर्या०—जोता बावग (चंपा०, मै०)।

भोगिला—(सं०) बड़ी फलीवाली मध्यम आकार की एक प्रकार की अच्छी कपास (गं० उ०)।

भोचरी—(सं०) एक छोटी-सी कपास, जिसकी रूई वायु के द्वारा कली से बिखेर देने के कारण चुन ली जाती है (गं० उ०)।

भोड़—(सं०) एक प्रकार की मछली (चंपा०-१)।

भोर—(सं०) (१) वह धान, जिसकी बाल में दाने नहीं हुए हों (उ० पू०)। दे०—पैया। (२) सवेरा, प्रातःकाल। पर्या०—फरिछ, भिनसर, भिनसार, भिनुसार।

भोरगर—(सं०) उषःकाल के पूर्व का समय (दर०-१, पूर्णि०-१)।

भोरहा—(सं०) बिना दाने का भुट्टा (गं० उ०)।

भोरहाइल—(क्रि०) मकई के दानों में दूध आने लगना (चंपा०-१)।

भोराहा—(सं०) (१) बिना दानों का भुट्टा (गं० उ०)। (२) वह गाय या भैंस, जो बरदाने पर भी गर्भिणी नहीं हो पाती। (३) जल्द किसी बात को भूल जानेवाला।

भोला—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। (२) सीधा-सादा। (३) शिव।

[देशी]।

भौस—(सं०) एक प्रकार का केला (दर०-१, पूर्णि०-१)।

भौंआंटेर—(सं०) टेढ़ी भौंहवाला बैल। पर्या०—भौंआं-टेर, भौंवांटेर (द० मुं०)

भौंआटेर—(सं०) टेढ़ी भौंहवाला बैल। दे०—भौंआटेर।
[भौंआ + टेर; भौंआ < भ्रू, टेर < टेढ़ < दुर्वर्त-]।

भौंकी—(सं०) (१) अनाज रखने की टोकरी (शाहा०)। (२) सँकरे मुँहवाली बड़ी टोकरी (गं० द०)।

भौंरा—(सं०) (१) अनाज के ओसाने के समय हवा से उड़ा हुआ महीन भूसा। दे०—भौंटा। (२) एक प्रसिद्ध उड़नेवाला कीड़ा, भ्रमर।

भौंरकली—(सं०) कोल्हू के बैल की गरदन से पगहे को लगाकर कसनेवाली लोहे की कड़ी।
[देशी]।

भौंरवा—(सं०) एक प्रकार का मोटा ऊख। यह बहुत मुलायम और रस से भरा होता है (पट०-१)।

भौंरी—(सं०) (१) किसी तरह की मजदूरी करने के बदले बढ़ई को किसान की ओर से मिलनेवाला पुरस्कार (द० भाग०)। (२) सिर के केशों की भ्रमि। (३) पशुओं की देह पर स्थित चिह्न-विशेष। ये चिह्न या भ्रमि स्थान-विशेष से शुभ-सूचक और अशुभसूचक माने जाते हैं। सिर के केशों की भौंरी जल में डूबने का संकेत मानी जाती है।
[भौंरी < भ्रमरी या भ्रमि-]।

भौंरिया—(सं०) खेत के चारों ओर लंब-गोल आकार की जुताई (द० मुं०) दे०—चौकेठा।

भौंड़ा—(सं०) अनाज के ओसाने के समय हवा से उड़ा हुआ महीन भूसा (पट०)। दे०—पंभी।

भौकट्टा—(सं०) मूल्य-निर्धारण के बाद किया जानेवाला फसल का बँटवारा (शाहा०, द० पू०)। दे०—कनकुत्ती बटाइ।
[भौ + कट्टा, भौ < भाव, कट्टा < कटल, काटल]।

म

मंगर—(सं०) पहिये का चौड़ा उपरला भाग, जो भूमितल पर स्थित रहता है। पर्या०—जमोट (गया)।
[मंगर (देशी-?)]।

मंगरा—(सं०) (१) ऊख की जड़ पर आक्रमण करने-वाला एक कीड़ा (द० प० शाहा०)। (२) नाली-जैसा खपड़ा, जो थपुआ के ऊपर रखकर छप्पर छाने के काम आता है।

मँगुरी—(सं०) एक प्रसिद्ध मछली। दे०—मगुरी।
[मँगरी < मद्गुर-]।

मंजर—(सं०) आम आदि फलों की मंजरी।
[मंजर < मञ्जर-, मञ्जरी]।

मंजरल—(क्रि०) आम आदि के पेड़ों में मंजरियों का होना (मुं०-१)।
[मँजर+ल (प्र०) < मँजर < मञ्जरी]।

मंभा—(सं०) (१) वह बड़ी रस्सी, जिसमें दौनी करने के लिए बैल बाँधे जाते हैं (प०)। पर्या०—दौरी (प०), दौरड़, दांगड़ा (प० मै०), कराम (पू० मै०), दवाँही (पट०, गया, द० मुं०), दाँमर (द० भाग०), कांड़, कांड़ा (चंपा०, गया)। (२) हल के पाओ में लगी हुई लोहे की अँकुसी (पट०-१)।
[मंभा < मध्य-(?)]।

मँभार—(सं०) भड़कनेवाला बैल (शाहा०)। दे०—फेफरियाह।
[मँभ+आर (प्र०) < मँभ (देशी)]।

मंटर—(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जो बड़े गोल दानों का और हरित-श्वेत वर्ण का होता है (द० प० शाहा०, पट०)। दे०—मटर।
[मंटर < मटर < मुकुर- (?), या (देशी)]।

मँड़र—(सं०) प्रधान काश्तकार, जो असामी और जमींदार के बीच का मध्यस्थ होता था और किसान से राजस्व इकट्ठा करके जमींदार को देता था। इस काम के लिए उसे छोटी-मोटी सुविधा या राजस्व से मुक्ति मिल जाती थी (द० भाग०)। दे०—महतो। (२) धान आदि अनाज में पाया जानेवाला एक तृण-धान्य। (३) प्रधान व्यक्ति। (४) जाति-विशेष की उपाधि।
[मँड़र < मण्डल- < मण्ड+ल (प्र०) < √ मण्ड् (मण्डयति)]।

मंडा—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो बादामी रंग का होता है और जिसका आटा खाया जाता है (गया)। दे०—गेहूँ।
[मंडा < मण्ड-, मण्डक]।

मँड़ुआ, मड़ुआ—(सं०) बाजरे की जाति का बैंगनी रंग के दानोंवाला एक प्रसिद्ध अनाज, जिसका आटा खाने के व्यवहार में आता है। यह सस्ता होने के कारण गरीबों का मुख्य भोजन है। इसके विषय में कई लोकोक्तियाँ हैं—
(१) "जब मँड़ुआ के गाछी भेल,
धिया-पुता सुख माछी भेल।

जब मड़ुआ के बाल भेल,
   धिया-पुता के गाल भेल ।।"

—जब मँड़ुआ की फसल उगने लगी, तब बाल-बच्चे सूखकर मक्खी के समान हो गये (क्योंकि उनका भोजन बीज बन गया)। और, जब मड़ुआ में बाली हो गई, तब बाल-बच्चों का गाल मोटा हो गया (क्योंकि उन्हें भोजन मिलने लग गया)। (२) "मड़ुआ मीन, चीन संग दही,
   कोदो के भात दूध संग सही।"

—मँड़ुआ का भोजन मछली के साथ, चीना का दही के साथ और कोदो का भात दूध के साथ स्वादु होता है।

(३) कोदो मँड़ुआ अन नहीं,
   जोलहा धुनिया जन नहीं।'

—कोदो और मँड़ुआ वस्तुतः अन्न (अच्छा भोज्य) नहीं और जुलाहा-धुनिया अच्छे जन (खेतिहर-मजदूर) नहीं हो सकते।

[मँड़ुआ < मण्डक-वा मण्डक-(?) ; मँड़ुवा, मँड़ुवा (हि०) ; मड़ुवा (ने०) = कोदो से बनी एक प्रकार की देशी शराब ; मड़ुवा (कुमा०) ; मरुवा (मल०) ; मण्डिया (ओ०); मंड़ुआ (पं०)]।

मँड़ुआनाट—(सं०) मँड़ुआ की डाँट, पुआल (गया)। दे०—मड़ुअठी।

[मँड़ुआ + नाट, मँड़ुआ- < मल्लक-, नाट < नाल-]।

मँड़ू—(सं०) मँड़ुआ, भादों में तैयार होनेवाला एक प्रसिद्ध अन्न (पट०-१)।

[देशी वा < मल्लक-]।

मंड़ेर—(सं०) धान की फसल के साथ होनेवाला एक तृण, जिसके दाने छोटे बादामी रंग के होते हैं; तृण-धान्य (पट०-१)।

[मँड़ेर (देशी)]।

मंडो जोत—(सं०) खेत की चौड़ाई की ओर से की जानेवाली जुताई (द० भाग०)। दे०—कानी।

[मंडो + जोत, मंडो (देशी), जोत < युक्त- < √युज्+त (=क्त)]।

मंहा मूँगा—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो हरे रंग का, छोटा, किंतु बीच में एक पतली-सी उजली रेखा लिये होता है; मूँग (उ० पू० मै०)।

[मंहा+मूँगा, मंहा < महार्घ-, मूँग < मुद्ग-]।

मइयाद—(सं०) (१) लिखित ऋणपत्र आदि की समाप्ति की निश्चित अवधि (पट०-१)। (२)मियाद,अवधि।

[मइयाद < मियाद (फा०)। मिला०—मर्यादा (संस्कृ०)]।

मइला—(सं०) (१) गंदी वस्तु, विष्ठा। (२) गुड़ बनाने के समय खौलते हुए रस से निकाली जानेवाली उसकी गंदगी।

[मइला < मइल < मल-]।

मइलाह—(सं०) काले रंग का गंदा गुड़ (सा०-१)। (वि०) कोई मैली वस्तु।

[मइला+ह (प्र०) < मइला < मइल < मल-]।

मइली—(सं०) गुड़ के लिए रस औंटने के समय उससे निकलनेवाली गंदगी (सा०-१)। दे०—मैल।

[मइली < मइल < मल-]।

मउ—(सं०) चीनी-मिल की एक मशीन, जहाँ ऊख के रस की गंदगी साफ होती है (री०)।

मउरल—(सं०) पौधों की पत्तियों का मुरझाना या गरमी आदि पाकर मुड़ जाना (चंपा०-१)। (वि०) मुरझाया हुआ।

[मउर+ल (प्र०) < मउर < √मृ (पायलागे—मिथते)]।

मउरीसी—(सं०) पैतृक अधिकार में मिली हुई भूमि, या अन्य संपत्ति (पट०-१)।

[मउरीसी < मौरूसी (फा०)]।

मकई, मकैया—(सं०) एक प्रसिद्ध भदई अनाज, जो बड़े गोल चिपटे दानों का तथा पीले और लाल रंग का होता है। इसके आटा, दलिया, सत्तू, भूँजा आदि बनाये और खाये जाते हैं। पर्या०—जनेरा (प०), जिनोरा (पट०)।

[मकई (देशी), वा < महाकाय-(?) ; मिला०—मर्कट-, मर्कटक = एक अन्नभेद—(नेपा०) ; मक्का, मकई (हि०) ; मकै (ने०) ; मकई (कुमा०) ; मकाइ (बँ०) ; मका (ओ०) ; मक्का, मकई (पं०) ; मक्को, मकई (सि०) ; मकाई (गु०) ; मका (मरा०) ; मकोय (कश्म०)]।

मकड़ा—(सं०) (१) एक प्रकार की मोटी कड़ी घास, जो बिना जोती जमीन पर, जहाँ हर वर्ष बाढ़ आया करती है, पैदा होती है। इसकी सफाई खोदने से ही होती है। मिला०—चपड़ा। (२) जाल बुनकर रहनेवाला एक कीड़ा। (३) रेंड़ी के बंध से खेला जानेवाला एक खेल।

[मकड़ा < मकर-, मर्कटक-(?)]।

मकफूल—(सं०) किसी से रुपया आदि लेकर उसके अधिकार में अपनी जमीन रख छोड़ने की प्रक्रिया। दे०—रेहन। (२) एक प्रकार का जमीन का ठीका,

जिसमें ठीकेदार जमीन को अधिकार में लेकर उसकी उपज का उपभोग करता है और जमीन का सूद ठीका देनेवाले को देता है (गाइड०)।

मकरा—(सं०) (१) मकई के खेत में उपजनेवाली एक धान्यजातीय घास (सं० उ०, द० प० शाहा०, द० मुं०)। (२) एक प्रकार की घास, जिसका बीज खाया जाता है। (३) जाल बनाकर रहनेवाला एक कीड़ा। (४) खंभे की नोक पर रेंड़ी का डंठल रखकर और उसके दोनों कोनों पर बैठकर चारों ओर घुमाकर खेला जानेवाला खेल।

[मकरा < मकर-(?) या < मर्कटक-(सं०हृ०)=एक प्रकार का अनाज]।

मकरी—(सं०) (१) हल के पीछे हाथ से पकड़ने के डंडे के ऊपर का लगा हुआ लकड़ी का छोटा टुकड़ा (द० भाग०)। (२) खंभे की दो कानियों (डालियों) के बीच में पड़ी धुरी पर नाचनेवाली घिरनी (चंपा०, द० पू०)। दे०—घड़ारी। (३) खंभे में लगी धुरी के नीचे लाठा की लग्गी के साथ बँधी हुई लकड़ी की टुकड़ी, जिसे धुरी को एक स्थान में दृढ़ करने के लिए लगाई जाती है (पट०, गया प०)। (४) चक्की को हलका करने के लिए उसके खूँटे के सिरे पर हथड़े से लगाकर बाँधी जानेवाली लकड़ी या घिरनी (मुं०-१)। (५) ताड़ के पेड़ पर चढ़ने के समय पासी के द्वारा पैरों में लगाई जानेवाली गोल रस्सी, जो प्रायः ताड़ के चोप की बनी होती है।

[मकरी < मकर-(?) या < मर्कटक-]।

मकान—(सं०) (१) घर, विशेष प्रकार का बना हुआ रहने का स्थान। पर्या०—घर, गिरही (गया, सा०), घउर (द० पू०), घरा (द० मुं०), घिही, घरा (द० भाग०); बखरी (शाहा०)। (२) परिवार के रहने का घर, हवेली (गाइड०)।

टि०—अनेक पृथक्-पृथक् मकानों की एक साथ स्थिति को किला कहते हैं।

[मकान (फा०)]।

मकारबीर—(सं०) कोल्हुआर के निकट बनाई गई एक प्रतिमा। पर्या०—महकारबीर (शाहा०), महकार (उ० पू० मै०)।

[देशी]।

मकुनी—(सं०) आटे की लोइया में मसालेदार सत्तु देकर बनाई गई विशेष प्रकार की लिट्टी (घाघ)। लोको०—

''आठ कठौती माठा पीवे, सोरह मकुनी खाइ।
उसके मरे न रोइये घर के दलिद्दर जाइ॥''

—जो आठ कठौती मट्ठा पीता हो और सोलह मकुनी खाता हो, यदि वह मर जाय, तो उसके लिए रोना कैसा? वह तो घर का दरिद्र चला गया।

[देशी]।

मकैया, मकई—(सं०) एक प्रसिद्ध भदई अनाज, जो बड़े दानों का एवं पीला और लाल वर्ण का होता है। इसके आटा, दलिया, सत्तू आदि खाये जाते हैं। दे०—मकई।

[मकैया < महाकाम-(?) या < मर्कट-, मर्कटक-]।

मकोय—(सं०) एक प्रसिद्ध फली, जो स्वाद में खटमिट्ठी और रंग में पीली होती है। फली गुच्छों में फलती है और इसके ऊपर पतला आवरण-कोश होता है। पर्या०—खुसबरी। भटकोआ, भटकुँआ = बैंगनी रंग की मकोय जाति की एक फली। भुटका, बनभुटका= लाल रंग की मकोय जाति की फली (द०पू०मै०)।

[मकोय < महाकाय-(?) या (देशी)]।

मकोर—(सं०) एक प्रकार का लंबा बाँस। इसके पोर बड़े-बड़े होते हैं (पट०-१)।

[देशी]।

मक्कार—(सं०) (१) नीला और सफेद रंग का बैल (घाघ)। (२) छल, प्रपंच। (वि०) मक्कार, छली।

मक्का—(सं०) बड़े दानोंवाली मकई (पट०-१)।

[मक्का < महाकाय-(?), या (देशी)]।

मखियारा—(सं०) (१) वह बैल, जिसके शरीर में मक्खी की तरह धब्बे होते हैं (पट०-१)। (२) भंगी, हाड़ी, एक अन्त्यज जाति-विशेष (सं० प०)।

[मखि + यारा (प्र०) < मखि < मक्खी < मक्षिका]।

मखूला—(सं०) जमीन बंधक रखने का एक तरीका (सा०-१)।

[मखूला < मक्फूल (फा०)]।

मखलूत—(सं०) अनेक अनाजों का मिश्रण (दर०-१, पूर्णि०-१)।

मगहिया—(वि०) मगह में उत्पन्न होनेवाला, पान, चावल आदि।

[मगहिया < मगही < मगह < मगध-]।

मगहिया कईता—(सं०) कइता नाम की लंबी फली का एक भेद, यह लगभग एक हाथ लंबा होता है और इसपर सफेद रेखाएँ होती हैं। (पट०-१)।

[मगहिया+काँता (यौ०)]।

मगहिया केतारी—(सं०) मगह में पैदा होनेवाला एक प्रकार का ऊख (पट०-१)।

[मगहिया+केतारी (यौ०), मगहिया < मगही < मगह < मगध-, केतारी < कान्तार-]।

मगहियाडोम—(सं०) डोम की एक विशेष जात, जो प्रकृत्या अपराधी मानी जाती है।

मगहिया बूंट—(सं०) मगह में होनेवाला छोटे दानों का एक प्रकार का चना (पट०-१)।
[मगहिया+बूँट-(दी०)]।

मगही—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध पान, जिसके पत्ते गोल, पकने पर पीले और मीठे होते हैं। दे०—बेलहरी। (वि०) मगह में होनेवाला चावल, धान आदि।

मगुरी—(सं०) एक प्रकार की मछली, मँगुरी (चंपा०-१)। पर्या०—मँगुरी, मांगुर, माङ्गुर।
[मगुरी < मद्गुर-]।

मग्घा—(सं०) दसवाँ नक्षत्र, मघा। यह प्रायः श्रावण-शुक्ल के अंत और भाद्र-कृष्ण के आदि में पड़ता है।
[मग्घा < मघा]।

मघड़ा—(सं०) आषाढ़ से माघ तक ऊख या किसी अन्य फसल के लिए जोतकर तैयार किया गया खेत (गया, द० पू०)। दे०—मघात।
[मघड़ा < मघ+ड़ा (प्र०) < माघड़ < माघ-]।

मघड़ा चास—(सं०) अगली बरसात में बोने के लिए माघ महीने में की जानेवाली जमीन की जुताई (गया, चंपा०)। दे०—माघड़ जोत।
[मघड़ा + चास, मघड़ा < माघड़ < माघ + ड़ (प्र०) < माघ; चास (देशी) या < कर्ष- < √ कृष् (विलेखने, कृषति, कर्षति)]।

मघवट—(सं०) अगली बरसात में बोने के लिए माघ महीने में की जानेवाला जमीन की जुताई (शाहा०)। दे०—माघड़ जोत।
[मघवट < मघ + वट (प्र०) < मघ < माघ- < मघा]।

मघाड़—(सं०) (१) अगली बरसात में बोने के लिए माघ महीने में की जानेवाली जमीन की जुताई (द० मुं०)। दे०—माघड़ जोत। (२) आषाढ़ से माघ तक ऊख या किसी अन्य फसल के लिए जोतकर तैयार किया गया खेत (सा०, पट०, द० मुं०) दे०—मघात।
[मघा+ड़ (प्र०) < माघ < मघा-]।

मघाड़ा—(सं०) वह खेत, जो माघ महीने में आबाद नहीं किया जाता है। केवल जोतकर या बिना जोते ही परती छोड़ दिया जाता है (चंपा०-१)।
[मघा+ड़ा (प्र०) < माघ < मघा]।

मघात—(सं०) आषाढ़ से माघ तक ऊख या किसी अन्य फसल के लिए जोतकर तैयार किया गया खेत (द० पू० मै०)। पर्या०—मघाड़ या मघार (सा०, पट०, द० मुं०)। मघड़ा (गया, द० पू०), मघुआ (द० भाग०)।
[मघात < मघा < माघ-]।

मघार—(सं०) (१) आषाढ़ से माघ तक ऊख या किसी अन्य फसल के लिए जोतकर तैयार किया गया खेत (सा०, पट०, द० मुं०)। दे०—मघात। (२) वह खेत, जो माघ महीने में आबाद नहीं किया जाता है, लेकिन जोता जाता है।
[मघा+र (प्र०) < मघा < माघ-]।

मघारि—(सं०) पूस-माघ महीना (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मघ+आरि < माघ-, आरि = आर, पू० बिहा० में आदि, प्रभृति अर्थ में प्रयुक्त होता है, यथा कपड़ा लत्ता आर (= कपड़ा-लत्ता आदि)]।

मघुआ—(सं०) आषाढ़ से माघ तक ऊख या किसी अन्य फसल के लिए जोतकर तैयार किया गया खेत (द० भाग०)। दे०—मघात।
[मघ+उआ (प्र०) < मघ < माघ-]।

मचान—(सं०) (१) फसल की राशि को रखने के लिए बनाया गया ऊँचा स्थान, जो बाँस की फट्टी आदि से बनाया जाता है। (२) खेत की फसल की रखवाली के लिए बनी हुई ऊँची झोपड़ी, जिसमें बाँस की फट्टी, तख्ता या खाट से सोने-बैठने की जगह बनाई रहती है। (३) नील की टोह या तख्ते पर रखना। पर्या०—चाली। (४) मकई के खेत में फसल की रक्षा करने के लिए, आठ, छह या चार बाँस गाड़कर बनाई गई झोपड़ी (पट०-१)। (५) चार या छह खंभों को गाड़कर बाँस की फट्टियों की चचरी, तख्ता या खाट बाँधकर बनाया गया ऊँचा स्थान, जिसपर सोया-बैठा जाता है। कभी-कभी यह ऊपर से खुला रहता है और कभी ऊपर छप्पर भी डाल दिया जाता है।
[मचान < मञ्च+आन (प्र०)-(?)]।

मचिया—(सं०) चक्की पीसने, भोजन बनाने आदि के समय व्यवहृत होनेवाला चार पायोंवाला चौकोर छोटा आसन-विशेष, जो रस्सी या नेवार से बुना होता है।
[मच+इया (प्र०) < मञ्च-]।

मचोल—(सं०) (१) मचान। (२) खंभों पर रखी हुई छोटी खाट (मुं०-१)। पर्या०—मचोला।

लोको०—'बाबू भैया मचोल पर छौड़ा नौड़ा हेठ में' = बड़े लोग ऊँचे स्थान पर रहते हैं और छोटे लोग नीचे।

मचोला—(सं०) मचान, ऊँचा स्थान। दे०—मचोल।
[मच+ओला, मच < मञ्च-, ओला (प्र०)-(?)]।

मछली—(सं०) जल में रहनेवाला एक प्रसिद्ध प्राणी, मत्स्य।
[मछली < मछ+ली (प्र०) < मच्छ < मत्स्य-]।

मछुअइन—(सं०) मछुआ की स्त्री। मछली बेचनेवाली (सा०-१)।
[मछुअ + इन (प्र०) < मच्छ < मत्स्य-]।

मछुआ—(सं०) मछली मारनेवाली और बेचनेवाली एक प्रसिद्ध जाति (सा०-१)।
[मछुआ < मछ + उआ (प्र०) < मछ < मच्छ < मत्स्य-]।

मछुआइन—(सं०) दे०—मछुअइन।

मछेली—(सं०) अफीम की फसल के साथ उगनेवाली एक घास (उ०)। दे०—खुरकी।
[देशी]।

मजदूर—(सं०) काम करनेवाला, श्रमिक।
[मजदूर (फा०)]।

मजदूरी—(सं०) (१) मजदूर का भाव या दशा। (२) मजदूर को मिलनेवाला पारिश्रमिक।
[मजदूरी < मजदूर (फा०)]।

मजुरी—(सं०) मजदूर को मिलनेवाली मजदूरी। पर्या०—अजुरा (पू०)।
[मजुरी < मजुर < मजदूर (फा०); मजदूर (हिं०)]।

मजुसी—(सं०) हौज में नील के बोझों को दबाने के लिए प्रयुक्त शहतीर का सहायक लकड़ी का कुंदा, जो हौज की दीवार के सहारे अवलंबित रहता है (पू० मै०)। पर्या०—तान (चंपा०), सिरपाहा (पू० मै०)।

मजूरी—(सं०) मजदूरी।
[मजूरी < मजुरी < मजदूरी (फा०)]।

मजूरा—(सं०) (१) खेतों में काम करनेवाला मजदूर। पर्या०—बनिहार। (२) कोल्हू के लिए ऊख के लंबे टुकड़े काटनेवाला मजदूर (उ० पू० मै०)। दे०—कानू।
[मजूरा < मजदूर (फा०)]।

मझरिया—(सं०) नदी से घिरा हुआ गाँव (चंपा०-१)।
[मझर + इया (प्र०) < मझर < मज्झ < मध्य-(?)]।

मझोतर—(सं०) हेंगा खींचनेवाली रस्सी (द० मुं०, पट०, पू० मै०)। दे०—बरही।
[मझ+ओतर < मध्योत्तर-(?)]।

मटका—(सं०) (१) अन्न या पानी रखने का मिट्टी का बरतन। पर्या०—मटुका। (२) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।
[मटका < मार्त्तक- < मृत्+अण्+क (प्र०)]।

मटकी—(सं०) अन्न रखने के काम में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बरतन (मै०, पट०, गया, द० मुं०)।
[मटकी < मार्त्तिकी < मृत्तिका < मृद्+तिक् (प्र०)]।

मटकोर—(सं०) (१) मिट्टी का गड्ढा (पट०, द० मुं०)। दे०—चूआँ। (२) वह स्थान, जहाँ से कुम्हार मिट्टी ले जाया करते हैं (पट०-१)। (३) विवाह, उपनयन आदि संस्कार के समय विधि-विशेष के लिए मिट्टी कोड़ने की प्रथा।
[मट+कोर < मृत्+कर्ष-(?)]।

मटखना—(सं०) वह गड्ढा, जहाँ से मिट्टी लाई जाती है (द० प० शाहा०, द० भाग०, मै०)। दे०—चूआँ।
[मट+खना ; मृत्, खन < खनन < √खन्]।

मटचुल्हा—(सं०) मिट्टी का बना चूल्हा (पट०-१)।
[मट+चुल्हा ; मट < मृत्+चुल्हा < चुल्लि-]।

मटपर—(सं०) मिट्टी का बना हुआ पात्र, जिसमें आग जलाई जाती है (पट०-१)।
[मट+पर ; मट- < मृत्, पर < पात्र-(?)]।

मटर—(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जिसके दाने गोल हलके हरे या बादामी रंग के होते हैं। पर्या०—मंटर (द० प० शाहा०)। केराव=छोटे दानों की कड़ी मटर।

मटहा—(सं०) ऊँची-नीची जमीन (उ० पू० मै०)। दे०—उभरखाभर।
[मट+हा (प्र०) < मट < मृत्-(?)]।

मटिखान—(सं०) मिट्टी का गड्ढा (प० मै०, गया, शाहा०)। दे०—चूआँ।
[मटि+खान < मृत्खनि-(?)]।

मटिगर—(सं०) भूरे रंग की मिट्टी, जिसमें धान पैदा होने की उर्वरा शक्ति अधिक रहती है। दे०—मटियार।
[मटि+गर (प्र०) < मटि < मृत्ति-]।

मटियार—(सं०) (१) खेतों की काली और कड़ी मिट्टी, जिसमें बालू का अंश न हो। यह धान की उपज के लिए बहुत अच्छी मानी जाती है (चंपा०-१)। (२) भूरे रंग की मिट्टी, जिसमें धान पैदा होने की उर्वरा शक्ति अधिक रहती है। पर्या०—मटिगर (गया)
[मटि+यार (प्र०) < मटि < मृत्ति-]।

मटियार बाँगर—(सं०) मिट्टीदार बाँगर जमीन।
[मटियार + बाँगर ; मटियार < मृत्ति-, बाँगर (देशी)]।

मटियार भीठ—(सं०) चिकनी काली मिट्टी से युक्त ऊँची जमीन।
[मटियार + भीठ, मटियार < मट्टि < मृत्ति-, भीठ < भीठा (?)]।

मटियारी इनारा—(सं०) मिट्टी का कच्चा कुआँ (पट०-१)।
[मटियारी+ इनारा ; मटियारी < मटियार- < मट्टी < मृत्ति-, इनारा (देशी) या<इन्द्रागार-(?)]।

मटुका—(सं०) अन्न या पानी रखने का मिट्टी का बरतन (शं० द०, शं० उ०, चंपा०)। दे०—मटका। पर्या०—मटकी (मै०, पट०, गया, द० मुं०)।
[मट + उका (प्र०) < मट < मार्त < मार्त्त < मृत्, मृत्ति-]।

मटुकी—(सं०) ऊख का रस या गुड़ रखने का बरतन। पर्या०—ओड़ी (द० प० शाहा०), नदवा (गया), खोरा (द० पू०), कूँड़ी (द० भाग०)।
[मट+उकी (प्र०) < मट < मार < मार्त्त < मृत् -, मृत्ति-]।

मटोर—(सं०) एक प्रकार की टोकरी, जिससे बरई पान के पौधों में मिट्टी डालता है अथवा जिसमें पान इकट्ठा करता है (उ० पू० मै०)।
[मट+ओर (प्र०) < मट < मृत्-,मृत्ति-]।

मट्टी—(सं०) मिट्टी। पर्या०—माटी।
[मट्टी < मृत्ति- < मृत् + ति ; मट्टी, माटी, मिट्टी (हि०) ; मट्टि (ने०)]।

मट्टीखनमा—(सं०) वह स्थान या गड्ढा, जहाँ से कुम्हार बरतन बनाने के लिए मिट्टी लाता है (पट०-१)।
उदा०—"मट्टी कोड़े गेली हम आम्ह मटिखनमा,
इयार मोरा पड़लन हाथ रे जेलखनमा।"
[मट्टी + खनमा ; मट्टी < मृत्ति-, खनमा < खनन, < √खन् (खनति)]।

मट्टी मसागत—(सं०) आहर के चारों ओर के बाँध के मरम्मत करने की प्रक्रिया (पट०-१)।
[मट्टी + मसागत, मट्टी < मृत्ति-, मसागत < मशक्कत (फा०)=परिश्रम-(?)]।

मठबा—(सं०) एक प्रकार का साग (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

मड़ई—(सं०) (१) खेत या खलिहान में खड़ी की गई झोपड़ी। पर्या०—खोंपड़ी, झोंपड़ी, मड़का, झोंपड़ा (पट०), कूड़ा (गया), खोंपड़ा (द० पू०)। (२) घास-फूस की बनी झोपड़ी।
[मड़+ई (प्र०) < मड़- < मण्डप- < √ मडि (मण्डयति)]।

मड़र—(सं०) (१) धान की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (द० भाग०)। (२) उस घास का दाना, जो मड़ुए की तरह होता है। पर्या०—मड़ेर (पट०, गया, पू०), मरेन (शाहा०)।
[मड़र (देशी); मिला०—मण्डल = गोल पदार्थ]।

मड़री—(सं०) ऊख पेरने के कोल्हू के चारों ओर से फटने से बचाने के लिए तथा उसकी मजबूती बनाये रखने के निमित्त लगाया गया लोहे का अँगूठीनुमा पत्तर। यह लोहे के कोल्हू के बनने के पहले की बात है, जब कि वह लकड़ी का होता था। लेकिन, तेल के कोल्हू में आज भी यह 'मड़री' लगाया जाता है। दे०—बन।
[मड़री < मण्डल-(?)]।

मड़वा—(सं०) (१) पान के बाग के ऊपर छाया गया छप्पर (द० मुं०)। दे०—माड़ो। (२) विवाह, उपनयन आदि संस्कार के समय बनाया गया मण्डप-विशेष।
[मड़वा < मण्डप < √मडि (मण्डयति)]।

मड़ुआ—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध अन्न, जो बरसात में होता है और जिसके छोटे-छोटे दाने लाल या लाल-काले रंग के होते हैं। इसकी गिनती कदन्न में होती है। इसकी रोटी आदि बनाकर खाई जाती है। (२) एक प्रसिद्ध फूल। (३) लकड़ी की बनी खूँटी, जिसे पर बनाते समय काम में लाते हैं। (४) बनतुलसी। पर्या०—मरुआ।
[मड़ुआ < मरुवक-]।

मड़ुआदाना धान—(सं०) एक प्रकार का महीन धान, जिसका चावल लाल तथा हलका होता है (पट०-१)।
[मड़ुआ+दाना+धान (यौ०)]।

मड़ुआ, मँड़ुआ—(सं०) छोटे दानों का प्रसिद्ध अन्न-विशेष, जो बिहार की गरीब जनता का मुख्य भोजन है।
[मड़ुआ < मरुवक-]।

मड़ुआरी—(सं०) मँड़ुआ उपजने का खेत (पट०-१)।
[मड़ुआ+री या आरी (प्र०)<मड़ुआ+आरी]।

मड़ुका—(सं०) छोटी मड़ई (पट०, गया)। दे०—गोहिया।
[मड़+उका (प्र०) मड़ < मण्ड < मण्डप-]।

मड़ुआटी—(सं०) मँड़ुआ का डंठल (गया, द० प०, शाहा०)। पर्या०—मँड़ु के नारा।
[मड़ुआ+आटी, मड़ुआ < मस्तक, आटी (प्र०) वा आंटी < आंटी < आंट (?)]।

मड़ेर—(सं०) (१) धान की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (पट०, गया, पू०)। दे०—मड़र। (२) उस घास के दाने।
[देशी ; मिला०—मण्डल-]।

मड़ही—(सं०) बाग, जंगल आदि में रहने के लिए घास-फूस की बनी मड़ई (द० भाग०)। दे०—पाक्का।
[मड़+ही (प्र०), मड़ < मण्ड (=मण्डप-)]।

मड़ुका—(सं०) खेत या खलिहान में खड़ी की गई मड़ई (पट०-१)।
[मड़+उका (प्र०) < मण्ड- < मण्डप-]।

मतउँधाबेल—(सं०) वह लत्तर, जिसके खाने से नशा आ जाता है (पट०-१)।
[मतउँधा + बेल ; मतउँधा < मत्तान्ध- ; बेल < वल्ली-]।

मतिसरी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[मति + सरी < मति- शालि-, मृत्तिशालि- वा मतिश्री- (?)]।

मतौना—(सं०) (१) कोदो। (२) कोदो का भात (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)। (वि०) नशीली वस्तु।
[मत+औना < मत्तान्ध-(?)]।

मथबोझा—(सं०) फसल का वह निश्चित परिमाण, जो एक व्यक्ति के सिर पर ढोया जा सके।
[मथ+बोझा, मथ < मस्तक-, बोझा (देशी)]।

मथार—(सं०) पीढर के ऊपर का भाग। दे०—पीढर।
[मथ+आर < मथ < मस्तक-]।

मदत—(सं०) (१) जमींदार की आज्ञा से किसी विशेष अवसर पर किसान के द्वारा समर्पित वस्तु-विशेष या वैयक्तिक सेवा (द० मुं०)। दे०—हुकूमत। (२) मदद, सहायता।
[मदत < मदद (फा०)]।

मधुआ—(सं०) आम की मंजरियों में लगनेवाला रोग-विशेष, जो तरलता के साथ उनपर फैल जाता है, यह रोग आकाश में मेघों के छा जाने से लगता है।
[मधुआ < मधु- (मधु के सदृश तरल मीठा होने से ला० प्र०)]।

मधुआइल—(क्रि०) दे०—मधुआवल।

मधुआवल—(क्रि०) (१) किसी फल आदि का पूरी तरह पक जाना (चंपा०-१)। (२) आम की मंजरियों में मधुआ नामक रोग का लगना। मधुआ मेघों के कारण लगा करता है। (वि०) मधुआ-लगा पेड़।
[मधु+आवल (प्र०) < मधु-]।

मन—(सं०) (१) लंबा और गहरा विस्तृत जलाशय। (२) चालीस सेर की तौल। (३) मन, हृदय।
[मन (१) < (देशी) वा < मानस (हिमालय का प्रसिद्ध सरोवर), मन। (२) < मना (संस्कृ०) = सोना तौलने की एक माप ; मानेह (हिब्रू) ; मोन (शिना०) ; मन (हिं०, कश्म०) ; मण (पं० सं०) ; मणु (सि०) ; मण (मरा०, गु०), मन (फा०)। मन (३) < मनस्]।

मनई—(सं०) (मुं०-१)। दे०—मनय।
[मन+ई (प्र०) < मन < मनुज < मनु-]।

मनकोढ़ी—(सं०) काम के समय बैठ जानेवाला बैल (पट०)। दे०—पसला।

मनखदरा—(सं०) वह बैल, जो पुष्ट होकर भी काम से जी चुराये (पट०-१)।
[मन+खदरा (दी०)]।

मनखप—(सं०) (१) जमीन की नगदी के बदले प्रति बीघा अन्न के एक निश्चित परिमाण के रूप में जमींदार को दी जानेवाली मालगुजारी। दे०—बटाई। पर्या०—मनठीका, हुंडा, मनहुंडा। मनी-बंदोबस्त (पट०) = यह प्रणाली विशेषतः जिरात जमीन के विषय में बरती जाती थी, जबकि वह किसान को दी जाती थी। आज भी बटाई खेती में यह प्रणाली चलती है। (२) वह भूमि, जिसका राजस्व अन्न आदि के रूप में चुकाया जाता हो। पर्या०—भावली, मनठीका, हुंडा, मनहुंडा (मुं०, चंपा०), मनी बंदोबस्त (पट०), चौराहा। (३) प्रति बीघा एक निश्चित परिमाण के रूप में मिलनेवाला उपज-कर (शाहा०)।

टि०—इस प्रणाली में अनाज की उत्पत्ति के अनुपात के बिना ही भूमि-कर के रूप में अन्न का परिमाण निश्चित कर दिया जाता था। यह रीति प्रायः चंपा०, दर० और मुज० में बरती जाती थी। किंतु, पट० में इसी को 'बंदोबस्त मनी' कहा जाता था। यदि उत्पादित अन्न में से एक निश्चित परिमाण में चावल दिया जाता था, तो इसे 'चौराहा' कहते थे। लेकिन, ये सभी प्रकार जमींदार की अपनी जिरात जमीन में बरते जाते थे। भावली जमीन में तो अनाज का निर्धारित ंश जमींदार

और किसान के बीच बाँटा जाता था। इस बँटवारे को 'बटाई' कहा जाता था।

[मन+खप (पौ०), मन (देशी) = चालीस सेर का परिमाण, विशेष खप (देशी)]।

मनखब—(सं०) दे०—मनखम।

मनखम—(सं०) ऊख के कोल्हू का सीधा खड़ा खंभा। दे०—हरसा।

[मन+खम ; मन < मोहन-(?) खम < खंभ < स्कम्भ-]।

मनगो—(सं०) (१) एक प्रकार का छोटा कड़ा लाल ऊख। (२) एक अधिक रसवाला मुलायम ऊख, जो अब नहीं मिलता है (पट०-१, भाग०)।

[मनगो (देशी) ; < मणिकार- (=एक प्रकार का ऊख—भावप्र०)]।

मनगोय—(सं०) एक प्रकार की ईख, जिसके पौधे छोटे होते हैं और जिसके रस का गुड़ उत्तम श्रेणी का होता है। यह चूसने में मुलायम होती है (मु ०-१)।

[देशी, या मणिकार- (=एक प्रकार का ऊख)]।

मनठीका—(सं०) (१) जमीन की नगदी लगान के बदले प्रति बीघा अनाज के निर्धारित परिमाण के रूप में जमींदार को दिया जानेवाला राजस्व। दे०—मनखप। (२) वह भूमि, जिसका राजस्व अनाज के रूप में चुकाया जाता था। दे०—मनखप।

[देशी]।

मनपई, मनपौआ—(सं०) अनाज तौलनेवाले पुरुष का शुल्क, जो प्रायः प्रतिमन पाव-भर होता है (चंपा०, पू० मै०)। दे०—हटवाई।

[मनपई < मनपाव<मन (देशी)+पाव<पाद-]।

मनपौआ, मनपई—(सं०) अनाज तौलनेवाले पुरुष का शुल्क, जो प्रायः प्रतिमन पाव-भर होता है (चंपा०, पू० मै०)। दे०—हटवाई।

[मनपौआ < मन (देशी)+पौआ < पाद-]।

मनय—(सं०) मजदूरी करनेवाला आदमी, जन, मनुष्य (मुँ०-१)। पर्या०—मनई।

[मनय < मानव-(?)]।

मनरा—(सं०) बैलगाड़ी के पहिये का वह अंश, जिसमें उसकी धुरी लगी रहती है (पट०-१)।

[देशी]।

मनरिया—(सं०) एक प्रकार की ईख (मुँ०-१)।

[मन+इया (प्र०) < मनर < मनेर (?) =पटना नगर से पश्चिम १८ मील पर स्थित स्थान-विशेष का नाम। इस स्थान के मुक्ती के लड्डू और तालखानी प्रसिद्ध हैं]।

मनवाँ—(सं०) एक प्रकार की कपास (शाहा०)।

[देशी]।

मनसरा—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)। (२) एक प्रकार का मोटा धान (मुँ०-१)।

[मन + सरा < मनःशालि- या मनःशिला (=मैनसिल)]।

मनसरी—(सं०) एक अगहनी धान, जिसका चावल, सफेद, छोटा और गठीला होता है (सा०-१, चंपा०-१)।

[मन+सरी < मनःशालि, या मनःशिला-(?)]।

मनसारा—(सं०) एक प्रकार का धान, जो महीन एवं पीला-लाल होता है (चंपा०-१)।

[मनसरा < मनःशालि-, मनःशिला (?); संभ०—लाल रंग होने के कारण यह नाम मैनसिल के नाम पर ही पड़ा हो]।

मनसेरवा धान—(सं०) कातिक मास में तैयार होनेवाला एक निम्न श्रेणी का धान (पट०-१)।

मनसेरी—(सं०) (१) अनाज के रूप में लिया जानेवाला अतिरिक्त उपज का राजस्व, जो बिना बाँटे अन्न में से प्रतिमन एक सेर लिया जाता था। (२) जमींदार द्वारा प्रतिमन एक सेर के हिसाब से लिया जानेवाला अतिरिक्त कर (पट०-१)। पर्या०—सेरही।

मनहा—(सं०) एक मन या चालीस सेर के वजन का बटखरा (रो०)।

मनहुंडा—(सं०) (१) वह जमीन, जिसका राजस्व एक निश्चित परिमाण में चुकाया जाता हो। दे०—मनखप। (२) नगद के बदले प्रति बीघा अनाज के एक निश्चित परिमाण के रूप में जमींदार को दी जानेवाली मालगुजारी। दे०—मनखप। (३) पूरे किते की उपज के लिए लिया जानेवाला एक निश्चित परिमाण का उपज-कर (गाइड०)।

[मन+हुँडा; मन < मना (?) या मान (संस्कृ०); हुँडा < हुण्ड-, हुण्डिका (संस्कृ०); हुँडी, हुँडा (हिं०); होंडा (कश्म०); हुण्डि (ने०); हुण्डी (कुमा०); हुण्डी (बँ०, ओ०, असः०); हुण्डी (मरा०, गु०, पं०, ल०, सिं०)]।

मनिकथम—(सं०) ऊख के कोल्हू का सीधा खड़ा खंभा (पू०, द० भाग०)। दे०—हरसा।

[मनिक+थम ; मनिक < माणिक्य, मणिक-(?) थम < थम्भ < स्तम्भ-]।

मनियाँ–(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें भीतर-ही-भीतर कीड़े पड़ जाते हैं (पट०-१)।

[देशी]।

मनी–(सं०) (१) किसान की ओर से जमींदार को मिलनेवाला प्रति बीघा एक मन का उपज-कर, जो उसके अपने आधे हिस्से के अतिरिक्त होता है (गाइड०)। (२) बटाईदारी खेती में वह प्रकार, जिसमें बटाईदार खेत के मालिक को प्रति बीघा मन के हिसाब से एक निश्चित परिमाण में अनाज देता है। (३) वेतन के बदले में नौकर को दिया जानेवाला अनाज का भत्ता। पर्या०—कोराना।

[मनी < मन < मना (संस्कृ०); मन (फा०)]।

मनी बंदोबस्त–(सं०) (१) वह भूमि, जिसका राजस्व अनाज के निश्चित परिमाण के रूप में चुकाया जाता हो। दे०—मनखप। (२) नगद के बदले प्रति बीघा अनाज के रूप में जमींदार को दी जानेवाली जमीन की मालगुजारी (पट०)। दे०—मनखप। (३) बटाईदारी खेती में वह व्यवस्था, जिसमें बटाईदार खेत के मालिक को प्रति बीघा मन के हिसाब से एक निश्चित परिमाण में अनाज देता है।

[मनी+बंदोबस्त (यौ०), मनी (बिहा०, हि०)+बंदोबस्त (फा०)]।

मनुआ–(सं०) बकरी, भेड़, गाय आदि का छोटा बच्चा (चंपा०-१)। दे०—मेमना।

[मनुआ (देशी); मनुवाँ (पं० हि०) = मन; मनुवा (ने०)=मनुष्य]।

मनेरिया–(सं०) एक प्रकार का ऊख (पट०-१)। दे०—मनरिया।

[मनेरिया < मनेर (=पटना से १८ मील पश्चिम एक प्रसिद्ध स्थान]।

मन्ना–(सं०) एक मन की माप का बटखरा या बरतन (मुं०-१)।

[मन+ना<मन<मना (संस्कृ०); मन (फा०)]।

मफर्द–(सं०) जमींदारी की ग्रामीण-विषयक एक बही, जिसमें रैयतों के खेतों का प्रतिवार्षिक नंबर, इलाका, कर आदि का विवरण लिखा रहता है (गाइड०)।

[मफर्द-(फा०)]।

ममसल–(क्रि०) अधिक नमी के कारण धान का कमजोर हो जाना।

[ममस+ल (प्र०) < ममस (देशी)]।

मरई–(सं०) घास-फूस की बनी झोपड़ी। दे०—मरै। पर्या०—मड़ई।

[मरई < मण्डपी (?) < मण्डप-]।

मरकल–(क्रि०) पौधों के पत्तों का सिकुड़ जाना। (सं०) सूखने की पूर्वावस्था (चंपा०-१)।

[मरक+ल (प्र०) < मरक < मरल < √मृ]।

मरकहा–(सं०) मारनेवाला मवेशी (द० प० शाहा०)।

[मरक+हा (प्र०) < मरक < मरल < मारल < √मृ]।

मरकाहा–(सं०) दे०—मरकहा।

मरकी गरकी–(सं०) जमींदारी पद्धति में भावली जमीन की उपज के मूल्य-निर्धारण के द्वारा अनाज के बँटवारे में कम उपज के पूरक के निमित्त निकाला जानेवाला अनाज। इस प्रकार के अनाज निकालने की प्रक्रिया (द० भाग०)। दे०—छूट।

[मरकी+गरकी (यौ०); मरकी < मरल; गरकी गर्क (फा०)]।

मरखंडा–(सं०) (मुं०-१)। दे०—मरखाहा। मरखंडी (स्त्री०)।

[मरखंडा < मर + खंडा (यौ०) < मरल, खंडा षण्ड (?)]।

मरखंडी–(सं०) दे०—मरखंडा।

मरखन–(सं०) मारनेवाला दुष्ट मवेशी (गया)। दे०—मरखाह।

[मर + खन (यौ०); मर < मरल < मारल; खन < षण्ड-(?)]।

मरखन्नो–(सं०) मारनेवाला मवेशी (द० भाग०)। दे०—मरखाह। (वि०) मारने की प्रवृत्तिवाला।

[मर+खन्नो; मर < मरल; खन्नो < खण्ड- या षण्ड-(?)]।

मरखाह–(सं०) मारनेवाला दुष्ट मवेशी। पर्या०—मरखंडा (पट०), मरखन्नो (द० भाग०), मरखन (गया), मरकहा, खतहा (द० प० शाहा०)।

[मर+खाह (प्र०) < मरल, मारल]।

मरखाहा–(सं०) मारनेवाला या हूँसनेवाला मवेशी (मुं०-१, भाग०)। (वि०) अकारण मारनेवाला या बिगड़नेवाला। पर्या०—मरखंडा, मरखंडी, मरखाही (स्त्री०)।

मरखाही–(सं०) दे०—मरखाहा।

मरचा–(सं०) (१) लाल मिर्च, एक प्रसिद्ध तीती फली। (२) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।

[मरचा < मरीच; मरिच-(संस्कृ०), मरिचो (पा०); मरिच (प्रा०); मरीच, मिर्च (हि०); मरिच (ने०)]।

मरथम—(सं०) ऊख या तेल के कोल्हू का सीधा खड़ा खम्भा (पट०, गया)। दे०—हरसा।
[मर+थम < मण्डल+स्तम्भ-(?)]।

मरथम्ह—(सं०) कोल्हू के बीच का खड़ा खंभा। पर्या०—मरथम, मलिकथम (सा०)।
[मर+थम्ह < मण्डल- स्तम्भ-(?); मिला०—मणिकस्तम्भ = माणिक्यस्तम्भ-(?)]।

मरन—(सं०) (१) नदी का सूखा हुआ तल (उ० मैं०)। दे०—छारन। (२) मृत्यु।
[मरन < मरण- < √मृ]।

मरमुकर्ररी—(सं०) निश्चित राजस्व पर स्थायी बंदोबस्ती की एक प्रकार की रैयती जमीन (गाइड०)। पर्या०—सेममुकर्ररी।
[मरमुकर्ररी (फा०)]।

मरल—(क्रि०) (१) पौधों का सूखकर या सड़कर नष्ट हो जाना। (२) मरना, मृत्यु प्राप्त करना। (३) दुर्बल होना, मृत्यु की दशा प्राप्त करना। (वि०) मरा हुआ, दुर्बल, असफल। (सं०) कबड्डी या चिक्का आदि खेल का वह खिलाड़ी, जो अनियमित करार दिये जाने पर खेल से अलग हो जाता है।
[मर+ल (प्र०) < मर < √मृ; मृ (=मरति पा०, मरइ प्रा०); मरेल (शेमा०); मरना (हिं०); मर्नु (ने०); मरन (कश्म०); मर (प० पहा०); मर्नो (कुमा०); मरिबा (असo); मरा (बं०); मरिबा (ओ०); मरने (मरा०); मरवूँ (गु०); मरणुं (सिं०); मरण (सिंह०)]।

मरवट—(सं०) राजा या राज्य के निमित्त खुली लड़ाई में मारे गये व्यक्ति के परिवार को दी गई करमुक्त भूमि (पू०)। पर्या०—मरौटी (पू०)।

मरवाड़—(सं०) लड़की की शादी पर जमींदार की ओर से लिया जानेवाला सवा रुपये का कर (गाइड०)।
[मरवाड़ (प्र०) < मरवा < मड़वा < मण्डप-; ड़ (प्र०) या छवाड़ < छवावल (?)]।

मरसरपइन—(सं०) वह पैन या छोटा नाला, जो मिट्टी से भर जाया करता है (पट०-१)।
[मर+सर+पइन (यौ०)]।

मरहना—(सं०) फसल का नष्ट हो जाना (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मर + हना; मर < मरल (बिहा० क्रि०); हना < धान्य-(?)]।

मरहिन्ना—(सं०) (१) अनावृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल (पू० मैं०)। दे०—मुआर। (२) फसल का एक रोग, जिसमें सारा पौधा जल जाता है (मैं०, पू०)। दे०—मरी।
[मर+हिन्ना; मर < मरल; हिना < धान्य (?)]।

मरहीना—(सं०) रोगग्रस्त धान आदि का पौधा, जिसमें दाने नहीं लगते (मुं०-१)।

मरहेना—(सं०) अनावृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल (पू०, मैं०)। दे०—मुआर, मरहना (दर०-१)।

मरा—(सं०) (१) अनावृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल (द० भाग०)। दे०—मुआर। (२) अनाज की वह बाल, जिसमें पाला या मारा रोग लग गया हो (द० पू०)। दे०—मराएल। (३) मारा, अकाल।
[मरा < मरल < √मृ]।

मराइल—(क्रि०) (१) वर्षा के कारण मरा हुआ चना या दूसरी रब्बी। पर्या०—गलल (सा०), मारल गेल (मैं०), पतलगुआ, पतलम्‌ (सं० द०); उकठा (द० प० शाहा०), दहियाएल (द० मुं०), दगियाल (द० भाग०)। (२) अविकसित पौधा। दे०—सनठना। (३) मरी हुई फसल। (वि०) आहत, मारा गया।
[मरा+इल (प्र०) < मरल < √मृ]।

मराएल—(सं०) (१) अनाज की वह बाल, जिसमें पाला या मारा रोग लग गया हो। (सं० उ०)। पर्या०—अवदार, दगदार (शाहा०), कोढ़िल (पट०, गया), मरा (द० पू०)। (२) मारी गई फसल। (वि०) नष्ट, मारा गया, आहत।
[मरा+एल (प्र०) < मरा < मरल < √मृ]।

मराएल—(क्रि०) मारा जाना, नष्ट होना। पाला आदि रोग से फसल का नष्ट होना।

मरिखर—(सं०) हेंगा खींचने की रस्सी (द० मुं०, द० पू०)। दे०—बरही।

मरिचा—(सं०) एक प्रसिद्ध तीती फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है (प० शाहा०, गया, सर्वत्र)। दे०—मिरिच।
[मरिचा < मरिच-]।

मरी—(सं०) (१) फसल का एक रोग, जिससे सारा पौधा जल जाता है (प० मैं०, द० भाग०)। पर्या०—मुआर (प०), चतरा (पट०, गया), मरहिन्ना (मैं०, पू०)। (२) मारा, अकाल। (३) मृत पशु (पू०बि०)। पर्या०—डाँगर (शाहा०)।
[मरी < मरल < √मृ]।

मरीच—(सं०) काली मिर्च (दर०-१, पूर्णि०-१, सर्वत्र)। पर्या०—गोलमिरिच।
[< मरीच-]।

मरुअनि-(सं०) एक प्रकार का साग (दर०-१, पूणि०-१)।
[मरुअ+नि (प्र०) < मरुअ < मरुवक]।

मरुआ—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध अनाज, मँड़ुआ। दे०-मड़ुआ। (२) एक प्रसिद्ध फल।
[मरुआ < मरुवक-]।

मरुका—(सं०) (१) मकान के ऊपर बनी हुई छायादार गोल छाजन। (२) खेत या खलिहान में खड़ी की गई झोपड़ी (पट०)। दे०-मड़ई। (३) गोल छाजन की छोटी झोपड़ी।
[मरुका < मण्डपक-(?)]।

मरेन—(सं०) (१) धान के पौधों की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (शाहा०)। दे०-मड़र। (२) मुआर या मरी रोग-लगी फसल (चंपा०-१)।
[मरेन < मरल < √मृ]।

मरेवा—(१) सोहनी में जहाँ से मजदूरों की पाँत आरंभ होती है, वहाँ बैठनेवाला पहला मजदूर (चंपा०-१)। (२) मड़ई, झोपड़ी।
[मरेवा < मड़ेवा < मण्डल-(?), < मण्डप-]।

मरै-(सं०) घास-पात का बना हुआ खुला छोटा मकान। दे०—झोपरा। पर्या०—मरई, मँड़ई।
[मरै < मड़ई < मण्डप-]।

मरौती—(सं०) जमींदार या राजा-सरदार की सेवा के बदले में दी जानेवाली करमुक्त भूमि (गाइड०)।
[मर+औती (प्र०) < मरी < मरल < √मृ; या मरौवत (हि०) से उधार]।

मरौअती-(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों को मिलनेवाली भूमि-कर से मुक्ति (शाहा०)। दे०—माफी।
[मरौ+अती (प्र०) < मरी < मरल < √मृ; या < मरौवत (हि०) से उधार]।

मरौरी—(सं०) राजा या राज्य के निमित्त लड़ाई में मारे गये व्यक्ति के परिवार को दी गई करमुक्त भूमि (पू०)। दे०—मरवट।

मर्रा-(सं०) जमीन पर बनाई गई झोपड़ी, जिसमें चबूतरा या ऊँची जमीन नहीं होती (पू० मै०)। दे०—मड़ई।
[मर्रा < मड़ई < मण्डप-]।

मलेगी—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।
[देशी]।

मलइया—(सं०) (१) बीज बोनेवाले हल के चोंगे में ऊपर लगा हुआ काठ का गोल साधन-विशेष (पट०-१)। (२) मलाई, छाल्ही। (३) दे०-चोंढ़िया।
[मलइया < मलिया < मल्लक- या देशी]।

मलकोका—(सं०) (१) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूणि०-१)। (२) एक प्रकार की कुमुदिनी का फूल (चंपा०-१)।
[मल+कोका < मलय+कोक (=कोकनद)]।

मलगजरी-(सं०) (१) प्याज (सा०-१)। पर्या०—पियाज, रामलड्डू। (२) माल, सारवस्तु।
[मलगजरी < मालगजरी]।

मलगुजरी—(सं०) दे० मलगुजारी।

मलगुजारी—(सं०) मालगुजारी, भूमिकर। दे०—मालगुजारी।
[मलगुजारी < मालगुजारी (फा०)]।

मलगोवा—(सं०) खाद्य पदार्थ (चंपा०-१)।

मलदहवा—(सं०) एक प्रकार का बड़ा और स्वादु आम, मालदह (पट०-१)।
[मलदह + वा (प्र०) < मलदह < मालदह (=बंगाल का एक प्रसिद्ध स्थान-विशेष)< मल्लह्रद-(?)]।

मलदहिया—(सं०) (१) एक प्रकार का उजला आलू (गं० उ०)। पर्या०—नपाली, कनकपुरिया। (२) एक उत्कृष्ट आम।
[मलदहिया < मालदह (=बंगाल का एक प्रसिद्ध स्थान) < मल्लह्रद-(?)]।

मलमास—(सं०) प्रत्येक तीसरे वर्ष में चान्द्र मास की तिथियों की न्यूनता की पूर्ति के लिए होनेवाली किसी मास की अधिक वृद्धि, अधिक मास।
[मल+मास-(संस्कृ०)]।

मलिकखम—(सं०) कोल्हू का उपरला खंभा (सा०-१)। दे०-मरखम्ह।
[मलिक + खम्ह < मालिक + खम्ह या मधिक-स्तम्भ-]।

मलिकाई चुटकी—(सं०) जमींदार की ओर से अन्न-विक्रेता से लिया जानेवाला अनाज-तौलाई का कर (द० पू० मै०)। दे०—कौड़ी।
[मलिक + आई (प्र०) + चुटकी (देशी)- (यौ०); मलिक < मालिक (फा०)]।

मलिकाना—(वि०) मालिक या जमींदार से सम्बद्ध वस्तु या क्रिया।

मलौ—(सं०) मवेशियों को खूँटे से बाँधने की रस्सी (द० पू० मै०)। दे०-छान।
[देशी]।

मल्हिया—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[मल्हिया < मल्लाह (?)]।

मवेशी—(सं०) परिवार के उपयोगी पालतू पशु। पर्या०—माल, मालजाल, चौआ (सं० उ०), चुर (पट०, गया), बरधा (द० प० शाहा०)।
[मवेशी (फा०)]।

मस—(सं०) मच्छड़ (चंपा०-१)।
[मस < मशक-]।

मसाड़—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी]।

मसाल—(सं०) ब्याई हुई गाय-भैंस को दिया जानेवाला एक प्रकार का खाद्य।
[मसाल < मसाला (फा०)]।

मसाला—(सं०) (१) जीरा, मरीच, मिर्चा, धनिया आदि वस्तु, जो मसाले में प्रयुक्त होती है। (२) किसमिस, बादाम आदि मेवा। (३) किसी वस्तु की उत्कृष्टता को बढ़ा देनेवाला सहायक पदार्थ। (४) टोले-मुहल्ले की कोई चर्चित बात या विषय।
[मसाला (फा०)]।

मसाह—(सं०) पानी भर जाने के बाद घास-पात की सफाई के लिए की जानेवाली खेत की जुताई (उ० प० मै०)। दे०—लेव।
[मसाह (?)]।

मसाह करल—(मु०) धान की बुआई के लिए खेत को तैयार करना (चंपा०-१)। दे०—कादो करल।

मसी—(सं०) (१) एक पशुखाद्य घास (सा०)। (२) काली, स्याही (शिष्ट प्रयोग)।

मसीनल—(क्रि०) मिट्टी सानकर दीवार, कोठी आदि पर लेप करना (चंपा०-१)।

मसुरिया जनेर—(सं०) एक प्रसिद्ध भदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और वृंत पर चिपटा होता है। इसका आटा या भूजा खाया जाता है। इसका पौधा मकई के पौधे की तरह लंबा होता है और पौधे के ऊपर अधखिला कमल-जैसा दानों का गुच्छा लगता है। इसके पौधे मवेशियों के चारे के काम में आते हैं। बिहार में यह प्रायः चारे के लिए बोया जाता है (प०, पट०)। दे०—जनेर।
[मसुरिया+जनेर ; मसुरिया < मसूर-; जनेर < यवनाल-]।

मसुरी, मसूर—(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जिसके दाने गोल, लाल और छोटे होते हैं।
[मसूर < मसूर-]।

मसूर, मसुरी—(सं०) दे०—मसुरी, मसूर।

महकल—(क्रि०) (१) मादा मवेशियों को मैथुनेच्छा का होना (चंपा०-१)। (२) मँहकना, गंध निकलना और फैलना।
[महक+ल (प्र०) < महक (फा०)]।

महकार—(सं०) कोल्हुपर के नजदीक बनाई गई एक प्रतिमा (उ० पू० मै०)। दे०—मकार बीर।
[देशी]।

महकार बीर—(सं०) दे०—महकार।

महकारी—(सं०) लत्तर-विशेष (दर०-१, पूर्णि०-१)।

महतवई—(सं०) रैयतों के प्रतिनिधि को दिया जानेवाला इनाम (पट०-१)।
[महत + वई (प्र०) < महत < महतो < महत्तरक (?)]।

महतो—(सं०) (१) किसी जमींदारी का प्रधान काश्तकार, जो रैयत और जमींदार के बीच मध्यस्थ का काम करता था। वह असामियों से कर वसूल कर जमींदार को देता था। इसलिए, उसे छोटी-मोटी सुविधाएं मिल जाया करती थीं। (२) रैयतों का प्रतिनिधि (पट०-१)। पर्या०—महतो आड़ा (पट०, गया), टिपदार (सा०), मँड़र (द० भाग०), जेठरैयत। (३) ब्राह्मणों की जातीय उपाधि (गया, भाग०)। (४) कोयरियों की उपाधि।
[महतो < महत्तरक- < महत्+तर (तरप्-प्र०)+क (कप्-प्र०) ; प्राचीन शिलालेखों (जैसे हर्षवर्द्धन के शिलालेख) में एक ग्रामीण राज्याधिकारी के रूप में 'महत्तर' का प्रयोग हुआ है]।

महतो आड़ा—(सं०) (पट०, गया)। दे०—महतो।
[महतो < महत्तरक-, आड़ा-(?)]।

महदेवा—(सं०) (१) गाँठ, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है। (२) बैल (भाग०)। (३) व्यक्तिवाचक नाम।

महनभोग कयरा—(सं०) एक प्रकार का केला, जो स्वादुतर होता है (पट०-१)।

महनिया हौद—(सं०) नील के कारखाने का वह कुंड, जिसमें रंग बनाने के क्रम में नील का पौधा कुचला जाता है (उ० पू० मै०)। दे०—महाइ के हौद।
[महनिया + हौद ; महनिया < मथनिया < मथन-(?); हौद, हौज (हिं०) ; हौद (मै०)]।

महभरल—(मु०) वर्षा होना (चंपा०-१)।
[मह+भर+ल (प्र०) ; मह < मेह < मेघ (?) ; भर < √भृ]।

महाँजन—(सं०) हल के पाशी का बिचला भाग (पट०-१)।
[महाँजन < (?)]।

महाइ के हौज—(सं०) नील के कारखाने का वह कुंड, जिसमें रंग बनाने के क्रम में नील का पौधा कुचला-मथा जाता है। पर्या०—महनिया हौद (उ० पू० मै०)।

[महाइ + के (विभ०) + हौज (हिं०); महाइ < मथाइ < मथ- < √मथ्]।

महाजन—(सं०) कर्ज देनेवाला या सूद का व्यापार करनेवाला।

[महाजन < महाजन-(?), 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' (उप०, महाभा० तथा पंचतन्त्र में उद्धृत); महाजन (हिं०, ने०)]।

महाजाल—(सं०) मछली पकड़ने का बड़ा जाल, जिसका उपयोग बड़ी नदियों में होता है।

[महाजाल-]।

महाबे—(सं०) पुआल के पुंज के ऊपर का भाग (पट०-१)।

[महादे < महादेव-(शा० प०); संभ०—शिवलिंग के समान ऊर्ध्वमुख और गोल होने के कारण ही यह नाम पड़ा हो]।

महादेओ—(सं०) खलिहान में अनाज की राशि पर रखा जानेवाला गोबर का पिंड, जो भगवान् शिव का प्रतीक समझा जाता है।

[महादेओ < महादेव-]।

महादे, महादेव—(सं०) बुरी नजर से बचाने के लिए अनाज की राशि पर रखा हुआ गोबर का पिंड। दे०—बढ़ावि।

महादेव, महाबे—(सं०)। दे०—महादे।

महादेवा—(सं०) (१) शिवलिंग के आकार का ऊँचा उठा हुआ पालो का मध्य भाग (चंपा०-१)। (२) गाँठ, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है। पर्या०—महदेवा (द० पू०)।

महाराजगंजी मिरचाई—(सं०) लंबी-मोटी लाल मिर्च (पट०-१)।

[महाराजगंज (स्थान-विशेष)+ई (प्र०)+मिरचाई]।

महाल—(सं०) जमींदारी, इलाका, रकबा (गाइड०)।

टि०-यह कलक्टरी की राजस्व-संबंधी इकाई है। जिले के तौजी में प्रत्येक महाल की अलग संख्या होती है, जो 'बंगाल टैनेंसी ऐक्ट' के ३ (१) के विभाग के अनुसार निर्धारित होती है। यह महाल पैतृक अधिकारप्राप्त भी हो सकता है, न कि केवल क्षेत्रीय इकाई। चंपा० के बेतियाराज में 'निमक सेर' महाल है, जिसके लिए सरकार के पास एक निश्चित रकम चुकानी पड़ती है।

[महाल (अ०)]।

महावर—(सं०) लाह से बनाया गया एक प्रकार का लाल रंग। इससे स्त्रियों का पैर रँगा जाता है।

[महावर < महावर्ण-(हिं० श० सा०)]।

महिनवारी—(सं०) महीने की आय का सामान्य परिमाण, वेतन। दे०—दरमाहा।

[महिन + वारी, महिन < महीना < माह (फा०); वारी (प्र०) या < वार-]।

महिना—(सं०) (१) सामान्यतः मास, तीस दिनों का एक निश्चित काल-परिमाण। दे०—मास। (२) वेतन (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) स्त्रियों का ऋतुधर्म।

[महिना < माह (फा०); मास-(संस्कृ०); महीना, माह, मास (हिं०); महिना, मैना (ने०)]।

महिन्ना—(सं०) महीने में मिलनेवाली एक निश्चित द्रव्यराशि, दरमाहा। दे०—दरमाहा।

महिया—(सं०) गुड़ बनाने के समय कड़ाह से निकाला गया रस का मैल या गंदगी (उ० प० मै०, शाहा०)। दे०—मैल।

[महिया < मथितक-(?)]।

महिस—(सं०) शृंग-पुच्छयुक्त प्रायः काले वर्ण की दूध देनेवाली एक प्रसिद्ध मादा पशुजाति, भैंस (मै०)। दे०—भैंस, भैंसा, महिसा (पुं०)।

[महिस < महिष—, महिसी, महिस—, महिषी (संस्कृ०); महीस-, महिस, महिस (पा०) = भैंसा; महिसी (पा०) = भैंस; महिस (प्रा०); मह, म्हेस (दरदी); महिश (शिना०); मईश (कोहि०); मईश, मूँश (काश्म०); मई, मईं, मैंह, म्हइ, म्हई (प० पहा०); भइँसो (कुमा०); भैंसि (ने०); भैंस (हिं०, बँ०); मैंह (पं०); मेंहि (सिं०), भेंस (गु०); म्हैस (मरा०); मिला, मिवा मिड, मीं (सिंह०)]।

महिसा—(सं०) भैंसा, एक प्रसिद्ध नर-मवेशी (मै०)। दे०—भैंसा। महिसी, महिस (स्त्री०)।

[महिसा < महिषक-]।

महिसाक गाड़ी—(सं०) भैंसागाड़ी। प्रायः ग्रामीण गाड़ियों तथा हलों में बैल ही जुतते हैं, लेकिन बिहार और उ० प्र० में भैंसे भी जोते जाते हैं। उ० प्र० की नगर-समितियों की कूड़ागाड़ियों में तो प्रायः भैंसे ही जुतते हैं।

[महिसा+क (विभ०)+गाड़ी]।

महिसी—(सं०) शृंग-पुच्छयुक्त प्रायः काले वर्ण की दूध देनेवाली एक प्रसिद्ध मादा पशुजाति, भैंस (मै०)। दे०—भैंस।

[महिसी < महिषी < महिस-]।

महीना—(सं०) (१) प्रायः तीस अहोरात्र का एक निश्चित काल-परिमाण, वर्ष का बारहवाँ भाग। दे०—मास। (२) वेतन, कार्य के बदले महीने में मिलनेवाली एक निश्चित द्रव्यराशि। (३) स्त्रियों का मासिक ऋतुधर्म।

[महीना < माह (फा०) ; मास-(संस्कृ०) ; मास, महीना (हिं०) ; महिना, मैना (ने०)]।

महु—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[महु < मधु < मधूक-]।

महुअर—(सं०) (१) महुए के फूल के समान और लाल वर्ण की गाय (शाहा०)। (२) बैलों का एक रंग, जो कालापन लिये लाल रंग का होता है। (३) महुए की रोटी (चंपा०-१)।

[महुअर < मधुकर (?) का 'र' प्र० के साथ < मधूक-]।

महुआ—(सं०) (१) महुए का पेड़। (२) महुए के पेड़ से चूनेवाला फूल, जो पीले वर्ण का और रस से भरा होता है। वसंत के समय इसकी भीनी गंध से वह क्षेत्र मुखर हो जाता है। महुए से शराब बनाई जाती है। यह गरीबों के भोजन का एक प्रधान अंग है।

[महुआ < मधूक-, मधूक-(संस्कृ०); मधुक (पा०) ; महुअ (प्रा०) ; महुआ, महुवा (हिं०) ; महुआ, महवा (पं०) ; महुवा, मौवा (ने०) ; महुडो (गु०) ; मोह, मोहा (मरा०) ; मी-गह (सिंह०)]।

महुगोल—(सं०) महुए के वर्ण के समान एवं लाल वर्ण की गाय। पर्या०—महुअर (शाहा०), महुलखा (द० मुं०)।

[महु+गोल < मधूक-; गोल (=गौर)]।

महुलखा—(सं०) दे०—महुगोल।

[महु+लखा < मधूक+लाक्षा या मधूक+लक्ष-]।

महू—(सं०) (१) महुए का पेड़। (२) महुए का फूल, जो वसंत में अपने-आप जमीन पर टपक पड़ता है और पीले वर्ण का तथा रस से भरा रहता है। इसकी प्रातः काल की टपक तथा भीनी गंध वातावरण को सुरभित बनाये रखती है। यह गरीबों के भोजन का विशेष अंग है तथा इससे शराब भी बनती है।

[महू < मधूक-]।

महेला—(सं०) ब्याई हुई गाय या भैंस को दिया जाने-वाला एक प्रकार का पौष्टिक खाद्य (द० पू० मै०)।

[देशी]।

मांगन—(सं०) (१) पटवारी को नगदी जमीन पर प्रति बीघा ढाई सेर (गया), या पाँच सेर (द० मुं०), या साढ़े बारह सेर (पट०) के हिसाब से गल्ले के रूप में मिलनेवाला स्वीकृत वेतन। पर्या०—हलही (शाहा०)। (२) जमींदार के अमलों को गल्ले के रूप में दी जानेवाली तहरीर (पट०-१)। (३) उपज पर प्रति मन ढाई सेर तक लिया जानेवाला अतिरिक्त कर। कभी-कभी एक विशेष राशि प्रति हल या बीघे के हिसाब से ली जाती थी (गाइड०)। (४) किसान द्वारा अधिकार जताकर मन में आधा सेर के हिसाब से लिया जानेवाला भत्ता (पू०, मुं०)। दे०—खलिहानी। (५) माँगना, उधार, भीख।

[मांगन < मांगल (बिहा० क्रि०) < मार्गण <√मार्ग् (मार्गयति, मार्गयते), माँगना (हिं०) = माँगना, भीख ; माङ् (ने०) = भीख ; माँग (रोमा०); माँग (कुमा०) = भीख, माँग-माँगकर प्राप्त की गई वस्तु ; माङ् (सिं०)]।

मांगन हाथी—(सं०) जमींदार के हाथी के व्यय के लिए लिया जानेवाला कर (गाइड०)।

[मांगन+हाथी (यौ०) ; मांगन < मांगल ; हाथी < हस्तिन्]।

मांगनी—(सं०) जमींदार की ओर से अन्न के रूप में निर्धारित कर, जो अन्नविक्रेता से अन्न-विक्रय की तौल पर लिया जाता है।

[मांगन + ई (प्र०) < मांगन < मांगल <√मार्ग्]।

मांगुर—(सं०) चोईंटा-रहित एक प्रसिद्ध मछली। दे०—मगुरी।

[मांगुर < मद्गुर]।

मांच—(सं०) खेत की रखवाली के लिए बाँस की चचरी के ऊपर सोने-बैठने के निमित्त बनाई गई झोपड़ी। दे०—मचान।

[मांच < मञ्च- ; मञ्च-(संस्कृ०) ; मञ्च (पा०, प्रा०) ; मंच (हिं०) ; माच (ने०) = चारा रखने का मचान ; मांचो (कुमा०) ; माचा (बं०) = मचान ; माचिया (अस०)=कुरसी; माञ्चा (ओ०); मांजा (पं०); मांजी (ल०); मांचो (सिं०); मांचड़ो, माचड़ो (गु०)= मचान; मंच, माच (मरा०) ; मस्सा (सिंह०)]।

मांछ—(सं०) मछली, बड़ी मक्खी (मुं०-१)।

[मांछ < मच्छ < मत्स्य-, मत्स्य-(संस्कृ०) ; मच्छ (पा०, प्रा०) ; माछ, मछली (हिं०) ; मच्छ (पं०) ; मास (अस०) ; माछो (ने०); माछो (कुमा०); मछली, मच्छी (प० पहा०) ; माछ (बं०) ; माच्छ

(ओ०) ; मच्छु (सिं०) ; माछली, मासा (गु०) ; मछ (सिंह०) ; मोच (काफि०) ; मचो (रोमा०) = बाँह ; माच (सोरि०) ; मत्तो (दरदी) ; मास (पशा०) ; मचो (कोहि०) ; मच्छ (करम०)] ।

माछी—(सं०) (१) उड़नेवाला दुर्गंधयुक्त एक कीड़ा, जो फूल होने के पहले ही ज्वार आदि के पौधों पर आक्रमण करता है (उ०) । दे०—गंधी । (२) दो पंखोंवाला कीटविशेष, मक्खी ।

[माछी < मच्छी < मक्षिका, मक्षा ; मक्ष-, मक्षा, मक्षिका (संस्कृ०) ; मक्खिका (पा०) ; मक्खिआ, मच्छिआ (प्रा०) ; मक्खी, माछी (हि०) ; मक्ख, मक्खी (पं०) ; माखो (ने०) ; माखो (कुमा०) ; मच्छी (प० पहा०) ; माखि (असo) ; माछि (बं०, ओ०) ; मक्खी (ल०) ; मखिन, मक्खो (सिं०) ; माख, माखो, माछी (गु०) ; माश, माशी (मरा०) ; मस्सा, मक्खा (सिंह०) ; मच्छि (करम०) ; माकि (सोरि०) ; माशी, माची (शिना०) ; माछीगुन (कोहि०) = मधुमक्खियों का छत्ता] ।

माँझा—(सं०) (१) खंभे की दोनों कानियों (शाखाओं) में लगी हुई धुरी, जिसपर लाठा लटकता है (चंपा०, गया) । दे०—अखौता । (२) सिपाव या सिपाहे के ऊपर का सिरा (गया) । (३) धुरी के ऊपर के तान की तरह लकड़ी का बना हुआ वस्तुविशेष, जो गाड़ी को सहारा देता है । (४) ऊख के कोल्हू की कतरी और जुए को मिलानेवाला चमड़े का तस्मा । दे०—नाधा । (५) ढेंकी की धुरी (चंपा०, मै०) । दे०—अखौता ।

[माँझा < मध्यक-, मध्य- ; मध्यक-(संस्कृ०) = बीच, बीच का ; मज्झ- (पा०, प्रा०) ; माझ (ने०)] ।

माँट—(सं०) (१) बड़ा घड़ा (गया) । (२) जमीन में गड़ा हुआ रँगने का नाद (पट०) ।

[माँट < मा‍ट < मार्त- < मृत्+अ (अप्-प०)] ।

माँड़ो, माड़ो—(सं०) (१) पान के बाग के ऊपर का छाया हुआ छप्पर । दे०—माड़ो । (२) मड़ई । (३) उपनयन, विवाह आदि संस्कार के लिए बनाया गया मंडप ।

[माँड़ो < माड़ो < मण्डप-] ।

माँड़ा—(सं०) चीना नामक अनाज के दानों को भूनकर बनाया गया खाद्य-विशेष ।

[माँड़ा < मृद्र-(?) < √ मृद् (कचेदने ; मिगोना) = मर्दति, मर्दते] ।

माँथ—(सं०) (१) हल का वह स्थूल भाग, जिसके नीचे फाल लगाया जाता है (सं० उ०) । (२) किसी वस्तु का ऊपर का भाग । (३) सिर, माथा । (४) प्रधान, मुख्य ।

[माँथ < माथ < मस्तक- ; मस्तक-(संस्कृ०) ; मत्थ, मत्थक (पा०) ; मत्थ, मत्थअ (प्रा०) ; माथा, माथ (असo) ; माथा (बं०) ; मथा (ओ०) ; माथ, माथा (ने०) ; माथि (ने०) = ऊपर ; माथा, माथ (हि०) ; मत्थ (पं०) ; मत्था (ल०) ; मथु, मथो (सिं०) ; माथुँ (गु०) ; माथा (मरा०) ; मत (सिंह०) ; म्हस्त (दरदी) = दिमाग ; मतु (शिना०) < मस्तिष्क-, मस्तु-(?)] ।

माँस—(सं०) प्रायः तीस अहोरात्र का एक निश्चित काल-परिमाण, वर्ष का बारहवाँ भाग, महीना । दे०—मास ।

[माँस < मास-] ।

मातबर—(सं०) सुसम्पन्न, धनी व्यक्ति (चंपा०) ।

[मातबर < मातबर < मोतबिर (अ०) = विश्वसनीय (हि० श० सा०) ; मिला०—म०ल्वबर-] ।

माथमहोर—(सं०) वह बैल, जिसका मुँह लाल हो और सारा शरीर दूसरे रंग का हो (सा०-१) ।

[माथ+महोर ; माथ < मस्तक- ; महोर (?)] ।

माधबा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया) ।

[माधबा < माधव-(?) ; वा < माधवी = एक प्रसिद्ध फूल] ।

मान—(सं०) (१) घर के पास खाद की राशि (सं० उ०) । दे०—ढेरी । (२) मान, अभिमान, सम्मान ।

[मान < मंदि (देशी, हि० श० सा०) ; मंदि (हि०) = मन्द, सूखा हुआ गोबर, हिंसक जन्तुओं का बिल ; मान < मान < √मन्] ।

मानकी—(सं०) एक प्रकार का केला (दर०-१, बूचि०-१) ।

[देशी, (१) मानक (हि०) ; मानक (हि० श० सा०) = एक प्रकार का मीठा कंद, जो बंगाल में बहुत अधिकता से होता है । वह प्रायः तरकारी के रूप में दूसरे अनाजों के साथ खाया जाता है । वह बहुत जल्दी पचता है ; मानकंद । (२) एक प्रकार की मिसरी, जो 'साहिब मिसरी' के नाम से बाजार में मिलती है (हि० श० सा०)] ।

मानिकथम—(सं०) ऊख या तेल के कोल्हू का सीधा खड़ा खंभा (गया, द० भाग०) । दे०—हरसा ।

[मानिक + थम < माणिक्यस्तम्भ- ; (१) मानिक-खंभ (हि०) = वह खूँटा, जो कातर के किनारे गड़ा रहता है और जिसमें धुरे को रस्सी से बाँधकर जाठ के सिरे पर लटकाया जाता है, मरखम । (२) वह खंभा, जो विवाह में मंडप के बीच गाड़ा जाता है । (३) मालखंभ, मलखम (हि० श० सा०)] ।

मानिक बइगन—(सं०) गोल बैंगन। इसका रंग बैंगनी होता है (पट०-१)।

मानिकथम—(सं०) ऊख या तेल के कोल्हू का सीधा खड़ा खंभा (द० मुं०)। दे०—हरसा।

[मानिक + थम < माणिक्यस्कम्भ-(?) दे०—मानिकथम]।

माफ़—(सं०) (१) उपज के अभाव या कम होने के कारण मिलनेवाली राजस्व की मुक्ति (सं० उ०)। पर्या०—छूटती (पू० मै०), नाबूद (सं० द०), गरकी। (२) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों को मिलनेवाली राजस्व की मुक्ति (द० भाग०)।

[माफ़ < माफ़ < मुआफ़(अ०); माफ़ी (हि०); माफि (ने०)]।

माफ़ी—(सं०) (१) ऊंची श्रेणी के काश्तकारों के लिए भूमि की करमुक्ति (सं० उ०)। पर्या०—छुट्टी, कमसरे (पू० मै०), रैयाएत (द० प० शाहा०, गया, द० मुं०), मरीअती (शाहा०), कमी, इनाम (पट०), माफ़ (द० भाग०)। (२) लड़ाई आदि में राजसेवा के बदले कम राजस्व पर दी गई भूमि। दे०—जागीर। (३) ऊँची जाति के किसानों के लिए अनाज के बँटवारे में दी जानेवाली छूट। दे०—पगड़ी। (४) करमुक्त जागीर, करमुक्त भूमि (गाइड०)।

[माफ़ + ई (प्र०) < माफ़ < मुआफ़ (अ०); माफ़ी (हि०); माफि (ने०)]।

माफ़ी ईदगाह—(सं०) ईद की नमाज पढ़ने के लिए दी गई करमुक्त भूमि (गाइड०)।

[माफ़ी+ईदगाह (वी०)]।

माफ़ी कालीपुजाई—(सं०) काली देवी की पूजा के लिए दी गई करमुक्त भूमि (गाइड०)।

[माफ़ी+काली+पुजाई; माफ़ी < मुआफ़ (अ०); काली < काली; पुजाई < पूजा]।

माफ़ी गोड़ैती—(सं०) दे०—जागीर, गोड़ैती (गाइड०)।

[माफ़ी + गोड़ैती; माफ़ी < मुआफ़ी (अ०); गोड़+ऐती (प्र०) < गोड़ < गोंड़ (?)—एक जाति; < गोर < अगोर < अगोरल (बिहा० क्रि०)=अगोरना, देखभाल करना]।

माफ़ी जेठरैयत—(सं०) जेठरैयत होने के कारण उसकी सेवा के बदले मिलनेवाली भूमिकर में छूट (गाइड०)।

[माफ़ी + जेठ+रैयत (वी०); माफ़ी < मुआफ़ी (अ०); जेठ < ज्येष्ठ; रैयत (फ़ा०)]।

माफ़ीदार—(सं०) वह किसान, जिसे माफ़ी की भूमि प्राप्त हो।

[माफ़ी+दार (फ़ा०)]।

माफ़ी नैआज दरगाह—(सं०) मुसलमानों की दरगाह पर दीया जलाने के लिए दी गई करमुक्त भूमि (गाइड०)।

[माफ़ी+नैआज+दरगाह (वी० फ़ा०)]।

मारतौल-(सं०) ऊख की मिलों में प्रयुक्त हथौड़ी (री०)। पर्या०-हथौड़ी, हथोड़ा (मग०, भोज०, मै०)।

[मारतौल < मॉर्टेलो (पुर्त०)=बड़ा हथौड़ा]।

मारल— (क्रि०) (१) बैलों का ढाही मारना, टक्कर देना (मै०)। दे०—हरपेटल। (२) मारना, पीटना।

[मार+ल (प्र०) < मार < √मारि < √मृ+णिच् (मारयति); मार (पा०, प्रा०) = मारेति, मारेइ; मारना (हि०); मार्नु (ने०); मार्णो (कुमा०); मारिबा (असा०); मरा (बँ०); मारिबा (ओ०); मारना (पं०); मारण (ल०); मारणु (सिं०); मारवुँ (गु०); मार्णे (मरा०); मारणु (सिंह०); मारन (कश्म०); मारिक (दरदी); मरोइ (शिना०); मारना (प० पहा०); मारेल (रोमा०)]।

मारल गेल—(सं०) वर्षा के कारण आहत या मरा हुआ चना या उसका पौधा (मै०)। दे०-मराइल। (वि०) मारा गया, आहत।

[मारल+गेल (वी०)]।

मारसा—(सं०) शाकजाति का एक पौधा।

मारा—(सं०) (१) धान का एक रोग, जो पौधे को नष्ट कर देता है (उ० पू० मै०)। (२) जल के अभाव में फसल का सूख जाना (पट०-१)। (३) अकाल, दुर्भिक्ष।

[मारा < मारल, < मारक-]।

मार्हा—(सं०) चीने का भूजा (चंपा०-१, मुं०-१)। दे०—माड़ा।

[मार्हा < मृड-(?)]।

माल—(सं०) (१) परिवार के उपयोगी पालतू पशु। दे०—मवेशी। (२) पोस्ते के दूध से बना पिंड। (३) प्रति बीघा अफीम की साधारण उपज (शाहा०)। दे०—सरदर परतर। (४) नगद रुपये के रूप में चुकाया जानेवाला भूमिकर। पर्या०—ऐन = नगदी के बदले अनाज के रूप में चुकाया जानेवाला भूमिकर। (५) नगदी भूमिकर। (६) चरखे की डोरी। (७) असबाब, सामग्री। (८) धन-सम्पत्ति।

[माल < माल (अ०); माल (हि०) (१) सम्पत्ति, धन। (२) सामग्री, असबाब। (३) क्रय-विक्रय का पदार्थ। (४) वह धन, जो राजस्व के रूप में मिलता है। (५) फसल की उपज। (६) उत्तम और सुस्वादु भोजन। (७) गणित में वर्ग का घात, वर्ग=अंक। (८) किसी वस्तु का सार द्रव्य। वह द्रव्य, जिससे कोई चीज बनी हो। जैसे अँगूठी का माल अच्छा है। एक बीघे में पोस्ते का दो सेर अच्छा माल निकलता है। (९) सुन्दर स्त्री—(हि० श० सा०)। माल (ने०) = सम्पत्ति, असबाब, सामग्री]।

मालगुजारी—(सं०) (१) भूमि का निर्धारित राजस्व, लगान। पर्या०—मालगुजारी, लाट, रोल (मैं०), खजाना (उ० पू० मैं०), कलटरी (पट०, गया)। (२) दे०—गाछ।

[माल+गुजार+ई (प्र०) < मालगुजार (फा०); मालगुजारी (हि०); मालगुजारि (ने०)]।

मालजाल—(सं०) परिवार के उपयोगी पालतू पशु। दे०—मवेशी।

[माल+जाल (यौ०), माल (अ०); जाल (अनुवा०); वा < जाल (संस्कृ०) = जाल; मालजाल (हि०); मालताल (ने०) = वस्तु, असबाब]।

मालझड़ी—(सं०) नील बनाने की प्रक्रिया में एक प्रकार का हौज, जिसमें कड़ाह में नील के रस को ले जाने के पूर्व एकत्र किया जाता है (चंपा०, उ० मैं०)। दे०—हौदरी।

[माल+झड़ी (यौ०)]।

मालडिग्री—(सं०) वह जमीन, जिसकी डिग्री हो गई हो (शा०-१)।

[माल+डिग्री < मालडिग्री (अँ०)]।

मालदे—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध आम, मालदह (चंपा०-१)। पर्या०—लंगड़ा (पट०), डंका (बेतिया)।

[मालदे < मालदह < मल्लहद-(?)]।

मालदेही—(सं०) रोपा जानेवाला एक उत्तम धान (द० प० शाहा०)।

[मालदेही < मालदेह < मालदा = बंगाल का एक जिला]।

मालभोग—(सं०) (१) एक प्रकार का महीन सुगंधित धान (चंपा०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) एक प्रकार का केला।

[मालभोग < माल (अ०)+भोग-(संस्कृ०)]।

मालमता—(सं०) धन-संपत्ति, सामग्री।

[माल (अ०)+मता < मात; मालमता (ने०)= संपत्ति, संबद्ध वस्तु, पशु]।

मालिक—(सं०) (१) जमींदारी का स्वामी। दे०—जिमिदार। (२) गाँव का परंपरागत स्वामी, जिसका प्रयोग पुराने राजस्व-अभिलेख में होता आया है।

टि०—मालिक वह व्यक्ति होता है, जो सरकार को राजस्व देने का उत्तरदायी हो, कलक्टर की पंजी में पंजीबद्ध हो, अथवा 'बंगाल टेनेंसी ऐक्ट' के ३ (२) विभाग के ए, बी या डी के अनुसार पंजीबद्ध होने योग्य हो। (३) गाँव का जमींदार (पट०-१)। (४) स्वामी, पति। (५) किसी वस्तु या क्षेत्र का अधिपति। (६) ईश्वर।

[मालिक < मालिक (अ०); मलिका (अ० स्त्री०); मालिक (हि०); मलिका (स्त्री०); मिला०—मालिक (संस्कृ०) = माली, एक प्रकार की चिड़िया, धोबी; मालिक (ने०) = स्वामी, राज्यपाल, मैजिस्ट्रेट; मालकिनि (ने० स्त्री०)]।

मालकिन—(सं०) मालिक की स्त्री, स्वामिनी, जमींदार की पत्नी।

[मालिक+इन (प्र०) < मालिक (अ०); मालकिनि (ने० स्त्री०)]।

मालिकाना—(सं०) (१) मालिक का भाग या भत्ता (शाहा०)।

टि०—(१) भूमि-व्यवस्था (सेटलमेंट) के अनुसार उपयुक्त भू-स्वामी का अपने भाग का प्रतिशत। (२) बिहार-प्रदेश के कागजों में 'मालिकाना' एक प्रकार की भूमि है, जिसके अंदर स्वामित्व को खरीदनेवाला नया स्वामी, भूतपूर्व स्वामी को उस जमींदारी में से कुछ इलाका बिना किसी राजस्व के छोड़ देता है। (३) मालिक से सम्बद्ध। (४) मालिक का भाव या कर्त्तव्य।

[मालिक + आना (प्र०) < मालिक (अ०); मालिकेई (ने०)=राज्यपाल का पद]।

मावा—(सं०) (१) रस, आर्द्रता, जमीन की नमी या आर्द्रता (चंपा०-१)। (२) दूध का बना खोया।

[मावा < मण्ड (संस्कृ०); माँड़ (हि०), मावा (हि०)=माँड़, पीच। (२) सत। (३) दूध, जौ, गेहूँ आदि निचोड़कर या मथकर निकाली गई वस्तु। (४) अंडे के भीतर का पीला रस। (५) जमीन, खमीर। (६) मसाला, सामान। (७) हीरे की बुकनी]।

मास—(सं०) (१) तीस अहोरात्र का एक निश्चित काल-परिमाण, वर्ष का बारहवाँ भाग, महीना। पर्या०—मास, महीना, महिना, महिन्ना।

टि०—भारतीय ज्योतिष-परंपरा के अनुसार प्रायः दो प्रकार के मास प्रचलित हैं—चान्द्र और सौर। चान्द्र मास चन्द्रमा के घटने-बढ़ने के अनुसार कृष्णपक्ष की प्रतिपद् से पूर्णिमा तक होता है और सौर मास एक राशि-संक्रान्ति से दूसरी राशि-संक्रान्ति तक। यह सूर्य की गति के ऊपर निर्भर करता है। दोनों गणना के अनुसार बारह मास होते हैं। चान्द्र मास में दो पक्ष होते हैं—कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष।

इसी प्रकार एक नाक्षत्र मास होता है, जिसमें नक्षत्रों के अनुसार गिनती की जाती है। नक्षत्र २८ (वस्तुतः २७) हैं। अतः, एक मास करीब २$\frac{१}{४}$ नक्षत्र माना जाता है। इनमें शादी-जनेऊ आदि हिंदु-संस्कार, व्रत-पर्व आदि चान्द्र मास के अनुसार, संक्रान्ति सौर मास के अनुसार और खेती का आरंभ—रोपनी, सिनाई, कटनी आदि नक्षत्र के अनुसार होते हैं।

[मास < मास- ; मास (संस्कृ०) ; मास (पा०, प्रा०); मास (हिं०); माह, महीना (हिं०); मास् (ने०); मास (कश्म०) ; माह (असं०) ; मास (बँ०) ; मास (ओ०) ; मांह (ल०) ; मांसु (सि०) ; मास (गु०, मरा०) ; मस, मह (सिंह०) ; मांस (काफ़ि०) = चाँद, महीना ; माह (दरदी)=चाँद; मास (कोहि०)=चाँद ; मास (शिना०) = महीना ; मास, मासेक (रोमा०)]।

(२) मांस।

[मास <मांस-, मांस-(संस्कृ०); मांस (पा०, प्रा०); मांस, मांस (हिं० पं०, ल०); मासु (ने०); मासु (कुमा०); मास (प० पहा०) ; मांसु (सि०) ; मांस (गु०) ; मांस, मास (मरा०) ; मस (सिंह०) ; मास, मास (कश्म०) ; मास (दरदी) ; मोस (शिना०); मस, मसि (रोमा०)]।

मास कराई—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो मटमैले रंग का छोटा और बीच में उजली-सी पतली रेखा लिये होता है। पकी दाल चिकनी होती है (पू० मैं०)। दे०—उरिद।

[मास+कराई < माष+कलाय-, माष (संस्कृ०)= उड़द ; कलाय (संस्कृ०)=केराव, मटर ; मास (हिं०); माह (पं०)]।

मासी—(सं०) नितांत गाढ़ा हरा रंग। दे०—कुसुम।

[मासी < मसि-]।

माह्—(सं०) महीना, मास।

[माह < मास-]।

मिजनी, मेंजनी—(सं०) धान की बाल को मींजकर अनाज निकालने की प्रक्रिया (प०, पट०)। दे०—दौनी।

[मिजनी < मींजन <√ मृद् (मृद्नाति)]।

मिंजा—(सं०) मींजा हुआ या दौनी किया हुआ पुआल या नरुआ (मुं०-१)।

[मिंजा < मींजल <√मृद्]।

मिहा—(सं०) दौनी करने में बैलों के बाँधने का खंभा (मुं०-१)। पर्या०—मेंहा।

[मिहा < मेंह < मेधि-]।

मिजान—(सं०) सभी प्रकार के करों की वसूली के बाद समग्र राशि का योग (सा०-१)।

[मिजान < मीजान (अ०) = तराजू, तुलाराशि, संख्याओं का योग]।

मिट्ठा—(सं०) (१) गुड़। (२) मिठाई। आटा, मैदा, घी-चीनी आदि के मिश्रण से बना खाद्य-विशेष। (३) मीठा, स्वादु।

[मिट्ठा < मिष्टक- < मिष्ट + क (प्र०) ; < मृष्ट-(वेदा०) ; मिट्ठ, मट्ठ (पा०, प्रा०) ; मिस्टो (रोमा०) = अच्छा ; मिक्स्ट (दरदी) = मधुर ; मिश्टुँ (शिना०) ; म्युठु (कश्म०) = मधुर, मीठा, मिठ्ठ (प० पहा०) ; मिठा (असं०, बँ० ओ०) ; मीठा (हिं०) ; मिट्ठा (पं० ल०) ; मिठो (सि०) ; मीठूँ (गु०) ; मिट्ठा (मरा०)]।

मिठाइ—(सं०) पहले-पहल के पेरे हुए ऊख के रस का बना गुड़ (द० प०)। पर्या०—सिरनी (पट०, गया)।

[मिठ+आइ (प्र०) < मिठ < मिट्ठ <मिष्ट-]।

मिठाई—(सं०) (१) गुड़ की बनी हुई भेली। दे०—भेली। (२) आटा, मैदा, घी, चीनी आदि के मिश्रण से बना हुआ मीठा खाद्य-विशेष। (३) मीठे का भाव, मिठास।

[मिठ+आई (प्र०)<मिठ<मिट्ठ< मिष्ट-; मिठाई (हिं०, पं०) ; मिठाइ (बँ०, ओ०) ; मिठइ (असं०) ; मिट्ठेआई (ल०) ; मिठाई (सि०, गु०, मरा०)]।

मिठुआ—(सं०) एक प्रसिद्ध आम, जो कच्चा भी मीठा होता है (पट०-१)। (वि०) मीठा पदार्थ।

[मिठ+उआ (प्र०) < मिठ < मिष्ट-]।

मिड़ब—(क्रि०) फसल की बाल को पाँव से मींड़कर अनाज निकालना (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[मिड़ + ब (प्र०) < मिड़ <√ मृद् (मृद्नाति, मर्दयति)]।

मिनहा—(सं०) घटाया गया लगान (सा०-१)। (वि०) मुजरा या मिनहा किया गया।

[< मिनहा (अ०) ; मिनहा (हिं०)]।

मिनहै—(सं०) फौजियों को लड़ाई आदि में की गई सेवा के बदले दी गई करमुक्त भूमि। दे०—जागीर।
[मिनहै < मिनहा (अ०)]।

मियनी—(सं०) बैलों की एक किस्म। ऐसा बैल मनहूस माना जाता है (पाप)।
[मियनी < मियाना (फ़ा०)=मध्यम आकार का, बीच का]।

मियाद—(सं०) अवधि, कालसीमा (गाइड०)।
[मियाद < मीआद (अ०)]।

मियादी बंदोबस्त—(सं०) भूमि की अस्थायी व्यवस्था। इसमें मालिक के अधिकार का विवरण अधिकार-पत्र में विवरित रहता है (गाइड०)।
[मियादी+बंदोबस्त (फ़ा०)]।

मिरका—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[मिरका (देशी) ; मिरकी (हि०) = चौपायों को होनेवाली एक प्रकार की मुँह की बीमारी]।

मिरगनयना—(सं०) वह बैल, जिसकी आँखें बड़ी-बड़ी होती हैं (पट०-१)।
[मिरग+नयना < मृगनयन-]।

मिरगसिरा—(सं०) पाँचवाँ नक्षत्र, मृगशिरा। यह ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में पड़ता है। इसकी आकृति हरिण के सिर की जैसी होती है। पर्या०—मिर्गिडाह।
[मिरगसिरा < मृगशिरस्-]।

मिरचइया—(सं०) वह आम, जो लाल मिर्च की तरह पतला होता है और गुच्छे में फलता है (पट०-१)। पर्या०—छुरछुरिया (द० भाग०)।
[मिरचइ+या (प्र०) मिरचइ < मिरचाई]।

मिरचा—(सं०) एक प्रसिद्ध तीती लंबी फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है। दे०—मिरिच।
[मिरचा < मिर्च < मरीच-]।

मिरचाई—(सं०) एक प्रसिद्ध तीती लंबी फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है। दे०—मिरिच।

मिरिच—(सं०) एक प्रसिद्ध तीती लंबी फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है। पर्या०—मरिचा (प० मै०, शाहा०, गया), मिरचाई, मिरचा (पट०), डिंड़िया मिरचाई (द० मुं०), ढेरिया मिरचाई (गया०)=हरी या लाल लंबी मिर्च। गोलमिरिच, गुलमिरिच=काली मिर्च, मरीच। लौंगिया मिरचा, जैया मरिचा=एक प्रकार की लाल मिर्च, जो छोटी और तीती होती है।
[मिरिच < मरिच- ; मरिच-(संस्कृ०) ; मरिच (पा०); मरिच, मिरिच (प्रा०) ; मिरिच, मिर्च (हि०, सि०) ; मरी (गु०) ; मिरिस (सि०) ; ये सभी शब्द 'च' आगम के साथ मरिच (म० मारो०) से लिया गया हो, न कि मरिच-(संस्कृ०) से। मारच (हिना०) ; मारिच या मरिच (संस्कृ०) से बना हुआ हो ; मर्च, मरिच, (कश्म०) ; मरिस (असू०) ; मरिच (बँ०); मरिच (ओ०); मरिच, मिरिच, मिर्च (हि०); मर्चा, मिरिच, मिर्च (पं०)—(नेपा०)]।

मिर्गिडाह—(सं०) पाचवाँ नक्षत्र, मृगशिरा। दे०—मिरगसिरा।
[मिर्गिडाह < मृग + डाह (?) < मृगशिरस्। संभव है, मृगशिरा नक्षत्र में भूमि बहुत अधिक उत्तप्त हो जाती है और उत्तप्त होना खेती के लिए अच्छा माना जाता है; क्योंकि मृगशिरा जितना ही तपेगा, आर्द्रा में उतना ही बरसेगा, ऐसा किसानों में विश्वास है। इस कारण दाह > डाह शब्द मृग > मिर्गि के साथ मिलकर 'मिर्गिडाह' बन गया हो]।

मिर्चबान—(सं०) एक प्रकार का छोटा केला, जो मालभोग से पतला होता है (चंपा०-१)।

मिलकियत—(सं०) (१) जमींदारी, भू-सम्पत्ति (पट०-१)। (२) स्वामित्व, धन-संपत्ति। (३) वह संपत्ति या रिक्थ, जिसपर वैधानिक अधिकार हो।
[< मिल्कियत (अ०) < मिल्क-]।

मिलान खेसरा—(सं०) कृषि के योग्य अथवा अयोग्य भूमि एवं जोती हुई या बिना जोती हुई भूमि के विस्तृत सांख्यिक विवरण की पंजी (गाइड०)।
[मिलान+खेसरा (दी०)]।

मिलिक—(सं०) करमुक्त भूमि (गाइड०)।
टि०—पूर्णिया में 'मिलिक' भूमि के अनेक प्रकार हैं। बिना किसी योग्यता के 'मिलिक' के अंदर रिकार्ड की गई भूमि किसी प्रकार के राजस्व के योग्य नहीं समझी जाती है।
[मिलिक < मिल्क (अ०)=(१) जागीर, मुआफी। (२) जमीन की एक प्रकार की मिल्कियत या मालिकाना हक। जिस व्यक्ति को यह हक प्राप्त होता है, वह जमींदार को किसी प्रकार का लगान नहीं देता है। इस प्रकार की मिल्कियत जमींदारी और काश्तकारी के बीच की होती है—(हि० श० सा०)]।

मिसिट—(सं०) ऊख के कोल्हू के पीसनेवाले भाग में ऊख को डालने के लिए बना हुआ लकड़ी का हथौड़ा। दे०—थापी। यह प्रक्रिया उस समय बरती जाती थी, जब कोल्हू पत्थर या लकड़ी का होता था। यह आज से पचास वर्ष पूर्व की बात है।

मिलोर–(सं०) एक प्रकार की पशुखाद्य घास (उ० प्र०)। दे०—अँकता।
[देशी]।

मिल्कियत–(सं०) (१) स्वामित्व। मालिक का अधिकार (गाइड०)। (२) जमींदार की छोटी जमींदारी या उसकी संपत्ति। पर्या०—जिमिदारी। तालुका = बड़ी जमींदारी।
[मिल्कियत (अ०)]।

मिसरीकन–(सं०) शकरकंद की जाति का एक लंबा, मीठा कंद, जो कच्चा ही खाया जाता है (पू० मै०, पट०-१)। दे०—रामकेसौर।
[< मिसरी (देशी)+कन्द-]।

मिसिरिया–(सं०) अधिक मीठा ऊख। (वि०) मिसरी के समान मीठा (सा०-१)।
[मिसिर+इया < मिसिर < मिसरी]।

मिसिल सराबी—(सं०) सिंचाई से संबद्ध जमींदारी के कागजात (पट०-१)।
[मिसिल+सराबी (फा०)]।

मिहलाइल—(क्रि०) पानी पाकर गलना (सा०-१)।
[मिहल+आइल (प्र०) < मिहल < मेहल < √मिह् (सींचना, भिगोना)]।

मींमा–(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

मींहो—(सं०) अनाज की दौनी के लिए बैलों के बाँधने का खंभा (द० भाग०)। दे०—मेंह्।
[मींहों < मेध < मेधि- < √मिध्]।

मीठ—(सं०) (१) एक प्रकार का मीठा ऊख (सा०-१)। दे०-मिसिरिया। (२) मिठाई। (वि०) मीठी वस्तु।
[मीठ < मिष्ट-, मृष्ट-]।

मीठरस—(सं०) रस से भरी नरम जमीन (चंपा०-१)।
[मीठ+रस ; मीठ < मिष्ट-, मृष्ट-]।

मीठा—(सं०) (१) ईख के रस का बनाया हुआ गुड़। (२) मिठाई। (वि०) मीठा पदार्थ।

मीठी—(सं०) ताजा ताड़ी (सा०-१)। (वि०) मीठी वस्तु।

मीड़—(सं०) दौनी करके अनाज निकालने के बाद बची हुई नरम पुआल (द० भाग०)। दे०-पुअरा।
[मीड़ा < मींडन < √ मृद् (मृद्नाति) ; मींड़ना (हि०)]।

मील–(सं०) १७६० गज की दूरी की नाप। दे०-मैल।
[मील < माइल (Mile—अं०)]।

मींहां—(सं०) मेंह के केंद्र के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा दुर्बल बैल (द० भाग०)। दे०—मेंहियाँ बैल।
[मींहां < मेंह < मेधि-]।

मुंहाड़ी—(सं०) (१) बाँस या किसी लकड़ी का एक-डेढ़ हाथ का टुकड़ा, जो मुख्यतः घास झाड़ने के काम आता है (चंपा०-१)। (२) सन-सुतली आदि को कूटने-पीटने के लिए प्रयुक्त छोटे मुद्गर जैसा लकड़ी का कुंदा (सा०-१)। (३) लकड़ी या बाँस का छोटा कुंदा।
[मुँगड़ी < मुद्गर-]।

मुंगरी—(सं०) गँड़ासी के फलक के ऊपर लगी हुई लकड़ी की भारी बेंट। दे०—जाली। (२) भगोड़े या दुष्ट मवेशियों के भागना रोकने के लिए उनके गले में बाँधा जानेवाला लकड़ी का एक-दो हाथ का लंबा कुंदा (मं० द०)। दे०—ठेकर। (३) दे०—मुँगड़ी।
[मुँगर+ई (प्र०)<मुद्गर-, मुद्गल-; मुग्गर (पा०); मुग्गर, मोग्गर (प्रा०) ; मुङो (ने०) = मुद्गर, धोने के समय कपड़ा पीटने का लकड़ी का कुंदा; मुंगो (कुमा०); मुगुर (बँ०) ; मुगुर (ओ०) ; मुगरा, मुँगरा (हि०) ; मुँगली (पं०) ; मुँगली (ल०) ; मुङिरो (सिं०) ; मोग्री (गु०) ; मोगर (मरा०) ; मुगुर (सिंह०)]।

मुंड़—(सं०) ऊख के कोल्हू के मोहन के ऊपर घूमनेवाला अंतिम भाग (उ० पू० मै०)। दे०—चूर।
[मुंड़ < मुण्ड-, मूर्धन्- ; मूँड़ (हि०) ; मुंडो, मुड (ने०)]।

मुंड़ला—(सं०) (१) चावल में रहनेवाला एक कीड़ा (पट०-१)। (२) एक प्रकार का उजला गेहूँ। दे०—मुड़लिया गोहुम। (वि०) मुड़ी हुई कोई वस्तु।
[मुँड़ला < मुण्डल-(?) ; मुड़्लि (ने०-श्री०) = छिरनी, मुंडित]।

मुंड़लिया गोहुम—(सं०) छोटे दानों का एक प्रकार का उजला गेहूँ (पट०-१)।
[मुँड़लिया+गोहुम (यौ०) ; मुँड़लिया < मुड़लि+या (प्र०) < मुड़+ली (प्र०) < मुण्ड- ; गोहुम < गोधम-]।

मुंडा—(सं०) (१) बिना सींगों का बैल या कोई दूसरा मवेशी (गया)। दे०—मुँड़ेड़ा। (२) एक प्रसिद्ध आदिवासी जाति।
[मुंडा < मुण्ड-]।

मुँड़िया—(सं०) प्रथम श्रेणी का शूकरहित गेहूँ। पर्या०—मुँड़लिवा (द० प० शाहा०)। मुड़ला (पट०, सा०), मुड़ली, मुड़िया (गया)।

[मुँड़िया < मुँड़+इया (प्र०) < मुँड़ < मुण्ड-; मुड़्लो (ने०) = शृंगहीन-, मुँडित, गंजा; मुड़्ला गहुँ (ने०) = शूकरहित गेहूँ; मुँड़ला; मुड़ला (हि०) = गंजा, मूड़ा हुआ-]।

मुँड़लिवा—(सं०) प्रथम श्रेणी का शूकरहित गेहूँ (द० प० शाहा०)। दे०—मुँड़िया।

[मुँड़िल+वा (प्र०) < मुँडित < मुण्डत-(?) < मुण्ड-; मुड़्ला गहुँ (ने०)=शूकरहित गेहूँ]।

मुँड़ेड़ा—(सं०) बिना सींगों का बैल या दूसरा कोई मवेशी (सा०)। पर्या०—मुँड़ा (चंपा०), मूँड़ा, मुँड़वा (शाहा०), मूँड़ा (उ० प० मै०), मुँड़ा (गया), मुड़ला (द० पू० मै०, पट०, द० मुँ०), मूड़ा (द० भाग०), ढुँड़िया (द० प० शाहा०), ठूठा (द० पू० बि०)।

[मुँड़+एड़ा या मुँड़ड़+आ (प्र०) < मुण्ड-, मुड़्लि (ने०)=हिरनी; मुड़्लो (ने०) = शृंगहीन, गंजा-; मुँड़ला; मुड़ला (हि०) = मूड़ा हुआ]।

मुँड़ेरा—(सं०) (१) पक्का बनाये गये कुएँ का मुँह (चंपा०)। दे०—जगत। (२) छप्पर के ऊपर का गोल-लंबा भाग। (३) मकान, मीनार आदि का उपरला भाग। (४) किसी वस्तु का उपरला भाग।

[मुँड़ + एरा; मुँड़ < मुण्ड-या मूर्धन्; एरा < एडूक-(संस्कृ०) = भीत, दीवार; मुड़ो, मूड़ो (ने०) = शहतीर, खंभा]।

मुँदन—(सं०) (१) अनाज रखने के मिट्टी के बरतनों का ढक्कन (पू० मै०, द० भाग०)। (२) कोठी के मुँह को बंद करने का ढक्कन (द० पू०)। दे०—देवकन। (३) किसी वस्तु का ढक्कन।

[मुँदन < मुद्रण < √मुद् (मुद्रयति)]।

मुँदा—(सं०) अधिक वर्षा के बाद तेज गरमी पड़ने पर जमीन में पपड़ी पड़ जाने के कारण होनेवाली पौधे की वृद्धि की रुकावट। दे०—सपट जाइल।

[मुँदा < मुँदल < मुद्रण< √मुद् (मुद्रयति)]।

मुँधी—(सं०) उबहन (कुएँ से पानी खींचने की रस्सी) की फंदादार गाँठ (उ० प० मै०)। पर्या०—मुद्धी (शाहा०)। (२) फल आदि का उपरला भाग।

[मुँधी < मुँ + धी मुँह+धी < मुखधि-(?) < मुख+धि, यथा- बालधि-, वारिधि-]।

मुंसी—(सं०) (१) पटवारी (पट०-१)। दे०-पटवारी। (२) किरानी, लिपिक। (३) एक जाति-विशेष (कायस्थ) की उपाधि।

[मुंसी < मुंशी (फा०)]।

मुँह—(सं०) (१) चूल्हे का दरवाजा, जहाँ लकड़ी, गोयठा आदि जलाये जाते हैं। पर्या०—दुआर (गं० द० प० शाहा०)। (२) कोठी या बखारी का अनाज निकालने का खुला स्थान। (गं० उ०)। दे०—आन। (३) जाँता का वह छेद, जिसमें पीसने के लिए अनाज दिया जाता है। पर्या०—गाली (शाहा०, गया, द० भाग०), गल्ली (सा०, उ० पू० मै०), गवीसी (चंपा०-१), खोंइछ, गलियारी (उ० प०), गत्तो (द० भाग०), घड़िया (द० प० मै०)। (४) (गाड़ड०)। दे०-मोहन। (५) हथौड़े के नीचे का पतला भाग (पट०-१)। (६) किसी वस्तु का मुँह। (७) मुख। (८) प्रधान, मुख्य, उत्कृष्ट।

[मुँह < मुँह < मुख-; < मुख्य-; मुँह (पं०, हि०); मुख् (ने०); मुक (दरदी); मुख (शिना०) = गाल; मुक (काफि०)]।

मुँहखड़ा—(सं०) कोठी या बखारी का खुलनेवाला ढक्कन (सा०)।

[मुँह+खड़ा < मुखखण्ड-]।

मुँहखंड—(सं०) अनाज रखने की मिट्टी की कोठी का मुँह (पट०-१)।

[मुँह+खंड < मुखखण्ड-]।

मुँहतोड़ा—(सं०) किसी नदी में बाढ़ आदि के कारण पानी की अधिकता का होना (चंपा०-१)। (वि०) मुखभंजन करनेवाला।

[मुँह + तोड़ा; मुँह < मुख-; तोड़ा < तोड़न < √तुड्]।

मुँहबंद—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनके मुँह से फेन गिरता है और कल्ला बैठ जाता है (पट०-१)।

[मुँह+बंद (फ़ा०)]।

मुँहबेंची—(सं०) हल में लगा हुआ मुतली का एक बंधन, जो कसआरी की जगह पर लगाया जाता है (पट०-१)।

[मुँह+बेंची; मुँह < मुख-; बेंची (?)]।

मुँहड़ा—(सं०) बैलगाड़ी की अगली जगह, जहाँ गाड़ीवान बैठता है (शाहा०)। दे०-मोहरा। पर्या०—मुहड़ा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[मुँह+ड़ा (प्र०) < मुँह < मुख- ड़ < ड़ (म० भारो० या अप० का ड़ प्रत्यय)]।

मुअतार–(सं०) सड़नेवाली मछली (चंपा०-१)। (वि०) मुमूर्षु।
[मुअत+आर (प्र०) < मुअत < मुअल < मृत- < √मृ (प्राणत्यागे—म्रियते)]।

मुअल—(क्रि०) (१) अनावृष्टि के कारण फसल का सूखना या नष्ट होना। (२) किसी प्राणी का मरना।
[मुअ+ल (प्र०) < मुअ < मृत < √मृ (प्राणत्यागे—म्रियते); √मृ (म्रियते); √मर् (पा०-मरति) √मर् (प्रा०-मरइ); मरार, मरेज (रोमा०); मरा (दरदी); मरन (करम०); मर (प० पहा०); मरना (हि०); मरणा (पं०); मर्नु (ने०); मरणा (ज०); मरवु (सि०); मरवुँ (गु०); मर्णें (मरा०); मरण (सिंह०)=मृत्यु]।

मुअल–(सं०) अनावृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल (पट०)। दे०—मुअर।
[मुअ+ल (प्र०) <मुअ<मृत<√मृ+त (क्त-प्र०)]।

मुआर—(सं०) (१) अनावृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल (द० प० मै०)। पर्या०—मोआर (गया), मुअल (पट०), मरा (द० भाग०), मरहेना, मरहिआ (पू० मै०)। (२) फसल का एक रोग, जिससे सारा पौधा जल जाता है (प०)। दे०—मरी।
[मुअ+आर (प्र०) < मुअ < मृत < √मृ+त = (क्त-प्र०)]।

मुआरी—(सं०) वर्षा न होने के कारण धूप में किसी फसल का सूख जाना या कमजोर हो जाना, जिससे उसमें अनाज नहीं लग पाता है (चंपा०-१)।
[मुअ+आरी (प्र०) < मृत-]।

मुकदमा—(सं०) दो पक्षों के बीच का धन या अधिकार आदि से संबंध रखनेवाला अथवा किसी अपराध (जुर्म) का मामला, जो विचार के लिए न्यायालय में जाय (सा०-१)।
[मुक़दमा (फा०, अ०)]।

मुकदमा माल–(सं०) वह मुकदमा, जिससे लगान की वसूली के लिए डिग्री हो (सा०-१)।
[मुक़दमा+माल (फा०)]।

मुकरी–(सं०) धुरी को निश्चित स्थान पर टिकाये रखने के लिए लाठा में बँधी हुई एक लकड़ी (गाइड०)।
[मुकर < मकरी < मकर+ई (प्र०)-(?)]।

मुकर्ररी—(सं०) (१) निश्चित कर पर स्थायी व्यवस्था में व्यवस्थित भूमि (गाइड०)।

टि०—मुकर्ररी शब्द का अर्थ तो, वस्तुतः निश्चित कर है और इस्तमरारी का अर्थ स्थायित्व या पुरानी जागीर है। किन्तु, उत्तरी बिहार में मुकर्ररी शब्द का दोनों अर्थों के लिए सामान्य व्यवहार होता है—निश्चितता और स्थायित्व। किंतु, जहाँ यह अप्रमाणित पत्रों में आता है, वहाँ इसका अर्थ—निश्चित दर पर स्थायित्व प्राप्त भूमि होता है। मिला०—'बँगाल टेनैंसी ऐक्ट' का १७६ विभाग। भाग० और पूर्णि० के पत्रों में इनका प्रयोग युक्त भाव में विशेषण के रूप में किया गया है। इस प्रकार (दरमियानी हक) 'इस्तमरारी देखिन, मुकर्ररी नहीं।' 'बँगाल टेनैंसी एक्ट' की ८ बी० की तीसरी उपधारा के अनुसार इस प्रकार की भूमि पर करवृद्धि हो सकती है। इस प्रकार, दरमियानी हक इस्तमरारी नहीं है, जिसका विवरण उपर्युक्त ऐक्ट के सातवें विभाग की तीसरी धारा के अंदर आता है। यह स्थायी बंदोबस्ती में नहीं आती है। मुकर्ररी का अर्थ है—निश्चित दर पर स्थायी बन्दोबस्त। पर्या०–इस्तमरारी मुकर्ररी। (२) जीवन-भर के लिए ही व्यवस्थित भूमि (गाइड०)। पर्या०–हीनेहयाति।
[<मुक़र्रर (अ०), मुक़र्ररी (अ०)=नियत, निश्चित। निश्चित मालगुजारी]।

मुकर्ररी–(वि०) (३) एक विशेषण, जो 'निश्चित दर—दरमुकर्ररी हक' की विशेषता को बतलाता है या उपर्युक्त किसी प्रकार की भूमि की विशेषता को बतलाता है (गाइड०)।
[मुकर्रर+ई (प्र०), मुक़र्रर (अ०)= स्थायी, नियत, तयशुदा]।

मुकर्री–(सं०) वह जमीन, जिसका लगान नहीं लगता हो (सा०-१)।
[मुकर्र+ई (प्र०) < मुक़र्रर (?)]।

मुकर्रीदार—(सं०) जमीन का, सदा के लिए निश्चित राजस्व देनेवाला (सा०-१)।
[मुकर्री+दार (फा० प्र०) < मुक़र्रर (अ०)]।

मुखाड़ी—(सं०) पशुओं के मुँह में बाँधने की जाली, नाथ आदि (मुँ०-१)।
[मुख+आड़ी ; < मुख+आड़ी (प्र०)]।

मुखबानी—(सं०) वह स्थान, जहाँ मूँज नामक घास पैदा होती है। पर्या०–कँड़वानी (उ० प०), मुँजबान (शाहा०), सरैठा (द० मुँ०)। (२) मुँहजबानी, मौखिक।
[मुख+बानी < मुख़बान (मुखवान्)। मु+जबानी < मुँह+जबानी]।

मुखहरल—(क्रि०) किसी हथियार की धार का गिर जाना (चंपा०-१)।
[मुखहर+ल (प्र०) मुखहर (?)]।

मुजेरा—(सं०) कर्ज लेनेवाला (द० मुं०)। दे०—रिनिहा।
[मुजेरा < मुजरा (अ०)-(१)]।

मुटमुर—(सं०) धान के खेत में उगनेवाली एक घास (गं० उ०)।
[मुटमुर (देशी)]।

मुडुनी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उजला धान (द० प० शाहा०)।
[मुडुनी—(देशी)]।

मुट्ठा—(सं०) (१) काटी हुई फसल की वह छोटी राशि, जो मुट्ठी में भरकर आवे। दे०—मूठा। (२) मुट्ठी में आने भर का एक परिमाण।
[मुट्ठा < मुठ < मुष्टिक- ; मुष्टी, (संस्कृ०) = मुट्ठी ; मुट्ठि (पा०, प्रा०) ; मूठ, मुट्ठा (हिं०) = मुट्ठी-भर ; मुट्ठी (हिं०) = मुट्ठी ; मुठ (ने०) = मूठ, मुठ्ठरो (ने०) = मुट्ठी-भर का पूला ; मुठी (कुमा०) ; मुठि (असं०) ; मुठ (बँ०) ; मुठि (ओ०) ; मुठ्ठ (पं०, ल०) ; मुठि (सिं०) ; मूठ (गु०, मरा०) ; मिट (सिंह०) ; मुश्त (काफि०), मुश्ती, मुश्ती (रोमा०); मूट (शिना०); मोठ (कश्म०)]।

मुट्ठी—(सं०) (१) बुआई शुरू होने के दिन श्रमिक एवं भिखमंगों को दिया जानेवाला एक मुट्ठी अनाज (पट०-२)। (२) मुट्ठी-भर अनाज या कोई दूसरी वस्तु। (३) मुट्ठी, मुड़ी हुई अँगुलियों-सहित हाथ की एक आकृति या मुद्रा।
[मुट्ठी < मुष्टि-, मुष्टि-, मुष्टिक- (संस्कृ०), मुट्ठी, मुट्ठिअ-(पा०, प्रा०); मुट्ठी (हिं०); मुठि (ने०) ; मुठी (कुमा०) ; मुठि (असं० बँ०, ओ०); मुट्ठी (पं० ल०) ; मूठी (गु०)]।

मुठ—(सं०) (१) गँड़ासी की बेंट (गं० उ०)। पर्या०—मूठी (गं० उ०), बेंट (गं० द०)।
[मुठ < मुठ्ठ < मुष्टि-]।

मुठ—(सं०) (२) गँड़ासी की बेंट के अंत का गाँठदार अंश (द० पू० बिहा०)। दे०—एड़ा। (३) मूठ, किसी वस्तु का पकड़ने का गाँठदार अंश। (४) मूठा, मुट्ठा, मुट्ठी-भर।
[मुठ < मुठ्ठ, मूठ < मुष्टि ; मुष्टिक; मूठ (हिं०); मूठ (ने०) = हाथ से पकड़ने का गाँठदार अंश ; मुठि (ने०)=मुट्ठी-भर, मुठी; मुठे (ने०) = मुट्ठी-भर से सम्बद्ध; मुठो (ने०) = मुट्ठी-भर, मुट्ठा; मुट्ठी (पं०, ल०); मुठी (कुमा०); मुठि (असं०, बँ०, ओ०)]।

मुठकी—(सं०) मुट्ठी-मुट्ठी करके चंदे के रूप में किया जानेवाला अन्न का संग्रह (गाइड०)।
[मुठ+की (प्र०)< मुठ < मूठ<मुष्टि—]।

मुठरा—(सं०) छोटे सींगोंवाला बैल। पर्या०—मुठिया, मुठाल, मुठैल (शाहा०), मुठरिया (गया)।
[मुठ+रा (प्र०) < मूठ (= मुट्ठी-भर में आने लायक < मुष्टि-]।

मुठरिया—(सं०) छोटे सींगोंवाला बैल (गया)। दे०—मुठरा।
[मुठ+रिया (प्र०) < मुठ < मूठ < मुष्टि-)]।

मुठरी—(सं०) (१) कच्चे आम को चूरकर गोल-गोल बनाई जानेवाली एक प्रकार की खटाई (पट०-१)। (२) सत्तू को कड़ा सानकर मुट्ठी से बाँधकर बनाया गया पिंड। (३) किसी चूर्ण पदार्थ को गीला करके बनाया गया लंब-गोल पिंड।
[मुठ+री (प्र०) < मुठ < मूठ <मुष्टि-]

मुठवरल—(क्रि०) मुट्ठी से पकड़ना (चंपा०-१)।
[मुठ+वर+ल (प्र०), मुठ+वर; मुठ < मूठ < मुष्टि-, वर (प्र०) या √ वर < √वृ-]।

मुठा—(सं०) (१) हाथ की मुट्ठी से नापने की प्रक्रिया (शाहा०)। (२) मूठ, मुट्ठी-भर।
[मुठा < मूठा < मूठ < मुष्टि-]।

मुठाल—(वि०) छोटे सींगोंवाला बैल (शाहा०)। दे०—मुठरा।
[मुठ + आल (प्र०) < मुठ < <मुठ्ठ <मूठ < मुष्टि-]।

मुठिअवा कयला—(सं०) बड़ा और मोटे फलोंवाला केला। उस केले का पौधा (पट०-१)।
[मुठिअवा + कयला (दो०)]।

मुठिया—(सं०) (१) गँड़ासी की बेंट के अंत का गाँठदार अंश (द० पू० बिहा०)। दे०—एड़ा।
[मुठिया < मूठ + इया (प्र०) < मुठ < मुठ्ठ, मूठ < मुष्टि-, मुष्टिक ; मूठ (हिं०); मुठ (ने०)]।

मुठिया—(सं०) (२) हल के पीछे हाथ से पकड़े जानेवाले डंडे के ऊपर की मूठ (द० पू० शाहा०)। दे०—चँदवा।
[मुठिया < मुठ + इया (प्र०) < मुठ < मुठ्ठ, मूठ < मुष्टि—]।

मुठिया—(सं) छोटे सींगोंवाला बैल। दे०—मुठरा।
[मुठ+इया (प्र०) < मुठ < मुठ्ठ, मूठ < मुष्टि-मुष्टिक-]।

मुठैल—(सं०) छोटे सींगोंवाला बैल (शाहा०)। दे०—मुठरा।
[मुठ + ऐल (प्र०) < मुठ < मुठ्ठ < मुष्टि-, मुष्टिक-(१)]।

मुड़ला—(सं०) (१) बिना सींगों का बैल (द० पू० मै०, पट०, द० मु०)। दे०—**मुँड़ेड़ा**।
[मुड़ला < मुड्‌ल < मुण्ड + ल (प्र०); मुड़ला (हिं०) = बिना बालों का। मुड़लि—(ने०) = हिरनी; मुड़ली स्त्री; मु ँड्लो (ने०) = शृंगरहित, बालरहित, मुंडित, गंजा; एक प्रकार का शूकरहित गेहूँ]।

मुड़ला—(सं०) (२) उत्कृष्ट जाति का शूकरहित गेहूँ (पट०, सा०)। दे०—**मुँड़िया**। (३) मुंडित, बिना बालों का।
[मुड़ला < मुड़ + ला (प्र०) < मुण्ड + ल (प्र०)-(?) ; मिला०—मधूलिका—(संस्कृ०) = एक प्रकार का गेहूँ, एक वनौषधि]।

मुड़ली—(सं०) (१) उत्कृष्ट जाति का शूकरहित गेहूँ (गया)। दे०—मुंड़िया। (२) मुंडित स्त्री, बिना सींगों की गाय, भैंस या बकरी। (३) मुरली, एक प्रकार की बंशी।
[मुड़ली < मुड़ + ली (प्र०) < मूड़ < मुण्ड; < मुरली, मुड़ली (हिं०) = मुंडित स्त्री; मुड़लि (ने०) = हिरनी, मुंडित (स्त्री०); मुड़ीले (ने०) = बालरहित, गंजा; मुड़्लो (ने०) = शृंगरहित, बाल-रहित, गंजा, एक प्रकार का गेहूँ। मिला०—मधूलिका (संस्कृ०) = एक प्रकार का गेहूँ]।

मुड़वाड़—(सं०) बैलगाड़ी के चक्के का तम्मा, जिसमें आरागज ठोंके रहते हैं (चंपा०-१)।
[मुड़ + वाड़ (?); मुड़ < मूड़ < मुण्डवाड़ < वार—(संस्कृ०) स्थान, वाटिका]।

मुड़वारी—(सं०) ऊख के कोल्हू को उसकी मथानी से फटने से बचाने के लिए, उसके चारों ओर लगाया गया लोहे का पत्तर। दे०—मोरवार।
[मुड़ + वारि < मुड़+वाड़ < मुण्ड+वारि-(?), वा वारी (प्र०)]।

मुड़वार—(सं०) ऊख के कोल्हू को उसकी मथानी से फटने से बचाने के लिए, उसके चारों ओर लगाया गया लोहे का पत्तर (शाहा०, पट०)। दे०—मोरवार।
[मुड़ + वार; मुड़ < मूड़ < मुण्ड-, वार < वार—, वा (प्र०)]।

मुड़िया—(सं०) वह फसल, जिसकी बाल पीली और दाने-रहित हो जाती है (द० पू०)। दे०—ठुँठा।
[मुड़िया < मूड़ < मुण्ड-]।

मुड़ियारी मारल—(सं०) कीट-लगे ऊख के पौधे, जिनका ऊपर का भाग सूख जाता है और नीचे से टेंनी या दोंजी निकलती है (सं० उ०)।
[मुड़ियारी + मारल (यौ०); मुड़ियारी < मुड़िया < मुण्ड-; मारल < मारल]।

मुड़ुहुइया—(सं०) वह भैंस, जिसके सींग के पास भौरी हो (पट०-१)।
[मुड़ुहु + इया (प्र०) < मुड़ुही < मुड़+ही (प्र०) < मुण्ड-]।

मुड़ेर—(सं०) (१) पक्का बनाया हुआ कुएँ का मुँह (प०)। (२) छप्पर आदि का ऊपर का भाग। (३) किसी वस्तु का उपरला भाग।
[मुड़ + एर (प्र०) < मुड़ < मुंड-, वा मूर्धन् (?)]।

मुड़ेरा—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू को मथानी से फटने से बचाने के लिए, उसमें लगाया गया लोहे का पत्तर। (२) छप्पर, मीनार आदि का उपरला भाग। (३) किसी वस्तु का उपर का भाग।
[मुड़ + एरा (प्र०) < मुड़ < मुंड-वा एरा < एडूक- = भीत, शल्य; मुड़ो (ने०) = तना, कुंदा; मुंडेरा (हिं०)]।

मुड़ेरी—(सं०) (१) पक्का बनाया गया कुएँ का मुँह (चंपा०, गया) दे०—जगत। (२) छप्पर, मीनार आदि का उपरला भाग। (३) किसी वस्तु का ऊपर का भाग, सिरा।
[मुड़+एरी, मुड़ < मुंड ; एरी < एडूक- = भीत, शल्य ; मुंडेरी, मुंडेरा (हिं०) ; मुड़ो (ने०) = तना, कल्ला]।

मुड़ेरी—(सं०) (२) पक्के कुँए का पक्का मुँह (गाइड०)।

मुतफर्रिकात—(१) जमींदारी या गाँव की फुटकर और इधर-उधर बिखरी हुई जमीन (गाइड०)। (२) अनेकविध, भिन्न-भिन्न।
[मुतफर्रिक+आत (प्र०) < मुतफर्रिक (फा०)]।

मुतर्फा—(सं०) दे०—मुतहर्फा (गाइड०)।
[मुतर्फा < मुतहर्फा (फा०)]।

मुतहर्फा—(सं०) किसानों के अतिरिक्त गाँव के दूसरे लोगों पर लगाया जानेवाला मकान-भाड़ा या गृह-कर, भू-कर आदि (गाइड०)। पर्या०—मुतर्फा।
[मुतहर्फा (फा०)]।

मुनगा—(सं०) लंबी फलियोंवाला एक प्रसिद्ध वनस्पति, जिसकी फलियों की तरकारी बनती है। दे०—सहिजन, सैंयन। यह गया में बहुतायत से पाया जाता है। अतः, वहाँ यह लोको० है—'मुनगा, मच्छर, मोखतार, मालजादी, ई चारों से साहबगंज की आबादी।' तात्पर्य है, मुनगा (सहिजन), मच्छर, मोखतार और कचहरिया, इन

चार प्रकार के लोगों से साहबगंज (गया के बाहर) की आबादी बनी है।

[मुनगा (देशी) वा < मधुशुग्रन—(हिं० श० सा०); मुनगा (हिं०) = सहिजन]।

मुनगा—(सं०) सहिजन का वृक्ष। इसका फूल उजला होता है और फली तरकारी के काम आती है। (पट०-१)।

[मुनगा < मुद्ग-(?)]।

मुनतखब—(सं०) जमींदारी शरह का विवरण (पट०-१)।

[मुनतखब (फा०)]।

मुनमुन—(सं०) एक पशुखाद्य घास (उ० प०)।

[देशी, मुनमुना (हिं०) = मैदे का बना हुआ एक प्रकार का पकवान, जो रस्सी की तरह बटकर छाना जाता है]।

मुनहर—(सं०) अन्न आदि रखने के लिए खुली हवा में पुआल या खढ़ आदि का बना हुआ एक प्रकार का घर (द० पू० मै०)। दे०—बखार।

[मुनहर < मुँदहर < मूँदन = मूँदना]।

मुनहरि—(सं०) अँधेरा (दर०-१; पूर्णि०-१)।

[मुन + हरि < मुँदहार, मूँदन—मूँदना-(?)]।

मुन्हार—(सं०) रात होने पर छानेवाला अन्धकार (चंपा०—१)।

[देशी, वा मुन्हार < मूँदन-(?)]।

मुन्ही—(१) सरसों का वह दाना, जो कच्चा कटने के कारण सूखने पर बेकार-सा हो जाता है। (२) रस्सी के अंत में बनाई गई गोल गाँठ, जिसमें उसके दूसरे छोर को, आवश्यकता होने पर डालते हैं। (चंपा०—१)।

[मुन्ही < मुँधी < मुग्धि, वा मुँह + धी < मुखधि-(?)]।

मुफस्सल जमा—(सं०) संगृहीत धन में से स्थानीय व्यय की कमी किये बिना जमींदारी की एक मोटी रकम (गाइड०)।

[मुफस्सल + जमा, मुफ़स्सल (अ०), जमा (फा०)]।

मुरई—(सं०) मूली। जमीन में बैठनेवाला पतला और उजला एक खाद्य कंद (पट०—१)।

[मुरई < मूलिक-]।

मुरका—(सं०) (१) जौ-गेहूँ के खेत में उगनेवाली एक पशुखाद्य घास (उ०)।

[मुरका (देशी); मुरका (हिं०) = (१) बहुत ऊँचा और बड़े-बड़े दाँतोंवाला सुंदर हाथी। (२) गड़ेरियों का भोज, जो वे अपनी बिरादरी को देते हैं]।

मुरका—(सं०) (२) अफीम में लगनेवाला एक रोग (द० प० मै०)। दे०—खरका।

[मुरका < मुरकन = मुरकना, टेढ़ा होना, मुड़ना, वा देशी०]।

मुरका—(सं०) (३) तेज पछिया हवा के कारण अफीम के पौधे में लगनेवाला रोग (चंपा०)। दे०—अंगारा।

मुरतहिन—(सं०) वह व्यक्ति, जिसके पास रेहन की संपत्ति रखी जाती है।

[मुरतहिन (अ०)]।

मुरदार—(सं०) (१) स्वाभाविक मृत्युप्राप्त पशुओं का चमड़ा। दे०—मुरदारी। (वि०) (१) मुरदा से संबद्ध कोई वस्तु। (२) निष्प्राण वस्तु।

[मुरदार < मुरदा (फा०); मिला०—मृतक- (संस्कृ०)]।

मुरदारी—(सं०) स्वाभाविक मृत्युप्राप्त पशुओं का चमड़ा। पर्या०—मुरदार।

[मुरदार + ई (प्र०) < मुरदा (फा०); मिला०—मृतक]।

मुरधी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)।

[देशी]।

मुररी—(सं०) भूना हुआ अनाज, जो फूटकर लावा नहीं हुआ हो (पट०)। दे०—ठुरी।

[मुररी (देशी); मुर्री (हिं०) = दो डोरों के सिरों को आपस में जोड़ने की एक क्रिया, जिसमें गाँठ का प्रयोग नहीं होता; केवल दोनों सिरों को मिलाकर मरोड़ या बट देते हैं। (२) कपड़े आदि में लपेटकर डाली हुई ऐंठन या बल; जैसे, धोती की मुर्री—(हिं० श० सा०)]।

मुरलिहा सींग—(सं०) जिस बैल के सींग मुरली के आकार के हों (पट०-१)।

[मुरलिहा + सींग, मुरलिहा < मुरली; सींग < शृङ्ग]।

मुरहन ऊख—(सं०) वह ऊख, जिसे कातिक माह में रोपा जाता है (री०)।

[मुरहन+ऊख; मुरहन < मूलधान्य, ऊख < इक्षु—]।

मुरिया—(सं०) ऊख में लगनेवाला पाला-जैसा एक रोग, जिससे ऊख सूख जाता है (द० भाग०)। दे०—मुजड़ा।

[मुरिया < मुड़िया < मुंड-]।

मुरतहीन—(सं०) बंधक, ठीका।

[मुरतहिन (अ०)]।

मुरेना—(सं०) एक पशुखाद्य घास (प०)।
[मुरेना (देशी)]।

मुर्तहिन—(सं०) ठीका, बंधक (गाइड०)।
[मुर्तहिन < मुरतहिन (अ०)]।

मुलहक़्की—(सं०) जमींदार का वह कागज, जिसमें सिर्फ आमदनी का ब्योरा हो (पट०—१)।
[मुलहक़्की < मुलहक़ (अ०) = चिपका हुआ, जुड़ा हुआ]।

मुस्तजीर—(सं०) ठीकेदार, बंधक लेनेवाला, खेतिहर (गाइड०)।
[मुस्तजीर < मुस्तजीर (अ०) = पनाह चाहनेवाला, रक्षा का इच्छुक]।

मुस्तजीरी—(सं०) खेती का ठीका-पट्टा (गाइड०)।
[मुस्तजीर + ई (प्र०) < मुस्तजीर (अ०)]

मुस्तरिआ—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें पेशाब करने में कष्ट होता है, मूत्रकृच्छ्र (पट०—१)।
[मुस्तर + इया (प्र०) < मुस्तरी (फा०)]।

मुस्तरी—(सं०) क्रेता, खरीदार (गाइड०)।
[मुश्तरी (अ०)]।

मुसकइल—(सं०) चूहे द्वारा बिल खोदकर फेंकी गई मिट्टी (चंपा०-१)।
[मुसक + इल (प्र०) < मुसक < मूषक < √ मूष्]।

मुसड़ा—(सं०) कटहल के फल के बीच की हड्डी (पट०—१)।
[मुसड़ा < मूसल]।

मुसतरी—(सं०) किसी जमीन का क्रय लिखानेवाला (पट०-१)।
मुसतरी < मुश्तरी (अ०)]।

मुसरहा—(सं०) वह बैल, जिसकी पूँछ के बीच में दूसरे रंग के बालों का गुच्छा हो। जैसे, काले में सफेद, सफेद में काला (पाव)।
[मुसर+हा (प्र०) < मूसर < मूसल-(१)]।

मुसरिया—(सं०) वह बैल, जिसका रंग भूरा हो और पूँछ पृथ्वी तक लोटती हो (पट०-१)।
[मुसरिया < मुसरी < मूस < मूष-, मूषक-]।

मुह—(सं०) (१) चूल्हे का वह छेद, जिससे होकर जलावन लगाया जाता है। पर्या०—मुह, मोहखा (पट०, गया)। (२) किसी मकान, स्थान आदि का दरवाजा। (३) मुख, मुखविवर।
[मुह < मुख]।

मुहचुर—(सं०) पहली बार कूटा गया चावल, जिसमें धान-चावल मिला रहता है (गया)। पर्या०—बोकड़ा (शा०), सिजाया (उ० पू० मै०)।
[मुह + चूर; मुह < मुख ; चुर < चूर्ण-]।

मूंग, मूँग—(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जो हरे रंग का छोटा, किंतु बीच में पतली-सी उजली रेखा लिये होता है। पर्या०—मुँग, खेढ़ी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मूँग < मुद्ग ; मुद्ग (संस्कृ०); मुग्ग (पा०, प्रा०) ; मूँग (हिं०); मुंग, मुङ् (नै०); मुगा (असम०) ; मुग (बँ०); मुग (ओ०); मुँग (पं०, ल०); मुंगु (सिं०) मूँग (गु०); मूँग (मरा०); मुङ्(सिंह०); मोंग (काश्म०) मुङ् (शिना०)]।

मूंग—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध अन्न, जिसकी दाल बनाई जाती है। (चंपा०-१)।

मूंग, मूँग—(सं०) एक प्रकार की दलहन, जो हरे रंग का छोटा, किन्तु बीच में एक पतली-सी उजली रेखा लिये होता है। पर्या०—मेंहा मूँग (उ० पू० मै०)।

मूंगा—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो छींटकर बोया जाता है (शाहा०)। (२) गुलाबी या लाल रंग का एक प्रसिद्ध माणिक्य, प्रवाल।
[मूँगा < मूँगा (हिं०) =एक प्रसिद्ध माणिक्य]।

मूंज—(सं०) सरपत के ऊपर का वह भाग, जिससे रस्सी बाँटी जाती है।
[मूँज < मुञ्ज—; मुञ्ज—(संस्कृ०); मुंज (पा०, प्रा०); मूँज (हिं०), मुञ्ज (पं०, ल० ; मुंजु (सिं०); मुंज, मुज (नै०)]।

मूंज—(सं०) एक प्रकार की घास।

मूंज—(सं०) सरपत नामक तृण के सिरे पर का छिलका, जिसको रस्सी बाँटी जाती है। (पट०—१)।
[मूँज < मुञ्ज-]।

मूंजबान—(सं०) मूंज नामक घास पैदा होने का स्थान (शाहा०)। दे०—मूजबानी।
[मूँज + बान (प्र०) < मूँज < मुञ्ज, मुञ्जवान् (संस्कृ०) = पर्वत-विशेष]।

मूंड़ा—(सं०) (१) बिना सींगों का बैल (उ० पू० मै)। दे०—मुँड़ड़ा।
[मूँड़ा < मुंड]।

मूंड़ा—(सं०) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाला मोहन का अंतिम भाग। आज से पचास साठ वर्ष पूर्व पत्थर या लकड़ी का कोल्हू होता था, जिसमें मोहन और मथानी का प्रयोग होता था। अब तो लोहे का नये ढंग का कोल्हू होता है। दे०—मूँड़।
[मूँड़ा < मुंड, < मूर्धन् (?)]।

मूँड़ी—(सं०) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाला मोहन का अंतिम भाग। यह आज से पचास वर्ष पहले के कोल्हू में लगा करता था, जब कि कोल्हू पत्थर या लकड़ी का होता था। आज तो लोहे का कोल्हू होता है। दे०—मूँड़।

[मूँड़ + ई (प्र०) < मूँड़ < मुण्ड]।

मूँड़—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाला मोहन का अंतिम भाग। पर्या०—मूँड़ा, मूँड़ी। (२) किसी वस्तु का ऊपरला भाग। (३) सिर, मस्तक।

[मूँड़ < मुण्ड, मूर्धन्-(?); मुण्ड—(संस्कृ०); मुण्ड (पा०), मुड, मुड्ड; मुंड्ड (प्रा०); मूँड़, मूड़ (हिं०); मुड़ (ने०); मुन (कुमा०); मुर (असं०); मुड़ (बँ०); मुण्ड (ओ०); मुण्ड (पं०); मुँण्ड (ल०) = नहर का सिरा; मुण्डु (सि०); मुंडो (गु०); मुँड, मुँडी (मरा०); मुड, मुण्ड (सिं०)]।

मूँदरी—(सं०) (१) खुरपे की बेंट के उस मुँह पर, जिसमें खुरपा ठोंका जाता है, लोहे की ठोंकी हुई अँगूठी, जो बेंट को फटने से बचाती है। (द० प० शाहा०)। दे०—साम। (२) अँगूठी।

[मुँदरी < मुद्रिका; मुदरी (हिं०), मुन्द्रि, मुँडि, मुद्रिका (ने०); मुद्रा, मुद्रिका (संस्कृ०); मुद्दा, मुद्दिका (पा०); मुद्दा, मुद्दिआ (प्रा०), मुदिवा (असं०) = मुँदना; मुद्रा (बँ०); मुद्रा (ओ०) = मुहर; मुदि (ओ०) = अँगूठी; मुण्ड्री (सि०); मुद्दी (मरा०); मुदुव (सिंह०)]।

मूठ—(सं०) (१) कुदाल के डंडे का ऊपरवाला अंश, जिसे हाथ से पकड़ा जाता है (सा०)।

मूठ—(सं०) (२) हल के पीछेवाले डंडे के ऊपर की गाँठ, जिसे हल चलाते समय हाथ से पकड़े रहते हैं। दे०—चंदवा। (३) किसी हथियार की मूठ।

[मूठ < मुठ्ठ < मुट्ठि < मुष्टि, -मुष्टिक—मुट्ठि (पा० प्रा०); मुट्ठी (हिं०) = मुट्ठी; मूठ (हिं०) = मुट्ठी; मूठ (हिं०) = हाथ से पकड़ने की गाँठ; मुठ (ने०); मुठ (पं०, ल०); मुट्ठि (सि०); मूठ (गु०, मरा०); मुठी (कुमा०); मुठि (असं०); मुठ (बँ०); मुठि (ओ०); मुठी (रोमा०); मुश्टी (दरदी); मुठ (शिना०); मोठ (कश्म०)]।

मूठ—(सं०) (४) रस्म-विशेष। प्रथम दिन की बुआई शुरू होने के समय इसे पूरा किया जाता है (पट०-१)।

मूठपूजा—(सं०) वर्ष में पहले-पहल बीज बोने के समय की पूजा (द० प० शाहा०)।

[मूठ + पूजा; मूठ < मुष्टि, पूजा < √पूज्]।

मूठ लगावल—(क्रि०) फसल का बीज पहली बार गिराया जाना। इस समय दूब, अक्षत, दही आदि से खेत की पूजा की जाती है।

[मूठ + लग + आवल (प्र०)]।

मूठा—(सं०) (१) काटी हुई फसल की वह छोटी राशि, जो मुट्ठी में भरकर आवे। पर्या०—मुट्ठा, पूला।

[मूठा < मुट्ठा < मुष्टि, मुष्टिक, मुट्ठि, मुट्ठि (पा०, प्रा०); मुट्ठा, मूठा (हिं०); मूठो (ने०); मुठा (असं०, बँ०, ओ०), मुट्ठा (पं०); मूठो (गु०); मुठा (मरा०)]।

मूठा—(सं०) (२) कुदाल के डंडे का नीचेवाला गाँठदार और अंतिम अंश (द० प० मैं०)। दे०—हूरा।

मूड़—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू को उसकी मथानी से फटने से बचाने के लिए उसके चारों ओर लगाया जानेवाला लोहे का पत्तर (गया)। दे०—मोरवार। (२) किसी वस्तु का सिरा भाग। (३) मस्तक, सिर।

[मूड़ < मुंड, मूर्धन्-(?)। दे०—मूँड़]।

मूड़छोप—(सं०) लगी हुई फसल की केवल बालियों को ही काटना (दर०-१, पूर्णि० १)।

[मूड़ + छोप (धौ०), मूड़ < मुंड, छोप < छोपन]।

मूड़ा—(सं०) बिना सींगों का बैल (द० भाग०)। दे०—मुँड़ेड़ा।

[मूड़ा < मुंड]।

मूड़—(सं०) ऊख या किसी पौधे की जड़ या मूल (सं० उ०)। दे०—जड़।

[मूड़ < मूल ; मूल-(संस्कृ०) ; मूल, जड़ (हिं०); मुल (ने०)]।

मूड़ा—(सं०) पक्का बनाया गया कुआँ का मुँह (द० प०)। दे०—जगत।

[मूड़ा < (?), वा < मूल, वा < मूर्धन, मुण्ड, मुण्ड (पा०); मुण्ड, मुण्ड, मुंड्ड (प्रा०)]।

मूड़ी—(सं०) चावल की फरही (मुँ०-१)।

[मुड़ी < (?)]।

मूड़ी—(सं०) भुना हुआ अनाज, विशिष्ट प्रकार से भुना हुआ चावल (द० भाग०)। दे०—चबेना।

[मूड़ी < (?)]।

मूत—(सं०) (१) पशुओं का मूत्र (प०)। दे०—गौंत। (२) मूत्र, पेशाब।

[मूत < मूत्र < √मूत्र् (संस्कृ०) ; मुत्त (पा०, प्रा०) ; मूत (हिं०) ; मुत (ने०) ; मुतुर (कश्म०) ; मुतुर (दरदी) ; मुत (बँ०) ; मुतिबा (ओ०) ; मुतातो, (पं०) = पेशाब करने की इच्छा ; मुतरण (ल०) = मूतना ; मुटु (सि०) ; मुतर (गु०) ; मूत (मरा०) ; मू (सिंह०) ; मुतुक (काफि०)]।

मूर—(सं०) (१) प्रसिद्ध तीखा उजला लंबा कंद, जो कच्चा या तरकारी बनाकर खाया जाता है। दे०—मूली। (२) जड़, मूल। (३) मूल, संपत्ति, पूँजी।
[मूर < मूल, मूलिक, मूली (हि०)]।

मूरई—(सं०) एक प्रसिद्ध तीखा उजला लंबा कंद, जो कच्चा या तरकारी बनाकर खाया जाता है (पू० मैं०)। दे०—मूली।
[मूर+ई (प्र०) < मूर < मूल-, मूलिक-]।

मूरहा—(सं०) भैंस का सींग, जो जड़ से ही घुमावदार हो (सा०-१)।
[मूर+हा (प्र०) < मूर < मूल-]।

मूराई—(सं०) एक प्रसिद्ध उजला लंबा कंद, जो कच्चा अथवा तरकारी बनाकर खाया जाता है (द० मुँ०)। दे०-मूली।
[मूरा+ई (प्र०) < मूर<मूल-, मूलिक-]।

मूरो—(सं०) एक प्रसिद्ध तीखा उजला लंबा कंद, जो कच्चा या तरकारी बनाकर खाया जाता है (द० भाग०)। दे०—मूली।
[मूरो < मूल- ; मूलिक-]।

मूल—(सं०) (१) उन्नीसवाँ नक्षत्र, मूल, यह अगहन में पड़ता है। (२) जड़। (३) आरंभ, अंकुर, बीज। (४) मूल धन। पर्या०-मूर। (५) मूल्य।
[मूल < मूल-, मूल (संस्कृ०, प्रा०); मूल (हि०); मूल् (ने०); मूल (गु०, मरा०)]।

मूलचक—(सं०) (१) चरखे का गोल चक्का (पट०-१)। (२) योग के अनुसार हृदयस्थित मूलाधार।
[मूल+चक < मूलचक]।

मूली—(सं०) एक प्रसिद्ध तीखा उजला लंबा कंद, जो कच्चा अथवा तरकारी बनाकर खाया जाता है। पर्या०-मूरई (पू० मैं०), मूर, मुराई (द० मुँ०), मूरो (द० भाग०), मेवार, सुतिया, वैसिला (शाहा०)।
[मूली < मूलिक- < मूल ; मूली (हि०)]।

मूस—(सं०) चूहा। दे०-मूसरी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मूस < मूष <√ मुषस्तेये = चोरी करना, मुष्णाति)]।

मूसर—(सं०) धान कूटने का लंबा मोटा डंडा (प०)।
[मूसर < मुसल-, मुसल-, मुशल-(संस्कृ०); मुसल (पा०); मूँसल (प्रा०); मुसुल (सिना०); मुहुल (कश्म०); मूसल, मूसर (हि०); मुसल् (ने०); मुसल (कुमा०); मुहल (असं०); मुसल (बँ०); मुसल (ओ०); मूसल (पं०); मुसरि (सिं०); मुस्लु (गु०); मुसल (मरा०); मोहोल (सिंह०)। 'ब्लॉक' के अनुसार (बुल० एस्० ओ० एस्०)। इस शब्द का मूल द्राविड है, जो मसेमसगु (= रगड़ना, पीसना, रंग चढ़ाना, तेज करना) संभव है। मस्मक्त (कुरुख); मसोल (गोंडी)—(नेपा०)]।

मूसर—(सं०) धान कूटने का लंबा मोटा डंडा, जिसके अंत में लोहे की गोल छल्ली लगी रहती है। पर्या०—मुसरा (मैं०, पट०, शाहा०, द० भाग०), पहरुआ (सा०)।

मूसर—(सं०) (१) वह भैंस, जिसका कंधा नुकीला हो (पट०-१)। (२) मूसल।
[मूसर < मुसल-]।

मूसरा—(सं०) (१) किसी पेड़ की, जमीन में गड़ी मोटी जड़ (चंपा०-१)। (२) कटहल के बीच का कुंदा जैसा भाग, जिसकी तरकारी बनती है।
[मूसरा < मूसर < मूसल-]।

मूसरी—(सं०) चूहा, मूषक (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—मूस, परकोड़ा।
[मूसरी < मूस < मूष-, मूषिका]।

मेंच—(सं०) मरोड़, ऐंठन, दबाव (मुँ०-१)।
[मेंच (देशी)]।

मेंचल—(क्रि०) मरोड़ना, ऐंठन देना, प्रतियोगिता करना (मुँ०-१)।
[मेंच+ल (प्र०) < मेंच (देशी)]।

मेंजनी, मिंजनी—(सं०) आदमियों द्वारा मींजकर फसल के डंठल से अनाज निकालने की प्रक्रिया (प०, पट०)। दे०—दौनी।
[मेंज+नी (प्र०) < मेंज < मींजल<मर्द- <√ मृद् (?)]।

मेंड़—(सं०) (१) दो चढ़ावों या जलाशय के बीच में उठाया गया किनारा या बाँध (शाहा०)। दे०—नावाँ।
[मेंड़ < मृत्ति, या मेद- <√मिद् (सेचने = सींचना, मेहति)-(?)]।

मेंड़—(सं०) (२) नाली के किनारे की घेरनेवाली उठी हुई जमीन (उ० प०)। पर्या०—आर (मैं०), करहा (शाहा०, पट, गया), परेंगा (पट०, गया), पलंगा (द० भाग०), डाँग (द० मुँ०)। (३) खेतों के चारों ओर का मिट्टी का घेरा।
[मेंड़ < मेड़ < मृत्ति, या < मेद <√मिह् (सेचने = सींचना, मेहति); मेड़ (हि०); मेड़ो (ने०)= मेड़ा-]।

मेंड़ड़ा—(सं०) मोट की गरदन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी। पर्या०—कड़ाही, कड़ा (सा०), कँड़ा (द० प० मैं०)।

[मेंड़+ड़ा (प्र०) मेंड़<मण्डल (?), मेंड़रा (हिं०)=(१) किसी गोल वस्तु का उभरा हुआ किनारा। (२) किसी वस्तु का मंडलाकार ढाँचा]।

मेंड़रा-(सं०) बाँस की फट्टी की बनी मंडलाकार वस्तु। जैसे, बखारी आदि की छावनी में बाँधी जानेवाली बत्ती (चंपा०-१)।

[मेंड़रा<मण्डल-; मेंड़रा, मेंड़री (हिं०)=(१) किसी गोल वस्तु का उभरा हुआ किनारा। (२) किसी वस्तु का गोल ढाँचा]।

मेंड़ा—(सं०)(१) मेंह के केंद्र के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा और दुर्बल बैल (चंपा०, द० पू० मैं०)। दे०—मेंहियाँ बैल। (२) घुँघराले सींगोंवाला भेड़ा।

[मेंड़ा < मेंड़+आ < मेंढ़ < मेधि<√मिथ्]।

मेंथ—(सं०) एक प्रकार की दाल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[मेंथ < मेथिका-(?), या < मोठ < मकुष्ठ = एक प्रकार का दलहन, जो पश्चिम में बहुतायत से होता है]।

मेंथि—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—मेंथी।

[मेंथि < मेथिका]।

मेंथी—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध मसाला, जो पीला और छोटे दानों का होता है। दे०—मेथी।

[मेंथी < मेथिका, < मेथी; मेथिका (संस्कृ०); मेथी (हिं०); मेथि (नें०); मेथि (बं०, ओ०); मेथी (पं०, सि०, गु०, मरा०)]।

मेंथी—(सं०) (२) एक प्रसिद्ध पौधा और उसके दाने। इसके दाने दाल छौंकने-बघारने के काम में आते हैं (पट०-१)।

[मेंथी < मेथिका, मेथी]।

मेंमना—(सं०) बकरी या अन्य छोटे पशुओं का बच्चा। (मुँ०-१)।

[मेंमना (देशी) या (अनु०) < मैं-मैं]।

मेंह्—(सं०) (१) अनाज की दौनी करने के लिए बैलों के बाँधने का खंभा। पर्या०—मेंहा (उ० प०, द० पू० मै०), मेहटा (पट०), मींहीं (द० भाग०)। द० प० शाहा० में मेंह् का उपयोग नहीं किया जाता है। (२) फसल की दौनी के लिए खलिहान के मध्य गाड़ा हुआ खंभा (चंपा०-१)।

[मेंह < मेधि, मेधी, मेढ़ी, मेथी (संस्कृ०); मेधि (पा०); मेढ़ी (प्रा०); मेह, मेहे, मियो (नें०); मेहर (पं०)=मेंह में बाँधा जानेवाला बैल]।

मेंह्टा—(सं०) मेंह् के पास घूमनेवाला दौनी का बैल (पट०)। दे०—सँभुल्ली।

[मेंह+टा (प्र०) < मेंह < मेधि-टा (प्र०) या < अट <√अट्, जैसे—कुलटा (=कुल+अटा)= घर-घर घूमनेवाली]।

मेंह्टा तर के बैल—(सं०) फसल की दौनी के समय खंभा के पास रहनेवाला बैल (पट०-१)।

[मेंहटा के (विभ०)+बैल (पौ०)]।

मेंहटा, मेहटा—(सं०) मेंह् के केंद्र के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा और दुर्बल बैल (गया, द० मुँ०)। दे०—मेंहियाँ बैल।

[मेंहटा < मेंह+टा ; मेंह < मेधि-, टा (प्र०) या <अटा <√अट् ; जैसे—कुलटा (=कुल+अटा)= घर-घर घूमनेवाला]।

मेंहल=(क्रि०) किसी वस्तु का सरदी या नमी के कारण मुलायम हो जाना (मुँ०-१)। पर्या०—मेहावल।

[मेंह+ल (प्र०) < मेंह< मेह< √मिह् (सेचने= सींचना ; मेहति]।

मेंहा—(सं०) (मुँ०-१)। दे०—मिंहा।

[मेंहा < मेधि]।

मेंहा—(सं०) अनाज की दौनी के लिए बैलों के बाँधने का खंभा (उ० प०, द० पू० मैं०)। दे०—मेंह्। द० प० शाहा० में मेंह् का उपयोग नहीं किया जाता है।

[मेंहा < मेंह < मेधि ; दे०-मेंह]।

मेंहियाँ—(सं०) मेंह् के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा और दुर्बल बैल (अन्यत्र)। दे०—मेंहियाँ बैल।

[मेंहियाँ < मेंह+इयाँ (प्र०) < मेधि-]।

मेंहियाँ बैल—(सं०) मेंह् के पास घूमनेवाला बैल। पर्या०—मेंहियाँ (अन्यत्र), मेंड़ा (चंपा०, द० पू० मै०), मेहटा, मेंहटा (गया, द० मुँ०), मेंहा (द० मुँ०), मींहाँ (द० भाग०), कुड़दहिना (गया)।

[मेंहियाँ+बैल ; मेंहिया < मेंह+इया (प्र०) < मेधि- ; बैल < बल्ल< बलीवर्द-(?)]।

मेंहौटी—(सं०) वह रस्सी, जिसके द्वारा प्रधान रस्सी मेंह् में बाँधी जाती है (पट०, गया)। दे०—धुरी।

[मेंह+औटी ; मेंह < मेधि-, औटी (प्र०)-(?)]।

मेख—(सं०) खूँटा (चंपा०-१)।

[मेख < मेख (फा०)=कील, खूँटी ; मेख (हिं०); मेख् (नें०)]।

मेघडंबर—(सं०) गेड़ुआ (जूड़ा) में लगे हुए फूलों का बड़ा-सा हार, जो बाँस की मेंड़री में लगा रहता है। (चंपा०-१)।

[मेघ+डंबर < मेघाडम्बर < (?)]।

मेघडुमरि—(सं०) एक प्रकार का फूल। गूलर का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मेघ+डुमरि, मेघ < मेघ < √मिह् ; डुमरि < उदुम्बर-]।

मेज—(सं०) लकड़ी या ईंट का दबाव डालनेवाला टेबुल, जिसमें उबालने के पहले नील रखी जाती है। पर्या०—बालु मेज (पू०, द० प० मैं०)। (२) टेबुल, मेज।
[मेज < मेज् (फा०)=वह चौकी, जिसपर रखकर खाना खाया जाता है। भोज-सामग्री। मेज (हिं०); मेज् (ने०); मिला०—मेच (संस्कृ०) = मञ्च]।

मेझुकी—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनके दाँतों के बीच में शोथ हो जाता है (पट०-१)।
[देशी]।

मेटा—(सं०) पानी आदि रखने के लिए मिट्टी का घड़ा (मुं०-१)।
[मेटा < मात्तिक < मृत्तिका ; माट (हिं०)]।

मेठ—(सं०) (१) सरदार, अगुआ। (२) मजदूरों से काम करानेवाला जमादार। (३) जेल में पुराने कैदियों का एक दरजा, जबकि वह काम से बरी कर दिया जाता है और दूसरे कैदियों का उसे जमादार बना दिया जाता है (मुं०-१)। (४) दूध या दही के ऊपर की मलाई (भाग०)।
[मेठ < (?), मेठ (संस्कृ०) = महावत ; मेठ (हिं०) ; मेठ् (अ०)=किसी यंत्र का लिंग]।

मेठ—(सं०) मजदूरों का सरदार (चंपा०-१)।

मेड़ड़—(सं०) सूर्य या चन्द्रमा के चारों ओर कभी-कभी लगनेवाला गोलाकार घेरा (चंपा०-१)।
[मेड़ड़ < मण्डल-, मेंड़रा (हिं०) = किसी गोल वस्तु का उभरा हुआ किनारा]।

मेड़—(सं) भैंस का वह सींग, जो भैंस के सिर से चिपका हो तथा छोटा और कुछ चिपटा हो (गा०-१)।
[मेड़ < मेड़ < मेढ-(संस्कृ०)=भेंड़ा या मेढ़ < मण्डल]।

मेड़ल—(क्रि०) मढ़ना, छारना, जाली बुनना, घेरना (मुं०-१)।
[मेड़+ल (प्र०) < मेढ़ < मढ़न, मण्डन < √मडि (भूषणे) ; मढ़ना (हिं०), मढ़ल (बिहा०)]।

मेड़वा—(सं०) वह बैल, जिसके दोनों सींग भेंड़े के सींग की तरह गोल और टेढ़े उलटे हों। दे०—मेरवा।
[मेड़+वा (प्र०) < मेड़ < मेढ]।

मेड़ियावल—(क्रि०) अच्छी तरह हेंगा देना (चंपा०-१)।
[मेड़ + इयावल (प्र०), मेड़ही < मेढ़ी < मण्डल-(?)]।

मेथ—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो पशुओं को खिलाया जाता है या गरीबों द्वारा दाल के लिए व्यवहृत होता है (चंपा०-१)।
[मेथ < मेथी, मेथिका, मिला०—मोठ < मकुष्ठ]।

मेथी—(सं०) एक प्रसिद्ध मसाला, जो पीला और छोटे दानों का होता है। पर्या०—मेंथी।
[मेथी < मेथी, मेथिका; मेथी (हिं०); मेथि (ने०)]।

मेदनी—(सं०) गाँजे के साथ जुड़ा हुआ गाँजे का पौधा।
[मेदनी (देशी)]।

मेनहर—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मेनहर (देशी)]।

मेमना—(सं०) भेड़ी या बकरी का बच्चा।
[मेमना < मैं-मैं (अनु०)]।

मेमनी—(सं०) बकरी का स्त्री-बच्चा। दे०-पाठी। मेमना।
[मेमनी < मैं-मैं (अनु०)]।

मेरखुन—(सं०) कूटते समय टूटा हुआ अनाज (द० मुं०)। दे०—खुद्दी। पर्या०—मेरखी (दर०-१, पूर्णि०-१, चंपा० १)।
[मेरखुन (देशी)]।

मेरहावल—(क्रि०) (१) रस्सी में ऐंठन या पाग देना (मुं०-१)। (२) भूनी हुई वस्तु का नरम या नम होना।
[मेरह + आवल (प्र०) < मेरह, मेढ < मेढ्ढ, मढ्ढ < मण्ड < √ मण्ड् (मण्डयति)]।

मेरानी—(सं०) जलमार्ग की धारा को दूसरी ओर बदलना (शाहब०)।
[मेरान < मिलान < मेलन- (?)]।

मेल—(सं०) (१) आल नामक रंग में फूहा और कचरी इन दोनों मूलों का मिश्रण (शाहा०)। दे०—आल। (२) मेल-मिलाप, समझौता।
[मेल < मेल < √ मिल्]।

मेलवानी—(सं०) (१) किसी तालाब या सरोवर आदि से पटाया हुआ खेत। दे०—छानन।
[मेलवानी < (देशी)]।

मेलवानी—(सं०) (२) करीन आदि से पानी गिराने का वह गहरा स्थान, जहाँ से पानी निकलकर आगे बढ़ता है (द० प० शाहा०)। दे०—तीधा।
[मेलवानी (देशी)]।

मैलवानी—(सं०) (१) किसी आहर या पैन से निकलनेवाले प्राकृतिक जलमार्ग का विवरण। इस प्रकार का जलमार्ग कभी खोदकर बनाया जाता है, पश्चात् वह किसी देखरेख के बिना स्वयमेव चालू रहता है और उसका पानी प्रत्येक खेत में जाता रहता है।

मेलान—(सं०) नहर या पैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से उच्च जलप्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण खेत की धारावाहिक सिंचाई (द० मुँ०)। दे०—अराड़ा।
[मेलान < (?)]।

मेलानी—(सं०) किसी तालाब या सरोवर आदि से पटाया हुआ खेत (द० भाग०)। दे०—खानन।
[मेलानी < (?)]।

मेवा—(सं०) (१) बादाम, छुहाड़ा, किशमिश आदि सूखा फल। (२) एक प्रकार का फल, सीताफल (चंपा०-१)।
[मेवा < मेवः (फा०); मेवा (हिं०); मेवा (ने०)]।

मेहठा—(सं०) अनाज की दौनी करने के लिए बैलों के बाँधने का खंभा (पट०)। दे०—मेंह।
[मेह + ठा (प्र०) < मेह < मेधि- <√ मिथ्]।

मेहुडा, मेंहुडा—(सं०) दौनी के मेंह के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा और दुर्बल बैल (गया, द० मुँ०)। दे०—मेंहियाँ बैल।
[मेंह + डा; मेह < मेधि, डा (प्र०) या < कट <√ कट्]।

मेहदी—(सं०) एक झाड़ी, जिसकी पत्तियाँ पीसकर स्त्रियाँ तलहथी या तलवे रँगती हैं (चंपा०-१)।
[मेहदी < मेन्धी (संस्कृ०)—(हिं० श० सा०), मेंहँदी (हिं०)]।

मेहताबी लेंबो—(सं०) एक प्रकार का बड़ा नीबू, जो परिमाण में आध सेर तक होता है (पट०-१)।
[मेहताबी + लेंबो (पौ०)]।

मेहा—(सं०) मेंह के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा और दुर्बल बैल (द० मुँ०)। दे०—मेंहियाँ बैल।
[मेह + आ (प्र०) < मेह < मेधि]।

मेहावल—(क्रि०) दे०—मेंहल (मुँ०-१)।
[मेह + आवल (प्र०) < मेह, मेह < √ मिह् (सींचने)]।

मैन—(वि०) वह बैल, जिसके दोनों सींग नीचे की ओर लटके हुए हों और हिलते हों (पट०)। दे०—मैना।
[मैन (देशी) या < मैना < मदन (= मदन शारिका = एक प्रसिद्ध पक्षी)]।

मैना—(सं०) (१) वह बैल, जिसके दोनों सींग नीचे की ओर लटके हुए हों और हिलते हों। पर्या०—मैन (पट०)। (२) एक प्रसिद्ध पक्षी।
[मैना (देशी) या < मदन-(= मदनशारिका= एक प्रसिद्ध पक्षी)]।

मैल—(सं०) १७६० गज की दूरी की एक नाप। मील।
[मैल < माइल Mile (अं०)]।

मैल—(सं०) (१) रस उबालने के कड़ाह से गुड़ बनाने के समय निकाला गया मैल या गंदगी। पर्या०—मैला (द० पू०), महिया (उ० प० मैं० शाहा०)। (२) मैल, गंदगी। (वि०) मलिन, गंदा।
[मैल < मल- ; मल- (संस्कृ०); मयल, मैल (प्रा०); मैल (हिं०); मैला (हिं०)=गंदा, पाखाना; मैलो (ने०)=मलिन, गंदा; मैला (ओ०); मैलु (सिं०)= गर्द, धूल; मेलु (गु०); मेल (मरा०) = गर्द। मैल < मइल्ल—(नेपा०)]।

मैला—(सं०) (१) गुड़ बनाने के समय कड़ाह से निकाला गया रस का मैल या गंदगी (द० पू०)। दे०—मैल।
[मैला < मल- दे०-मैल]।

मैला—(सं०) (२) पाखाना, गंदी वस्तु। पर्या०—घिना, छिया (द० भाग०)।
[मैला < मल-, मयल-, मैल- (प्रा०), मैला (हिं०); मैला (ने०)]।

मोछ—(सं०) (१) भुट्टे के ऊपर के रेशों का गुच्छा (पट०)। दे०—मुआ। (२) मुँह के उपरले ओष्ठ के बाल।
[मोछ < मुच्छ < मस्सु < श्मश्रु- (संस्कृ०); मस्सु (प्रा०), मूँछ, मोछ (हिं०)। मिला०—मुच्छ- (संस्कृ०)—(त्रिकाण्ड०)]।

मोट—(सं०) चमड़े का बनाया हुआ पानी निकालने का बोरा जैसा बरतन (प० बिहा०)। दे०—मोटि।
[मोट < मोट (= मोटरी)-(?); संभ०- < मोट-, मूट-, मुट, मुट-(संस्कृ०) = दौरा; मटरी— (मो० वि० कि०); मोट (हिं०)]।

मोथा—(सं०) (१) एक सूखी घास, जो बिना जोती हुई जमीन पर उगती है और फसल को नष्ट करती है। (२) इस घास की जड़, जिसका उपयोग औषध में होता है। पर्या०—इर, मौना (प० मैं०, द० पू०), केंवोरा (द० मुं०)।

[मोथा < मुस्तक- : मुस्तक-(संस्कृ०) : मुत्थ, मुत्थअ (प्रा०); मोथा (हिं०)]।

मोथा—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)।

मोरवाह्—(सं०) कोल्हू में पेरने के लिए ऊख लगानेवाला। पर्या०—मोरवाह्, पनवाहा (पट०, गया), धनवहा (द० भाग०, द० मुं०)।

[मोर + वाह < मोर < मोट-, मूट (?), वाह (प्र०) वा < √ वह्]।

मोरवाहा—ऊख को पेरते समय उसे हाथ से उकसानेवाला आदमी; कभी-कभी यह आदमी बैल भी हाँकता है। दे०—मोरवाह्।

मोर + वाहा; मोर < मोट-, मूट-(?) वाहा (प्र०) वा < √ वह्]।

मोआइना—(सं०) निरीक्षण, तुलना (गाइड०)।

[मोआइना < मुआयनः (अ०); मुआयना (हिं०)]।

मोआर—(सं०) अनावृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल (गया)। दे०—मुआर।

[मोआर < मुआर < मुअ + आर (प्र०) < मुअ < मृत- < √ मृ]।

मोकन—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[मोकन-(देशी)। मिला०—मुचुकुन्द-]।

मोकरल—(क्रि०) (१) पशुओं का डकारना। (२) गाय-बैल का दर्द-भरी डकार निकालना। (३) ज़ोर-ज़ोर से हिचकी के साथ रोना, चीखना, चिल्लाना।

[मोकर + ल (प्र०) < मोकर (देशी)]।

मोकरी—(सं०) राजा या जमींदार द्वारा छोटे पुत्र या छोटे भाई के और उनके उत्तराधिकारियों के जीवन-निर्वाहार्थ उन्हें दी गई कुछ गाँवों की कर-मुक्त संपत्ति या जमींदारी (सं० उ०)। दे०—खोरिश।

[मोकरी < मुकर्रर (अ०)-(?)]।

मोकरीदार—(सं०) फर्जी जमींदार (पट०-१)।

[मोकरी + दार (प्र०) < मोकरी < मुकर्रर (अ०)-(?)]।

मोकर्ररी—(सं०) ठीके की या अपनी जमींदारी की वह भूमि, जो किसी निश्चित कर पर किसी को जोतने के लिए दे दी गई हो। पर्या०—सिकमी।

[मोकर्रर + ई (प्र०) < मुकर्रर (अ०)]।

मोका—(सं०) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ जलस्रोत (उ० प० मै०)। दे०—सोता।

[मोका (देशी) वा < मोक्ष-]।

मोखड़ा—(सं०) कुआँ बनाने या बगल के बाँधने में प्रयुक्त भट्ठे में पका हुआ मिट्टी का गोल पट्टा (द० प० शाहा०)। दे०—खपड़ा।

[मोख + ड़ा (प्र०) < मोख < मुख-(?)]।

मोख्तार—(सं०) (१) सरकारी मालगुजारी वसूल कर राजकोष में जमा करनेवाला (पट०, मै०)। दे०—लमरदार। (२) जागीर, जमींदारी या काश्तकारी का, अधिकारी की ओर से नियुक्त प्रतिनिधि-व्यवस्थापक। (३) कानूनी सलाहकार या प्रतिनिधि, जो वकील से छोटे होते हैं और छोटी अदालतों में मुकदमों की पैरवी करते हैं। आजकल उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार पूर्व के मुख्तार अधिवक्ता (ऐडवोकेट) हो गये।

[मोख्तार < मुख़्तार (अ०); मुख्तार, मोख्तार (हिं०)]।

मोख्तियार—(सं०) (१) सरकारी मालगुजारी वसूल कर राजकोष में जमा करनेवाला। दे०—लमरदार। (२) मुख्तार।

[मोख्तियार < मुख़्तार (अ०)]।

मोच, मोचा—(सं०) भुट्टे के ऊपर के रेशों का गुच्छा (मै०, द० भाग०)। दे०—भुआ।

[मोच < मोंछ < मुच्छ < श्मश्रु-]।

मोचरा—(सं०) नदी बाँधने के लिए लकड़ी, ऊख, सन आदि का बँधा छोटा बोझा (पट०-१)।

[मोचरा < (देशी)]।

मोचहि—(सं०) अफीम के खेत में उगनेवाली एक घास (सामा०)। दे०—खड़्का।

[मोचहि (देशी)]।

मोचा—(सं०) मकई की बाल के सिरे पर लगा हुआ रेशों का गुच्छा (चंपा०-१, सा०-१)।

[मोचा < मुच्छ < श्मश्रु-]।

मोचा, मोच—(सं०) भुट्टों के ऊपर के केश जैसे रेशों का गुच्छा (मै०, द० भाग०)। दे०—भुआ।

[मोचा < मुच्छ < श्मश्रु-]।

मोछा—(सं०) भुट्टों के ऊपर के केश जैसे रेशों का गुच्छा (द० मुं०)। दे०—भुआ।

[मोंछा < मुच्छ < श्मश्रु-]।

मोजर—(सं०) कुछ विशिष्ट वृक्षों में फूलों अथवा फलों के स्थान में एक साथ लगे हुए अनेक दानों का समूह (चंपा०-१)।

[मोजर < मञ्जर-(?)]।

मोजरी—(सं०) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी को बाँध रखने के लिए चारों ओर से लिपटाई गई रस्सी (प०)। दे०—मोजरा।
[मोजरी < मुञ्ज-(?)]।

मोजर—(सं०) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी को बँधी-बँधाई रखने के लिए चारों ओर लिपटाई गई रस्सी (प०)। पर्या०—मोजरी (प०), गोरुआ (द० प० मै०), बन्हना (चंपा०), गुड़ी (प० शाहा०, गया), जड़बँधना (द० भाग०)।
[मोजर < मुञ्ज-(?)]।

मोट—(सं०) (१) कुएँ से पानी खींचने का चमड़े का पात्र। पर्या०- मोटि।
[मोट < मूट-, मुट (संस्कृ०)=बोरा]।

मोट—(सं०) (२) चमड़े का बनाया हुआ पानी निकालने का बोरा जैसा बरतन (प० बिहा०)। दे०—मोटि।
[मोट < मूट-, मुट-(संस्कृ०)]।

मोट—(सं०) (३) घास, भूसा आदि का भार (बोझ) (पट०, गया, शाहा०)। दे०—बोझा।
[मोट < (देशी) या < मूट-, मुट = मोटरी, बोरा]।

मोट—(सं०) (४) चमड़े का बना एक बड़ा पात्र, जिसके द्वारा कुएँ से पानी निकालकर खेत सींचते हैं (गाइड०)।
[मोट < मूट-, मुट-]।

मोट चलाएल—(क्रि०) मोट से पानी निकालना और खेत सींचना।
[मोट + चल + आएल (प्र०)]।

मोटडरवा—(सं०) पानी से भरे मोट को खाली करनेवाला व्यक्ति (शाहा०, द० मुं०)। दे०—ढूरनिहार।
[मोट + डर + वा (प्र०)]।

मोटवाहा—(सं०) मोट के बैलों को हाँकनेवाला और पानी-भरे मोट को खाली करनेवाला व्यक्ति।
[मोट + वाहा; मोट (देशी) या < मुट-, मूट-, वाहा (प्र०) या < √ वह्]।

मोटवाही—(सं०) कुएँ से पटाया हुआ खेत (प०)।
[मोट + वाह + ई (प्र०), मोट (देशी) या < मूट-, मुट-; वाह (प्र०) < √ वह्]।

मोटहा—(सं०) दो फट्टों (पल्लों) का बना हुआ बैल का जुआ जुए के ऊपर का पल्ला। दे०—पालो (वि०) मोटा, मोटे आचरणवाला।
[मोट + हा (प्र०) < मोट < मूट, मुट-]।

मोटहा जोड़ी—(सं०) मोट खींचने के लिए स्वस्थ बैलों की जोड़ी।
[मोटहा + जोड़ी (यौ०); मोट + हा (प्र०) < मोट < मूट-, मुट, जोड़ी < जो + ड़ी (प्र०) < जो < युग; जोड़]।

मोटि—(सं०) (१) चमड़े का बनाया हुआ पानी निकालने का बोरा जैसा बरतन (प० बिहा०)। पर्या०—मोट, मोट। (पू० बिहा० में इसका उपयोग नहीं होता)।
[मोटि < मोट < मूट-, मुट]।

मोटि—(सं०) (२) कुएँ से पानी खींचने का चमड़े का बड़ा बरतन। दे०—मोट।

मोड़वाह—(सं०) (सा०-१)। दे०—मोरवाहा।
[मोड़ + वाह, मोड़ < मोड़ल, मोरल < √ मोड़् (?), वाह (प्र०) या < √ वह्]।

मोड़िया—(सं०) (१) धुनकी के ऊपर का हिस्सा (पट०-१)।
[मोड़िया < मोड़ + इया (प्र०) < मोड़ < मोड़ल]।

मोड़िया—(सं०) (२) चरखे का वह हिस्सा, जिसपर तकुआ रखा जाता है (पट०-१)।

मोढ़ा—(सं०) (१) बैलगाड़ी का अगला हिस्सा, जिसपर गाड़ीवान बैठता है (द० भाग०)। दे०—मोहरा। (२) विशेष प्रकार का बैठने का थोड़ा ऊँचा आसन।
[मोढ़ा < मोहरा < मोह + रा (प्र०) मोह < मुँह < मुख-]।

मोढ़ी—मँड़ुआ के दाने निकाल लेने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी (द० पू० मै०)। दे०—डाँटी।
[मोढ़ी (देशी)]।

मोतफरकाती—(सं०) किसी गाँव की फुटकर और इधर-उधर बिखरी हुई जमीन (पट०-१)।
[मोतफरकाती < मुतफ़र्रिकात (अ० बहु०) = विभिन्न वस्तुएँ, हिसाब की भिन्न-भिन्न रकमें]।

मोतरफा—(सं०) (१) गाँव में रहनेवाले शिल्पियों और दुकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा भूमि-कर के रूप में लिया जानेवाला भूमि का राजस्व। पर्या०—मौतरफा, कोठियारी (मै०, चंपा०), बसुड़ी (पू० मै०), अबुआब (पू०), दुअन्नी (गं० द०)।
[मोतरफा < मोतरिफ़ (अ०) = इकरार करनेवाला; स्वीकार करनेवाला]।

मोतरफा—(सं०) (२) मकान का कर (पट०-१)।
[मोतरफा < मोतरिफ़ (अ०)-(?)]।

मोतलके—(सं०) वह खेत या भूमि, जो किसी दूसरे गाँव की सीमा के अंदर पड़ती है, पर वह अधिकृत है दूसरे गाँव की। पर्या०—तालुका (गं० ड०)।
[मोतलके < मुत अल्लिक: (अ०) = संबंध रखनेवाली वस्तु]।

मोतहा बरध—(सं०) अच्छे बैलों की जोड़ी।
[मोतहा + बरध (वी०), मोतहा < मोटहा < मोट + हा (प्र०) < मोट = चमड़े का बना पानी पटाने का साधन-विशेष; बरध < बरद<बलीवर्द-]।

मोतीझावा—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

मोथ—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो शिंबी (छीमी) जाति का होता है, मोट (गं० द०)।
[मोथ < मोठ<मकुष्ठ-, मोठ (हिं०, पं०)]।

मोथा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध घास। (२) उस घास की जड़ या कंद, जो दवा में प्रयुक्त होता है।
[मोथा < मुस्तक-, मुस्त-; मोथा (हिं०)]।

मोथाहा—(सं०) वह खेत, जिसमें मोथा नामक घास पूरी तरह जमती हो (पट०—१)।
[मोथा + हा (प्र०) < मोथा < मुस्तक-]।

मोथी—(सं०) (१) दे०—मोथ।
[मोथी < मकुष्ठ-]।

मोथी—(सं०) (२) एक प्रकार की घास (चंपा०-१)।
[मोथी < मोथा < मुस्तक-]।

मोथी—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)।

मोनासिब तरीके से—(क्रि० वि०) उचित विधि से (गाइड०)।
[मोनासिब + तरीके + से (विभ०)-]।

मोफरद—(सं०) प्रत्येक किसान के घर का अलग-अलग ब्यौरा (पट०—१)।
[मोफरद<मुफारकत (अ०)=वार्धक्य; अलगाव (?) या < मुन्फरीद (अ०) = अकेला, बेजोड़]।

मोफरीद—(सं०) कागज का पृष्ठ, जिसमें प्रत्येक असामी का अलग-अलग हिसाब लिखा रहता है।
[मोफरीद < मुफारकत (अ०)=पार्थक्य, अलगाव; या < मुन्फरीद (अ०)=अकेला]।

मोय—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[मोय < मोच (?)]।

मोय—(सं०) (२) एक प्रकार की बड़ी मछली, जिसका मुँह छोटा होता है और मध्य भाग चौड़ा एवं पिछला भाग पतला होता है। इसके विपरीत 'बरारी' का मुँह बड़ा और शरीर आनुपातिक रूप में पतला होता है (चंपा०-१)।
[मोय < मोच-(?)]।

मोरंडी—(सं०) (पट०-१)। दे०—मोरनी।

मोर—(सं०) (१) (गाइड०)। दे०—गाछ। (२) मयूर।
[मोर < मूर < मूल-; (२) < मयूर]।

मोरकबरा—(सं०) बिहार से बीया उखाड़नेवाला मनुष्य (द० मुं०)। दे०—कबरिया।
[मोर+कबरा ; मोर < मोरी < मूल-, कबरा, कबारल (बिहा०)=उखाड़ना]।

मोरकबरा—(सं०) धान की मोरी (बीया) उखाड़नेवाला (पट०-१)।
[मोर+कबरा ; मोर < मोरी < मूल, कबरा < कबारल]।

मोरका—(सं०) छोटी मेंड़ई (द० भाग०)। दे०—गोहिया।
[मोरका < मोर+का < मण्ड-(=मण्डप-)]।

मोरनी—(सं०) बैलगाड़ी के जुए को कसे रहने के लिए काम में लाई जानेवाली सुतली (पट०-१), मोरंडी।
[मोरनी (देशी)]।

मोरवार—बैलगाड़ी के पहिये के मनरा को या ऊख के कोल्हू को उसकी मथानी से फटने से बचाने के लिए लगाया गया लोहे का पत्तर। पर्या०—मोरवारा, मोरवाह।

मोरवारा—(सं०) बैलगाड़ी के पहिये के मनरा को फटने से बचाने के लिए दिया हुआ लोहे का पट्टा (पट०-१)।
[मोरवारा (देशी)]।

मोरवाहा—(वि०) (१) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर बिखेरनेवाला मनुष्य (शाहा०) दे०—पनमोरा। (२) कोल्हू में पेरने के लिए ऊख लगानेवाला। दे०—मोरवाह।
[मोर + वाह ; मोर < मोड़ल, वाह (प्र०), <√वह्]।
(३) ऊख को पेरने के समय उसे हाथ से उकसानेवाला आदमी ; कभी-कभी यह आदमी बैल भी हाँकता है। पर्या०—मोरवाह, पनवहा (द० भाग०)।
[मोर+वाह ; मोर < मोड़ल (?), वाह (प्र०) या <√वह्]।
(४) ऊख के कोल्हू को उसकी मथानी से फटने से बचाने के लिए लगाया गया लोहे का पत्तर (उ० पू० मैं०)। दे०—मोरवार।
[मोर+वाहा, मोर, मोरल, वाह (प्र०)]।

मोरहन—(सं०) (१) नील या किसी अनाज की पहली फसल।
[मोर+हन < मूलधान्य-]।

मोरहन—(सं०) (२) तंबाकू की पहली फसल।
[मोर+हन < मूलधान्य]।

मोरहन—(सं०) (३) लम्बे पत्तोंवाला एक प्रकार का अच्छा तंबाकू (शाहा०)। पर्या०—छेउआ।=मोरहन के बाद की दूसरी श्रेणी का तंबाकू। (४) वह पौधा, जो पहली बार कटे (चंपा०-१)।
[मोर+हन < मूल+धान्य]।

मोरानी—(सं०) जलप्रवाह-मार्ग का घुमाव या मोड़ (पट०, उ० प०)। पर्या०—घुमान (चंपा०, उ० पू० मै०)।
[मोरानी < मोर+आनी < मोर < मोडल]।

मोरी—(सं०) (१) नील के बहने का मार्ग (सा०)। दे०—नाली।
[मोरी < मोहरी (हि० श० सा०)]।

मोरी—(सं०) (२) धान के बीज का पौधा (गं० द० प०)। पर्या०—तरई (चंपा०)।
[मोरी < मूल-(?)]।

मोरी—(सं०) (३) (सा०-१) दे०—टाढ़ी।
[मोरी < मूल-(?)]।

मोरी—(सं०) (४) पानी के बहाव पर मछली मारने के उपकरण को लगाने की प्रक्रिया (चंपा०-१)।
[मोरी < मोहरी (हि० श० सा०)]।

मोरी—(सं०) (५) धान का वह बीया, जो रोपने के लिए क्यारी से उखाड़कर रखा जाता है (पट०-१, गं० द०, उ० प०)। दे०—बीया।
[मोरी < मूल-(?)]।

मोरी—(सं०) (६) धान का बीज। (७) धान का बिचड़ा। (८) वह धान, जो पुआल में बाँधकर रखा जाता है। (९) पुआल का वह विशेष बंधन, जिसमें धान सेंतकर रखा जाता है (मु०-१)।
[मोरी < मूल-]।

मोरी पेटारी—(सं०) धान की लम्बी नेवारी। पर्या०—पेटाही (चंपा०), पेटाढ़ी (शाहा०)।
[मोरी+पेटारी, मोरी < मूल ; पेटारी (देशी)]।

मोलाई—(सं०) (१) मूल्य पूछने या तय करने की क्रिया का भाव। मोल-तोल करना। (२) किसी चीज की कीमत उचित से ज्यादा रखने पर उसे कम करने के लिए कहना और कही गई कीमत से अपनी ओर से कुछ कम कीमत आँकना।
[मोल+आई (प्र०)< मोल < मूल्य-, मूल्य, मोल (हि०) ; मोल (ने०)=मूल्य]।

मोलावल—(क्रि०) मोल-तोल करना। किसी वस्तु के निर्धारित मूल्य को कम करके आँकना।
[मोल + आवल (प्र०) < मोल < मूल्य-]।

मोसद्दी—(सं०) जमींदार के बही-खाते का निरीक्षक (पट०-१)।
[मोसदी < मुसद्दिक़ (अ०)=तस्दीक करनेवाला]।

मोहँड़ा—मुँहड़ा, गाड़ी का अगला भाग या सिरा।
[मोहँड़ा < मोहँ+ड़ा (प्र०) < मोंह < मुँह < मुख-]।

मोहँरी—(सं०) (१) पहिये की नाभी। (२) जानवरों के मुँह बाँधने की रस्सी। (३) रस्सी से मुँह बाँधने की प्रक्रिया।
[मोहँ+री (प्र०) < मोहँ < मोह<मुख- (?)]।

मोहखा—(सं०) (१) चूल्हे का वह छेद, जिससे होकर जलावन लगाया जाता है। दे०—मुँह।
[मोह+खा < मुँह+खात < मुख+खात (?)]।

मोहखा—(सं०) (२) कोठी या बखारी का वह मुँह, जिससे अन्न निकाला जाता है। दे०—आन।
[मोह + खा ; मोह < मुँह < मुख-; खा < खात (?)]।

मोहड़ा—(सं०) सगुन के सिरे पर जुए की गाँठ से बाँधा गया गाड़ी का अगला भाग (चंपा०-१)। दे०—मुँहथोपड़ा।
[मोह+ड़ा (प्र०) < मोह < मुँह < मुख-]।

मोहन—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के बीच में घूमनेवाला कुंदा (जाठ), जो ऊख को पेरता है (चंपा०, पट०, द० मुं०)। पर्या०—महन (गया, उ० प०), मोहन (शाहा०), लाठ (मै०, चंपा०), जाठ (मै०, शाहा०)। (२) कोल्हू के बीच का जाठ।
[मोहन < मन्थन < √मथ्]।

मोहन—(सं०) (३) पैन या किसी जलस्रोत का मुँह या जलनिर्गम-द्वार (गाइड०)। पर्या०—मुँह।
[मोह+न ; मोह < मुँह < मुख, न (?)]।

मोहनथंभा—(सं०) ऊख के कोल्हू के मोहन के सिरे के ऊपर का कटा हुआ भाग। दे०—कारह।
[मोहन+थंभा ; मोहन < मन्थन- < √मथ् ; थंभा < स्तम्भ-]।

मोहर—(सं०) (१) नहर या पैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से उच्च जलप्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण खेत की धारावाहिक सिंचाई (प०)। दे०—अपटा।
[मोहर < मोह + र (प्र०) < मोह < मुँह < मुख- ; मोरी (हि०) = नाली; मोरि, मोहोरि (ने०)= नाली]।

मोहर—(सं०) (२) मोहर, सील। (३) आठ आना-भर सोने का एक सिक्का।
[मोहर < मुह्र (फ़ा०) = अँगूठी, ठप्पा, अशर्फी, मोहर]।

मोहरइया—(सं०) पीली मकई का अधफुटा भूँजा (चंपा०-१)।
[देशी]।

मोहरा—(सं०) बैलगाड़ी की अगली जगह, जिसपर गाड़ीवान बैठता है। गाड़ी का अगला सिरा। पर्या०—मोढ़ा (द० भाग०), मुँहड़ा (शाहा०)।
[मोह+रा (प्र०) < मोह, < मुँहड़ा < मुख-]।

मोहरी—(सं०) (१) मवेशियों के कांको चौड़े मुँह को खाकने से बचाने के लिए उसके सिर की रस्सी से एक दूसरा रस्सी लगाकर मुँह बाँधने की प्रक्रिया (शाहा०)। (२) उपर्युक्त प्रकार से बाँधने की रस्सी।
[मोहरी < मोह+री (प्र०) < मोह < मुख-]।

मोहल—(सं०) अन्न आदि को पानी से थोड़ा-थोड़ा भिगोना (चंपा०-१)।
[मोह+ल (प्र०) < मोह < मोच < मच < √मच्—(कल्पने, मचति) (?)]।

मोहिआ—(सं०) रस पकाने के समय गुड़ बनने के पूर्व उससे निकला हुआ उजला-सा स्निग्ध पदार्थ (सा०-१)। दे०—महिआ।
[मोहिअ < मथितक-(?)]।

मोहैन—(सं०) कोल्हू के ऊपर का लकड़ी का वह कुंदा, जो कोल्हू के पेट में लगा रहता है और जो तेलहन को पीसता है। दे०—मोहन।
[मोहैन < मन्थन < √मथ्]।

मौजा—(सं०) गाँव (गाइड०)।
टि०—बंगाल-टेनेंसी-ऐक्ट ३(१०) के अनुसार राजस्व-सर्वेक्षण के समय स्वीकृत और पृथक् चित्रित एक इकाई। गंगातटीय सर्वेक्षण में यह एक दियारे का इलाका माना गया है।
[मौजा < मौज़ा (अ०)=स्थान, जगह, गाँव]।

मौजा—(सं०) (१) गाँव। (२) किसानों के रहने का स्थान, छोटी बस्ती (सा०-१)।
[मौजा < मौज़ा (अ०)=स्थान, गाँव]।

मौतहरफा—(सं०) गाँव में रहनेवाले शिल्पियों और दुकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा भूमि-कर के रूप में लिया जानेवाला शुल्क। दे०—मोतरफा।
[मौतहरफा < मुतफ़र्रिक़ (अ०)=विविध, भिन्न]।

मौना—(सं०) एक लंबी मोटी घास, जो बिना जोती हुई जमीन में उगती है और शारदीय फसल को नष्ट करती है (प० मै०, द० पू०)। दे०—मोथा।
[मौना (देशी)]।

मौनिया—(सं०) अनाज रखने की टोकरी (गया, द० मुँ०)। दे०—दौरा।
[मौन+इया (प्र०) < मौन, मौनी (देशी)]।

मौनी—(सं०) अनाज रखनेवाली टोकरी (गया, द० मुँ०)। दे०—दौरा।

मौर—(सं०) (१) दुहने के समय बहलाने के निमित्त मृतवत्सा गौ या भैंस के सामने रखी गई घास से भरी बछड़े की खाल (शाहा०)। दे०—लगावन। (२) विवाह के अवसर पर पहना जानेवाला एक विशेष प्रकार का मुकुट।
[मौर (देशी); (२) < मुकुट, मउर (प्रा०); मौर (हिं०); मौरो (नें०) = एक घास, जो गीली जमीन में पैदा होती है]।

मौरका—(सं०) फसल की रखवाली करने के लिए खेतों में बनी खर-पात की अस्थायी झोपड़ी (मुँ०-१)।
[मौरका < मण्डपक-(?)]।

मौरूसी—(सं०) वह काश्तकार, जिसे अधिकृत भूमि प्राप्त है (कम-से-कम १२ वर्षों का, जमीन पर अधिकार है)। पर्या०—क़दीमी (प्रा० प्रयो०), देही (पट०, गया), जड़ी (शाहा०)।
[मौरूसी < मौरूसी (अ०)]।

र

रंची—(सं०) छोटे दानों की तेज झाँसवाली सरसों, राई (द० मुँ०)। दे०—राई।
[रंची < रँचो < राजिका, राजि-]।

रँड़मेवा—(सं०) पपीता (पट०-१)।

रइत—(सं०) खेत जोतनेवाला असामी (पट०-१)।
[रँड़+मेवा, रँड़ < एरण्ड-, मेवा (फ़ा०)]।
[रइत < रैयत < रइयत (अ०)। मिला०—रयिमान् (संस्कृ०, धनी, समृद्ध)]।

रकबा—(सं०) जमीन का क्षेत्रफल (पट०-१, सा०-१)।
[रकबा < रक़बः (अ०)=जमीन की नाप, क्षेत्र, क्षेत्रफल]।

रकसधूमहल—(सं०) वह बैल, जिसके रोएँ उजले और धूमिल हों (पट०-१)।
[रकस + धूमहल (पौ०), रकस < रक्षस् (?); धूमहल < धूमल-(?)]।

रकसा—(सं०) एक प्रकार का चीना नामक अनाज (सा०)। दे०—गौरिया।
[रकसा < (?)]।

रकसा, रकसी—(सं०) एक प्रकार की लाल और बड़े दानों की जनेर या ज्वार। दे०—जोंधरी।

रकसी—(सं०) खेत की वह मिट्टी, जिसमें राख अधिक मात्रा में मिली हो (चंपा०-१)।
[रकसी < रकत-(?)]।

रकसी, रकसा—एक प्रकार की लाल और बड़े दानों की जनेर या ज्वार। दे०—जोंधरी।

रखउर—(सं०) खेत की वह मिट्टी, जिसमें राख अधिक मात्रा में मिली हो (चंपा०-१)।
[रख+उर, रख < राख < रक्षा (क्षारो रक्षा च—अमर०), उर<पूर (=भरा हुआ)]।

रखवार—(सं०) किसी चीज की रखवाली करनेवाला व्यक्ति (चंपा०-१)।
[रखवार < रक्षपाल-, (?) रक्खवाल (प्रा०); रखवाला, रखवार (हिं०); रखवार, रखवालो (ने०); रखवाल (कुमा०); राखाल (बँ०); रखुवाला (ओ०); रखवाल (पं०); रखवालु (सिं०); रखवाल (गु०); रकवल (सिंह०)]।

रखवारा—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल करनेवाला। पर्या०—अगोरिया, अगोरनिहार, बलरक्खा (पट०), अगोरा (चंपा०, द० मुं०), जगवरिया (गया), जोगनियाँ (द० भाग०), रखवारी=अनाज या फसल की देखभाल।
[रखवारा < रक्षपाल-, रक्खवाल (प्रा०)]।

रखवारी—(सं०) (१) फसल या अनाज की देखभाल। पर्या०—अगोरी, अगोरिया, रखवाही, बलरक्खी (पट०), जगवारी, बथवाहा (गया), बथवार (पू० बिहा०), जोगाएल (चंपा०, द० भाग०)। (२) फसल आदि की देख-भाल के लिए मिलनेवाली मजदूरी।
[रखवार + ई (प्र०) रखवार < रक्खपाल-रक्षपाल-, रखवारी, रखवाली (हिं०); रखवारि, रखुवारि, रखवारि, रखवालि (ने०); रखवाली (कुमा०); राखालि (बँ०); रखवाली (पं०); रखवाली (गु०)]।

रखवाही—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (पट०)। दे०—रखवारी।
[रखवाही < रखवाहा < रक्षा+वाह-]।

रखाँत—(सं०) (१) पशुओं को चारे के लिए दी जानेवाली रबी की हरी फसल (सा०)। (२) चरागाह के लिए छोड़ी गई जमीन (द० मुं०)। दे०—परती। (३) वह जंगल या खड़ौल, जिसमें दूसरे के जानवर नहीं जा सकते या दूसरा कोई उसका उपयोग नहीं कर सकता (चंपा०-१)।
[रखाँत < रक्षत < √रक्ष्]।

रखाल—(सं०) चरागाह के लिए छोड़ी गई जमीन (गं० उ०)। दे०—परती।

रखौर—(सं०) राख मिली हुई जमीन, जो तुरत सूख जाती है। पर्या०—भसराही।
रख+औैर<रक्षा (भस्म, राख) + पूर-]।

रजनिगंधा—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल (दर०-१, पूर्णि-१)।
[रजनि+गंधा < रजनीगंधा]।

रजरैठ—(सं०) एक अगहनी उजला धान, जिसकी जड़ और फुनगी कुछ काली और चावल उजला और पुष्ट होता है (सा०-१)।

रजिस्टर-ए—(सं०) कलक्टरी का वह रजिस्टर, जिसमें निश्चित सरकारी रकम की सभी बातों का उल्लेख होता है (सा०-१)।
[रजिस्टर-ए (अं०)]।

रजिस्टर-बी—(सं०) कलक्टरी की वह पंजी, जिसमें जमीन के मालिक का नाम रहता है (सा०-१)।
[रजिस्टर-बी (अं०)]।

रजिस्टर महालवार—(सं०) कलक्टरी की वह पंजी, जिसमें महाल की सभी बातों का उल्लेख एक ही स्थान पर लिखा होता है (सा०-१)।
[रजिस्टर (अं०)+महालवार (फा०)]।

रजिस्टर मौजेवार—(सं०) गाँव की पक्की रिपोर्ट (सा०-१)।
[रजिस्टर (अं०)+मौजेवार (फा०)]।

रजिस्टर-सी—(सं०) दे०—रजिस्टर-ए।

रजिस्ट्री—(सं०) (१) जमीन की खरीद-बिक्री का सरकारी प्रमाण-पत्र पाना (सा०-१)। (२) किसी वस्तु का पंजीयन या रजिस्ट्री करना। (३) डाकखानों में चिट्ठी, पार्सल आदि का पंजीयन।
[रजिस्ट्री (अं०)]।

रजिस्ट्रीशुदा—(सं०) वह जमीन या कोई दूसरी वस्तु, जिसकी रजिस्ट्री हो जाती है (सा०-१)।
[रजिस्ट्री (अं०)+शुदा (फा०)]।

रजिस्ट्रेसन—(सं०) रजिस्टर में दर्ज करने का कार्य (सा०-१)।
[रजिस्ट्रेशन (अं०)]।

रजील—(सं०) छोटी जाति के काश्तकार (द० पू० शाहा०)। दे०—राड़जाति।
[रजील < रजील (अ०)=अधम, नीच]।

रठनी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास।

रठबा—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छींटकर बोया जाता है (गया)।

रढ़िया—(सं०) एक प्रकार की कपास, जो छोटी होती है और बारी में उपजती है (पट०, गया, द० प०)।
[रढ़िया < राढ़ी (?)]।

रतइल—(सं०) कीड़े-लगे ऊख के पौधे (सं० उ०)। दे०—सीना।
[रत+इल (प्र०) < रत < रक्त-(?)]।

रतड़ना—(सं०) भींगकर कमजोर हुई वह रस्सी, जो देखने में मजबूत मालूम पड़े, लेकिन छूने पर टूट जाया करे (चंपा०-१)।

रताएल—(सं०) कीड़े लगे हुए ऊख के पौधे (गया)। दे०—सीना।
[रत+आएल (प्र०) < रत < रक्त-]।

रतार—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (प०)। दे०—लतार।
[रतार < रताल < रक्तालु]।

रतालु—(सं०) (१) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (पट०, गया)। दे०—लतार। (२) लाल रंग के आलू का एक भेद (पट०-१)।
[रतालू < रक्तालु-(?)]।

रनकिल्ली—(सं०) कूंड़ में आरपार लगी हुई फट्टी, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है (द० भाग०)। दे०—किल्ली।
[रन+किल्ली, रन < (?), किल्ली < कील-]।

रबिहन—(सं०) चना, गेहूँ, जौ आदि वैशाखी फसल (गा०-१)। पर्या०—वैसाखी।
[रबि+हन, रबि<रबीई (अ०)=वसंत ऋतु-संबंधी; हन < धान्य-]।
[रबी < रबीई < रबीअ (अ०)=वसंत ऋतु]।

रबी—(सं०) वसंत ऋतु में तैयार होनेवाला अनाज, जौ, गेहूँ, चना आदि (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—रब्बी।
[रबी < रबीई < रबीअ (अ०)=वसंत ऋतु]।

रब्बी—(सं०) जौ, चना, गेहूँ आदि वैशाखी अनाज (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—खरीफ (पट०-१)।
[रब्बी < रबी < रबीई (अ०)]।

रमखरना—(सं०) एक प्रकार का क्षारयुक्त फल, जिसकी रसदार तरकारी बनती है (गया)। दे०—इमिरती।

रमजूआ—(सं०) रोपा जानेवाला उत्तम श्रेणी का एक धान (द० प० शाहा०)।
[रमजूआ < रामजुग (?) या रम्ययुग-(?)]।

रमदाना साग—(सं०) हरे रंग का एक साग। इसके दाने महीन और उजले होते हैं (पट०-१)।

रमनिया—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)।
[रमनिया < रमणीय-(?)]।

रमुनी—(सं०) एक प्रकार का सुगंधित धान (चंपा०-१)।
[रमुनी < रमणीय-]।

रमूनिया—(सं०) एक प्रकार का उत्तम महीन धान (मुं०-१)।
[रमूनिया < रमणीय (?)]।

ररेठा—(सं०) (१) रहर का सूखा हुआ डंठल (सं० द०, मै०, द० प० शाहा०)। दे०—रहेठा। (२) रबी या वसंती फसल का विशेषकर अरहर का अनाज निकालने के बाद बचा हुआ डंठल (सं० द०)। पर्या०—लरेठा (द० भाग०), रहेठा (चंपा०), खरई (पट०)।
[रर+एठा, रर < रहर < अरहर < आढक; एठा < अष्ठी, अस्थि-(?)]।

ररैठा—(सं०) रहरैठा (मुं०)।

रस—(सं०) (१) ऊख को पेरकर निकाला गया मीठा तरल पदार्थ। पर्या०—कचरस, कंचोरस (द० भाग०)। (२) फल का रस। (३) चीनी आदि का बना मीठा रस। (४) खेत की नमी, हाल। (५) स्वाद। (६) अनुराग, लगाव। (७) तरकारी आदि पक्व पदार्थ का झोल। पर्या०—रस्सा। (८) साहित्य के प्रसिद्ध शृंगार आदि रस।
[रस < रस-, रस-(संस्कृ०); रस (प्रा०, पा०); रस (हिं०); रस (कश्म०); रस (कुमा०); रस् (ने०); रह (असा०); रस (बँ०); रस (ओ०); रहा (पं०); रसो (सिं०); रस (गु०, मरा०); रह (सिंह०); रस (सिना०)]।

रसगर—(सं०) (१) वह पौधा, जिसमें नमी या रस भरा हो। (२) अधिक रसवाला ऊख। (३) नमी या हाल से भरी हुई खेत की मिट्टी (चंपा०-१)। (वि०) रसयुक्त, रसदार, स्वादिष्ठ।
[रस+गर (प्र०) < रस-]।

रसछन्ना—(सं०) कोल्हू के आगे गाड़े गये नाद आदि किसी बरतन पर रखा जानेवाला रस छानने का पात्र-विशेष, जिससे छनकर रस नीचे के बरतन में गिरता है। यह छिद्रोंवाला मिट्टी का बरतन या टोकरी होता है। दे०—छन्ना।
[रस+छन्ना : रस < रस; छन्ना<छानना <छन <√छद्]।

रसधारा—(सं०) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस के लिए काटी हुई नाली। दे०—नरदोह।
[रस+धारा]।

रसबढ़िया—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें उनके चारों पैर फूल जाते हैं (पट०-१)।

रसयुक्त—(सं०) (सा०-१)। दे०—ललिआइल।

रसरी—(सं०) (१) रस्सी। दे०—रस्सी। (२) १२० हाथ की लंबाई की एक नाप। दे०—रस्सी।
[रस+री (प्र०) < रस < रस्सी < रश्मि-]।

रसहा—(सं०) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस के निकलने के लिए काटी हुई नाली (शाहा०)। दे०—नरदोह।
[रस+हा (प्र०) < रसवहा-]।

रसाएल—(सं०) (१) कीड़े लगे हुए ऊख के पौधे (पट०)। दे०—सीना। (२) हाल (नमी) वाली जमीन। (वि०) रसयुक्त।
[रस+आएल (प्र०) < रस-]।

रसाएल—(क्रि०) रस से युक्त होना, रस से भरा होना।
[रस+आएल (प्र०) < रस-]।

रसिदाना—(सं०) मालगुजारी की रसीद देने के बदले प्रति रुपया एक पैसा पटवारी को मिलनेवाला पुरस्कार या शुल्क। पर्या०—रसिदावन, कनशाना (पू० बिहा०)।
[रसिदाना < रसीद: (फा०)]।

रसिदावन—(सं०) मालगुजारी की रसीद देने के बदले प्रति रुपया एक पैसा पटवारी को मिलनेवाला अतिरिक्त शुल्क। दे०—रसिदाना।
[रसिदावन < रसीद]।

रसिया—(सं०) (१) ऊख, चीनी या गुड़ के रस में पकाया हुआ चावल (भाग०)। दे०—रसियाव। (२) रसयुक्त पदार्थ। (३) रँगीला।
[रसिया < रस + इया (प्र०) < रस, रस्द-; रसिया (हिं०)=रँगीला; रसिया (नें०)=धान बोने के समय गाया जानेवाला एक गीत; रसिया (कुमा०) = रँगीला, विनोदी; रहिया (असा०)=रसदार; रसिया (गु०)=प्रसन्न, विनोदी]।

रसियाव—(सं०) ऊख, चीनी या गुड़ के रस में पकाया हुआ चावल (शाहा०)। दे०—बखीर।
[रस+इयाव (प्र०) < रस-]।

रसिबढ़—(सं०) अनाज की ढेरी तैयार होने पर उसके तौलने के पूर्व उसमें से थोड़ा-सा निकाला गया ब्राह्मण-अंश (चंपा०-१)।
[रशि+बढ़, राशि+बढ़ < राशि-वृद्धि-]।

रसीद—(सं०) किराया या मालगुजारी चुकता करने के प्रमाण में लिखा हुआ प्राप्ति-पत्रक।
[रसीद < रसीद: (फा०); रसीद (हिं०); रसीद (नें०)]।

रसीद अदायगी मालगुजारी—(सं०) खेतों की माल-गुजारी चुकता कर देने पर मिलनेवाला प्राप्ति-पत्रक (सा०-१)।
[रसीद+अदायगी+मालगुजारी (फा०)]।

रसुआर—(सं०) गृहदेवता (भुमियनेस) के लिए नये तैयार अन्न में से निकाला गया अंश (चंपा०)। दे०—अगौं।
[रस+उआर; रस < राशि-, (=धान्यराशि), उआर < (?) वा < उद्धार < उद्+हार-(?)]।

रसुनी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (मैं०, मा०)।
[रसुनी < लशुन-, < रसोन- वा रसान्न-]।

रसून—(सं०) प्याज की जाति का एक प्रसिद्ध कंद, जो मसाले में प्रयुक्त होता है। इसकी गंध उत्कट होती है। बहुत-से लोग इसे अखाद्य मानते हैं (पू०)। दे०—लहसुन।
रसून < रसोन-, < लशुन-; लहसुन (हिं०); लसुन (नें०)]।

रसूली—(सं०) माँगनेवाले फकीरों के देने के लिए अलग निकाला गया अनाज (मु० प्र०)।
[रसूल + ई (प्र०) < रसूल (अ०) = ईश्वर का अवतार]।

रस्सा—(सं०) (१) मोटी रस्सी। (२) परवल आदि तरकारी का झोल।
[रस्सा < रस्स < रश्मि-, रस्सी का पुं०, रस्सा (हिं०); रास (नें०); रस्सा < रस-]।

रस्सी—(सं०) (१) १२० हाथ की लंबाई की एक नाप (द० प० शाहा०)। (२) ७० हाथ की लंबाई की एक नाप। पर्या०—रसरी। (३) साधारण रस्सी। पर्या०—रसरी, डोर, डोरी, जेंवर, जोर, जौरी (मैं०, पट०, गया)।
[रस्सी < रस्सी < रश्मि-; रश्मि-(संस्कृ०); रस्सो (प्रा०); रस्सी (हिं०); रसि (नें०)]।

रस्सुन—(सं०) प्याज की जाति का एक प्रसिद्ध कंद, जो मसाला और दवा में प्रयुक्त होता है। इसकी गंध उत्कट होती है। बहुत लोग इसे अखाद्य मानते हैं। दे०—लहसुन।
[रस्सुन < रसोन-, लशुन-, लहसुन (हिं०); लसुन (नें०)]।

रहट—(सं०) चक्के के साथ घूमकर बाल्टियों की माला के द्वारा कुएँ से पानी निकालने का साधन-विशेष।

[रहट < अरघट्ट-, अरघट्टक- ; रहट (हिं०) ; रहट (पं०) ; रोहाटो (ने०) = छोटी दवाई ; रोहोटे (ने०)=घूमनेवाला गोल हवाई कठघोड़ा]।

रहड़िया—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जिसके दाने सेम के बीज की तरह होते हैं (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[रहड़+इया (प्र०) < रहड़ < अरहर < आढक]।

रहरइठा—(सं०) अरहर का सूखा डंठल (पट०-१)।

[रहर+इठा (प्र०) < रहर < अरहर < आढक; इठा < यष्टि-(?)]।

रहरठा—(सं०) अरहर का सूखा डंठल (मुं०-१)। पर्या०—रहरेठा, रेठा।

[रहर+ठा (प्र०) < अरहर + ठा < आढक + अस्थि, अष्ठी या यष्टि-]।

रहर, रहरी—(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जो गोल, लाल और वृंत पर जरा काला-जैसा होता है। पर्या०—रहेड़, राहरि, राहर (उ० पू०)।

[रहर < अरहर < आढक- ; रहर, अरहर (हिं०) ; रहर, रहरि (ने०)]।

रहरिया सेम—(सं०) बड़ी जाति की सेम, जो पौधे में होती है। पर्या०—रामरहर, ग्वालफली (द० भाग०), गऊसीम (सं० प०)।

[रहरिया + सेम, रहर + इया (प्र०) < रहर < आढक- ; सेम < शिम्बि-]।

रहरी, रहर—(सं०) दे०—रहर, रहरी। पर्या०—रहड़िया (दर०-१, पूर्णि०)।

[रहरी < आढकी-(?)]।

रहरेठा—(सं०) रहर का सूखा डंठल (मुं०-१, शाहा०)। दे०—रहेठा।

[रहर+एठा < आढकास्थि-, आढकयष्टि-]।

रहरैठा—(सं०) रहर का सूखा हुआ डंठल (पट०, गया)। दे०—रहेठा।

[रहर+ऐठा < आढकास्थि, आढकयष्टि-]।

रहाठ, राहठ—(सं०) रहर का सूखा हुआ डंठल (पू० मै०)। दे०—रहेठा।

[रह+आठ < रहर+आठ < आढक + अस्थि-, यष्टि-]।

रहिला—(सं०) चना, बूट (प० सा०-१, चंपा०-१)। दे०—बूंट। इसके लिए एक गीत प्रसिद्ध है—
'एहि रहिला के पूरिकचौरी, एहि रहिला के दाल।
एहि रहिला के कैलि खिखरा, बहुत मोटैले गाल॥'

—मैंने इस चने की पूरी-कचौरी बनाई, इसकी दाल बनाई, इसका खिखरा (पीठा) बनाया और मेरे गाल बहुत मोटे हो गये। अर्थात्, चने की पूरी कचौरी और दाल-पीठा खाकर खूब मोटा-ताजा बन गया।

[रहिला (देशी)]।

रहेठा—(सं०) रहर का सूखा हुआ डंठल (गं० उ०)। पर्या०—रहाठ, राहठ (पू० मै०), हरेठा, रेठा (गं० द०, मै०, द० प० शाहा०), रहरेठा (शाहा०), रहरैठा (पट०, गया), लहरैठा (द० मुं०), लरेठो (द० भाग०)।

[रह+एठा < आढक+अस्थि- ; यष्टि-]।

राँगी—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुं०)। पर्या०—राँगी (दर०-१, (पूर्णि०-१), राँगो (सा०-१, चंपा०-१)।

[राँगी < रङ्ग-(?)]।

राँगो—(सं०) (१) लाल रंग का एक प्रकार का धान। यह समय से कुछ पहले ही तैयार हो जाता है और विशेषतया ऊँची जमीन पर होता है (चंपा०-१)। (२) एक अगहनी धान, जिसका छिलका लाल, चावल सफेद और पुष्ट होते हैं (सा०-१)।

[राँगो < रङ्ग-वा < रक्त- ; राँगो (ने०) = भैंस ; राँगो (कुमा०)=भैंस ; मिला०—रङ्कु-(संस्कृ०)= एक प्रकार का हिरन]।

राई—(सं०) छोटी जाति की तेज झाँसवाली सरसों। पर्या०—लाही (पं०), रैंची (द० मुं०), रैंची (पू० मै०, द० भाग०), तोरी (चंपा०)।

[राई < राजि-, राजिका ; राइ (प्रा०) ; राई (हिं०)]।

राख—(सं०) लकड़ी, गोइठा आदि के जलने के बाद बचा हुआ पदार्थ ; भस्म। पर्या०—छाउर, छौरो (द० भाग०), बानी (पट०, गया)। छारौठ = राख की राशि (उ० पू० मै०)।

[राख < रक्षा, (क्षारो रक्षा च—अमर०), रक्षा (संस्कृ०), रक्खा (प्रा०) ; राख (हिं०)]।

राङी—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—राँगी, राँगो।

[राङी < रङ्ग-, रक्त-]।

राज—(सं०) (१) किसी एक अथवा अनेक स्वामियों की सम्मिलित जमींदारी। (२) राज्य, शासन। (३) राजमिस्त्री, स्थपति।

[राज < राज्य- < राजन् + य (प्र०) ; रज्ज (प्रा०) ; राज, राज्य (हिं०) ; राज् (ने०) ; राज

(कुमा०) ; राज (असं०) = जनता ; राजु (सिं०) = प्रजा ; राज (गु०)] ।

राजनेत—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१) ।
[राज+नेत < राजनीति-, राजनेत्र-(?)] ।

राजा—(सं०) (१) रैयतों का मालिक, जमींदार । (२) राजा, शासक, स्वामी । (३) 'चीं' नामक देशी खेल का नायक (पट०-१) ।
[राजा < राजन्- < √राज् (दीप्तौ)] ।

राटन—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (द० भाग०) । पर्या०—राढ़ी (पट०, गया, द० मुं०, शाहा०) ।
[देशी] ।

राढ़ीन—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१) ।

राढ़जाति—(सं०) (१) छोटी जाति के काश्तकार । (२) निम्नवर्गों के लोग । पर्या०—नीच, छोट लोग, रजील (द० प० शाहा०), कमीना (शाहा०), राढ़-भोड़ (द० भाग०), सोलकन्ह (मैं०), रैमान (गया) । इस विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—
'काएथ किछु लेलें देलें, बरहमण खियौलें ।
धान-पान पनियौलें ओ राढ़ जात लतियौलें ॥'
—कायस्थ कुछ ले-देकर काम चला देते हैं और ब्राह्मण खिलाने-पिलाने से । धान और पान बार-बार पानी देने से ठीक रहते हैं, किन्तु नीच जाति के लोग ठोकरों (लतियाने) से सीधे रहते हैं—(ग्रिय०) ।
[राढ़+जाति, राढ़ <राढ़- <रढ्ढ-(?); जाति-] ।

राढ़भोड़—(सं०) (१) छोटी जाति के काश्तकार । दे०—राढ़ जाति । (२) निम्न वर्गों के लोग ।

राढ़ी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (अं० उ०) । (२) एक मोटी कड़ी घास, जो निकृष्ट भूमि में होती है और फसल को नष्ट करती है । मिला०—जम्हार ।
[देशी] ।

राढ़ी—(सं०) (१) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०, पट०, गया, द० मुं०) । दे०—राटन । (२) आम का एक भेद, जो सावन-भादो में पकता है (मुं०-१, चंपा०-१) । (३) राढ़-प्रदेश का रहनेवाला ब्राह्मण या कायस्थ ।
[राढ़ी < राढ़ (बंगाल का पूर्वी भाग-(?)] ।

रातरानी—(सं०) रात्रि में फूलनेवाला एक प्रसिद्ध फूल, रजनीगंधा ।
[रात-की+रानी (वी०); मिला०—दिन का राजा= एक प्रकार का फूल] ।

रातल—(वि०) लालवर्ण की वस्तु ।

रान—(सं०) (१) ऊख का उतना रस, जितना एक बार में उबाला जा सके (द० मुं०, द० भाग०) । दे०—ताव । (२) गुड़ का पाक । (३) चाशनी । (४) आग पर उबालकर गाढ़ा किया गया ऊख का रस । (५) दोनों पैरों के बीच का भाग, पेड़ (द० मुं०) ।
[रान < रान्ह < राँध < रन्ध < √रन्ध्] ।

रान्ह—(सं०) (१) ऊख का उतना रस, जितना एक बार में उबाला जा सके । दे०—ताव । (२) गुड़ का पाक । (३) चाशनी ।
[रान्ह < राँध<रन्ध < √रन्ध्] ।

राब—(सं०) (१) ऊख के रस को पकाकर तैयार किया गया दानेदार तरल गुड़ (भाग०) । पर्या०—राबा (गया, पट०) । (२) आटा में गुड़ या चीनी देकर बनाई गई पतली लपसी (चंपा०-१) ।
[राब < (?), बा < रब्बा (प्रा०)=राब, लपसी ; राब (हिं०, पं०); रबा (सिं०) = अनाज की लपसी ; राब (गु०)=लपसी ; राब (मरा०)=गुड़; टर्नर महोदय के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति < रब (फा०, अ०) से भी संभावित है—नेपा०] ।

राबा—(सं०) (१) ऊख के रस को पकाकर तैयार किया गया दानेदार तरल गुड़ (गया, पट०) । दे०—राब । (२) दाना, रवा ।
[राबा < रब्बा (प्रा०)] ।

रामकरहन्नी—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छींटकर बोया जाता है (शाहा०) ।
[राम + कर + हन्नी (वी०), राम + काल + धान्य-(?)] ।

रामकेसौर—(सं०) (१) शकरकंद की जाति का एक लंबा मीठा कंद, जो कच्चा ही खाया जाता है । पर्या०—मिसरीकन (पू० मैं०), मिसरीकंद । (२) एक प्रकार का उत्कृष्ट धान ।
टि०—कभी-कभी मिसरीकंद आठ-नौ सेर तक का भी होता है और बहुत ठंडा माना जाता है ।
[राम+केसौर (वी०) ; राम < राम- ; केसौर (बिहा०) = एक उत्कृष्ट धान); < केसर (अ क्षौ' के स्थानीय उच्चारण के साथ)] ।

रामजवाइन—(सं०) (१) एक प्रकार का सुगंधित महीन धान (चंपा०-१) । (२) एक अगहनी धान, जिसके दाने लंबे और महीन होते हैं (सा०-१) ।
[राम+जवाइन (वी०), राम+जवाइन <यवानी] ।

रामझिमनी—(सं०) भिंडी (दर०-१, पूर्णि०-१) । दे०—रामतरोई ।

रिट्ठा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध फली, जिससे रेशमी कपड़ों की सफाई की जाती है और सोनार लोग गहनों की सफाई करते हैं (प०-२)। (२) एक प्रकार की चोंइंटा-रहित मछली (सा०-१)।

[रिट्ठा < अरिष्ट-, अरिष्ट-(संस्कृ०), अरिट्ठक (पा०); अरिट्ठ, रिट्ठ (प्रा०); रीआ (हि०); रिठो (ने०); राठो (कुमा०); रिठा (बँ०, ओ०); रीठ (गु०); रिठा, रीठी (मरा०); रिटि (सिह०)]।

रीठा—(सं०) एक प्रकार का वृक्ष, जिसकी फली कपड़े धोने के काम आती है (चंपा०-१)। इस वृक्ष की फली।

[रीठा < अरिष्ट-]।

रीठी—(सं०) दे०-रीठा।

रीवाँ—(सं०) (१) जानवरों का एक रोग, जिसमें उनके किसी अंग से लहू चूता रहता है (पट०-१)। (२) मध्यप्रदेश का एक प्रसिद्ध स्थान, जिसकी सीमा बिहार-प्रदेश के पलामू जिले से मिलती है।

[देशी]।

रीसाल—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।

[देशी]।

रु—(सं०) चरखी से साफ करने के बाद की कपास। दे०—रुई।

[रु < रूअ (प्रा०); रू, रूवो (ने०); रूवा (कुमा०); रुई (पं०, हि०); रू (ओ०); रुई (सिं०); रूवो (गु०); रु (मरा०)]।

रुआ—(सं०) (१) चरखी से साफ करने के बाद की कपास (शाहा०)। दे०—रुई।

[रुआ < रूअ (प्रा०)]।

(२) एक पैसा (चंपा०-१)।

[रुआ (देशी) वा < रूप-, रूप्य-]।

रुआरा-(सं०) अफीम के खेत में उगनेवाली एक प्रकार की घास (पट०-१)। दे०—बनपियाज।

रुआरी—(सं०) अफीम की फसल के साथ उगनेवाली एक घास (सा०)। दे०—सुरकी, रुआरा।

रुई—(सं०) रूई, कपास। दे०—रुआ।

रुख—(सं०) पेड़ (पट०-१)।

[रुख < वृक्ष-]।

रुखी—(सं०) वृक्षों पर रहनेवाला एक प्रसिद्ध जीव, गिलहरी।

रुना—(सं०) वह खेत, जिसमें सिंचाई की आवश्यकता हो (द० मुं०-१)।

[रुना (देशी) वा < रूक्ष-(?); मिला०-रूनु, रूनो (ने०)-छोटी वस्तु]।

रुनी—(सं०) अमरूद (चंपा०-१)।

[देशी]।

रूनी—(सं०) वह हल्की जमीन, जो आबाद करने के बाद एक-दो वर्ष के लिए परती छोड़ दी जाती है। दे०—रूल्ली। (२) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी]।

रूहान—(सं०) किसी पौधे या बारी के चारों ओर लगाया गया घेरा (चंपा०-१)। पर्या०-टटिया।

[रूहान < रोधन-(?)]।

रुपाधर—(सं०) उजले वर्ण का पशु। दे०—धरक।

[रूपा+धर < रूप+धर-(?)]।

रुपाधौ—(सं०) उजले वर्ण का पशु। दे०—धरक।

[रूपा + धौ; रूपा < रूप्य-, < रूप-, धौ < धवल-(?) वा < रूपधवल-]।

रूली—(सं०) ऊसर जमीन (चंपा०-१)।

रूल्ली—(सं०) वह हल्की जमीन, जो आबाद करने के बाद एक-दो वर्ष के लिए परती छोड़ दी जाती है (सं० उ०)। पर्या०—रुन्नी (पू०)।

रूसी हवा—(सं०) (भोज०)। दे०—ऊख नम्बर ४५३।

[रूसी+हवा (प्र०) < रूसी < रूस्सी (?)]।

रेंगनिया—(सं०) रोहिणी नक्षत्र में पकनेवाला एक छोटा आम (पट०-१)।

[रेंगनिया < रेंगनी=एक प्रकार का काँटा]।

रेंगनी—(सं०) गोखरू की तरह परती जमीन पर फैलनेवाली एक काँटेदार घास, जिसके पत्तों और डठलों में काँटे होते हैं और फूल बैंगनी तथा फल पीला होता है। पर्या०—नकछिकनी, कठरेंगनी (पू०)।

टि०—ग्रियर्सन के कथनानुसार यह पौधा जहाज के द्वारा एक सौ (आज से पौने दो सौ) वर्ष पहले मेक्सिको (द० अमे०) से आया है। (बि० पी० ला०, पृ० २६८)। लेकिन, हमारे पुराने आयुर्वेद-ग्रन्थों में इसका वर्णन आता है। इस क्षुप के पाँचों अंगों का गुण और उपयोग वर्णित है। इसका नाम कंटकारि है। इसलिए, यह कैसे संभव है कि केवल सौ वर्ष पहले ही यह बाहर से भारत आया हो।

[रेंगनी < रेंगना (बिहा०) = रेंगना, फैलना, वा < रङ्गनी-(?)]।

रेंड़—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध पौधा, जिसकी फली से तेल निकलता है, अंडी। (२) इस पौधे की फली। यह पौधा, बारी या खेत दोनों जगहों में होता है। पर्या०—लेंड़, अँड़ड़ (उ० प० मै०)। अंडी (द० भाग०)। रेंड़=रेंड़ का बीज। रेंडवारी=रेंड़ का खेत

या रेंड़ की खेती। इसके विषय में एक कहावत प्रसिद्ध है—

"जहाँ गाछ न बिरिछ तहाँ रेंड़ पुरधान।"

—जहाँ शिक्षित या शिष्ट नहीं होते, वहाँ अल्प-शिक्षित ही प्रधान होता है।

[रेंड़ < एरंड-, एरंड-(संस्कृ०); एरंड, एलंड (पा०, प्रा०); रेंड़ (हिं०); अंडरि (ने०); एरा (असा०); हेर्णी (सिं०); एरांडो (गु०); एरंड (मरा०); एंडरू (सिंह०)]।

रेंड़ल—(सं०) वह पौधा, जिसमें अभी दाना नहीं फूटा हो (सा०-१)।

[रेंड़+ल (प्र०) < रेंड़ < एरंड-(?)]।

रेंड़वारी—(सं०) (१) रेंड़ की खेती। (२) वह बारी या खेत, जहाँ रेंड़ पैदा होती है। पर्या०—लेंड़वारी।

[रेंड़+वारी < एरंडवाट-(?)]।

रेंड़ा—(सं०) छोटे दानों का गेहूँ (शाहा०)।

रेंड़ा भेल—(मु०) फसल में बाल का फूटना (द० प० मै०)। दे०—गभा भेल।

[रेंड़ा + भेल (धा०)]।

रेंड़ी—(सं०) रेंड़ का बीज, जिससे तेल निकलता है। पर्या०—लेंड़ी, अँड़री (उ० प० मै०, द० भाग०) अंडी (द० भाग०)।

[रेंड़ी < रेंड़ < एरंड-, एरंड-(संस्कृ०); एरंड, एलंड (पा०, प्रा०); रेंड़ी (हिं०); अंडरि (ने०); एरा (असा०); हेर्णी (सिं०); एरांडो (गु०); एरंड (मरा०); एंडरू (सिंह०)]।

रेंड़मेवा—(सं०) पपीता (चंपा०-१)।

[रेंड़+मेवा, रेंड़ < एरंड-, वा अरण्य-(?), मेवा < मेवः (फा०)]।

रेड़ना—(सं०) फूटने के पूर्व की धान की अवस्था (चंपा०-१)।

रेत—(सं०) (१) पानी का बहाव, तीव्र धार (मुँ०-१)। (२) बालू। (३) बलुआहा मैदान (चंपा०-१)। (४) रेतने की क्रिया।

[रेत < रेत्र-(?), रेत्र-(संस्कृ०) = सुगंधिचूर्ण; रेत (प्रा०); रेत (हिं०, पं०); रेति (ने०); रेतो (कुमा०); रेतों (सिं०)=स्याही सुखाने की रेत; रेतु (सिं०) < *रेतु वा < रेवट्ट-]।

रेती—(सं०) (१) रेत, बालू। (२) लोहा या लोहे के हथियार को तेज करने का साधन-विशेष (री०)।

[रेती < रेतल (बिहा०), रेतना (हिं०); रेतो (हिं०, पं०); रेती, रेति (ने०)]।

रेयासत—(सं०) (१) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों के लिए भूमि-कर से मुक्ति (द० प० शाहा०, सा०, द० मुँ०)। दे०—माफी। (२) रियासत, जमींदारी।

[रेयासत < रियासत (फा०)]।

रेवठी—(सं०) रेवा मछली का बच्चा (चंपा०-१)।

[रेव+ठी (प्र०), < रेव < रेवा-, वा रोहित-(संस्कृ०)=रोहू मछली, लाल रंग, लहू]।

रेवड़ा—(सं०) पीले रंग का ऊख, जो चूसने के लायक नहीं होता (उ० प० बिहा०, द० प० शाहा०)। पर्या०—सकर, चीनी (पट०, गया)।

रेवती—(सं०) सत्ताइसवाँ नक्षत्र, रेवती। यह फाल्गुन-शुक्ल में पड़ता है।

[रेवती (संस्कृ०)]।

रेवा-(सं०) एक प्रकार की मछली (चंपा०-१, सा०-१)।

[रेवा < रेवा वा < रोहित-, रोहित-(संस्कृ०)= रोहू मछली, लाल रंग की वस्तु, लोहू; रोहित (पा०); रोहिअ (प्रा०), रेहु; रोहू, रहू (हिं०, पं०); रउ (असा०); रहू (बं०); रेवा (ने०); रोहि (ओ०); रोहि (मरा०); रेहें मासे, रे मास (सिंह०)]।

रेवेन्यू सर्वे—(सं०) एक तरह की जमीन की नापी, जो भूमि-कर निर्धारित करने के निमित्त की जाती है, बुझारत (सा०-१)।

[रेवेन्यू सर्वे (अं०)]।

रेसा—(सं०) चिलवज (एक प्रकार का जाल) के पीछे बगल की ओर मुँह करके लगाया गया मछली मारने का जाल।

[देशी]।

रेह—(सं०) (१) हल से जोतने पर जमीन में खोदी हुई पाँत, सीता (उ० पू० मै०)। दे०—सिराउर।

[रेह < रेख < रेखा, < लेखा]।

रेह—(सं०) (२) एक प्रकार की क्षार मिट्टी, जिसका उपयोग धोबी कपड़े की सफाई के लिए करते हैं। यह ऊसर जमीन या दीवार आदि से प्राप्त होती है (सा०-१)।

[रेह (देशी), वा < रेष-(?) रिष् < √ (हिंसायाम्)]।

रेहड़ा—(सं०) भूमि, जिसमें रेह अधिक हो और खेती के योग्य न हो। ऊसर (पट०, गया, द० मुँ०)। दे०—ऊसर।

[रेह+ड़ा (प्र०) < रेह < रेष (?) < √रिष्]।

रेहन—(सं०) किसी से रुपया लेकर उसके पास जमीन, मकान आदि अचल सम्पत्ति गिरवी रखना। पर्या०—

बंधिक, मकफूल, गिरई (शाहा०), गिरमी (द० भाग०)।

[रेहन < रिहान < रहन (अ०) का बहुव०]।

रेहनदार—(सं०) रेहन रखनेवाला।

[रेहन + दार (प्र०) < रेहन < रिहान < रहन (अ०)]।

रेहननामा—(सं०) महाजन से रुपये लेकर संपत्ति बंधक रखने का कागज (सा०-१, पट०-१)।

[रेहननामा<रेहन+नामा<रहननामः (अ०)]।

रेहाड़—(सं०) वह भूमि, जिसमें रेह अधिक हो और जो खेती के योग्य न हो (पू० बिहा०)। दे०-ऊसर।

[रेह+आड़ < रेह (देशी), आड़ (प्र०) वा < वाट-(?)]।

रेहाह—(सं०) वह भूमि, जिसमें रेह अधिक हो और जो खेती के योग्य न हो। दे०—ऊसर।

[रेह+आह (प्र०) (देशी)]।

रेहू—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। पर्या०—लूई, नवला।

[रेहू < रोहू < रोहित-]।

रैंची—(सं०) छोटे दानों की तेज सरसों (पू० बिहा०, द० भाग०)। दे०—राई।

[रैंची < राजि-(?) ; राजि-, राजिका (संस्कृ०); राइ (प्रा०) ; राई (हि०) ; राइ (ने०)]।

रैयत—(सं०) दूसरे की अधिकृत जमीन को नगदी, भावली आदि किसी निश्चित शर्त पर जोतनेवाला मनुष्य। दे०—असामी।

[रैयत < रईयत (अ०)]।

रैयती—(सं०) (१) नील की खेती के लिए किसानों और निलहे अँगरेजों के साथ हुआ इकरारनामा या उसकी शर्त। पर्या०—असामिवार, असामियार। (२) रैयत का भाव या काम। (३) रैयतों के अधीन की भूमि। (वि०) रैयतों से संबद्ध वस्तु।

[रैयत + ई (प्र०)< रईयत (अ०)<रियाया (बहुव०)]।

रैहड़—(सं०) अरहर (उ० पू० मैं०)। दे०—रहर।

[रैहड़ < रहर < अरहर < आढक-]।

रोकल-(सं०) (१) माँग के अनुसार अनाज का बँटवारा न करने पर जमींदार के द्वारा किसान के अनाज या फसल को खलिहान-खेत में रोक रखना। छापा—(सं०) अनाज की रोक। इस क्रिया के साथ अँगरेजी-हिंदी-मुहावरा चल पड़ा। To roke crops = फसल को रोक रखना। (२) रोकना, ठहराना, रोक रखना।

[रोक+ल (प्र०) < रोक < रोक्क (देशी प्रा०); वा रोध-(संस्कृ०)+अक्ष (प्रा० प्र०); रोकना (हिं०); रोक्नु (ने०); रोकणो (कुमा०); रोका (बँ०); रोकिबा (ओ०); रोकणा (पं०); रोकनु (सिं०); रोकवुं (गु०); रोकणे (मरा०)]।

रोज—(सं०) (१) मजदूर को मिलनेवाली रोज की मजदूरी। पर्या०—रोजीना (पट०, गया, द० मुं०), रोजबंधी (चंपा०)। (२) दिन, प्रतिदिन।

[रोज < रोज़ (फा०)=दिन]।

रोजबंधी—(सं०) मजदूर को रोज मिलनेवाली मजदूरी (चंपा०)। दे०—रोज।

[रोजबंधी < रोज़ (फा०)+बंधी < बन्ध-]।

रोजीना—(सं०) मजदूर को मिलनेवाली रोज की मजदूरी (पट०, गया, द० मुं०)।

[रोजीना < रोज (फा०)]।

रोटी—(सं०) (१) पोस्ते की पँखुड़ियों की टिकिया। (२) रोटी, चपाती।

[रोटी < रोटी (देशी) वा < रोट्ट (प्रा०); (संस्कृ०—परवर्ती); रोटी (हि०); रोटी (पं०); रोटि, रोट (ने०); रोटी (प० पहा०); रोटि (अस०, बँ०, ओ०); रोटी (गु०, मरा०, सिं०); रोटि (सिंह०)]।

रोडसीस-(सं०) सड़क बनाने एवं मरम्मत आदि करने के लिए लिया जानेवाला सरकारी कर। यह मालगुजारी के साथ ले लिया जाता है (सा०-१)। (२) रोडसिस (पट०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)।

[रोड+सीस < रोड सेस (अँ०)]।

रोड़ा—(सं०) ऊख के कोल्हू के पेट में रस चूने में सहायता पहुँचाने के लिए लगाया गया लकड़ी का छोटा टुकड़ा। पर्या०—रोरा, चौंदिया (चंपा०, उ० पू० मैं०); खोंच (पू०)। (२) रोड़ा, कंकड़, ईंट-पत्थर का टुकड़ा।

[रोड़ा < रोड वा रोड्ड (देशी)-(?), रोड़ा (हि०, पं० ने०, अ०); रोडु (गु०)=ईंट का टुकड़ा; रोड़ा (मरा०)]।

रोप—(सं०) (१) ऊख के बीज से निकला हुआ अंकुर (मैं०)। दे०—बावग। (२) वह धान, जिसे एक खेत में रोपा गया हो (चंपा०-१)। (३) धान आदि के बिचड़े (बीज) को फिर से खेत में रोपना (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०-रोपनी। (४) वह धान, जिसका बीज पहले क्यारियों में बोया जाता है और उसे, एक हाथ के लगभग हो जाने पर, उखाड़कर दूसरे खेत में रोपा जाता है। पर्या०—रोपा, रोपहा (गया, पट०)।

टि०—बिहार में उपजनेवाले धान की कितनी ही जातियाँ हैं। कहावत है—'रजपूत अउर धान के ओर नाहीं'=राजपूतों और धान की जातियों की कोई सीमा नहीं है।

दूसरी कहावत है—'धान बाभन के एके हाल'= धान और ब्राह्मण के अवान्तर भेद एक-जैसे हैं।

धान दो भागों में बाँटा जा सकता है-बावग और रोपा। यह ध्यान देने की बात है कि आबादी के अनुसार ही ये भेद हैं। कहीं बावग होता है, तो कहीं रोपा। कहीं-कहीं दोनों प्रकार के धान होते हैं।

[रोप < रोप < √रोप् (रोपयति) < √रुह्]।

रोपनिहार—(सं०) धान का बीज रोपनेवाला मजदूर। दे०—डोभा।

[रोपनि+हार (प्र०)<रोपनि<रोपनी < रोप+नी (प्र०) < रोपन < √रोप् < √रुह्]।

रोपनिहारिन-(सं०) धान का बीज रोपनेवाली मजदूरिन दे०—रोपनी।

[रोपनि+हारिन (प्र०) < रोपनि < रोपनी < रोपणी < √रोपण< √रोप्< √रुह्]।

रोपनी—(सं०) (१) धान आदि के बिचड़े (बीज) को फिर से खेत में रोपना (दर०-१, पूर्णि०, द० भाग०)। दे०—रोप। (२) रोपा करनेवाली मजदूरिन, पर्या०—रोपनिहारिन।

[रोपनी < रोपन < √रोप् < √रुह्]।

रोपल—(क्रि०) (१) किसी पौधे को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह गाड़ना, रोपना। (२) स्थापित करना, स्थिर करना (चंपा०-१)।

[रोप +ल (प्र०) < रोप < √ रोप् (रोपयति) < √रुह्; रोपना (हि०); रोपण (पं०); रोप्नु (ने०); रोपणो (कुमा०); रोपवुं (गु०); रोपणें (मरा०)]।

रोपहा—(सं०) वह धान, जिसका बीज, पहले क्यारियों में बोया जाता है और एक हाथ के लगभग हो जाने पर उसे उखाड़कर दूसरे खेतों में रोपा जाता है (गया, पट०)। दे०—रोप।

[रोप + हा (प्र०) < रोप < रोपण < √ रोप् < √रुह्]।

रोपा—(सं०) (१) धान की रोपनी (पट०-१)। (२) वह धान, जिसका बीज पहले क्यारियों में बोया जाता है और एक हाथ के लगभग हो जाने पर उसे उखाड़कर दूसरे खेत में रोपा जाता है। दे०—रोप।

[रोपा <रोपण < √रोप् < √ रुह्-]।

रोमल—(क्रि०) (१) चराने के समय मवेशियों को इधर-उधर जाने से रोकना। (२) घेरकर रखना या चराना (चंपा०-१)।

रोरा—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के पेट में रस चूने में सहायता पहुँचाने के लिए लगाया गया लकड़ी का छोटा पच्चड़। (२) रोड़ा, ईंट-पत्थर का टुकड़ा, कंकड़।

[रोरा < रोड़ (प्रा०)]।

रोल—(सं०) भूमि पर निर्धारित राजकीय कर (पू० मै०)। दे०—मालगुजारी।

रोला—(सं०) (१) गन्ने को पेरकर रस निकालने का एक यंत्र, कोल्हू। (२) रौलर (री०)।

[रोल < रौलर (अं०) < (?)]।

रोहू—(सं०) एक प्रकार की मछली, रोहू (चंपा०-१)।
[रोहू < रोहित-]।

रोहन—(सं०) रोहिणी नक्षत्र। यह नक्षत्र-चक्र में चौथा है। यह कृषि का पहला नक्षत्र माना जाता है। इसमें पहली वर्षा होती है और खेती शुरू होती है। यह जेठ के अंत या आषाढ़ के शुरू में पड़ता है दे०—रोहनी।

[रोहन < रोहिणी < रोहित-, < रोहिन्-]।

रोहनिया—(सं०) (१) रोहिणी नक्षत्र में पकनेवाला एक बड़ा आम (पट०-१)। (२) रोहिणी नक्षत्र में तैयार होनेवाला फल, अनाज आदि।

[रोहन+इया (प्र०) < रोहन < रोहिनी]।

रोहनी—(सं०) चौथा नक्षत्र, जो प्रायः ज्येष्ठ मास में पड़ता है; रोहिणी। यह कृषि का पहला नक्षत्र माना जाता है। इसमें पहली वर्षा होती है और किसान अपने बीज खेतों में गिरा देता है। खेती का आरंभ इसी नक्षत्र से होता है। इस नक्षत्र में पश्चिमी जिलों के किसान खेती का 'समहुत' अवश्य करते हैं। पर्या०—रोहिनी, रोहन।

[रोहिन + ई < रोहिणी < रोहिन्, रोहित-, रोहिणी (हि०); रोहिणि (ने०)]।

रौंझी—(सं०) छोटी झाड़ी (पट०)। दे०—भकुली।

[रौंझी (देशी)]।

रौंदा—(सं०) एक प्रकार का पतला लंबा ऊख, जो कात्तिक में पोक्ता हो जाता है (द० मुं०)। दे०—केतार।

[रौंदा < रौंद-(?)]।

रौद—(सं०) (१) तेज धूप। (२) वर्षा न होने और तेज धूप होने के कारण पड़नेवाला सूखा, जिसके कारण अकाल की संभावना होती है। दे०-रौदी। पर्या०—घाम, रौदी।

रौदी—(सं०) (१) तेज धूप। (२) तेज धूप और अनावृष्टि के कारण होनेवाला सूखा, जिसके कारण अकाल की संभावना होती है।
[रौदी < रौद्र-(भीषण, तीक्ष्ण) < रुद्र-]।

रौना—(सं०) एक प्रकार का लंबा और पतला ऊख। दे०—रौंदा।

ल

लंगड़—(सं०) (१) एक प्रकार की लंबी खूंटी, जो बैलगाड़ी के पीछे बँधी रहती है, जिससे कि गाड़ी दबाव से उलट न जाय (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) नाव, जहाज आदि का वह साधन-विशेष, जिसे नाव आदि को ठहराने के लिए उपयोग में लाते हैं। यह लोहे का काँटों-जैसा बना होता है, लंगर। (३) लँगड़ा आदमी।
[लंगड़ < लंगर (फा०)]।

लंगड़ा—(सं०) (१) कड़ाह से निकालने के अनंतर गुड़ के रखने का स्थान (सा०)। (२) मालदह आम (चंपा०-१)। दे०—मालदे। (वि०) लँगड़ा व्यक्ति।
[लँगड़ा (देशी) वा लंग + ड़ा (प्र०) < लंग वा लग्नक-(?)]।

लंगड़ी—(सं०) (१) बैलगाड़ी को 'तेलाने' के समय व्यवहृत होनेवाला लकड़ी का दो पैरोंवाला एक ठेकना, जिसके सहारे गाड़ी का उपरला भाग ऊपर करके पहिये को जमीन से अलग करके घुमाकर निकाल लिया जाता है (चंपा०-१)। (२) मवेशी की पूँछ। (३) शिकार में घायल हुई चिड़िया। (४) लँगड़ी स्त्री।
[लँगड़ी < लँगड़ी < लांगूल- = पुच्छ ; < लँगड़ा < लँग+ड़ा (प्र०) < लंग (फा०)]।

लंबरदार—(सं०) गाँव में नियुक्त, सरकारी मालगुजारी वसूल कर राजकोष में जमा करनेवाला अधिकारी (शाहा०)। दे०—लमरदार।
[लंबर+दार (फा० प्र०) < लंबर < नंबर (अँ०)]।

लउँघिया मिरचाइ—(सं०) लवंग की तरह छोटी और कड़वी लाल मिर्च (पट०-१)।
[लउँघिया+मिरचाइ, लउँघिया < लउँग + इया (प्र०) < लवङ्ग-, मिरचाइ < मिर्च-]।

लउर—(सं०) (१) बड़ी मोटी लाठी (चंपा०-१ शाहा०)। (२) लंबी लाठी। (३) अशोक-स्तंभ (चंपा०-१)।
[लउर < लकुट-, वा लगुड़-]।

लकठा—(सं०) बाँस की लग्गी (चंपा०-१)।
[लकठा < लग्नक+काष्ठ-(?)]।

लकड़ी—(सं०) (१) लकड़ी, काठ (गाइड०)। (२) जलावन के काम में आनेवाला काठ (सा०-१)। (३) हेंगा का पल्ला (द० प० शाहा०)। दे०—पल्ला।
[लकड़ी < लक्कड़- ; वा लगुड़]।

लकड़ी काटना—(मु०) (१) जंगल या बाग-बगीचे की की लकड़ी काटने या बेचने का पूरा अधिकार जमींदार का होता था और काटी हुई लकड़ी का अधिकारी भी वही होता था, इस प्रकार के अधिकार का विवरण-पत्र। (२) इस प्रकार का अधिकार (गाइड०)।
[लकड़ी+काटना (यौ०) ; लकड़ी < लक्कड़- वा < लगुड़, काटना < काटल (बिहा० क्रि०), काटना (हि०) < कर्त्तन- < √ कृत् (कृन्तति, संस्कृ०); कट्टइ (प्रा०)]।

लकसी—(सं०) काँटीदार लग्गी, जो पेड़ से फल आदि तोड़ने के काम आती है (मुं०-१)।
[लकसी < लच्छी < लक्षिन् (=लक्ष्य करनेवाला) < √ लक्ष् ; < लग्नाङ्कुश- ; लकड़ी + अँकुसी (हिं० श० सा०)]।

लकीर—(सं०) (१) रेखा। (२) खेतों के बीच की पतली डगर, आर। (३) कागज पर स्याही आदि से खींची गई रेखा। पर्या०—डरेर।
[लकीर < (?) < रेखा- ; < लीक (हिं०)—(हिं० श० सा०)]।

लखरांव—(सं०) सड़क के किनारे पेड़ों की पंक्ति (प०)। दे०—पाँती।
[लख +रांव < लेखा + आराम-(=पंक्तिबद्ध बाग), वा लक्ष + आराम-(= एक लाख पेड़ों का बाग) ; वा < लक्षारामम-]।

लखराज—(सं०) (१) राजस्व से मुक्त सम्पत्ति, भूमि या जमींदारी। (२) जागीर। (३) इनाम में मिली हुई जमीन, जिसका राजस्व नहीं देना पड़ता था (पट०-१)।
[लखराज < लक्ष+राज्य- वा < लक्ष्य]।

लगड़—(सं०) (१) अधिक पानी। (२) खेतों में आवश्यकता से अधिक पानी का होना (सा०-१)।
[लगड़ (देशी)]।

लगना—(सं०) हल के पीछे का हाथ से पकड़ा जानेवाला डंडा (द० मुं०, पट०, पट०-१, गया)। दे०—परिहथ।
[लगना < लग्नक-(?)]।

लगा—(सं०) छह हाथ की लंबी वह लग्गी, जिससे भूमि नापी जाती है। कहीं यह पाँच हाथ की होती है, तो कहीं नौ-दस हाथ की।

इसकी लंबाई स्थिर नहीं है। लेकिन, मानक नाप पाँच हाथ की है। पर्या०—लागी, बाँस (गं० उ०); लट्ठा (द० प० शाहा०) लग्गी।

[लगा < लग्गा- वा < लग्न-(?) वा < लगुड- (हि० श० सा०)]।

लगान—(सं०) भूमि का राजस्व, कर। पर्या०—पोता। (गं० उ०, द० बिहा०), पोत (द० पू० मैं०), मालगुजारी, मालगुजरी (गं० उ०)।

[लगान < लग्न < √ लग्, लगान (हि०); लगान (ने०)=सूद पर लगाया गया रुपया]।

लगान माफी—(सं०) वह जमीन या खेत, जिसकी लगान नहीं लगती है (सा०-१)।

[लगान + माफी, लगान < लग्न-, माफी < मुआफ़ (फा०)]।

लगान का तनकीह—(सं०) लगान कायम करना (सा०-१)। दे०—लगान का तसखोश।

[लगान का (विभ०)+तनकीह; लगान <लग्न-(?), तनकीह < तन्कीह (अ०)=अभियोग के आधारभूत विषयों की समीक्षा]।

लगान का तसखोश—(सं०) लगान कायम करना (सा०-१)। पर्या०—लगान का तनकीह।

[लगान का (विभ०)+तसखोश; लगान <लग्न (?); तसखोश < तशख़ुस (अ०)=निश्चित होना]।

लगान खुटहई—(सं०) नदी के किनारे नाव खड़ी कर देने पर लिया जानेवाला शुल्क (सा०-१)।

[लगान + खुटहई, लगान < लग्न-(?) खुटहई (देशी) < खूटा-< खुट-]।

लगान पानेवाला—(सं०) लगान पानेवाला अधिकारी, जमींदार।

[लगान+पाने+वाला (प्र०)]।

लगाम—(सं०) घोड़े के मुँह में लगाने के लिए लोहे का विशेष प्रकार से बना और रस्सी से जुड़ा हुआ उपकरण।

लगामी—(सं०) चारे की रक्षा के लिए बैलों के मुँह के चारों ओर कसकर बाँधी जानेवाली रस्सी। दे०—बेरुआ।

[लगाम+ई (प्र०) < लगाम (फा०)]।

लगार—(सं०) वर्षा का जोर से बरस जाना (चंपा०-१)।

[लगार (देशी); मिला०—लगहर=(मंगलघट, दूध देती हुई गाय या भैंस) < लग्नघट-(?)]।

लगावरी—(सं०) खेत जोतने के बाद ढेला फोड़ने के लिए बना हुआ लकड़ी का मोटा तख्ता (पट०)। दे०—हेंगा।

[देशी]।

लगित—(सं०) दस किसानों के दस भूमिखंडों को एक स्थान पर मिलाकर बाँध से घेर देना या उनकी निश्चित रकमों का एकत्रीकरण (सा०-१)।

[लगित < लगल < √लग् (सङ्गे)]।

लगुआ—(सं०) हरवाहे को दी जानेवाली अगाऊ मजदूरी। दे०—अगवड़।

[लग+उआ (प्र०) < लग < लगल, लगावल (बिहा० क्रि०) < √लग]।

लगुआ जन—(सं०) अगाऊ मजदूरी लेकर काम करनेवाला अथवा पहले लिये हुए ऋण को चुकता करने के लिए काम करनेवाला मजदूर। दे०—अगवड़।

[लगुआ+जन; लगुआ < लग+उआ (प्र०) लग < लगल, लगावल; जन < जन < √ जनी प्रादुर्भावे)]।

लगौरी—(सं०) (१) बैल की पीठ पर अन्न ढोनेवाले बोरे को बाँधने की रस्सी (गया)। (२) बैल की पीठ पर ढोने का बड़ा बोरा (उ० पू० मैं०)। दे०—लगौरी। (३) मचान के ऊपर छाया के लिए बनाया गया छप्पर (द० प० मैं०)। दे०—झोंपड़ी।

[लग+औरी-, लग < लगल, लगावल (बिहा० क्रि०); औरी < ढोरी < ढोरी < दवर (?), घोरी < बोरी]।

लग्गा—(सं०) (१) पेड़ से फल तोड़ने का लंबा पतला बाँस या लग्गी। (२) जाल में लगा हुआ बाँस। (३) बंसी में लगी बाँस की पतली लग्गी। (४) लंबा पतला बाँस। लग्गा लगावल (मु०)=किसी से संबंध जोड़ना, डोरे डालना।

[लग्गा < लग्ग-(देशी) वा < लगुड-]।

लग्गित—(सं०) (१) लगान से संबद्ध विवरण (गाइड०)। (२) लगान का ब्योरा (पट०-१)।

[लग्गित < लगल, लगावल (बिहा० क्रि०)]।

लग्गी—(सं०) पेड़ से फल तोड़ने के काम आनेवाली पतले बाँस की लग्गी। (२) पतला लंबा बाँस।

[लग्गी < लग्ग-, वा < लगुड-]।

लग्गीत—(सं०) असामी का अलग-अलग हिसाब रखने का एक प्रकार का पत्रक। पर्या०—वासिल बाकी। दे०—लग्गा।

[लग्गीत < लगल, लगावल (बिहा० क्रि०)]।

लघउरिया—(सं०) लकड़ी का बना ढेला फोड़ने का हेंगा (पट०-१)।

[देशी]।

लछमिनिया—(सं०) (१) अन्न-भंडार में पाया जानेवाला एक छोटा पतला लाल झींगुर। यह अन्न को हानि

नहीं पहुँचाता है। अन्न-विक्रेता इसे शुभ फल देने वाला मानते हैं (पू० मै०)। (२) व्यक्तिवाचक नाम।
[लछमिनिया < लक्ष्मी-, या लक्ष्मण-]।

लटल—(सं०) बुढ़ापा के कारण दुर्बल पशु (उ० पू० मै०)। दे०—डाँगर। (वि०) दुर्बल, क्षीण।

लटल–(क्रि०) क्षीण होना, दुर्बल होना।
[लट+ल (प्र०) < लट < लट्ट- (?)]।

लट्ठ—(सं०) (१) बड़ी मोटी लाठी (चंपा०-१)। (२) छह हाथ की नाप का लग्गा (द० प० शाहा०)। दे०—लग्गा।

लट्ठा—(सं०) (१) छह हाथ की नाप का लग्गा। (द० प० शाहा०)। दे०—लग्गा। (२) कुएँ से पानी निकालने के लिए दोकानी खंभे पर स्थित बाँस की लग्गी में पिछली ओर बोझ देकर तथा अगली ओर कूँड़ लगाकर बनाया गया सिंचाई का साधन-विशेष (गं० द०)। दे०—ढेंकुल। (३) लकड़ी का मोटा टुकड़ा। (४) गोंद, लस्सा (भाग०)। (५) एक प्रकार का टिकाऊ उजला कपड़ा।
[लट्ठा < लट्ठ; लट्ठ-(देशी), यष्टि-(संस्कृ०), लट्ठ (प्रा०)]।

लठ—(सं०) डंडा, लाठी (पट०)। दे०—लाठी।
[लठ < लट्ठ (देशी), यष्टि-(संस्कृ०), लट्ठ (प्रा०)]।

लठहा कईता—(सं०) लाठी के समान लंबा कईता (पट०-१)।
[लठहा+कईता (दी०)]।

लठबाहा—(सं०) (१) लाठा से पानी निकालकर खेत सींचनेवाला (पट०-१)। (२) लाठी चलानेवाला पेशेवर पहलवान।
[लठ + बाहा; लठ < लट्ठा < लट्ठ (देशी), बाहा (प्र०) < √वह् (प्रापणे)]।

लठवाही—(सं०) (१) ढेंकुल या लाठा चलानेवाले मजदूर की मजदूरी। (२) लठवाहे का काम।

लठाबंदी-(सं०) खेत की उपज का आनुमानिक मूल्यांकन-परिमापन करना (द० प० शाहा०)। पर्या०—नाप (गं० द०), नापी (गं० उ०)।
[लठा + बंदी, लठा < लट्ठ (देशी); बंदी < बन्ध-]।

लठिया कुमैठ—पेशेवर लठैत (मुं०-१)।
[देशी]।

लठैत—(सं०) (१) पेशेवर लाठी चलानेवाले, जो गाँवों में लड़ाई-झगड़ा के समय किराये पर बुलाये जाते हैं। (२) लाठी चलाने में दक्ष व्यक्ति।

लड़नी–(सं०) पालो से हरीस को बाँधनेवाली रस्सी (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—नरनी।
[लड़नी (देशी), या लड़नी < नरनी < नद्धी < √नह् (<नह् बन्धने)]।

लड़हिया–(सं०) हलकी छोटी बैलगाड़ी। दे०-सग्गर।
[लड़ह+इया (प्र०) < लड़ह < लटक-(?)]।

लड़आ–(सं०) (१) चीनी, घी, आटा आदि को मिलाकर बनाई गई मिठाई। (२) चावल या गेहूँ के आटे को भूनकर मीठा देकर बनाया गया विशेष प्रकार का लड्डू। (३) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[लड़+उआ < लड़ < लड, लडक-]।

लड़ुआ—(सं०) (१) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) चीनी, घी, आटा आदि मिलाकर बनाई गई एक मिठाई।
[लड़+उआ < लड़ < लड, लडक-]।

लतमरा—(सं०) (१) कुएँ के आरपार रखा गया लकड़ी का तख्ता, जिसपर खड़ा होकर पानी निकालनेवाला पानी निकालता है (पट०, उ० प० मै०)। दे०—परियाठा। (२) वह स्थान, जहाँ खड़ा होकर करीन चलाया जाता है (मै०)। दे०—पौठा। (३) ढेंकी का पावदान, जिसपर पैर रखकर ढेंकी चलाई जाती है (उ० प० मै०)। दे०—पौदर।
[लत + मरा < लत < लात < लत्ता (पर० संस्कृ०); < लत्त (?), मरा < मरल, मारल (बिहा० क्रि०), < √मृ-]।

लतरी–(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो छोटा, तिकोना और ऊपर से मटमैला एवं भीतर पीला होता है, खेसारी (शाहा०)। दे०—लतरी।
[लत+री (प्र०) < लत < लता-(?)]।

लतहा—(सं०) लताड़ मारनेवाला दुष्ट बैल (द० प० शाहा०)। दे०—मरखाह।
[लत+हा (प्र०) < लत < लात < लत्ता < लत्तक-, हा < √हन्]।

लताम—(सं०) अमरूद (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[लताम < लताम्र-(?)]।

लतार—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनाई जाती है (गं० उ०)। पर्या०—रतार (प०), अतार (उ० प०), कठार (द० प०), रतालू (पट०, गया), फर (मै०), खम्हरुआ (पू० बिहा०), आरू (गं० प०)।
[लतार < रक्तालु-]।

लताळ—(सं०) जमीन में बैठनेवाला एक कंद, इसकी तरकारी बनती है (पट०-१)।
[लताळ < रक्तालु-(?)]।

लताह—(सं०) लताड़ मारनेवाला मवेशी (चंपा०-१)। दे०—लतहा।
[लत+आह, ह (प्र०) < लता < लत < लत्ता < लत्तक-(?)]।

लतिहानी—(सं०) वह जमीन, जिसमें फुलवारी में लगाये जानेवाले पौधे उगते हैं। दे०—कोरार।
[लत + इहानी ; लत < लता, इहानी < धानी (?) या (प्र०)]।

लत्तर बीरो—(सं०) साग-सब्जी की लत्तर (पट०-१)।
[लत्तर + बीरो, लत्तर < लत्त < लता ; बीरो < बीर < वीर्य-, या बीज-(?)]।

लथर—(सं०) लता, पौधे आदि का टूटा हुआ डंठल (उ० प०, मै०)। पर्या०—निपास, निपेसा (पू० मै०)। गं० द० में इसका कोई नाम नहीं है।
[लथर < लता+र (प्र०)-(?)]।

लथरी—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी]।

लथेर—(सं०) (१) अनाज निकाल लेने के बाद फसल का बचा हुआ डंठल (प०, उ० प० मै०)। दे०—गोथार। (२) पशुओं के खाने के बाद बचा हुआ व्यर्थ का (अखाद्य) घास-भूसा आदि (प०)। पर्या०—निपास (उ० पू०), गोथार (पट०, गया, द० पू०), खथेल (शाहा०), गोरथारी (द० भाग०)।
[लथ+एर (प्र०) < लथ < लत्त < लत्ता < लत्तक-(?) या लथ+एर, लत्ता+एरित (प्रेरित)]।

लदना—(सं०) (१) बोझे से बड़ी फसल की बँधी हुई राशि, जिसे बैल आदि की पीठ पर ढोते हैं। (२) लद्दू घोड़ा या बैल।
[लदना < लद + ना (प्र०) < लद < लदल, (बिहा० क्रि०), < नद्ध < नह (√नह्) + क्त (=त-प्र०)]।

लदनी—(सं०) वह घोड़ी, जिसकी पीठ पर अन्न आदि का भार ढोया जाता है (चंपा०-१)।
[लद+नी (प्र०) < लद < नद्ध <√नह्+क्त (प्र०) <√नह् (बन्धने)]।

लदबद—(सं०) (१) निकट भविष्य में बच्चा देनेवाली पूर्णगर्भा गाय या भैंस (मुं०-१)। (२) बरसने के लिए प्रस्तुत पानी से भरा मेघ। (वि०) भरा हुआ, पूर्ण (मुं०-१)।
[लद+बद < नद्ध+बद्ध-(?)]।

लदल—(क्रि०) (१) गाड़ी, बैल आदि का भार से पूरा होना, बोझा पूरा करना। (२) बैलों, घोड़ों आदि का गाड़ी आदि में जुतना, नधना। (वि०) नधा हुआ, जुड़ा या जुता हुआ।
[लद+ल (प्र०) < लद < नद्ध <√नह् (नह् बन्धने)]।

लदहा—(सं०) पालो को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी। दे०—नारन।

[लद + हा (प्र०) < नद < नद्ध-, नद्धी (?) <√नह्]।

लदौरी—(सं०) बैल की पीठ पर ढोने का बड़ा बोरा (पट०)। पर्या०—लगौरी (उ० प० मै०)।
[लद+औरी ; लद <नद<नद्ध <√नह्+क्त ; औरी < बोरी (?)]।

लद्दी—(सं०) जल-प्रवाह का प्राकृतिक मार्ग, नदी (द० भाग०)। दे०—नद्दी।
[लद्दी < नदी < नद्दी < नद+ई < नदट्-]।

लधल—(क्रि०)(१) गाड़ी और बैल आदि भारवाही पशु का भार से पूरा होना, उनपर बोझ को पूरा करना। (२) गाड़ी, हल आदि में बैलों, घोड़ों आदि का जुड़ना या जुत जाना। (वि०) नधा हुआ, जुता हुआ।
[लध+ल (प्र०) < नद्ध- <√नह् (नह् बन्धने) +क्त (=त)]।

लपची-(सं०) (१) बरारी मछली का बच्चा (चंपा०-१)। (२) एक प्रकार की चोंइटा-रहित मछली (सा०-१)।
[देशी]।

लपटा—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (गया, प०)।
[लपटा (देशी)]।

लप्पो—(सं०) (१) चक्की में एक बार मुट्ठी-भर दिये जानेवाले अन्न की पानी (द० भाग०)। दे०—झीक। (२) हथेली में आने भर अनाज की छोटी राशि।
[लप्पो < लप्पा < लप्प-(देशी), जैसे—लप्पड़]।

लबगछुली-(सं०) फलों का नया बागीचा (मै०)। दे०—गछुली।
[लब+गछुली, लब < नव- ; गछुली < गच्छ-, गच्छिल-]।

लबना—(सं०) मिट्टी का एक बरतन, जिसमें ताड़ी चुलाई जाती है, लबनी (पट०-२)।
[लबना (देशी)]।

लबनी—(सं०) (१) ताड़ी चुलाने का लंबा वृत्ताकार मिट्टी का पात्र-विशेष। (२) ताड़ी संग्रह करने का लंबी गरदन का मिट्टी का पात्रविशेष। पर्या०—उड़ढ़ (पू०)। (३) ताड़ी पीने के लिए बना मिट्टी का पात्र-विशेष, लबनी (चंपा०-१)।
[देशी]।

लबालब—(क्रि०) किसी पात्र का पूरा-पूरा भरा होना, लबालब भरल (मुं०)=पूरा-पूरा भरना (मुं०-१)।

लमका अलुआ—(सं०) एक प्रसिद्ध मीठा कंद, जो फलाहार आदि में प्रयुक्त होता है, शकरकंद।

दे०—सकरकंद। उत्तर बिहार में गरीबों का यह प्रधान भोजन है।

[लमका + अलुआ ; लमका < लम्बक-; अलुआ < आलुक-]।

लमटंगा—(सं०) वह बैल या दूसरा मवेशी, जिसकी टाँगें शरीर के अनुपात से अधिक लंबी हों (पट०-१)। (वि०) लंबी टाँगोंवाला।

[लम + टंगा, लम < लम्ब-; टंगा < टङ्ग-(?) या (देशी)]।

लमती—(सं०) वर्गाकार खेत की लंबाई अथवा चौड़ाई की ओर से की जानेवाली सीधी-सीधी जुताई (द० भाग०)। दे०—सोझौआ जोत।

[लम+ती < लम्ब+तिर्यक् (?)]।

लमनी—(सं०) ताड़ी चुलाने का लंबी गरदनवाला पात्र-विशेष, लवनी (पट०-१)।

[लमनी < लवनी (देशी)]।

लमरदार—(सं०) सरकारी मालगुजारी वसूलनेवाला गाँव का अधिकारी (ना०)। पर्या०—लंबरदार (शाहा०), मोखतार (पट०, मै०), तिपदार (उ० पू० मै०), कारपरदाज, मोखतियार, तसीलदार (सामा०)।

[लमर + दार (प्र०) < लमर < लम्बर < नम्बर]।

लमुआ कदुआ—(सं०) लगभग तीन हाथ लंबा कद्दू, लौकी (पट०-१)।

[लमुआ + कदुआ, लमुआ < लम्ब ; कदुआ (देशी)]।

लमुहा कोहड़ा—(सं०) लंबा कोंहड़ा (पट०-१)।

[लमुहा + कोहड़ा, लमुहा < लम्ब-, कोहड़ा < कूष्माण्ड-]।

लमेरा—(सं०) (१) कटनी के समय खेत में गिरा हुआ दाना, जो समय आने पर स्वयं उग जाया करता है। पर्या०—नम्हेरो (द० भाग०), नम्हेर, लम्हेर, लाम (द० मुं०)। (२) पके हुए धान के पौधे से गिरकर अगले वर्ष पुनः स्वयं उगनेवाला पौधा। पर्या०—झर (द० पू० मै०), झारन (सा०)। (३) गिरे हुए बीज से स्वयं उगनेवाला पौधा।

[लमेर (देशी)]।

लम्हेर—(सं०) कटनी के समय खेत में गिरा हुआ दाना, जो समय पर स्वयं उग जाया करता है (द० मुं०)। दे०—लमेरा।

[देशी]।

लर—(सं०) जमीन पर हेंगे के रूप में रखे हुए बाँस या तख्ते के छेद में लगी हुई रस्सी। (२) लड़ी। (३) पानी की धारा का अविच्छिन्न बहाव (मुं०-१)।

[लर < नल- ; लड़ < नड़ < नड् < √नह्]।

लरकटिया, नरकटिया—(सं०) एक प्रकार की उजली छोटी जनेर या ज्वार (द० मै०)। दे०—बजड़ा।

[लरकटिया < लरकट < नरकट < नल + कट (कटक्-प्र०)]।

लरका—(सं०) (१) चने और मटर को खानेवाला एक कीड़ा। पर्या०—लुरका (गया)। (२) लड़का। पर्या०-केउआ=तंबाकू के पत्ते में छेद बनाकर रहनेवाला कीड़ा (गं० उ०)।

[लरका (देशी) या लरका < लडक-, लडक-(?)]।

लरछा—(सं०) (१) सन या पटुए के डंठल से निकाले हुए रेशों की एक सुव्यवस्थित राशि। पर्या०—थोआ, थुआ (पू० मै०)। (२) सूत की लपेटी हुई राशि।

[लर + छा, लर < लरी, लड़ी < नरी (?) < नल-, या < लट्ठि (प्रा०), यष्टि-(संस्कृ०) ; छा < शस् (प्र०) या < छाया]।

लरजोंका—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (द० भाग०)। दे०—नरजोंक।

[लर+जोंका (देशी) या लर+जोंका ; लर < नर < नड़ ; नल-(?), जोंका < जलौकस्-(?)।

लरनी—(सं०) (१) जोत, जुताई। दे०—जोतन। (२) पालो से हरीस को बाँधनेवाली रस्सी (उ० पू० मै०, द० पू०)। दे०—नारन।

[लर+नी (प्र०) < लर < नल-, नड-, या नद्ध- < √नह्]।

लरम—(सं०) मुलायम मिट्टी (पू०)। दे०—नरम। (वि०) मुलायम, कोमल।

[लरम < नरम < नर्म (फा०)=कोमल। मिला०—नर्म (संस्कृ०)=कोमल व्यवहार, प्रेमकेलि]।

लरमा—(सं०) बारी में उपजनेवाली एक प्रकार की छोटी कपास (सा०)।

[लरमा < नरम < नर्म (फा०)]।

लरलो—(सं०) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस के लिए काटी हुई नाली। दे०—नरदोह।

लरवाहा—(सं०) (१) सिंचाई करनेवाला पुरुष (द० भाग०)। दे०—पनखुआ। (२) खेत सींचते समय जल की धारा के क्रम को चालू रखनेवाला मजदूर (मुं०-१)।

[लर + वाहा, लर < नर < नड, नल-, वाहा (प्र०) या < √वह्]।

लरवाही—(सं०) (१) लरवाहे का काम। (२) पानी पटानेवाले मजदूर का काम या मजदूरी (मुं०-१)।

[लरवाह+ई < लरवाह < नल+वाह-]।

लरही—(सं०) (१) अगहन में पकनेवाली एक प्रकार की उड़द (सा०, द० प० मै०)। पर्या०—नरहू, नरहो, लरहों, असनी (मै०), अगहनुआ (चंपा०, सा०)।
[देशी]।

लरही—(सं०) (२) एक पशु-खाद्य घास (पट०)। दे०—नरजोंक।

लरहो, नरहो—(सं०) अगहन में पकनेवाली एक प्रकार की उड़द (मै०)। दे०—लरही।

लरिया—(सं०) (१) (मुं०-१)। दे०—लरी। (२) नरिया, नाली-जैसा बना खपड़ा।
[ल'रिया < लर+इया (प्र०) < नर < नड-, नल-, वा लरी < लट्ठी (प्रा०) ; यष्टि-(संस्कृ०)]।

लरियावल—(सं०) किसी अन्न का बासी होकर सड़ने लगना (पट०-३)।
[लरिया + आवल (प्र०) < लरिया < नरिया-(१)]।

लरुआ—(सं०) (१) गाड़ी को पीछे की ओर से गिरने से बचाने के लिए दी जानेवाली थूनी। दे०—एड़ा। (२) नेवारी, धान का डंठल।
[लरुआ < नरुआ < नर+उआ < नर<नड-, < नाल]।

लरुआ, नरुआ—(सं०) (१) मँड़ुआ का डंठल (द०पू०)। दे०—नरुआ। (२) धान का डंठल, नेवारी।
[लरुआ < नरुआ < नर + उआ < नड-, नाल-]।

लरैठा—(सं०) रबी या बसंती फसल का, विशेष कर रहर का, अनाज निकालने के बाद बचा हुआ डंठल (द० भाग०)। दे०—ररैठा।
[लरैठा < लर + एठा, लर < नर < नड-, एठा < अस्थि-(१)।

लरैठो—(सं०) रहर का सूखा हुआ डंठल (द० भाग०)। दे०—ररैठा।
[लर + एठो ; लर < नर < नड-, एठो < अस्थि-]।

ललका—(सं०) (१) एक प्रकार का लाल शकरकंद (द० मै०)। दे०—देसी। (२) एक प्रकार का लाल आलू (सं० उ०)। पर्या०-दखिनी। (३) छोटे दानों-वाला लाल गेहूँ (शाहा०, द० मुं०, द० प० मै०)। पर्या०—देसी, देसिया, हरना, हँररहवा (उ० प०), हाड़ा (मै०), हड़हड़ा (द० प० मै०), हड़हा (पट०), केवलहा (गया), जमाली, जमरिया (पू०)। (४) एक प्रकार की शुद्ध लाल, कड़ी लंबी ईख, जिसमें रस की कमी होती है और जो गरमी पाते ही सूख जाती है (सा०-१)। (वि०) लाल रंग का, रक्तवर्ण का।
[ललका < रक्तक-(१), लाल (फा०)]।

ललका साग—(सं०) लाल रंग का साग (पट०-१)। < लाल (फा०)=सुर्ख-]।

ललकी—(सं०) तेपखो मकई की तरह लाल मकई (सा०-१)। (वि०) लाल रंग की वस्तु।
[ललकी < ललका < रक्तक- वा रक्तक- वा रक्तिका वा < लाल (फा०)=सुर्ख-]।

ललकी मिट्टी—(सं०) लाल मिट्टी। पर्या०—गेरू (सं० द०), काबिल (द० प० शाहा०)।
[ललकी + मिट्टी, ललकी < रक्तक-, मिट्टी < मृत्ति- < मृत्+ति]।

ललकी सीम-(सं०) एक प्रकार की लाल सेम। यह गुच्छों में फलती है (पट०-१)।
[ललकी + सीम, ललकी < रक्तक-, सीम < शिम्बि-]।

ललगोंड़ी—(सं०) लाल वर्ण का लंबा ऊख।
[लल + गोंड़ी, लल < लाल (फा०) वा रक्तल-, गोंड़ी < गोंड़ < गण्ड-(१) वा काण्ड-(१)]।

ललगोंदिया—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला उत्तम प्रकार का लाल धान (पट०)।
टि०-पट० में रोहिणी नक्षत्र (जेठ) में पहली वर्षा होने पर धान की बुआई शुरू होती है। यहाँ बावग धान दो प्रकार के होते हैं। 'ललगोंदिया' एक उत्तम धान माना जाता है और 'करा बोगहा' काले रंग का निकृष्ट धान माना जाता है। 'ललगोंदिया' में भी 'करहनी' प्रधान माना जाता है। इसकी बाल काली होती है।
[लल+गोंदिया, लल <लाल (फा०), वा रक्तल-, गोंदिया < गोंद-(१)]।

ललदइया—(सं०) लाल रंग का एक धान (पट०-१)।

ललदेइया—(सं०) (१) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। (२) एक अगहनी धान, जिसका चावल सफेद होता है (सा०-१)।

ललदेईया—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लाल धान (सा०)। (२) एक प्रकार का धान, जो छींटकर बोया जाता है (गया)।

ललदुम्मा—(वि०) लाल पूँछवाला बैल (पट०)।
[लल+दुम्म < लाल+दुम (फा०)]।

ललधरिया गोहुम--(सं०) हलके लाल रंग के दानों-वाला गेहूँ (पट०-१)।

ललही आलू—(सं०) लाल रंग का बड़ा आलू (पट०-१)।

ललही कुसुम—(सं०) लाल रंग का पटुआ, जिसकी कलियों और फूलों की चटनी बनती है (पट०-१)।

ललिआइल-(सं०) पकी हुई फसल (सा०-१)। (वि०) लाल रंग की तैयार वस्तु। (क्रि०) पकने पर फसल, फल आदि का लाल होना।

[लल+इआइल (प्र०) < लल < लाल (फा०)]।

ललियायल—(क्रि०) पकने पर फल, फसल आदि का लाल होना (चंपा०-१)। (वि०) पकी हुई लाल वस्तु।

[लल+इयायल (प्र०) < लल < लाल (फा०)]।

लव—(सं०) चीनी मिल का वह स्थान, जहाँ ईख लेकर बैलगाड़ियाँ कतार में खड़ी रहती हैं (सा०-१)।

लवंगी—(सं०) लाल रंग का छोटा मिर्चा (चंपा०-१)।

[लवंगी < लवङ्गी-]।

लवठा-(सं०) नया हल (उ० पू० मै०, द० भाग०)। दे०—नवठा।

[लव+ठा, लव-<नव-, ठा < काष्ठ-]।

लवठा के जोत—(सं०) नये और पूर्ण आकारवाले हल से की जानेवाली जुताई (मै०, चंपा०)। दे०—नवठा के जोत।

[लवठा के (विभ०)+जोत (धी०), लवठा<नव+काष्ठ-, जोत<युक्त<√ युज्+त (=क्त-प्र०)]।

लवही—(सं०) नैनी, रोहू आदि मछली का मझोले कद का बच्चा (चंपा०-१)।

[लव+ही (प्र०)<लव<नव-(?)]।

लसफलिया—(सं०) (१) एक प्रकार का पेड़, जिसकी फली का गूदा लसदार होता है; निसोढ़ा। (२) निसोढ़े की फली (चंपा०-१)।

[लस + फल+इया (प्र०) < लस+फल, लस < लस्सा<लसक (का०), फल<फेलल=स्पर्श-]।

लसोढ़ा—(सं०) एक पेड़, जिसमें लसीला और मीठा फल लगता है। निसोढ़ा (मुं०-१, पट०-१)।

लस्सी—(सं०) (१) फल के डंठल में लगा हुआ लसीला पदार्थ, गोंद (मुं० १)। (२) आम के वृंत में स्थित लसीला पदार्थ (पट०-१)। (३) दही या दूध को मथकर तैयार किया गया शरबत।

[लस्सी (देशी) वा<लसिका]।

लहनापल—(सं०) पशुओं के द्वारा पददलित फसल (द० प० शाहा०)। दे०—धँगाठ।

[लहना+आपल (प्र०) लहना<(?)]।

लहर—(सं०) (१) हवा के झोंके से उठनेवाली जल की तरंग (सा०-१)। (२) घाव आदि का जलना, जलन। (३) आग की ज्वाला।

[लहर<लहर-]।

लहरनी—(सं०) (१) पोस्ते के बीजकोष को चीरने का नुकीला तेज छोटा हथियार (मै०)। दे०—नहरनी। (२) नख काटने का नाई का उपकरण-विशेष।

[लहर+नी (प्र०) <नख+हरणी-(?)]।

लहरल—(क्रि०) (१) आग का जलना। (२) अधिक ताप का होना। (३) हवा के झोंके से पौधों एवं अन्य वस्तुओं का हिलना, लहराना।

लहरैठा—(सं०) सूखा हुआ रहर का डंठल (द० मुं०)। दे०—रहेठा।

[लहर + ऐठा<रहर + ऐठा <अरहर + ऐठा< आढक+काष्ठ-वा अस्थि-]।

लहसुन—(सं०) प्याज की जाति का एक प्रसिद्ध कंद, जो मसाले में प्रयुक्त होता है। इसकी गंध उत्कट होती है। धर्मशास्त्र के अनुसार यह अखाद्य है, लेकिन आयुर्वेद के अनुसार यह बहुत लाभदायक और अमृतोपम है। पर्या०—रसून, रस्सून, पोटी, पोट=लहसुन की ढेढ़ी।

[लहसुन<रसून<रसोन-]।

लाँगल—(सं०) हल, खेती का एक प्रधान साधन, जिससे जमीन जोती जाती है (गया) दे०—हर।

[लाँगल<लाङ्गल<लङ्गल-]।

लाँजी—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (सा०)।

[देशी]।

लाँड़ा—(सं०) (१) टूटी पूँछवाला बैल (द० मुं०)। दे०—बाँड़। (२) वह व्यक्ति, जिसका कोई संबंधी न हो।

[लाँड़ा < नाड़ा < नट-(?)]।

लाँभल—(क्रि०) दूसरे के खेत में अनाज चरने के लिए पशुओं का चला जाना। पर्या०—लाम्हल।

[लाँभ+ल (प्र०) < लाँभ<लाम्ह<लाँघ<√ लङ्घ् (गत्यर्थे—लङ्घते, लङ्घति)]।

लाएद—(सं०) चारा खिलाने के लिए मिट्टी का बना बरतन (पू०)। दे०—नाद।

[ला+ए (श्रुति) + द<लाद<नाद (देशी)]।

लाखराज—(सं०) (१) लड़ाई आदि में की गई राजसेवा के बदले दी गई करमुक्त भूमि। (२) कुम्हार, गोड़ैत आदि ग्राम के सेवकों को दी जानेवाली करमुक्त भूमि। दे०—जागीर। (३) किसी को दी जानेवाली राजस्व-मुक्त भूमि या जागीर।

[लाख + राज < लाखराज (अ०) = वह भूमि, जिसका लगान न देना पड़े]।

लागन—(सं०) (१) हल में लगी मुठदार लकड़ी, परेटा (मुँ०-१)। (२) हल के पीछे लगा हाथ से पकड़ने का डंडा (पू० मे०)। दे०—परिहथ। (३) हल का वह भाग, जिसमें फार लगाया जाता है (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[लागन<लाङ्गल (१) वा —लग्न-(१)]।

लागर—(सं०) खेती की जमीन का एक प्रकार (सा०-१)।

लागी—(सं०) खेत में लगी हुई फसल के नाम पर रुपया पेशगी लेना (उ०)।
[लागी<लागल (बिहा० क्रि०)=लगना या लगा हुआ]।

लाट—(सं०) (१) भूमि पर निर्धारित राजस्व (पू० मे०)। दे०—मालगुजारी। (२) राजस्व को राजकोष में जमा करने का दिन। (३) विशेष प्रकार का बना स्तंभ, जैसे—अशोक के लाट।
[लाट (१, २)<अलॉट (अं०), वा (देशी)-(?), लाट (३)<लाट<लट्ठ<*लस्ट-(प्रा०)]।

लाठ—(सं०) (१) तालाब के बीच में गाड़ा गया लकड़ी का खंभा। दे०—जाट। (२) कुएँ से पानी निकालने के लिए दोकानी खंभे पर स्थित बाँस की लग्गी में पिछली ओर बोझ देकर और अगली ओर कूँड़ लगाकर बनाया गया साधन-विशेष (ग० द०)। दे०—ढेंकुल। (३) ऊख के कोल्हू के अंदर घूमनेवाला कुंदा, जो ऊख के टुकड़ों को पीसता है, मोहन। यह पहले के कोल्हू में लगता था, जबकि वह पत्थर का होता था (मै०, चंपा०)। (४) तेल के कोल्हू के अंदर स्थित मोहन। दे०—मोहन। (५) लाठा (गाइड०)। (६) विशेष प्रकार का बना खंभा, जैसे—अशोक के लाट।
[लाठ<लस्ट (प्रा०), वा < लट्ठि (पा०), लट्ठी, लाठी (प्रा०, पा०); यष्टि-(संस्कृ०); लगुड-(संस्कृ०); लाठी, लाठ, लाट, लट्ठ (हिं०); लाठो (नें०); लाठो (कुमा०); लोठ (कश्म०)=गदा; लाट (दरदी)=शाखा, डाल; लाठी (असं०, बँ०, ओ०); लट्ठ (पं०, ल०)=लाठे की धुरी; लाठी (सि०); लाठी (गु०); लाठ (मरा०)=तीन खंभों का लाठा; लस्त (पश्तो)]।

लाठ, लाठा—(सं०) ढेंकुल में लगी बाँस की छोटी और मजबूत लग्गी। दे०—बाँस।

लाठा—(सं०) (१) भूमि के सींचने के लिए प्रयुक्त प्रसिद्ध साधन-विशेष (गाइड०)। (२) ढेंकुल। (३) कुएँ से पानी निकालने के लिए दोकानी खंभे पर स्थित बाँस की लग्गी में पिछली ओर मिट्टी, पत्थर आदि का बोझ देकर और अगली ओर कूँड़ लगाकर बनाया गया साधन-विशेष (ग० ब०)। दे०—ढेंकुल। (४) जाँतकुँड़ी (ढेंकुल) चलाने का दोकानी खंभा (मुँ०-१)। (५) पानी पटाने के काम में आनेवाला बाँस, जिसमें कूँड़ या बाल्टी लटकाई जाती है। (पट०-१)।
[लाठा<लाठ<लस्ट-, लट्ठि (प्रा०), लट्ठी, लाठी (प्रा०), यष्टि-(संस्कृ०)]।

लाठाकुंड़ी—(सं०) लाठा और कूंड़, लाठा, ढेंकुल।
टि०—जमीन में गड़े हुए दोकानी खंभे पर बाँस का एक लाठा अपनी धुरी के सहारे लटका रहता है। उसका एक छोर कुएँ के मुँह पर और दूसरा खंभे की दूसरी ओर रहता है। अगले छोर पर बरहे (मोटी रस्सी) के सहारे कूंड़ लटकता रहता है और दूसरे छोर पर मिट्टी या पत्थर का बोझा लगा रहता है, जो दोनों ओर सम भार बनाये रखता है। इसके कारण पानी निकालने के लिए अगले छोर के कुएँ में डुबाने से पिछला छोर ऊपर की ओर उठ जाता है और पानी भरकर निकालने पर पिछले भार के कारण अगला छोर अनायास बाहर आ जाता है।
[लाठा+कुंड़ी, लाठा<लाठ<लट्ठ-(देशी), कुंड़ी<कूंड़<कुण्ड-]।

लाठा, लाठ—(सं०) ढेंकुल में लगी लकड़ी या बाँस की लंबी और मजबूत लग्गी। दे०—बाँस।
[लाठा<लाठ<लट्ठ-(प्रा०)]।

लाठी—(सं०) (१) साधारण लंबा डंडा। पर्या०—लठ (पट०), लौर, लउर (गं० उ०), ओउर (प०), सटका (गं० उ०)। (२) करीब तीन हाथ का लंबा पतले बाँस का टुकड़ा, जिसकी गाँठें सफाई और सुंदरता के साथ बनाई-बाँधी जाती हैं। यह मारपीट में दूसरों को मारने, पशुओं को खदेड़ने तथा पानी थाहने आदि के काम में प्रयुक्त होती है। गाँव के लोग लाठी को अपना सहायक मानते हैं (चंपा०-१)। कहीं-कहीं इसे 'दुखहरन' भी कहते हैं।
[लाठी<लाठ, लट्ठी, लाठी (प्रा०)<*लस्ट, लट्ठि; यष्टि-(संस्कृ०); लगुड-(संस्कृ०)। दे०—लाठ]।

लाद—(सं०) (१) मवेशियों को घास-भूसा खिलाने के निमित्त मिट्टी का बना और आग में पकाया हुआ गहरा गोलाकार बरतन। दे०—नाद। (२) पेट, उदर।
[लाद<नाद (देशी-१)]।

लादि—(सं०) नाद (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—लाद, नाद।
[लादि<लाद<नाद-]।

लादी—(सं०) (१) करीन या ढेंकुल के पीछे बोझ देने के लिए उसके पिछले छोर में बाँधा गया मिट्टी या पत्थर आदि का बोझा। (२) घोड़े आदि पशुओं पर लदी हुई गठरी या बोझा (चंपा०-१)।

[लादी<लादल (बिहा० क्रि०)=लादना, भरना< नाधन<नद्ध<√नह्+थ =क नह्यति]।

लाध—(सं०) ऊख के कोल्हू की मथानी को उसके सीधे खड़े खंभे (हरसा) से बाँधनेवाला रस्सा। यह पहले के पत्थर के कोल्हू में होता था, लेकिन तेल के कोल्हू में अब भी होता है (पू० मै०)। दे०—नाधन।

[लाध<लाधल<नाधना<नद्ध-<√नह्]।

लाधल—(क्रि०) (१) बैलों को हल, गाड़ी आदि में जोतना। (२) घोड़े आदि पशुओं को एक्का, टमटम आदि में लगाना। (३) लाठा, करीन आदि चलाने का उपक्रम करना। (४) चलाने के लिए हल, गाड़ी आदि को बैल आदि से जोड़कर तैयार करना। (५) पशुओं, गाड़ियों, नावों आदि पर माल लादना, भरना। (६) किसी काम को तैयारी के साथ शुरू करना।

[लाध+ल (प्र०)<लाध<नाद<नद्ध<√नह्+थ (=क-प्र०) <√नह् (बन्धने— नह्यति); लादना (हिं०); लाद्नु (ने०); लादुन (कश्म०)=भेजना, प्रस्थान करना; लाद (असं०) = लाधना; लदाइबा (ओ०, बँ०); लदना (प०); लदण (ल०); लदणु (सिं०); लादवुँ (गु०); लादणे (मरा०); नर्धयति (संस्कृ०), नर्दे इ (प्रा०); लडवेल (रोमा०)—(नेपा०)]।

लाधा—(सं०) पालो को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी दे०—नारन।

[लाधा<नाधा<नद्धी <√ नह्+थ (प्र०)]।

लाभ—(सं०) (१) व्यापार, व्यवसाय या कृषि की लागत पूँजी में से अधिक आय। (२) अनाज तौलने के बाद अतिरिक्त पूरक रूप में अंजलि या हाथ से दिया हुआ अनाज (चंपा०, द० मुं०)। दे०-पलुआ। (३) कभी-कभी खरीदार को कुछ अतिरिक्त देना (द० पू० मै०)। दे०—पलुआ।

[लाभ < लाभ-<√लभ् (< डुलभष् प्राप्तौ, लभते)]।

लाभसाभ—(सं०) कभी-कभी खरीदार को कुछ अतिरिक्त देना (गं० उ०)। दे०—पलुआ।

[लाभ+साभ, लाभ<लाभ-, साभ (अनुवा०)]।

लाम—(सं०) कटनी के समय जमीन पर गिरा हुआ वह दाना, जो समय पर स्वयं उग जाया करता है (द० मुं०)। दे०—लमेरा। (वि०) लंबा, बड़ा।

[लाम < लम्ब-(१) लंबा (हि०); लाम (ने०) = लंबा]।

लामल—(क्रि०) मछलियों के झुंड का जाल के निकट आना (चंपा०-१)।

[लाम+ल (प्र०) < लाम < लम्ब- <√ लम्ब् (लम्बते)]।

लाम्हल—(क्रि०) (१) फसल चरने के लिए दूसरे के खेत में पशुओं का चला जाना। दे०—लाँघल। (२) भूत-प्रेत आदि वायवीय योनि का किसी मनुष्य के शरीर में उतरना। यह एक पारम्परिक विश्वास-मात्र है।

[लाम्ह+ल (प्र०) < लाम्ह < लाँघ<लङ्घ- <√लङ्घ् (लघि गतौ—लङ्घते) वा < लम्ब<√लम्ब् (लम्बते, अवलम्बते)]।

लार—(सं०) (१) खुरपे का वह पतला, नुकीला अंश, जो बेंट में ठोका रहता है (गं० द०, पू०)। दे०—नार। (२) गँड़ासी के फलक का वह नुकीला भाग, जो बेंट के अंदर ठोका रहता है (पू०)। (३) किसी हथियार का वह नुकीला भाग, जो बेंट के अंदर ठोका रहता है (पू०)। दे०—नार।

[लार<नार<नाल-]।

लार—(सं०) (१) अनाज की कटी हुई फसल (पू० बिहा०) दे०—डाँट। (२) मँड़ुआ का डंठल (उ० पू०)। दे०—नेरुआ। (३) बाली काट लेने के बाद खेत में पड़ा हुआ पुआल, जिसकी दौनी नहीं की जाती। दे०—नार। (४) नेवारी, पुआल।

[लार < नार <नाल<नाल-]

लार—(सं०) (५) क्रमिक जलप्रवाह, पानी की धारा का अविच्छिन्न क्रम या बहाव (मुं०-१)। (६) मुँह से स्राव के रूप में निकलनेवाली वस्तु, लाला, लार।

[लार < लाला]।

लारन—(सं०) पालो को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी (द० पू० बिहा०)। दे०—नारन।

[लारन<लारन<नद्धी-]।

लार पुआर—(सं०) नेवारी और पुआल। (वि०) थकावट से चूर (मुं०-१)।

[लार+पुआर <नाल+पलाल—(१)]।

लारल—(क्रि०) (१) उलटना-पुलटना। (२) चलाना। (३) छेड़ना। (४) चर्चा करना। (५) धन खर्च करना। (६) कपड़े आदि को सुखाने के लिए फैलाना। (७) राँधने के समय दाल-भात आदि चलाना (मुं०-१)। (८) धान या किसी दूसरे अनाज को सूखने के लिए फैलाना।

लारा—(सं०) धान का पुआल (मुं०-१)।
[लारा<लार<नाल-]।

लारी—(सं०) मकई का पीला पतला पौधा (सा०-१)।

लारो—(सं०) (१) धान का पुआल (पू० बिहा०)। (२) लाड़ो, लाड़ली बेटी (गीतों में प्रयुक्त)।

लाल—(सं०) (१) लाल रंग का पशु या मवेशी। (२) एक प्रसिद्ध रत्न। (३) एक जातीय उपाधि। (वि०) लाल वर्ण का।
[लाल (फा०)]।

लालकेसर—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लाल धान (गया)।
[लाल+केसर, लाल (फा०); केसर (संस्कृ०)]।

लाल गेंड़ा—(सं०) लाल रंग का, मोटा और रस से भरा हुआ एक प्रकार का कोमल ऊख, जो रस की अधिकता और कोमलता के कारण स्वयं फट जाता है (सा०-१)।
[लाल+गेंड़ा,लाल<लाल (फा०) गेंड़ा<गण्डक-]।

लाल तरोई—(सं०) तरकारी में काम आनेवाली लाल रंग की रामतरोई (पट०-१)।

लालदेइया—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लाल धान (मै०)। पर्या०—ललदेईया (सा०)।
[लाल+देइया, लाल (फा०), देइया<देह+या (अना० प्र०)<देही-]।

लाल बेस—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[लाल+बेस-, लाल (फा०), बेस<बेह-]।

लाल बगछुल्ला—(सं०) (१) व्याघ्रचर्म के समान धब्बे-दार चमड़ेवाली लाल रंग की गाय। दे०—बगछुल्ला। (२) लाल रंग का व्याघ्रचर्म।
[लाल+बग+छल्ला, लाल (फा०), बग<बाघ<व्याघ्र<वि+आ (उप०)+घ्रि+क (प्र०); छल्ला<छल्ल-, छल्ल (प्रा०)]।

लालमी—(सं०) फूंट की जाति का एक प्रसिद्ध फल, जिसका स्वाद खारा-मीठा होता है (प० मै०, पट०, पट०-१)। दे०—खरबूजा।
[देशी]।

लालमुनी—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[लाल+मुनी (देशी)]।

लालमोहन—(सं०) (१) उजले रंग का ऊख (पट०-१)। (२) एक प्रकार का लाल रसगुल्ला, पनतोआ।
[देशी]।

लावा—(सं०) धान, मकई, ज्वार, आदि की भुनी हुई खील (पट०-१)।
[लावा<लाजा-(?)]।

लाह—(सं०) जंगली वृक्षों में होनेवाला एक प्रसिद्ध निर्यासजातीय पदार्थ, जो रँगने, मुहर देने आदि के काम आता है। इसकी चूड़ियाँ भी बनती हैं, जिन्हें 'लहठी' कहते हैं। दे०—लाही।

लाहड़—(सं०) अरहर (पट०-१)।
[लाहड़<राहट<अरहट<आढ़क-]।

लाही—(सं०) (१) पौधों में लगनेवाला लाख, लाह। (२) काले रंग का उड़नेवाला छोटा कीड़ा, जो फसल को बरबाद कर देता है। यह जाड़े में बदली लगने पर पुरवैया हवा के कारण लगता है (पट०-१)। पर्या०—मैंघ (भाग०)। (३) छोटे दानों की तेज सरसों, राई (प०)। दे०-राई।
[लाह+ई (प्र०)<लाह<लाख<लाक्षा-,<लक्ष-, लाक्खा (पा०), लक्खा, लाखा (प्रा०); लाह, लाख (हिं०); लाहा (ने०); ला (असः०); लाहा (बँ०); लाहा (ओ०)=लाह का कीड़ा; लाख (पं०, ल०); लाख (सि०); लाख (गु०, मरा०); लाछ (कश्म०); ला (सिंह०)]।

लिची, लीची—(सं०) प्रायः बिहार-बंगाल में ही होने-वाला एक प्रसिद्ध फल, जिसके खखड़े छिलके के नीचे पतली परत का मीठा गूदा और उसके अंदर खैरा रंग का बीया होता है। (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—लीची।
[लिची<लीचू<लकुच-(?)]।

लीची—(सं०) एक प्रसिद्ध छोटा फल, जिसके छिलके के नीचे पतली परत का मीठा गूदा और उसके अंदर खैरा रंग का बीया होता है। यह गुच्छों में फलता है। इसकी उपज बिहार-बंगाल में अधिकता से होती है (गाइड०)।
[लीची<लीचु (हिं० श० सा), मिला०—लकुच-(संस्कृ०)=बड़हर]।

लीद—(सं०) घोड़े का गोबर।

लीस—(सं०) नील, एक प्रकार का नीलवर्ण एवं दूसरे रंगों के बनाने की प्रसिद्ध मूल वस्तु।

टि०—पहले नील एक प्रकार के पौधे से प्राप्त की जाती थी; किन्तु बाद में जर्मनी में एक रासायनिक आविष्कार के पश्चात् इस पौधे की खेती समाप्त हो गई और उसी रासायनिक पदार्थ का प्रयोग होने लगा। नील की खेती के लिए बिहार की भूमि बहुत उर्वर थी और यहीं नील की अधिक उपज होती थी। इस नील की खेती पर अँगरेज जमींदारों का प्रभुत्व था, जिसे गान्धीजी के आन्दोलन ने समाप्त किया था। पर्या०—नील।

[लील < नील-, नील, नीली (संस्कृ०) ; नीली (पा०); नीली (प्रा०); नील (हिं०, पं०); निल् (नें०); निल (असू०, बँ०) ; निल (ओ०); नील (सिं०) ; नील (मरा०)। 'नील शब्द युरोपियनों ने उर्दू जाननेवाले साथियों से लिया था'—ग्रिय०। लेकिन, यह तो शुद्ध संस्कृत है और इसका प्रयोग अत्यन्त प्राचीन है। यह शब्द ऋग्वेद, उपनिषद्, पाणिनीय व्याकरण, वार्त्तिक, महाभारत आदि सभी ग्रन्थों में प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि फारसी में भी यही शब्द प्रयुक्त है। इसलिए, संभव है कि यह अँगरेजों को उर्दूवालों से ही मिला हो; क्योंकि आरंभ में युरोपियन अधिकारी मुसलमानों के अधिक निकट संपर्क में रहते थे]।

लीलाम—(सं०) (१) जमीन का राजस्व नहीं चुकता करने पर जमींदार द्वारा मुंसिफ के इजलास में मुकद्दमा करके जमीन या दूसरी संपत्ति नीलाम करा लेना (पट०-१)। (२) किसी भी प्रकार के अवैध आचरण करने पर न्यायालय द्वारा अभियोग प्रमाणित हो जाने पर निर्णय के अनुसार अभियुक्त की संपत्ति की कुरकी।

[लीलाम < नीलाम (फा०)]।

लीसोड़ा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध वृक्ष। (२) उस वृक्ष की फली। यह फली लसदार और पकने पर मीठी होती ह (सा०-१)।

[< निसोड़ा (देशी)]।

लुकवारी—(सं०) लकड़ी, पुआल आदि का जलता हुआ अगला भाग, मशाल। पर्या०—लुकारी।

[लुकवारी < लुक + बारी या < लुकवा + री (प्र०) < लुक < उलुक < उल्का (संस्कृ०)]।

लुकारी—(सं०) लकड़ी, बाँस, पुआल आदि का जलता हुआ अगला भाग, मशाल। लुकारी भाँजल (मु०)—(१) होली के सबेरे लोहे के तार या रेड़ी की डाल में लुकारी बाँधकर भाँजना (पट०)। (२) उत्पात मचाना, नंगा नाच करना।

[लुक+आरी (प्र०) < लुक < उलुक < उल्का]।

लुकुम—(सं०) मजदूरों को खेत में काम करते समय मिलनेवाला पूर्वाह्न का जलपान (प०)।

[लुकुम < लुकमा (अ०)=ग्रास, कौर]।

लुक्खी—(सं०) गिलहरी (दर०-१, पूर्णि०-१, भाग०)।

[लुक्खी < रुक्खी < रुक्ख < वृक्ष- (?) < √व्रश्च् (ओव्रश्चू 'छेदने') ; 'वृक्षो व्रश्चनात्, वृक्तेर्वा'—निरु०]।

लुतिया—(सं०) एक प्रकार की छोटी मूली (शाहा०)। दे०—मूली।

[लुतिया (देशी) ; या <*लुप्त-, लुप्प-(?) ; लुतो (नें०) = दुर्बल छोटा लड़का ; लोप (कश्म०) = पतली स्त्री]।

लुपधि—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुं०)।

[लुपधि < रूपधि-(?) < रूप+धि < √धा+इ; या मिला०-रूप+धौर < रूपधवल-]।

लुरका—(सं०) चने और मटर को खानेवाला एक कीड़ा (गया)। दे०—लरका।

[देशी]।

लुहार—(सं०) लोहार, लोहे का काम करनेवाला शिल्पी।

[लुहार < लोहार < लोहकार-]।

लूई—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। दे०—रेहू।

[लूई <लोहू < रोहू < लोहित-, रोहित-]।

लेंगा—(सं०) (१) लाठी (सा०-१)। पर्या०—डाँग। (२) लर, संबंध (चंपा०)।

[लेंगा < लग्न-(?)]।

लेंड़—(सं०) रेंड़ी का पौधा। दे०—रेंड़। लेंड़ी=लेंड़ का बीज, लेंड़ का खेत या खेती।

[लेंड़ < रेंड़ < एरण्ड-]।

लेंड़ई—(सं०) (१) एक पशु-खाद्य घास (उ० प०)। दे०—चिचोर। (२) धान की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (उ० प०)। दे०—चिचोर।

[लेंड़+ई (प्र०) लेंड़ < रेंड़ < एरण्ड-]।

लेंड़बारी—(सं०) (१) रेंड़ का खेत या बारी। (२) रेंड़ की खेती।

[लेंड़ + बारी, लेंड़ < रेंड़ < एरण्ड-(?), बारी < वाटी, वाट-]।

लेंड़ा—(सं०) जौ या गेहूँ में लगनेवाला एक प्रकार का रोग, जिससे फसल की बाल खाली हो जाती है (प०, पू० मै०)। पर्या०—नेड़ा (मै०)।

[देशी]।

लेंड़ी—(सं०) (१) रेंड़ का बीज, जिससे तेल निकाला जाता है। दे०—रेंड़ी। (२) रेंड़ी, एरंड। (३) बँधा हुआ मल, पाखाना। (४) बकरी या ऊँट का बँधा हुआ मल (चंपा०-१)।

[लेंड़ी < लेंड़+ई (प्र०) < लेंड़ < एरण्ड- ; लेंड़ (३) < लेण्ड-(पर० संस्कृ०) ; लेंड, लिंड (प्रा०) = हाथी की लीद; लेंड़, लीद (हिं०); लिड़ (नें०) ; लीन (कुमा०); लेंडी, लेंड़ (पं०) ; लेंडो (सिं०)]।

लेंड़ुरी—(सं०) मकई के भुट्टे में से दाने निकालने के बाद बची हुई डाँट (शाहा०)। दे०—लेंड़ा।

[लेंड़+री (प्र०) लेंड़ु-(?)]।

लेंड़—(सं०) भैसों को इकट्ठा करके रखने की जगह (उ० प० मै०)। दे०—हिरात।
[लेंड़ < लेण्डक-(?)]।

लेंड़ा—(सं०) (१) मकई के भुट्टे में से दाने निकालने के बाद बची हुई डांट। पर्या०—नेड़ा (पू० मै०), लेंड़ री (शाहा०), बलुरी (पट०, द० पू० मै०), बलरी (द० पू० मै०, द० मुं०), खुखुडी, खोंखरी (द० प० शाहा०, चंपा०), हुड्डी, हाड़ी, हड्डी (द० भाग०, ० प०)। (२) मकई का भुट्टा, जिसमें दाने लगे रहते हैं। (३) कटहल के बीच का वह लंबा और गोलाकार अंश, जिसमें कोये जुड़े रहते हैं (चंपा०-१)। (४) बेवकूफ आदमी।
[लेंड़ा < लेण्डक-(?)]।

लेंड़ियाएल—(क्रि०) पशुओं को इकट्ठा करके रखना (उ० प० मै०)। दे०—बथनियाएल, बथान।
[लेंड़ + इयाएल (प्र०) < लेंड़ < लेंड़ा < लेण्डक-(?)]।

लेंबो—(सं०)। नींबू का वृक्ष (पट०-१)।
[लेंबो < नींबू < निम्बु-]।

लेड़िया-(सं०) (१) जौ की काली सूखी बाल। (२) देशी कुत्ते का बच्चा (चंपा०-१)।
[लेड़िया < लेंड़ी < लेंड़ < लिण्ड-; मिला०—लीद < √लिद्]।

लेड़ का बचवा—(सं०) एक प्रकार की चोइंटा-रहित मछली (सा०-१)।
[लेड़ का+बचवा, लेड़ का (देशी), बचवा <बच+वा (प्र०) < बच्चा < वत्स-]।

लेद—(सं०) लाठे के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी वस्तु का रखा गया बोझा। पर्या०—लेदा, लेदी, लेध (पू० मै०), लेधी (द० पू० बिहा०), पछाड़ (चंपा०), पछेड़ (द० पू० मै०); चकरी (चंपा०, पट०, गया)।
[लेद < लेद < नाद < नद्ध < √नह् + त (प्र०) वा < √लर्द्]।

लेदा—(सं०) लाठा के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी वस्तु का रखा गया बोझा (पट०-१, पू० मै०)। दे०—लेद।
[लेदा < नाद < नद्ध- < √नह्+त (प्र०)]।

लेदिआड़—(सं०) वह स्थान, जहाँ मवेशियों के खाने के लिए चारा काटा जाता है (चंपा०-१)।
[देशी]।

लेदी—(सं०) लाठा के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी वस्तु का रखा गया बोझा। दे०—लेद।

लेध—(सं०) लाठा के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी वस्तु का रखा गया बोझा (पू० मै०)। दे०—लेद।
[लेध < नाद < नद्ध- < √नह्+त (प्र०)]।

लेधा—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू की मथानी को उसके सीधे खड़े खंभे से बाँधनेवाला रस्सा (द० भाग०)। दे०—नाधन। (२) पालो को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी (द० भाग०)। दे०—नारन।
[लेधा < √नह्+त (प्र०)=नद्ध- वा नद्ध्री < √नह्+त्री (=ष्ट्रन्)]।

लेधी—(सं०) लाठा के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी वस्तु का रखा गया बोझा (द० पू० बिहा०)। दे०—लेद।
[लेधी < लेध < नाध < नद्ध-, नद्ध्री < √नह्+त्री (=ष्ट्रन्)]।

लेब, लेव—(सं०) धान रोपने के पहले खेत को तैयार करने के लिए जल से भरने की प्रक्रिया। पर्या०—अन्हाव (द० भाग०)।
[लेव < लेप-(?) < √लिप् (उपदेहे, लिम्पति); मिला०—लेबल (बिहा० क्रि०) = लेबना, गीली मिट्टी से दीवार को पोतना]।

लेव करल—(मु०) धान की बुआई के लिए खेत को तैयार करना (सा०)। दे०-कादो करल (चंपा०)।
[लेब+करल, लेव < लेप- < √लिप्; कर < √कृ-]।

लेबल—(क्रि०) लेबना, गीली मिट्टी से आँगन, दीवार, कोठी आदि को चिकना करना या उनके टूटे हुए भाग को सुधारना।
[लेब + ल (प्र०) < लेब < लेप- < √लिप्, लेप- (संस्कृ०)—लेप, प्लास्टर; लेप, लेब (प्रा०); लेप (हि०)—प्लास्टर; लेप् (ने०)—मलहम; लेप (असा०); लेप (बँ०); लेप (ओ०); लेप (पं०); लेम्बी (ल०); लेपु (सिं०); लेप (गु०); लेप (मरा०)]।

लेरुआ—(सं०) मँड़ुआ का डंठल (प०)। दे०—नेरुआ। (२) गाय का छोटा बच्चा।
[लेरुआ < लेरू < नेरू < नरू < नवरूप-(?) यथा—गोरू < गोरूप]।

लेरू—(सं०) गाय का छोटा बच्चा, बछड़ा।
[लेरू < नेरू < नरू < नवरूप—यथा- गोरू < गोरूप-]।

लेव—(सं०) पानी भर जाने के बाद घास-पात आदि को निर्मूल करने के लिए धान के खेत की जुताई (उ० प०)। पर्या०—लेवा (गया), कादो, कदवा

(उ० प० मैं०), मसाह (उ० प० मैं०)। (२) लेप, लेवना।

[लेव < लेप- < √लिप्-]।

लेवनिहार—(सं०) फसल काटनेवाला (प०)। दे०—कटनिहार।

[लेवनि + हार (प्र०) < लेवनि < लवन < √लू+अन (= ल्युट्-प्र०) < √लूष् (छेदने, लुनाति, लुनीते)]।

लेव, लेब—(सं०) (१) धान रोपने के पहले खेत को तैयार करने के लिए जल से भरने की प्रक्रिया। दे०—लेब। (२) रोपनी के लिए खेत को जोतकर (कादो करके) तैयार करना (चंपा०-१)।

[लेव < लेप < √लिप्]।

लेवा—(सं०) (१) पानी भर जाने के बाद घास-पात आदि को निर्मूल करने के लिए की जानेवाली धान के खेत की जुताई (गया)। दे०—लेव। (२) भींगी जमीन में की जानेवाली बुआई (पट०, गया)। (३) टिकिया पर पत्तों को चिपकाने के लिए व्यवहृत तरल अफीम(पट०-१)। (४) भोजन बनाने के बरतनों को चूल्हे पर चढ़ाने के पहले उनके पेंदे में मिट्टी का लेप करना। (५) किसी चीज के छेद को बंद करना। (६) गेंदरा, खेंदरा, सुजनी।

[लेवा < लेप < √लिप्]।

लेहन—(सं०) कटी हुई अनाज की फसल (चंपा०)। दे०—डाँठ।

लेहना—(सं०) बथान में एक साथ बाँधकर पशुओं को को दिया जानेवाला चारा (शाहा०)। दे०—गवत।

[देशी]।

लेहनी—(सं०) कटी हुई अनाज की फसल (शाहा०)। दे०—डाँठ।

[लेहनी < लवनीय < √लूष् (छेदने)]।

लेहल—(क्रि०) लेना, स्वीकार करना।

[लेह + ल (प्र०) < लेह, < √ला (आदाने, लाति); लेना (हिं०)]।

लोंगचूरा—(सं०) रोपा जानेवाला काले रंग का एक प्रसिद्ध उत्तम धान (द० प० शाहा०)।

[लोंग+चूरा < लवंग+चूर्ण-(?)]।

लोंगरा—(सं०) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाले मोहन के मुँह के ऊपर का कटा हुआ भाग (शाहा०)। दे०—कान्ह। यह पत्थर या लकड़ी के कोल्हू के समय में प्रयुक्त होता था।

[लोंगरा (देशी)]।

लोंगिया मरिचा—(सं०) लौंग की तरह पतला तीता मिर्चा। दे०—मिरिच।

[लोंगिया+मरिचा; लौंगिया < लवङ्ग-, मरिचा < मरिच-]।

लोहड़ा—(सं०) कुएँ से पानी निकालने का चौड़े मुँह का पात्र (शाहा०)। दे०—डोल।

[लोह+ड़ा (प्र०) < लोह < लोह-]।

लोउर—(सं०) लाठी, डंडा (प०)। दे०—लाठी।

[लोउर < लउड़- < लगुड-]।

लोड़िया मिरिचा—(सं०) लौंग की तरह पतला तीता मिर्चा। दे०—लोंगिया मरिचा।

लोट—(सं०) (१) मिट्टी का बरतन, जिससे पान का पौधा पटाया जाता है (सा०)। दे०—लोटी। (२) नोट, करेंसी नोट। (३) हैंडनोट, कर्ज आदि लेने के समय लिखा गया 'स्टाम्प'-युक्त एक कागज।

[लोट < *लुट्ट-, लोट (२) < नोट (अं०)]।

लोटी—(सं०) पान का पौधा पटाने का मिट्टी का बरतन। पर्या०—लोट।

[लोटी < लोट < *लुट्ट-]।

लोढ़ताहर—(सं०) खेतों में गिरी अनाज की बाली को चुननेवाला (पट०, गया, द० मुं०)। दे०—बिननिहार।

[लोढ़ता + हर, लोढ़ता < लोढ़ + ता (प्र०) < लोढ़ < लोढ़न < लून+हर (?); लून < √लू+न (=क्त-प्र०), हर < √हृ-; हर (प्र०)]।

लोढ़न—(सं०) (१) कटनी के समय फसल के इकट्ठा करने की प्रक्रिया। दे०—बटोरन। (२) धान का बाल-सहित डंठल, जो खेत में गिर गया हो तथा जिसे चुनकर इकट्ठा किया गया हो (पट०-१)। (३) कटनी के समय खेत में गिरी बाल को चुनना।

[लोढ़न < लून+हरण या लूनधान्य-(?)]।

लोढ़निहार—(सं०) (१) खेतों में गिरी अनाज की बाल को चुननेवाला। दे०—बिननिहार। (२) अनाज की बाल इकट्ठा करनेवाला। (३) कपास, फूल आदि चुननेवाला (उ० प०)।

[लोढ़नि+हार (प्र०) < लोढ़नि < लोढ़न < लून+हरण, लूनधान्य-(?)]।

लोढ़ल—(क्रि०) (१) कटनी के समय खेत से फसल उठा लेने के बाद गिरी हुई फसल को चुनना (मुं०-१, भाग०, पूर्णि०-१, दर०-१)। (२) कपास, फूल आदि का चुनना।

[लोढ़+ल (प्र०) < लोढ़ < लून+हर-(?); शिल- (संस्कृ०) = खेतों में गिरी बाल को चुनकर संग्रह करना]।

लोढ़ा—(सं०) (१) काटने के बाद खेतों में गिरी हुई अनाज की बाल, जो चुनकर इकट्ठा की जाती है (गया, द० मुं०)। दे०—भरँगा। (२) लोढ़ा या चुना हुआ पदार्थ। (३) चुन-बीनकर एकत्र की गई वस्तु। (४) खेतों में गिरी बाल को चुनकर इकट्ठा करने की प्रक्रिया। (५) एक प्रकार का लंब-गोल पत्थर, जिससे मसाला पीसा जाता है। (६) बड़ा पत्थर (मुं०-१)।

[लोढ़ा < लोढन- < लुन + हर-(?); लोढ़ा (५, ६) < लोष्ठ-, या लोहड़ा < लोह+ड़ा]।

लोढ़ा बिछा—(सं०) खेतों में गिरी अनाज की बाल को चुनने की प्रक्रिया (गया, द० मं०)। दे०—भरँगा।

[लोढ़ा+बिछा, लोढ़ा < लोढन, बिछा <बीज-, बीजक या विचित=चुनकर इकट्ठा किया गया]।

लोढ़िया—(सं०) खेतों में फसल काटने के बाद गिरी हुई अनाज की बाल (पू०, चंपा०)। दे०—भरँगा।

[लोढ़िया < लोढ़ + इया (प्र०) < लोढन < लुन+हर, लूनधान्य-(?)]।

लोढ़ी—(सं०) (१) खेतों में फसल काटने के बाद गिरी हुई अनाज की बाल (पू०, चंपा०)। दे०—भरँगा। (२) मसाला पीसने का पत्थर का लंब-गोल उपकरण।

[लोढ़ी < लोढन ; < लोढ़ी < लोष्ठ-(?)]।

लोढ़ल—(क्रि०) लोढ़ना, खेत में गिरी हुई अनाज की बालों को चुनना (चंपा०-१)।

[लोढ़+ल (प्र०) < लोढ़ < लुन+हर-(?)]।

लोहई हल—(सं०) लोहे का बना हुआ विशेष प्रकार का हल (री०)। पर्या०—लोहई हल (मग०) लोहियाहल (भोज०)।

[लोह + ई (प्र०)+हल, लोहई < लोह < लोहा < लोह- ; हल < हल-]।

लोहरी—(सं०) जानवरों का एक रोग। इसमें मवेशी का पेशाब लाल हो जाता है (पट०-१)।

[लोह+री < लोह < लोहित-(?)]।

लोहम्मा—(सं०) फाल, हल का एक प्रसिद्ध लंबा चिपटा अवयव, जो लोहे का बना होता है और इससे जमीन खोदी जाती है। दे०—फार।

[लोह + म्मा < लोह-, म्मा < मात्र-(?), < मय-(?)]।

लोहरा—(सं०) (१) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। (२) खेतों में गिरी हुई अनाज की बाल को चुननेवाला (द० भाग०)। दे०—बिननिहार। (३) लोहे की बनी वस्तु।

[लोह+रा (प्र०) < लोहित-(?), < लोह-]।

लोहाजंग—(सं०) एक प्रकार का आम, जिसका छिलका लोहे की तरह कड़ा होता है (पट०-१)।

लोहार—(सं०) लोहे का काम करनेवाली शिल्पजीवी जाति (गाइड०)। दे०—लुहार।

[लोह+आर < लोह+कार-, लोह+ √कृ+(प्र०); लोहकार-(संस्कृ०) ; लोहकार-(पा०) ; लोहार (प्रा०); लोहार (हिं०) ; लोहार (ने०) ; ल्वार (कुमा०) ; लोहार (बँ०) ; लुहार (पं०) ; लोहार (ल०) ; लुहार (सिं०) ; लुहार (गु०) ; लोहार (मरा०); लोवक (सिंह०)]।

लोहारी—(सं०) (१) लोहार का काम या जीविका। (२) लोहारों का मुहल्ला या काम करने का स्थान।

लौंग—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध मसाला, जिसका उपयोग भोजन के मसालों या औषधों में किया जाता है। (२) नाक का एक आभूषण, जो लौंग की आकृति का होता है।

[लौंग < लवङ्ग-, लवङ्ग-(संस्कृ०) ; लवंग (पा०); लवंग (प्रा०); लौंग (हिं०, पं०); ल्वाङ, लुवाङ (ने०); लौंग (कुमा०) ; लङ (अस०) ; लंग (बँ०) ; लंग (ओ०) ; लौंगु (सिं०); लवंग (गु०); लवंग (मरा०)। टी० बरो के अनुसार यह आग्नेय (निषाद) जाति का शब्द है।—सं० लै०]।

लौंगिया-(सं०) लौंग की तरह छोटी पतली मिरचाई। (वि०) लौंग की तरह कोई वस्तु।

[लौंग+इया (प्र०) < लवङ्ग-]।

लौंगी-(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[लौंग+ई (प्र०) < लौंग < लवङ्ग-]।

लौआ—(सं०) (१) लत्तर में होनेवाला एक प्रकार का फल, जिसकी तरकारी बनती है (पट०)। दे०—कदुआ। (२) नाई (द० भाग०)।

[लौआ < लौका < अलाबुक-]।

लौका—(सं०) लत्तर में होनेवाला एक प्रकार का लंबा या गोल फल, जिसकी तरकारी बनती है (गया, द० मुं०, प०)। दे०—कदुआ।

[लौका < लाउका < अलाबुक-, अलाबू- ; अलाबुक-(संस्कृ०) ; अलाबु (पा०) ; अलाउ, लाउ (प्रा०); लौका (हिं०); लौको (ने०); लौको (कुमा०); लौका (पं०) ; लाउ (अस०, बँ०, ओ०) ; लब्बा (सिंह०)। जे० प्रिजिलुस्की के मतानुसार इस शब्द का मूल आग्नेय वर्ग का शब्द है। मिला०—लाबु (मलयभाषा—जे० ए० १९३१, पृ० ३१)-(मैला०)]।

लौगाछी—(सं०) फूल-फल आदि का नया बागीचा (द० पू०)। दे०—गछुली।
[लौ+गाछी < नव+गच्छ-]।

लौठा—(सं०) ताल के फल को काटनेवाली हँसिया को घिसकर तेज करने को लंबी लकड़ी। पर्या०—सोंटा (पू०), बलुअठ (द० भाग०), बलैठा (द० मुं०)।
[लौठा < नव+काष्ठ-(?) या < लड्ड-(?)]।



लौनी—(सं०) फसल की कटाई (द० प० शाहा०)। दे०—काटल, कटनी।
[लौनी < लौन+ई (प्र०) < लवन <√लू+ अन (लु<ल्युट्)]।

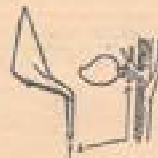
लौनी करल—(क्रि०) फसल काटना (द० प० शाहा०)। दे०—काटल, कटनी।
[लौनी+कर+ल (प्र०) ; लौनी < लवन-, करल <√कृ]।

लौर—(सं०) लंबा डंडा (सं० उ०)। दे०—लाठी।
[लौर < लवड़ < लगुड-, लकुट- ; लगुड- (संस्कृ०) ; लगुल (पा०) ; लउड-, लउल-(प्रा०) ; लौरो (ने०) ; लउर, लाठी (हि०) ; लेउड़ा (बँ०) ; लउरी (ओ०) ; लउडो (सि०); लौडो (गु०); लवडा (मरा०); लवलो, लवलि, रौरो, लौरो (रोमा०); लुर (काश्म०)]।

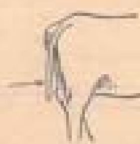


व

बंकुआ—(सं०) खुरपी के फलक का झुका हुआ भाग।
[बंक+उआ (प्र०) < बंक < वङ्क ; वक्र-]।



बंडा—(सं०) (१) टूटी पूँछवाला बैल (चंपा०, गया)। दे०—बांड़। (२) उत्तरदायित्वहीन व्यक्ति, जिसका सगा-संबंधी न हो।
[बंडा < वण्ड-, वण्ट-]।



बँधेरी—(सं०) अरहर या अरहर जैसे दूसरे पौधे के डंठल की बनी रस्सी, जो बोझा बाँधने के काम आती है (गया)। दे०—बँती।
[बँधेरी < बँध+एरी < बन्ध-]।

बरद—(सं०) हल, हेंगा, गाड़ी आदि को खींचनेवाला बैल। पर्या०—बैल। हड्डा बरद = वे बैल, जो हल-हेंगे में चलते हैं, न कि गाड़ी में (चंपा०, मै०)। पर्या०—हरेया बैल।
[बरद < बलीवर्द-]।



बसंत—(सं०) (१) बसंत ऋतु, चैत-बैशाख का महीना (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) बसंत रोग, चेचक।
[बसंत < वसन्त-]।

बसीका—(सं०) (१) वक्फ का इकरारनामा। (२) सरकारी खजाने में जमा किया जानेवाला धन, जिसका सूद जमा करनेवाले के संबंधी को मिले, या धर्मादाय में खर्च हो। (३) ऐसे धन का सूद।
[बसीका (अ०)]।

बस्किती जमीन—(सं०) वासस्थान की भूमि (सा०-१)।
[बस्किती + जमीन, बस्किती < बस्कित < वसति-, जमीन (फा०)]।

बासमती—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्तम श्रेणी का धान (द० भाग०, अन्यत्र)।
[बासमती < वासवती-(संस्कृ०)]।

बासिल बाकी—(सं०) रैयतों का अलग-अलग हिसाब रखने का एक प्रकार का जमींदारी पत्रक। दे०—लग्गीत।
[बासिल+बाकी <वासिल (अ०)+बाकी (फा०)= वसूल किया गया और शेष बचा हुआ]।

बासिलात—(सं०) अधिकार के बिना ही जमीन पर दखल जमाकर लिया जानेवाला पैदावार (सा०-१)।
[बासिलात (अ०)=वसूल किया हुआ, धन]।

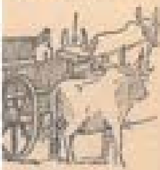
बासूल बाकी—(सं०) किस रैयत की कितनी रकम चुकता की जा चुकी है या बाकी है, इसका अभिलेख (रेकर्ड) (सा०-१)।
[बासूल+बाकी<वासिल (अ०)+बाकी (फा०)]।

बिड़ा—(सं०) कुएँ के मुँह पर उसकी और कूँड़ की रक्षा के लिए घास या नेवारी का रखा गया पूला (पट०, गया)। दे०—सोठा।

बिड़िया—(सं०) तीन बैलों की गाड़ी में आगेवाले बैल की गरदन के नीचे से जानेवाली रस्सी। पर्या०—बिरिया, भिट्ठी (सा०, पू०)।
[बिड़िया (देशी)]।

बिखहरा—(सं०) जानवरों का एक उदर-रोग, जिसमें उन्हें पतला दस्त होता है और वे दुर्बल हो जाते हैं (पट०-१)।
[बिखहरा < विषहर-(?)]।

को खींचनेवाला



शाख का महीना
रोग, नेचक।

रनामा। (२) सर-
जानेवाला धन,
संबंधी को मिले,
धन का सूद।

भूमि (सा०-१)।
< बक्ति <

एक प्रकार का
, अन्यत्र)।
)]।
ग-अलग हिसाब
री पत्रक। दे०—

)+बाकी (फा०)=
भा]।
ा ही जमीन पर
दावार (सा०-१)।
हुआ, धन]।
ही कितनी रकम
है, इसका अभिलेख

)+बाकी (फा०)]।
ी और कूंड़ की
का रखा गया पूला

में आनेवाले बैल
रस्सी। पर्या०—

दर-रोग, जिसमें
दुर्बल हो जाते हैं

बिखहरिया—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें वे थर-थर काँपते हैं, निर्बल हो जाते हैं और उन्हें अरुचि हो जाती है (पट०-१)।

बिछुआ—(सं०) (१) वह रस्सी, जिसके द्वारा जुआ अपनी जगह पर बँधा रहता है। पर्या०-झोंक (उ० पू० मै०)। (२) पैरों की अँगुली में पहनी जानेवाली अंगूठी।



[बिछुआ < बिन्दू (?)]।

बिरित—(सं०) करमुक्त भूमि, जो दान, उपहार आदि में दी जाती है। दे०—बिरित।

बिरितदार—(सं०) करमुक्त भूमि का अधिकारी। दे०—बिरित।

[बिरित + दार (प्र०) < बिरित < वृत्ति- < वृ+ति-]।

बिरिया—(सं०) तीन बैलों की गाड़ी में आगे बैल के नीचे से जानेवाली बाँधने की रस्सी। दे०-बिड़िया।

[बिरिया (देशी)]।

बिसमाढ़ी—(सं०) खुरपी आदि से कोड़ाई करके घास आदि निकालने की प्रक्रिया (पट०)। दे०—भर खुरपी सोहब।

बिसाड़ी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (पू० मै०)।

बिसुनपिरित—(सं०) खलिहान में सब तरह से तैयार अन्न की राशि से देवांश के लिए निकाला गया अनाज, जो ब्राह्मण को या मंदिर को दे दिया जाता है।

[बिसुन+पिरित < विष्णुप्रीति-]।

बेंतड़ी—(सं०) अरहर या उसी की तरह के दूसरे पौधे के डंठल की बनी रस्सी, जो बोझा बाँधने के काम आती है। दे०—बेंती।

[बेंत+ड़ी (प्र०) < बेंत < वेतस्-]।

बेरो—(सं०) एक साथ उगा हुआ बाँस का समूह, बाँस की कोठी (द० भाग०)। दे०—बाँस के कोठी।

बेसना—(सं०) मिट्टी का वह पीठ, जिसपर अनाज की कोठी बैठाई रहती है (द० पू० मै०)। दे०—गोड़ा।



[बेसना < वेशनक-(?) <√विश्]।

बैसाखी—(सं०) (१) बैशाख मास में तैयार होनेवाली फसल (सा०-१)। दे०—रबिहन। (२) लँगड़ों के चलने का डंडा। (वि०) बैशाख मास से संबद्ध।



[बैसाखी < बैशाख < विशाखा-]।

श

शंखद्राव—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जो पिल्ही रोग की दवा समझा गया है। इसका रस अत्यन्त खट्टा होता है। इसके रस से 'चूक' (एक प्रकार की खटाई) बनाया जाता है। इसके रस में शंख तक को गलाने की शक्ति रहती है (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—संखदरार (चंपा०-१)।

[शंख + द्राव < शङ्ख+द्राव-, द्राव <√द्रु +अ (अण्-प्र०)]।

शकुन—(सं०) सगुन, किसी भविष्य की सूचना के निमित्त सूचक संकेत। दे०—सगुन।

[शकुन < शकुन-]।

शशिकुंडली—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[शशि + कुंडली ; शशि < शशिन् = कुंडली < कुंडलिन्-]।

शशिलता—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[शशिलता]।

शामतुलसी—(सं०) एक प्रकार की घास, सामतुलसी (द० मै०)। दे०—फुलेना।

[शाम+तुलसी < श्यामतुलसी-(?)]।

शामजीर—(सं०) एक प्रकार का उत्तम धान, सामजीरा (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—सामजीरा।

[श्याम+जीर < श्याम+जीरक-(?)]।

स

सँइतल-(क्रि०) सँभालना, सँजोकर रखना (चंपा०-१, अन्यत्र)।

[सँइत + ल (प्र०), सँइत < सचित <√पच् (समवाये)-(?) वा < संचित < सम् (उप०) + √चि+क्त]।

सँउस—(सं०) समूचा (चंपा०-१)।

[सँउस < सौंस < सावशेष (?)]।

संकर-(सं०) शक्कर, दानेदार सूखा भूरा। दे०-शक्कर।

[संकर < शक्कर < शर्करा]।

संखदरार—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जो पिल्ही रोग की दवा समझा जाता है। इसका रस अत्यन्त खट्टा होता है। इसक 'चुक' बनाया जाता है, जो एक प्रकार की चटनी है। इसमें शंख तक को गलाने की शक्ति रहती है। (चंपा०-१)। दे०—शंखद्राव।

[संख+दरार < शंखद्राव-]।

सँगरा—(सं०) (१) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ जलस्रोत। (२) जलस्रोत। (३) जलस्रोत से निकला पानी (द० भाग०)। दे०—सोता।

[सँगरा < संग्रह-(?) < सम्+ग्रह्+अ (प्र०)]।

संगाहा—(सं०) जमींदार की जमीन की जोत में किसानों द्वारा दी गई सहायता (उ० प० मै०)। दे०—हरी।

[संगाहा < संग्रह-(?)]।

सँगिया—(सं०) मजबूत और भारी फलकवाली एक प्रकार की हँसिया (पू० मै०)। दे०—पपरिया।



[सँगिया < साँग (बिहा०) = (बरछा जैसा एक नुकीला अस्त्र) < शङ्कु-(?)]।

संचा—(सं०) अनाज की वह बाल, जिसमें दाने बनने लगे हों, किंतु वे खाने योग्य नहीं हुए हों। (२) मकई की बाल, जो सद्यः निकली हो (चंपा०-१)।

[संचा < संचय < सम्+चय- < √चि]।

सँजहरिया—(सं०) (१) सायंकाल तक पूरा होनेवाला काम। (२) साँझ तक, सायंकाल पर्यंत, साम में।

[सँजहर+इया (प्र०) < सँजहर < सँजह+र (प्र०) < सँन्झ < साँझ < सन्ध्या]।

सँजहरिया जोत—(सं०) एक दिन में साँझ तक जोत ली जानेवाली जमीन। दे०—साँझले, सँजहरिया जोत।

[सँजहर+इया (प्र०)+जोत ; सँजहर + सँजह + र (प्र०) संझ < सन्ध्या ; जोत < युक्त-]।

सँझिया—(सं०) (१) साम तक होनेवाला काम। (२) साँझ तक, सायंकाल पर्यंत, सायंकाल में (प०)। सँझिया जोत=एक दिन में जोत ली जानेवाली जमीन। दे०—साँझले।

[संझ+इया (प्र०) < संझ < संझा < सन्ध्या]।

सँझिया जोत—(सं०) साँझ तक जोत ली जानेवाली जमीन। दे०—सँझिया, साँझले।

[सँझिया + जोत, सँझिया < सन्ध्या ; जोत < युक्त-]।

संठ—(वि०) सूखा हुआ, शुष्क (मुँ०-१)।

[संठ < षण्ड-(?) वा षण्ड-(?)]।

संठल—(क्रि०) (१) पानी के अभाव में खेत का सूखना। (२) प्यास मालूम होना (मुँ०-१)। पर्या०—संठला (वि०)।

[संठ+ल (प्र०) < संठ < षण्ड-वा (देशी)]।

सँठला—(वि०) सूखा हुआ। प्यासा (मुँ०-१)। दे०—संठल।

संठी—(सं०) सनई के ऊपर से सन निकाल लेने पर बचा हुआ डंठल।

[संठी < संठ < सन+ठी < शणास्थी, वा शणास्थि-]।

संतोला—(सं०) संतरा, नारंगी (दर०-१, पूणि०-१)।

[देशी]।

संधा—(सं०) वह कच्चा ऊख, जो छूते ही टूट जाय और जिसका रस पनखोर (पानी जैसा) हो (सा०-१)।

[संधा < (?)]।

संस—(सं०) फसल की बाढ़, वृद्धि, सम्पन्नता, समृद्धि (मुँ०-१)।

[संस < सस्य वा शस्य-(?)]।

सँहिजन—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसकी फली और फूलों की भाजी होती है, सहिजन। (२) सहिजन की फली (शाहा०)। दे०—सैयन।

[सहिजन < शोभाञ्जन-]।

सइल, सैला—(सं०) जुए के दोनों पल्लों को जोड़ने के लिए बैल के कंधे के बाहर के छेद में लगाई गई कील (प०)। पर्या०—कनैल (उ० प०, पू०)।

[सइल < सैल < शल्य < शला-(?)]।

सकरकंद—(सं०) एक प्रसिद्ध लंबा मीठा कंद, जो फलाहार आदि में खाया जाता है। उत्तर बिहार में गरीबों का यह मुख्य भोजन है। पर्या०—ललका अलुआ (सं० उ०), अल्हुआ (द० पू० मै०), अलुआ (पू० चि०)।

[सकर+कंद < शर्कराकन्द-(?)]।

सकरकन—(सं०) शकरकंद, एक मीठा कंद। यह कच्चा, उबालकर या पकाकर खाया जाता है (पट०-१)। दे०—सकरकंद।

[सकर+कन < शर्कराकन्द-(?)]।

सकरचीनी—(सं०) पीले रंग का ऊख, जो चूसने के लायक नहीं होता, किंतु चीनी अधिक निकलती है (पट०, गया)। दे०—खेड़ा।

[सकर+चीनी, सकर < शक्कर < शर्करा ; चीनी (देशी) < चीन (एक प्रसिद्ध देश)]।

सकारे—(सं०) प्रातःकाल, सुबह (मुँ०-१)। पर्या०—सकेरे, सँकारे।
[सकारे < सकाल < स+काल-]।

सकाल-(सं०) सवेरा, प्रातःकाल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सकाल < स+काल]।

सकालु—(सं०) एक प्रकार का कंद। यह उजला और मीठा होता है (पट०-१)।
[सक+आलु < शर्करा+आलुक-(?)]।

सकील—(सं०) वह बैल, जिसके माथे से नथुने तक एक लकीर-सी हो (पट०-१)।
[देशी]।

सकुची—(सं०) एक प्रकार की चोंइटा-रहित मछली (सा०-१)।
[देशी-?]।

सकूनत-(सं०) निवास-स्थान, रहने की जगह (पट०-१)।
[सकूनत (फा०)]।

सकूनत में रहल—(सं०) निवास-स्थान के निकट का भूमिखंड (पट०-१)।
[सकूनत में (विभ०)+रहल (धा०)]।

सकेदमी-(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें घरघराहट होती है और वे मुश्किल से साँस ले पाते हैं (पट०-१)।
[सकेदमी < सकदम (?)]।

सकेरे—(सं०) सकाल, सवेरा। दे०—सकारे।
[सकेरे < सकारे < सकाल-]।

सख्त—(वि०) कड़ा, कठोर (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सख्त < सख्त (फा०)]।

सक्कर—(सं०) गुड़ का छोआ निकालकर बनाया गया दानेदार पीला पदार्थ, भूरा। पर्या०—संकर (पट०, गया)।
[सक्कर < शर्करा, शर्करा (संस्कृ०), सक्करा (प्रा०) शक्कर (हि०), शक्कर (फा०)]।

सगरदिना—(सं०) एक दिन में जोत ली जानेवाली जमीन (चंपा०, द० मुँ०)। पर्या०—ठकहरिया (पट०)।
[सगर + दिना ; सगर < सकल- ; दिन+आ (प्र०) < दिन-]।

सगुन—(सं०) (१) शकुन, अच्छा संकेत। (२) शुभ मुहूर्त।
[सगुन < शकुन-]।

सगुनी—(सं०) गाड़ी के सामनेवाले भाग के शुरू का स्थान, जहाँ से त्रिभुजाकार नुकीला भाग शुरू होता है (पट०, गया)। दे०—सगून।
[सगुनी < सगुण (?) < स+गुण ; गुण=(रस्सी-सहित]।

सगून—(सं०) बैलगाड़ी के सामनेवाले भाग के शुरू का स्थान, जहाँ से त्रिभुजाकार नुकीला भाग शुरू होता है। पर्या०—सगुनी (पट०, गया)।
[सगून < सगुण-(?)]।

सग्गड़-(सं०) हलकी बैलगाड़ी। पर्या०-सागड़, लढ़िया (गया, शाहा०)।
[सग्गड़ < शकट-(?)]।

सजकुम्हड़ि—(सं०) कोंहड़ा, श्वेत कूष्मांड (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सज + कुम्हड़ि, सज < सित < श्वेत-(?) कुम्हड़ि < कुम्हड़ < कुष्माण्ड-]।

सजमनि—(सं०) लौका (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—सजीवन, कदुआ।

सजाव—(सं०) बिना मथा हुआ शुद्ध दही। दे०—सजावल।

सजावल—(सं०) जमींदार का तहसीलदार (मुँ०-१)।
[सजावल < सजावुल (तु० वि०) = उगाहनेवाला, वसूल करनेवाला]।

सजावल—(सं०) छाली-सहित शुद्ध दही, जो मथा हुआ नहीं होता है। पर्या०—सजाव।
[सज + आवल (प्र०) < सज < सज्ज-(?) < √सस्ज्]।

सजावल—(क्रि०) सजाना, सिलसिले से रखना।
[सज + आवल (प्र०) < सज < सज्ज- < √सस्ज् (संगि)।

सजीवन—(सं०) लत्तर में होनेवाला एक प्रसिद्ध फल, जिसकी तरकारी होती है, लौका (पू० मै०)। दे०-कदुआ। पर्या०-सजमनि (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सजीवन < संजीवन]।

सजोर—(सं०) घनी बुआई (गं० उ०)। दे०—घन।
[देशी]।

सटका—(सं०) (१) चाबुक (शाहा०)। दे०—चाभुक। (२) लंबा डंडा (गं० उ०)। दे०-लाठी। (३) छड़ी।
[देशी]।

सटपट—(वि०) पूरा-पूरा, न कम न अधिक, यथोचित (मुँ०-१)।
[सट+पट < सट्टा+पट्टा या < सटौआ+पटौआ (देशी)]।

सटावल—(क्रि०) (१) ऋण आदि सधाना, पूरा करना। (२) एक-एक कर वसूल करना। (३) बदले में

दूसरी चीजें देना (मुं०-१)। (४) छुआना, एक साथ करना। (वि०) सधाया हुआ, छुआया हुआ।
[सट+आवल (प्र०) < सट (देशी)]।

सटौआ पटौआ—(सं०) (१) विशेष समय के अंदर ऋण के मूल और सूद को चुकता करने के लिए खेतों को बंधक रखने का एक प्रकार। दे०—पटौआ। (२) एक प्रकार की लेनदेन।
[सटौआ+पटौआ (देशी)]।

सट्टा—(सं०) (१) बैल हाँकने के 'अरउआ' में बटी हुई सुतली का चाबुक (पट०-१)। (२) चाबुक लगा हुआ डंडा, जिससे मवेशियों को चलाते हैं (चंपा०-१)। (३) खेत में पानी जमा करके फुलाये हुए धान के बीज को छींटना। (४) खेत आदि पटाने के लिए किया गया इकरारनामा (चंपा०-१)। (५) एक प्रकार का नीलामी व्यापार-विनिमय।



[सट्टा (देशी), सट्ट (देशी प्रा०)=सट्टा, विनिमय, (पा० स० म०)]।

सड़ल-(क्रि०) फल आदि का सड़ना। (वि०) सड़ा हुआ।
[सड़+ल (प्र०)<सड़<सड़्<√शद् (बिखरने)]।

सतंजा—(सं०) अनेक प्रकार का मिला हुआ अनाज। दे०—सतंजी।

सतंजी-(सं०) (१) सात प्रकार का मिला हुआ अनाज। इसमें धान, साठी, मूंग, गेहूँ, जौ, सरसों और तिल मिले होते हैं। यह सप्तधान्य श्राद्ध और पूजा आदि में व्यवहृत होता है (पट०-१)। (२) अनेक प्रकार का मिला हुआ अनाज।
[सतंजी < सत + अंजी < सप्त + अन्नादि (< अनाज)]।

सतत्तर-(सं०) (१) सात दाँतों का वयस्क बैल। सात दाँतों के पूरे हो जाने पर बैल वयस्क माना जाता है (द० भाग०)। दे०—सतदर। (२) सतहत्तर (७०+७=७७) की संख्या।
[सत+त्तर < सप्त + तर (?) वा < सप्तदन् < सप्तदन्त-]।

सतदंता—(सं०) सात दाँतों का वयस्क बैल (प० मैं०)। दे०—सतदर।
[सत+दंत < सप्तदन्त-]।

सतदर—(सं०) सात दाँतों का वयस्क बैल। पर्या०-सत्तर (सं० द०), सतत्तर (द० भाग०), सतदंता (प० मैं०)।
[सत+दर < सप्तर (?) वा सप्तधर- वा सप्तदन् < सप्तदन्त-]।

सतधरिया—(सं०) हल के 'मूड़' के नीचे हरीश के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (पट०)। दे०—समधरिया।
[सत + धरिया < सप्त + धर + इया (प्र०)<सप्तधर-(?) वा शतधर-(?)]।



सतनजा—(सं०) कई प्रकार का मिला हुआ अनाज (पट०-१)। दे०—सतंजा, सतंजी।
[सत + नजा < सत + अनाज; सत < सप्तन्; अनाज < अन्नादि-, अन्नाद्य-(?)]।

सतपुतिया—(सं०) तलर में होनेवाली एक प्रसिद्ध फली, जो प्रायः बरसात में होती है और तरकारी के रूप में खाई जाती है, झिंगनी। दे०—तरोई।
[सत+पुतिया < सत+पुत+इया (प्र०) < सप्त-पुत्रिका (?)]।

सतभीखा—(सं०) चौबीसवाँ नक्षत्र, शतभिषक्। यह प्रायः माघ शुक्ल में पड़ता है।
[सत+भीखा < शतभिषक्-]।

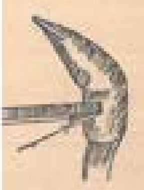
सतराज—(सं०) एक अगहनी उजला धान (सा०-१)।
[सत+राज < सप्तराजि (?)]।

सतरिआ—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (शा०)। (२) एक महीन दानोंवाला सुगंधित धान, जिसका चावल उजला होता है (सा०-१)।
[सतर+इआ (प्र०) < सप्तत्र (?) वा (देशी)]।

सतालू—(सं०) एक प्रसिद्ध फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सतालू < सप्तालुक-(?) वा < शफ्तालू (फा०)=आड़ू। मिला०-सप्तालुक]।

सतुआ—(सं०) चना, जौ आदि को भूनकर, पीसकर बनाया गया खाद्य। पर्या०—सत्तू, सतुई (शाहा०), सितलबुकनी, सातू (शाहा०), सातु (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सतु+आ (प्र०) < सतुअ < सक्तुक- ; सक्तु-, सक्तुक (संस्कृ०) ; सत्तु, सत्तुअ (प्रा०) ; सत्तू, सतुआ (हिं०) ; सत्तू (पं०) ; सातु (ने०) ; सातु (कुमा०) ; सोतु (कश्म०) ; सतूँ (सिं०) = भूना हुआ अनाज ; सातु (गु०) ; सातु (मरा०)]।

सतुहवा बइर—(सं०) खाने में सत्तू की तरह भस-भस करनेवाला एक प्रकार का बेर (पट०-१)।
[सतुह + वा (प्र०) < सतुह < सक्तुक- ; बइर < बदरी]।



सतर—(सं०) (१) सात दाँतों का वयस्क बैल (गं० द०)। दे०—सतदर। (२) एक निश्चित संख्या (७०)।
[सत+र (प्र०) < सप्तति-]।

सतू—(सं०) चना, जौ आदि को भून-पीसकर बनाया गया खाद्य। दे०—सतुआ।
[सतू < सक्तु-, सक्तुक-; दे०—सतुआ]।

सतधर—(सं०) सात दाँतों का वयस्क बैल (प०)। दे०—सतदर।
[सत+धर < सप्तधर-<सतधर-<सतधर-(?)]।

सदियत—(सं०) विवाह के अवसर पर किसानों की ओर से जमींदार को मिलनेवाला विशेष उपहार। दे०—बियाहदानी।
[सद + इयत (प्र०) < सदी < शादी < शादी (फा०)]।

सदियात—(सं०) विवाह के अवसर पर किसान की ओर से जमींदार को मिलनेवाला विशेष उपहार। दे०—बियाहदानी।
[सद+इयात (प्र०) < सद < शादी (फा०)]।

सदियाना—(सं०) विवाह के अवसर पर किसान की ओर से जमींदार को मिलनेवाला विशेष उपहार। दे०—बियाहदानी।
[सद+इयाना (प्र०) < सद < शादी (फा०)]।

सधर—(सं०) सात दाँतोंवाला बैल (पट०-१)।
[स+धर < सत+धर (?)]।

सधरिया—(सं०) हल का एक भाग, जो एक कील-जैसा होता है। यह लगना और हल का सारा भार वहन करता है (पट०-१)।
[सधर + इया (प्र०) < सधर < साधार-(?)]।



सधौआ पटौआ—(सं०) (१) ऋण के रूप में लिये हुए रुपयों के लौटाने की अवधि तक बंधक के तौर पर ली गई जमींदारी। दे०—पतौतन। (२) विशेष अवधि के निमित्त लिये गये ऋण के मूल और सूद को चुकता करने के लिए भूमि को बंधक रखने का एक प्रकार। दे०—पटौआ।
[सधौआ + पटौआ (यौ०); सधौआ < सधावल (बिहा०) < √ साधि (साधयति); सधाना (हि०); पटौआ < पटावल (बिहा०); पटाना (हि०) = पटाना, सौदा पटाना, पूरा करना; < √पट्; पाटि (पाटयति, उत्पाटयति)]।

सन—(सं०) (१) पटुए की जाति का एक पौधा, जिसके छिलके या रेशों से रस्सी बनाई जाती है। (२) इस पौधे के छिलकों के रेशे, जो पौधों को पानी में गलाकर निकाल लिये जाते हैं। पर्या०—कसमिरा, सोन (उ० पू० मैं०), सनई (चंपा०)। (३) भुट्टे के ऊपर के रेशों का गुच्छा (गया, चंपा०)। दे०—भुआ। (४) कुदाल की धार और पासा के मिलने की जगह (द० भाग०)। दे०—कंठी।
[सन < शण, शण-(संस्कृ०); शणँ (प्रा०, पा०); सन (हि०); सण (कुमा०); सन् (ने०); सण (गु०); सण (मरा०); हण (सिंह०)]।

सन—(सं०) संवत्, ईसवी, हिजरी या फसली-संवत्।

सनई—(सं०) (१) सन या पटुआ का डंठल (गं० उ०)। पर्या०—सनै (उ० पू० मैं०), सनैठा (शाहा०), सनाठी (द० मुं०), सनसनाठी (द० भाग०)। (२) एक प्रसिद्ध पौधा, जिसके रेशों से रस्सी आदि बनती है (चंपा०-१)।
[सन+ई (प्र०) < शण स्थ-(?)]।

सनखड़का—(सं०) सन के पौधों में लगनेवाला एक रोग। इसके कारण सन के बीज नष्ट हो जाया करते हैं (पट०-१)।
[सन+खड़का, सन < शण-, खड़का < खोका < खाखोल < √खाद्]।

सनचा—(सं०) मकई की नई बाल (चंपा०-१)।
[सन+चा (प्र०) < सन < शण-]।

सनठल—(क्रि०) किसी पौधे आदि का पूरी तरह विकसित न होना (सा०-१)। (वि०) पूरी तरह विकसित न हुआ पौधा। पर्या०—मराइल, गूजल।
[सनठ+ल (प्र०) < सनठ < शणास्थि-(?)]।

सनसनाठी—(सं०) सन या पटुए का डंठल, जो छाल निकालने के बाद बचा रहता है (द० भाग०)। दे०—सनई।
[सन+सन+आठी, शण+अस्थि या शणाष्ठी-(?)]।

सनहवा—(सं०) वह आम, जिसमें रेशे (सन) अधिक हों और गूदे का अंश कम हो (पट०-१)।
[सन+हवा (प्र०) सन < शण-]।

सनहा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद। इसमें सन या रेशे अधिक होते हैं (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सन+हा (प्र०) < सन < शण-]।

सनाठी—(सं०) सन या पटुए का डंठल, जो छाल निकाल लेने के बाद बचा रहता है (द० मुं०)। दे०—सनई।
[सन+आठी < शणास्थि, शणाष्ठी-(?)]।

सनाय-(सं०) (१) सन या पाट का पौधा या बीज (मुं०-१)। (२) एक प्रकार की तीखी पत्ती, जो दवा में प्रयुक्त होती है।
[सन+आय < शन+पादप-(?)]।

सनै—(सं०) सन या पटुए का डंठल (उ० पू० मै०)। दे०—सनई।
[सनई < शण-]।

सनैठा—(सं०) सन या पटुए का डंठल (शाहा०)। दे०—सनई।
[सन+ऐठा < शणास्थि, शणाष्ठी]।

सपट जाइल—(क्रि०) (१) अधिक वर्षा के बाद तेज गरमी पड़ने पर जमीन में पपड़ी पड़ जाने के कारण फसल के बीज की बाढ़ का रुक जाना (प०)। (२) पपड़ी पड़ जाने के कारण बीज की बाढ़ का रुकना (प०)। पर्या०-सपटा जाइल (प०), पपरी (शाहा०, पू० मै०), तावा (गं० द०, द० प० शाहा०), सेवठा (शाहा०, पट०) सेवटा, मुंदा।
[सपट+जाइल (धौ०), सपट, < सपपंट-(?)]।

सपटा जाइल—(क्रि०) (प०)। दे०—सपट जाइल। (सं०) दे०—सपट जाइल। (२) पपड़ी पड़ जाने के कारण बीज का न बढ़ना।

सपाटू-(सं०) एक प्रसिद्ध फल (पट०, दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सपाटू (देशी)]।

सपुरा-(सं०) धान की खेती की पांत (सा०, द० मै०)। पर्या०-सांपुर (उ० पू० मै०), पास (द० प० शाहा०), पाँती (शाहा०)।
[सपुरा < सम्पूर-(?)]।

सपेला-(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सफई—(सं०) कड़ाह से रस निकालने की लकड़ी की बनी कलछी या डब्बू (गं० द०)। दे०—कठही।

सफका—(सं०) साफ गुड़, जो पीलापन लिये उजला होता है (सा०-१)। (वि०) साफ वस्तु।
[सफ+का (बिहा० प्र०) <सफ< साफ (फा०)]।

सफगोल—(सं०) अन्न जैसे छोटे दानोंवाली एक प्रसिद्ध वस्तु, जो पानी या दूध आदि तरल वस्तु के साथ मिलने पर फूल-फैलकर लसदार बन जाती है। इसके दाने और ऊपर की भूसी खाई जाती है। दाना बादामी रंग का और भूसी हलकी-सी एक लाल रेखा लिये उजली होती है। दे०—असफगोल।
[सफ+गोल, इसफगोल < अस्पगोल=(फा०)]।

सफेद—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उजला धान (पट०-१)। (वि०) शुभ्र, स्वच्छ, उजला।
[सफेद (फा०)]।

सफेदा—(सं०) एक लंबा, उजला प्रसिद्ध पेड़, जो बागों या सड़कों के किनारे लगाया जाता है, युकलिप्टस।
[सफेदा < सफेदः (फा०)]।

सफैया—(सं०) कड़ाह से रस निकालने की लकड़ी की बनी कलछी या डब्बू (गं० उ०)। दे०—कठही।
[सफैया < सफाई < साफ (फा०)]।

सबइया बेल—(सं०) (१) बड़ा बेल, जो लगभग सेर-सवा सेर का होता है (पट०-१)। उस बेल का पेड़ (पट०-१)।
[सबइ+या (अना० प्र०) + बेल ; सबइ < सवई < सवाई < सपाद-, बेल < बिल्व-]।

सबजा—(सं०) (१) भांग की पत्ती (पट०, गया)। दे०-भांग। (२) हरी घास आदि। (वि०) हरे वर्ण का।
[सबजा < सब्जः (फा०)=हरी घास, हरियाली]।

सबजी—(सं०) (१) हरे रंग की उड़द (पट०-१)। दे०-तुलबुल्ली। (२) हरी तरकारी, घास। (वि०) हरे रंग की कोई वस्तु।
[सबजी < सब्जः (फा०)=हरी घास, हरियाली]।

सबुजा—(सं०) (१) हरा रंग। दे०—कुसुम। (२) हरे रंग की घास आदि। (वि०) हरे रंग की साड़ी आदि। (३) बंबइया आम (चंपा०-१)।
[सबुजा < सब्जः (फा०)]।

सबुजी—(सं०) भांग की पत्ती (उ० प०)। दे०—भांग।

सबेर—(सं०) (१) सबेरा, प्रभात। (२) सकाल, जल्दी से (दर०-१, पूर्णि०-१)। मिला०—देर सबेर (मु०)-देरी या जल्दी।
[सबेर < सबेल < समान+वेला]।

समइल—(सं०) कनैल (चंपा०-१)।
[समइल < समैल< शमी+कोल, शम्या-(?)]।

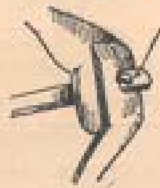
समजिरवा—(सं०) एक महीन लंबा अगहनी धान। यह सफेद होता है और नख के अंदर समा जाने योग्य होता है (सा०-१)।
[सम + जिरवा < साम + जिर + वा (प्र०) < श्यामजीरक-(?)]।

समजीरवा—(सं०) श्याम वर्ण का एक उत्कृष्ट महीन धान (पट०-१)।
[सम+जीरवा < श्यामजीरक-(?)]।

समतोला—(सं०) (१) नारंगी। नारंगी का पेड़ (चंपा०-१)।
[देशी]।

समधर—(सं०) हल के 'मूड़' के नीचे हरीस के मुंह में दिया हुआ पच्चड़ (गया)। दे०—समधरिया।
[सम+धर < श्यामधर-(?)]।

समधरिया—(सं०) हल के मूड़े के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़। यह संपूर्ण हल को एक साथ संबद्ध रखता है। पर्या०—सतधरिया (पट०), समधर (गया), तरैल (द० भाग०), तरैली (द० प० शाहा०), हुमना (पट०)।



[सम+धर+इया (प्र०)<सम+धर (?)]।

समरथ—(सं०) समतल जमीन (चाप)।

[समरथ < समथर < समस्थल, समतल-(?)]।

समसमा—(सं०) सिमसिमा, मैंहा हुआ (मुं०-१)।

समसेर—(सं०) (री०)। दे०—उस नम्बर ४५३।

[समसेर < शमशेर-(?)]।

समहुत—(सं०) (१) फसल-कटाई के आरंभ में शुभ मुहूर्त्त देखकर काटकर लाया गया थोड़ा-सा अनाज (उ० प०)। पर्या०—सुमुत (उ० प० मै०), नेवान (सा०), नेबान (चंपा०, मै०)। (२) फसल बोने के लिए शुभ मुहूर्त में की जानेवाली पहली जुताई। (पट०, शाहा०)। दे०—हर महूतर। (३) ऊख पेरना आरंभ करने के समय का उत्सव (शाहा०)। दे०—पिथार। (४) साल के शुरू (जेठ-असाढ़) में पहले-पहल शुभ मुहूर्त में हल चलाना। इस रोज हल और पालो की पूजा फूल-अक्षत से की जाती है।

[समहुत < सम्मुहूर्त-वा समाहुत < सम् + आ (उप०)+ह्वे (बुलाना)+त (प्र०); < समाहूत=इकट्ठा किया हुआ, निमंत्रित]।

समहूत—(सं०) वर्ष के आरंभ में पहले-पहल (प्रायः जेठ-असाढ़ में) हल चलाना। इस समय पहली बार हल चलाकर एक मुट्ठी अन्न पश्चिमोत्तर दिशा में छींटा जाता है (मै०)।

[समहूत < सम्मुहूर्त-]।

समांठ—(सं०) (१) मूसल के अंत में लगी हुई लोहे की एक गोल वस्तु। दे०—समाठ। (२) हाथ से धान कूटने का गोलवृत्त लकड़ी का बना हथियार-विशेष, मूसल।

[सम+आंठ < सम+काष्ठ-(?)]।

समा—(सं०) बाजरे की जाति का एक महीन अन्न (द० भाग०)। दे०—सावाँ।

[समा < श्यामाक-]।

समाठ—(सं०) (१) मूसल के अंत में लोहे की लगी गोल वस्तु (द० मुं०, पट०, गया)। पर्या०—समांठ (द० मुं०, पट०, गया), समौआ। (२) हाथ से धान कूटने का लंबा मोटा हथियार-विशेष।

[सम+आठ < सम+काष्ठ-]।

समार—(सं०) (१) धारी लगाकर बोने का वह प्रकार, जिसमें पहली धारी के साथ-साथ ही बोने के लिए एक दूसरी धारी भी जोती जाती है। इस प्रकार का उपयोग अधिकतर भदई फसल की खेती में होता है। दे०—भठाएल। (२) बिना जोती हुई जमीन में छींटकर अनाज बोने का प्रकार (पट० द० मुं०)। दे०—छिट्टा। (३) दूसरी जोत, दूसरी चास। (४) दूसरी बार जोती हुई जमीन। (५) पहली जोती हुई रेखा को काटकर की गई दूसरी जुताई (द० पू० मै०)। दे०—आरा। पर्या०—सोमार, सोमारि (दर०-१, पूर्णि०-१)। (६) धान की खेती में धान के बोने के पश्चात् की जानेवाली घास-पात आदि की सफाई और बीज को दबाने के लिए पुनः की जानेवाली हलकी-सी जुताई (चंपा०, द० पू० मै०)। दे०—उनाह।



[समार < सम+आर (बिहा०)]।

समाह—(सं०) धान की खेती में धान बोने के पश्चात् की जानेवाली घास-पात आदि की सफाई और बीज को नीचे दबाने के लिए पुनः की जानेवाली जुताई (पट०)। दे०—उनाह।

[समाह < समाहार-(?)]।

समियाँ—(सं०) मूसल को फटने से बचाने के लिए उसके अंत में लगी हुई लोहे की अँगूठीनुमा वस्तु (सा०)। दे०—साम।

[समिया < शम्या < शमी]।

समुद्रबाली—(सं०) एक प्रकार का महीन सुगंधित धान (मुं०-१)।

समेल—(सं०) (१) पालो में बँधी हुई रस्सी, जो बैलों की गरदन के नीचे से जाकर दूसरी ओर पालो की दूसरी कील में लटका दी जाती है (उ० पू० मै०)। दे०—जोती। (२) लकड़ी की दो कील, जो सदा-कदा पालो में भीतर की ओर लगाई जाती है, जिससे कि बैल का कंधा समान रीति से रहे (दर०-१, पूर्णि०-१)।



समेली—(सं०) बैलगाड़ी का एक अंग, जो जुए से जुड़ा रहता है (मुं०-१)।

[सम+एली < शम्या+कील]।

समैया-(सं०) पालो के दोनों ओर बैलों की गरदन के पहले हरीस की ओर लगाया हुआ लकड़ी का टुकड़ा (पट०, द० पू०)। दे०—समैल।
[सम+पैया < शम्या-(?)]।

समैल—(सं०) (१) पालो में दोनों ओर बैलों के कंधे के पहले हरीस की ओर लगाई हुई लकड़ी की कील (पट०, द० पू०)। पर्या०—समैला, समैया (पट०, द० पू०)। (२) पालो में बँधी हुई रस्सी, जो बैलों की गरदन के नीचे से जाकर दूसरी ओर कील में लटका दी जाती है (उ० पू० मै०)। दे०—जोती। (३) पालो के दोनों किनारे बैलों के कंधे के बाद लगाई गई लकड़ी या लोहे की कील (प०)। दे०—सैला। (४) जुए के अंत में दोनों किनारों पर लगाई जानेवाली लोहे या लकड़ी की एक-एक कील। यह काम करते समय बैलों को पालो से बाहर खिसकने से रोकती है। (५) जुए के दोनों पल्लों को जोड़ने के लिए बैल के कंधे के नीचे से जुए के छिद्र में लगाई गई कील (पट०, द० पू०)। पचार (शाहा०)। समैला।
[सम+ऐल < शम्या+कील-(?)]।

समैला—(सं०) (१) हल के जुए के दोनों पल्लों को जोड़ने के लिए बीच में लगाई गई कील (पट०, द० पू०)। दे०—समैल। (२) पालो में दोनों ओर हरीस की ओर लगाई गई लकड़ी की कील। पर्या०—समैल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

समौआ—(सं०) मूसल के अंत में लगी हुई लोहे की अँगूठीनुमा वस्तु (पट०, गया, द० मुं०, द० भाग०)। दे०—समाठ।
[समौआ < शम्या]।

सम्मल—(सं०) जुए के दोनों किनारों पर बैलों के कंधे को खिसकने से बचाने के लिए लगाई जानेवाली लोहे की कील। दे०—समैल।
[सम्मल < शम्या+कील (?)]।

सयरात—(सं०) भूमि का राजस्व के अतिरिक्त दूसरा कर (पट०-१)।

सरंग-(सं०) आकाश, आसमान। सरंगपताली=ऊपर से नीचे की ओर लटका हुआ सींग। (२) उस प्रकार के सींगोंवाली गाय या भैंस (मुं०-१)। पर्या०—सरक, शरंग।

सरंगपताली—(सं०) वह बैल या दूसरा मवेशी, जिसका एक सींग नीचे की ओर लटका हुआ और दूसरा ऊपर की ओर उठा हुआ हो। दे०—सरगपताली।
[सरंग+पताली, सरंग<स्वर्ग-;पताली<पाताल-]।

सर—(सं०) दो ओर से बड़ी-बड़ी रस्सियों से बँधा हुआ लटकता बरतन, जिसे दो मनुष्य पकड़कर गड्ढे आदि से पानी निकालकर खेत सींचते हैं (चंपा०, गया)। दे०—सैर।
[सर < सैर < शर-(?)=नरकट]।

सरइला—(सं०) आकार में बड़ा और घना मछली मारने का जाल, टोटका (चंपा०-१)।
[सरइला (देशी) या < सरेर (हिं०) = बँधी की रस्सी]।

सरई—(सं०) (१) पान की लत्तर का आधार-स्तंभ, जो प्रत्येक कोरों के बीच में छह-छह पड़ते हैं (मं० उ०, द० पू० मै०)। पर्या०-सरही, ईंकर (शाहा०), सरकंडा (द० पू०)। (२) सरकंडा, सरपत।
[सर+ई० (प्र०) < सर < शर-]।

सरउर—(सं०) एक प्रकार की घास (सा०-१)।
[सर+उर < शर+फुल्ल- या शर:पूर-]।

सरकंडा—(सं०) (१) पान की लत्तर का आधार-स्तंभ, जो प्रधान कोरों के बीच में प्रायः छह-छह पड़ते हैं (द० पू०)। दे०—सरई। (२) एक प्रसिद्ध घास, जिससे मूँज निकलती है।
[सर+कंडा < शर+काण्ड-]।

सरकंडी—(सं०) सरपत, सरी (पट०-१)। दे०—सरी।
[सर + कंडी, सर < शर-; कंडी < कंडा < काण्ड]।

सरक जाएल—(मु०) (१) अधिक भार के कारण बैल का लँगड़ाना। दे०—भर जाएल। (२) पीने या खाने के समय पेय या खाद्य के किसी अंश के ऊपर चढ़ जाने के कारण सरक जाना। (३) खिसक जाना, हट जाना।

सरकल—(क्रि०) सरकना, हटना, अपने स्थान से अलग होना।
[सरक+ल (प्र०); सरक < सर < √सृ (गतौ), या 'अक' या 'क' के साथ √सृ (सरति), सृ (पा०), सर (प्रा०-सरइ); सरकना (हिं०); सर्कनु, सर्कितु, सनु॑ (सि०); सरणो (कुमा०); सरा (बँ०); सरकिवुँ (गु०); सरकणे (मरा०); सेरिक (काश्मि०)]।



सरकवाँसी—(सं०) रस्सी की वह गाँठ, जो खींचने से सरक जाय (चंपा०-१)। पर्या०—ससरफाँसी।
[सरक + वाँसी, सरक < सरकल ; वाँसी < फाँसी < फाँस < स्पर्श-(?) वा < पाश-]।

सरकार—(सं०) (१) जमींदारी का स्वामी। दे०—जिमिदार। (२) प्रशासन, राज्य। राज्य-व्यवस्था करनेवाली वैधानिकअधिकारी-समिति। (३) आदर-सूचक शब्द।
[सरकार (फा०)]।

सरगपताली—(सं०) वह मवेशी, जिसका एक सींग नीचे की ओर झुका हुआ और दूसरा ऊपर की ओर उठा हुआ हो। पर्या०—सरंगपाताली, डेव (चंपा०, पू० मैं०), कंसासुरी (द० प० शाहा०), पतालसिंगी (द० पू०)।
[सरग+पताली; सरग < स्वर्ग-(=ऊपर का लोक), पताली < पाताल (=नीचे का लोक)। यहाँ दोनों शब्द ऊपर-नीचे के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं]।

सरब घाँसन—(सं०) जानवरों का एक प्रकार का जुकाम, जिसके साथ खाँसी भी होती है (पट०-१)।
[सरब+घाँसन (दौ०)]।



सरदर—(सं०) इनारा की ऊपरी सतह के मध्य में पैर रखकर पानी भरने के लिए लगाई गई लकड़ी (सा०-१)।
[सरदर (फा०)=एक सिरे से, औसत में]।

सरदर परतर—(सं०) प्रति बीघा अफीम की साधारण उपज। पर्या०—परता (गं० उ०, गया), माल (शाहा०), पैदा (पट०)।
[सरदर + परतर ; सरदर (फा०)=औसत में, एक सिरे से ; परतर < पड़ताल=पड़ताल]।



सरपत—(सं०) (१) एक प्रकार की रस्सी बनाने की घास, जो बोझा बाँधने या बरतन साफ करने के काम में आती है। दे०—कुसा। (२) कुश की जाति की एक प्रसिद्ध घास, जिससे मूँज निकलती है (दर०-१, पूर्णि०-१, पट०-१)।
[सरपत < शरपत्र-]।

सरपन्नाह—(सं०) नदी के बाँध को मजबूत करने के लिए उसके पीछे की ओर से दी गई लकड़ी तथा ताड़ के पत्तों की रोक (पट०-१)।
[सर+पन्नाह ; सर < शर-(?) वा < सर (फा०)+ पनाह (फा०)]।

सरबती—(सं०) एक प्रकार का नींबू (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सरबत+ई < शर्बत (फा०)]।



सरभंडा—(सं०) टमाटर (चंपा०-१)
[देशी]।

सररा—(सं०) घिरनी की धुरी, जिसपर वह नाचती है (द० प० शाहा०)। दे०—अखौत।
[?]।

सरसों—(सं०) पीला या काले-नीले वर्ण का गोल दानों-वाला एक प्रसिद्ध तेलहन, जिससे कड़ुआ तेल निकलता है। दे०—सरिसों।
[सरसों < सर्षप-]।

सरसौंढा—(सं०) सरसों की सूखी डाँट (पट०-१)।
[सरसों + औंढा ; सरसों < सर्षप-; औंढा < (ब०)-(?)]।

सरहंची—(सं०) शाक-जाति की एक पशु-खाद्य घास (गया, द० मुं०)। दे०-चेंच। पर्या०-सरहची (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सरह—(सं०) भूमि के राजस्व का भाव या दर। दे०-दर।
[सरह < शरह (अ०)=विवरण, टीका, दर, भाव; शरह लगान=भूमि-राजस्व की दर]।

सरहतल—(सं०) अन्न ओसाने के समय उसके ऊपर गिरी हुई अनाज की डंटियों को बुहार देना। (चंपा०-१)।
[सरहत+ल (प्र०) < सरहत (देशी)=खलिहान में फैले हुए अनाज को बुहारने की झाड़ू (=हिं० श० सा०)]।

सरहथ—(सं०) खलिहान में अन्न बुहारने की झाड़ (उ० प० मैं०)। दे०—सिरहथ।
[सरहथ (देशी) वा सरहत (हिं०)]।

सरहबंदी—(सं०) भूमि के राजस्व का भाव या दर। दे०—दर।
[सरहबंदी < शरह (फा०), बंदी < बन्ध-(?)]।



सरही—(सं०) रस्सी की छोटी जाली, जिसे लग्गी में लगाकर आम आदि फल तोड़े जाते हैं (मुं०-१)।
[सरही (देशी), सरेरा, सरेखा (हिं०) = (१) नाव के पाल में लगी रस्सी, जिसके ढीला करने से पाल की हवा निकल जाती है। (२) मछली पकड़ने की बंसी की डोरी (=हिं० श० सा०)]।

सरही आम—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सरहे—(सं०) गाँव के बाहर की वह जमीन, जबतक उसमें फसल लगी रहती है (द० प०)।

सराबी—(सं०) पानी पटाने का किसान का हक (पट०-१)।

[सर+आब+ई (प्र०) (फा०)]।

सरामोहअन-(सं०) वह जमीन, जिसका राजस्व घटता-बढ़ता नहीं हो (पट०-१)।

[सरा+मोहअन (अ०), सरा (अ०)=गीली मिट्टी या मिट्टी के नीचे का भाग; मोहअन < मुअअन (अ०)=नियत, मुकर्रर]।

सरिकदार—(सं०) जमींदारी या किसी संयुक्त संपत्ति के हिस्सों का अधिकारी। दे०—हिस्सेदार।

[सरिक + दार (प्र०) < शरीक, शरीकदार (फा०)]।

सरिया के जोतल-(क्रि०) जोतना, हल चलाना (चंपा०)। दे०-जोतल। पर्या०—सिराउर के धरल (चंपा०)।

[सरिया+के (विभ०) + जोत + ल (प्र०)-(बो०) सरिया < सीर-(?)=हल; जोत < जुत < युक्त- < √युज्+क्त (प्र०)]।

सरियावल-(क्रि०) सैंतना, सुधारना, ठीक करना रास्ते पर लाना, समेटना (मुं०-१)।

[सर + इयावल (प्र०), सर < (?) या <सलीक (अ०)=शिष्टता, क्रम, तरतीब, योग्यता (?)]।

सरिसों—(सं०) पीला या काले-नीले वर्ण का गोल दानोंवाला तेलहन, जिससे कड़ुआ तेल निकलता है (ग० उ०, द० उ०)। पर्या०—सरसों, सरिसो, गोट (द० भाग०), गोट (उ० पू० मैं०)।

[सरिसों < सर्षप-; सर्षप-(संस्कृ०), सरिसव (प्रा०); सरसों, सरसो (हिं०); सर्सिँ (ने०); सर्स्यु (कुमा०); सर्षा (बँ०); सोरिसा (ओ०); सरसों (पं०); सरहेओं (ब०); सबा (सिं०); सरसव (गु०)]।

सरिसो—(सं०) सरसों। दे०—सरिसों।

सरिहन—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो बैसाख में बोया जाता है और सावन में काटा जाता है (गं० उ०)। (२) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का उजला धान (द० मुं०)। (३) अगहन में तैयार होनेवाला एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।

[सरि+हन < शालि+धान्य या < सीर (हल)+धान्य (?)]।

सरी—(सं०) कास की तरह की एक घास। यह ईख की रक्षा के लिए आल पर लगाई जाती है (पट०-१)। पर्या०—सरपत।

[सर+ई (प्र०) < सर < शर-]।

सरी के मूड़ा—(सं०) सरपत की जड़ (पट०-१)।

[सरी+के (विभ०) + मूड़ा; सरी < शर-; मूड़ा < मूल-]।

सरीफा-(सं०) (१) एक प्रसिद्ध फल, सीताफल (पट०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) उस फल का वृक्ष।

[सरीफा < श्रीफल- या < सीताफल (-हि० श० सा०); शरीफा (फा०)]।

सरे—(सं०) भूमि के राजस्व का भाव या दर। दे०—दर।

[सरे < शरह (फा०)]।

सरेदनी—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें उनका दम फूलता है, जीभ बाहर निकल आती है और सुस्ती आ जाती है (पट०-१)।

सरेह—(सं०) (१) गाँव से बाहर की जमीन (प०)। (२) गाँव से बाहर की वह भूमि, जिसमें खेती होती है (चंपा०-१)। पर्या०—बहरभूँ (द० मुं०)।

[सरेह < सरह < शरह (फा०)]।

सरैला—(सं०) मछली पकड़ने का टोकरीनुमा जाल।

[देशी]।

सरौंची—(सं०) (१) एक पशु-खाद्य घास (गया, द० भाग०)। दे०—चेंचा। (२) एक प्रसिद्ध साग।

[देशी]।

सरौती, सरबती—(सं०) एक प्रकार का पतला ऊख। इसका गुड़ अच्छा होता है (पाप)।

[सरौती < सरबती < शर्बती (फा०)-(?)]।

सर्वजया-(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[< सर्वजया-(?)]।

सर्वे-(सं०) (१) भूमि की नाप-जोख, सर्वेक्षण। (२) भूमि को नापकर मानचित्र बनानेवाला राजकीय विभाग (सा०-१)। (३) जाँच-पड़ताल।

[सर्वे (अं०)]।

सलगम—(सं०) मूली की जाति का एक प्रसिद्ध गोल कंद, जिसकी तरकारी होती है। पर्या०—सलजम (गं० उ०)।

[सलगम < शलजम (फा०)]।

सलजम—(सं०) मूली की जाति का प्रसिद्ध गोल कंद, जिसकी तरकारी होती है (गं० उ०)। दे०—सलगम।

[< शलजम (फा०)]।

सलयाना—(सं०) जमींदार के अमलों का साल-भर का वेतन (पट०-१)।

[सलयाना < सल < साल (फा०)]।

सलाथ—(सं०) एक प्रकार का साग। यह धानी रंग का तथा बहुत पौष्टिक होता है (पट०-१)।
[सलाद (फा०)]।

सलामी—(सं०) (१) पुलिस-अधिकारियों, मैजिस्ट्रेट के अर्दलियों या पुलिस-कांस्टेबुलों के गाँव में आने पर या शिविर डालने पर उन्हें दिया जानेवाला उपहार। पर्या०-कमरखोलाई, इनाम (प० मै०)। (२) जमींदार को किसान की ओर से मिलनेवाला विशेष उपहार। (३) राजकीय अधिकारी या जमींदार के ग्राम-निरीक्षण के लिए आने पर किसानों द्वारा उपस्थित किया गया उपहार। दे०-नजराना। (४) जमीन बंदोबस्त लेते समय मूल्य के अतिरिक्त जमींदार को दी जानेवाली भेंट (पट०-१)। (५) विशेष अवसर पर या भेंट करने पर किसी व्यक्ति को दिया जानेवाला उपहार।
[सलाम+ई (प्र०) < सलाम (फा०)]।

सल्फरटंकी—(सं०) चीनी मिल में लोहे का वह हौज, जहाँ सल्फर (गंधक) गलाया जाता है। इसे गलाकर चीनी साफ की जाती है (री०)।
[सल्फर+टंकी < सल्फरटैंक (अं०)]।

सल्हा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)।
[सल्हा < शालि-(?)]।

सवैया—(सं०) (१) उधार लिये हुए अन्न का दिया जानेवाला सवाया सूद (भाग०-१)। दे०—दोबरा। (२) सवागुना। (३) सवा का पहाड़ा। (४) एक प्रसिद्ध छंद।

ससरफंद—(सं०) ऐसा फंदा, जो ससरने या खींचने से खुल जाय (मुं०-१)।
[ससर + फंद, ससर < संसर-(?), फंद < स्पन्द-(?)]।

ससरल—(क्रि०) खिसकना। साँप आदि सरीसृपों की गति में चलना (मुं०-१)। लोको०-'खाकर पसरऽ मारकर ससरऽ'=खाकर पसरो और मारकर भाग जाओ, खिसक जाओ।
[ससर + ल (प्र०) < ससर < संसर < सम् (उप०) √सृ (गतौ)]।

सहजन—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसमें लंबी फली और उजले झब्बेदार फूल लगते हैं। इसकी पत्तियाँ इमली की पत्तियों-जैसी होती हैं। इसकी फलियों, फूलों और कोमल पत्तों की भाजी बनती है। (२) इस वृक्ष की फलियाँ (मै०, पट०, द० भाग०)। दे०—सैयन।
[सहजन < शोभाञ्जन-]।

सहतूत—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसमें लगभग दो-ढाई इंच लंबी फली लगती है। यह फली खट्टी-मीठी होती है। (२) इस वृक्ष की फली (पट०-१)।
[सहतूत < शहतूत (फा०)]।

सहदेइया—(सं०) लाल रंग का एक प्रकार का धान (द० प० शाहा०)।
[सहदेइया < सहदेइ+या (प्र०) < सहदेवी-(?)]।

सहलावल—(क्रि०) (१) आम आदि फलों का पककर पुलपुल हो जाना। (२) पानी लगने से जमीन का अत्यंत मुलायम हो जाना (चंपा०-१)। (३) शरीर को छूकर धीरे-धीरे सहलाना।
[सहल+आवल (प्र०) सहल < (?)]।

सहार—(सं०) (१) नये अन्न में से निकालकर मुसहरों को दिया जानेवाला एक अंश।
टि०—नये तैयार अन्न में से कुछ अंश निकालकर तीन भाग किये जाते हैं। पहला अंश ब्राह्मण को दिया जाता है, जिसे **बिसुनपिरीत** कहते हैं; दूसरा अंश गृह-देवता के लिए होता है, जिसे **अगौ** कहते हैं और तीसरा अंश (देहुरी) मुसहरों को दिया जाता है, जिसे **सहार** कहते हैं ? 'अगौ' को किसान अपने पास रख लेता है (द० मुं०)। (२) फसल के बोझों को हटा देने पर खलिहान में पड़ा हुआ अनाज (भाग०-१)। दे०—अगवार।
[सहार < सहारा या < सहकार (?)]।

सहेर—(सं०) भेड़, बकरी आदि पशुओं का समूह (द० मुं०)। दे०—भुंड।
[सहेर (देशी)]।

सहोरवा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सहोर + वा (प्र०) < सहोर < शाखोट-(?) = एक प्रकार का जंगली वृक्ष, जो प्रायः शुष्क भूमि में होता है (-हि० श० सा०)]।

साँई—(सं०) एक प्रकार की पशु-खाद्य घास (गया, शाहा०)। पर्या०—सामी (उ० पू० मै०)।
[साँई < श्यामी-(?)]।

साँग—(सं०) हल का सारा सरंजाम (द० भाग०)। पर्या०—साँगह (द० मुं०), साँग (प०)।
[साँग < संग्रह-(?)]।

साँगह—(सं०) हल का सारा सरंजाम (द० मुं०)। दे०—साँग।
[साँगह < संग्रह-(?)]।

साँझ—(सं०) सायंकाल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[साँझ < सन्ध्या < सम् (उप०) + √ ध्यै (चिन्तायाम्)]।

साँझले—(क्रि० वि०) साँझ तक, सायंकाल में। (वि०) सायंकाल-पर्यंत होनेवाला कार्य (प०)। पर्या०—सँझिया, सँजहरिया।

साँझले जोत—(सं०) एक दिन में जोत ली जानेवाली जमीन। पर्या०—सँझिया जोत, सँजहरिया जोत।

साँटा—(सं०) (१) चाबुक (द० भाग०)। (२) मवेशियों को मारनेवाली छोटी छड़ी। दे०—डाँग।
[साँटा < सट्टा < सट्ट (देशी)]।



साँटा बाँधल—(मु०) किसी कलमी पेड़ की डाल में बीजू की छोटी डाल को बाँधकर कलम करना (पट०-१)।
[साटा+बाँध+ल (प्र०)]।

साँटा लेंबो—(सं०) कलमी नीबू।
[साँटा < साटल (बिहा० क्रि०)+लेंबो<नीबू< निम्बु-]।

साँड़—(सं०) (१) वह बैल, जो बधिया किये बिना ही दाग (त्रिशूल-चक्र से अंकित) कर बाहर छोड़ दिया जाता है। (२) हल में लगा हुआ लंबा डंडा, जिसमें पालो बाँधा जाता है (पट०, गया, द० मुं०)। दे०—हरिस।
[साँड़ < षण्ड-]।

साँपिन महँसी—(सं०) वह भैंस, जिसके मुँह के पास भौंरी हो (पट०-१)।
[साँपिन + महँसी; साँपिन < सर्पिणी; महँसी< भैंस < महिषी (?)]।

साँपुर—(सं०) धान की खेती की पाँत (उ० पू० मै०)। दे०—सपुरा।
[साँपुर < सम्पूर-]।

साँबर—(सं०) काला-धूसर वर्ण का पशु। पर्या०—सौंरा।
[साँबर < शबल-; वा < श्यामल-]।

साँबाँ—(सं०) बाजरे की जाति का एक महीन अनाज।
[साँबाँ < श्यामाक-]।

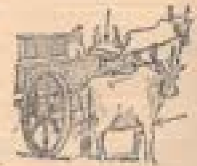
साँबाँ—(सं०) एक प्रकार का घटिया अनाज (चंपा०-१, मुं०-१)।
[साँबा < श्यामाक-]।

साओंख—(सं०) अगाऊ लेकर काम करनेवाला हरवाहा (द० भाग०)। दे०—अगवड़।
[साओंख < (?)]।

साओन—(सं०) श्रावण मास। यह भारतीय वर्ष का पाँचवाँ और वर्षा ऋतु का पहला महीना पड़ता है, जो जुलाई के अंतिम और अगस्त के आदि के १५-१५ दिन होता है। इसकी पूर्णिमा में प्रायः श्रवण नक्षत्र पड़ता है, अतः श्रावण नाम पड़ा है। दे०—सावन।
[साओन < सावन < श्रावण < श्रवण+अण् (प्र०); श्रावण-(संस्कृ०); सावण-(प्रा०); श्रावण (हि०); सावन (ने०); श्रावुन (कश्म०); सावण (पं० स०); सॉवणु (सिं०); सावण (गु०)]।

साग—(सं०) (१) मटर, बूट, खेसारी आदि के कोमल टूसे (अग्रभाग)। (२) उन टूसों की बनी भाजी (मं० उ०)। पर्या०—भाजी (प०)। (३) क्षुप-जाति की या पत्र-जाति की तरकारी (पट०-१)।
[साग < शाक < शक-(?)]।

सागड़—(सं०) बैलगाड़ी। दे०—सग्गड़।
[सागड़ < सग्गड़ < शकट-वा < शक्वर-(=बलवान् बैल—दे० प्र०)]।

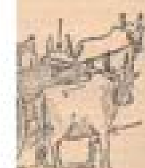


साटा—(सं०) मवेशियों को हाँकने का चाबुक (सा०, सा०-१, द० मै०)।
[साटा < सट्टा (देशी)]।

साटा आम—(सं०) कलमी आम (पट०-१)।
[साटा+आम, साटा < साटल (बिहा०)=साटना, जोड़ना; आम < आम्र-]।

साटीपाटी—(सं०) हरवाही का एक तरीका, जिसमें किसान एक हल के लिए हरवाहों को रखता है और वे हरवाहे परस्पर एक दूसरे को आठ दिन पर अवकाश दिया करते हैं (उ० पू० मै०)। दे०—पट।

साठी—(सं०) एक प्रकार का लाल धान, जो बोने के दिन से केवल साठ दिनों में पक जाता है। यह जेठ में बोया जाता है और सावन में काटा जाता है। इसके लिए कहावत है—'साठी पाके साठ दिन, बरखा होखे रात दिन'=रात-दिन वर्षा होने पर भी साठी धान साठ दिनों में ही पक जाता है। पर्या०—गँभरी, गम्हरी (पू०)।
[साठी<षष्टिक-; <षष्टि-]।



साद़ा आमन—(सं०) बैलगाड़ी के पहिये का वह आवन, जो बिना कील का रहता है (पट०-१)।

सानल—(क्रि०) (१) किसी वस्तु को पानी आदि तरल पदार्थ से मिलाना (मुं०-१)।

[सान+ल (प्र०)<सान<स्यान<√स्त्यै+क्त]।

सानि—(सं०) (१) जल में भूसे आदि को मिलाकर बनाया गया पशुओं के लिए खाद्य। (२) किसी वस्तु को तरल पदार्थ में डुबोकर निकाल लेने की प्रक्रिया दे०—भागा। दे०—बोर।

सानी—(सं०) पशुओं के लिए घास की कुट्टी या भूसा आदि को माँड़ या जल में कोराई, खली आदि के साथ मिलाकर तैयार किया गया खाद्य।

[सानी<सानल (बिहा० क्रि०) (देशी) या स्यान <√स्त्यै+क्त या <सान<√षण् (दाने)]।

सानीखानी—(सं०) पशुओं के लिए तैयार किया गया गीला खाद्य।

सानीपानी करल—(क्रि०) पशुओं को सानी-पानी देना, खिलाना-पिलाना। पर्या०-गौत देल (पट०, गया)।

[सानी+पानी+कर+ल (प्र०) (यौ०)]।

सापट—(सं०) (१) किसी किसान के द्वारा किसी के बदले में काम कर देना (प०)। (२) एक किसान के बैल जब किसी दूसरे किसान के बैल के साथ इस शर्त पर बहता है कि दोनों किसान एक-एक दिन के अंतर से उसे अपने खेत में जोतेंगे, तब उस प्रक्रिया को सापट कहते हैं (चंपा०-१)। पर्या०-पार (चंपा० २)।

[सापट (देशी)]।

साफली—(सं०) अमरूद, सेव, शरीफा (मुं०-१, द० भाग, पूर्णि०, सं० प०)।

[साफली<शेफाली (?) या<सीताफल-(?)]।

सापड़—(सं०) लोहे की मोटी छड़ (रो०)।

[अं०]।

साम—(सं०) (१) मूसल को फटने से बचाने के लिए उसके अंत में जोड़ा गया लोहे का अँगूठीनुमा वस्तु-विशेष। पर्या०—समौआ (पट०, गया, द० पू०), सखियाँ (सा०)। (२) खुरपे की बेंट के उस भाग को, जिसमें उसकी पूंछ ठोकी रहती है, अधिक मजबूत करने के लिए उसमें लगाई गई लोहे की चूड़ी। पर्या०—सामी, चुरिया (शाहा०), मुहेरी (द० प० शाहा०)।

[साम<शम्या (?)]।

सामजीरा—(सं०) (१) एक श्रेष्ठ सुगंधित धान। यह धान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसके बाद बासमती या बसमतिया का स्थान आता है। तीसरा स्थान सेल्हा का होता है। (२) रोपा जानेवाला एक श्रेष्ठ धान (गया)।

[साम+जीरा<श्यामजीरक-]]

सामा—(सं०) (मुं०-१)। दे०—साँवाँ।

[सामा<श्यामाक-]।

सामी—(सं०) (१) खुरपे की बेंट के उस भाग को, जिसमें उसकी पूंछ ठोकी रहती है, अधिक मजबूत करने के लिए उसमें ठोकी हुई लोहे की चूड़ी। (दे०—साम। (२) एक प्रकार की घास (मुं०-१, दर०-१, पूर्णि०-२)।

[सामी<शम्या<शमी-(?)]।

सारंगी—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू की मथानी को उसके सीधे खड़े खंभे (हरसा) से बाँधने का रस्सा। दे०—नाधना। (२) एक प्रसिद्ध तन्त्रीवाद्य, सारंगी।

सार—(सं०) (१) गाय-बैलों के रहने का मकान (प०)। दे०—गौसार। (२) साला, पत्नी का भाई।

[सार<शाला-; <श्याल-]।

सारा—(सं०) (१) ढेंकी की धुरी (द० प० शाहा०)। दे०—अखौत। (२)।

[सारा<सार-(संस्कृ०)=बल, दृढ भाग-(?)]।

सारो—(सं०) भादो या आसिन महीने में होनेवाला धान (चंपा०-१)।

[सारो<सार<शालि-]।

सालिस—(सं०) खेत में लगी फसल के मूल्य को आँकने के लिए नियुक्त अमीन के साथ रहनेवाला पंच।

[सालिस<सालिसिटर (अं०)]।

सालियाना—(सं०) वर्ष-भर में किये हुए काम की, वर्ष में एक बार मिलनेवाली मजदूरी। पर्या०—सालीना (उ० प०), बरखी (उ० पू० मैं०)। (वि०) साल-भर में होनेवाला कोई कार्य।

[सालियाना<साल (फा०)]।

साली—(सं०) (१) किसी हथियार की की गई मरम्मत आदि के लिए बढ़ई या लोहार को मिलनेवाली मजदूरी (सा०)। पर्या०—खरिहानी (चंपा०, मैं०)। (२) साली, पत्नी की बहन।

[साल (?) <साल (फा०); साली<श्याली]।

सालीना—(सं०) वर्ष-भर में किये हुए काम की एक बार मिलनेवाली मजदूरी (उ० प०)। दे०—सालियाना। (वि०) साल में होनेवाला कार्य या फसल आदि।

[साल+ईना (प्र०) <साल (फा०)]।

सालीना खरच—(सं०) जमींदारी के विषय में होनेवाला गाँव का साल-भर का खर्च (द० प० मै०)। दे०—गाईं खरच।
[सालीना+खरच, सालीना<साल (फा०), खरच <खर्च (फा०)]।

सालीस—(सं०) दे०—सालिस।

सालल—(क्रि०) (१) हल, गाड़ी, खाट आदि के सभी अंगों को मिलाकर तैयार करना, जोड़ना (सा०-१, चंपा०)। पर्या०—सरेहल, गँड़ल। (२) दुखना, पीड़ा होना, व्यथित करना।
[साल+ल (प०)<साल<हलय-<हल-;हला-]।

सावन—(सं०) (१) श्रावण मास। भारतीय वर्ष का पाँचवाँ और वर्षा ऋतु का प्रथम मास, जो जुलाई के अंतिम और अगस्त के आदिम १५-१५ दिन होता है। इसकी पूर्णिमा में प्रायः श्रवण नक्षत्र पड़ता है, अतः श्रावण नाम पड़ा है। पर्या०—साओन। (२) श्रवण नक्षत्र। यह गणना में बाईसवाँ पड़ता है।
[सावन<श्रावण<श्रवण<श्रु+अन (=ल्युट्)]।

सावाँ—(सं०) बाजरे की जाति का एक महीन अनाज। पर्या०—सामा (मै०), साम (द० भाग०)।
[सावाँ<श्यामाक-]।

साहड़—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[साहड़ (देशी) या <सहोर<शाखोट-(?)]।

साहपसंद—(सं०) एक छोटा स्वादिष्ठ आम (चंपा०-१)।
[साह+पसंद (यौ०), साह < शाह; पसंद < प्रसन्न।

साहमर्दन—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा० १)।

साहिल—(सं०) (१) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (शाहा०)। (२) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (सा०)।

साही—(सं०) एक प्रकार का छोटा जन्तु। (२) एक जातीय उपाधि। (वि०) साह से संबद्ध।

साहेबाना—(सं०) एक मोटा अगहनी पीला धान, जिसका चावल मटमैला होता है (सा०-१)।

सिंगगर—(सं०) वह मवेशी, जिनके सींग सीधे हों (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सिंगजुड़ा—(सं०) वह बैल या दूसरा मवेशी, जिसके दोनों सींगों के अग्रभाग कपाल के बीच में मिलते हों। पर्या०—सिंगजूटल, गौसिंघी (द० प० मै०)।



सिंगजूटल—(सं०) वह बैल या दूसरा मवेशी, जिसके दोनों सींगों के अग्रभाग कपाल के बीच में मिलते हों। दे०—सिंगजुड़ा।

सिंगरहार—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सिंगरा—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है। यह प्रायः तिरहुत के पूर्वी भाग में होता है।

सिंगहा—(सं०) खेत तक जानेवाला जलप्रवाह का मार्ग या नाली (द० भाग)। दे०—दैन।

सिंघ—(सं०) (१) सींग। (२) एक प्रसिद्ध हिंसक जीव, सिंह। (३) एक उपाधि, जो सिंह का अपभ्रंश है।

सिंघट्टा—(सं०) वह मवेशी, जिसका एक सींग टूट गया हो। दे०—एकसिंघा।

सिंघड़िया कयला—(सं०) एक प्रकार का केला, जिसमें कम मिठास होती है (पट०-१)।

सिंघा—(सं०) (१) गाँव के बाहर की जमीन (हजा०)। दे०—बहरसी। (२) एक प्रकार की चोईंटा-रहित मछली (सा०-१)। (३) एक प्रकार का पुराना बाजा, जो सींग के आकार का होता है और फूँककर बजाया जाता है (द० भाग०, पूर्णि०, मुं०, सं० प०)। (४) ट्रैक्टर से टेलर को जोड़नेवाला सींग-जैसा लोहे का एक टेढ़ा औजार, जिसे 'थुनैक' भी कहते हैं (रो०)।

सिंघाड़ा—(सं०) (१) जल में उगनेवाली लत्तर की एक प्रसिद्ध तिनकोनी काँटेदार फली। (२) सिंघाड़ा जैसा तिनकोना नमकीन खाद्य, जो आलू, मटर आदि भरकर पकाया जाता है।

सिंघी—(सं०) एक प्रसिद्ध मछली (चंपा०-१, सा०-१)। पर्या०—सिंही (द० भाग०)।

सिंचवाह—(सं०) हत्था से पानी बिखेरकर खेत को सींचनेवाला पुरुष (पट०)। दे०—हथवाहा।

सिंड़ाह—(सं०) वह जमीन, जिसका पानी सूख गया हो (शाहा०)। दे०—पनमार।

सिंही—(सं०) एक चोईंटा-रहित मछली (द० भाग०)। दे०—सिंघी।

सियरचिक्खा—(सं०) एक प्रकार की मोटी मुलायम रसदार ईख, जिसे सियार भी चूस लेते हैं। इसमें चीनी की मात्रा अधिक रहती है (सा०-१)।

सिकंदरी गज—(सं०) (१) अढ़ाई हाथ की एक नाप (सं० उ०)। (२) दो हाथ की नाप। पर्या०—बरा गज, बड़का गज (सं० उ०)।

सिकमी—(सं०) (१) साधारण काश्तकारों के नीचे एक रैयत।

टि०—द० पू० तिरहुत में शिकमी जमीन का राजस्व छोटे रैयतों के लिए नगदी रुपयों में निश्चित किया जाता था; किंतु चुकता करने के समय बाजार-भाव से उतने रुपये के बराबर अनाज ले लिया जाता था। दूसरे स्थानों में यथानिर्णीत रूप में अनाज भूमि-कर के रूप में लिया जाता था।

पर्या०—कुरखौली, कुरताली पेटावाला (उ० प०), कोलिऐली असामी (पू० मै०)। (२) ठीके की या जमींदारी की वह भूमि, जो किसी निश्चित कर पर किसी रैयत को जोतने के लिए दे दी गई हो। दे०—मोकर्ररी।

टि०—शिकमी जमीन वह है, जो वस्तुतः मालिक के संरक्षण में रहती हो और जोतनेवाला रैयत उसका राजस्व जमींदार को ही दे देता हो, न कि राजकोष में जमा करता हो (चंपा०-१)।

[सिकमी < शिकमी (फा०)=भीतरी, पेट-संबंधी]।

सिकमी रइयत—(सं०) (१) सिकमी जमीन जोतनेवाला रैयत। (२) वह रैयत, जो किसी बड़े काश्तकार के अधीन हो या किसी जमींदार का निश्चित कालावधि तक रैयत हो।

[सिकमी+रइयत < शिकमी+रैयत (फा०)]।

सिकमी रैयत—(सं) दे०—सिकमी रइयत।

सिकरा—(सं०) सीकड़, जंजीर। दे०—सिक्कर।

[सिकरा < सीकड़ < शृङ्खल-]।

सिकरी—(सं०) (१) सीकड़, जंजीर। दे०—सिक्कर। (२) गरदन में पहनने की सोने-चाँदी की बनी लंबी जंजीर। पर्या०—सिकड़ी (सा०, दर०-१, पूर्णि०-१)।

[सिकरी < शृङ्खल-; सिकड़ी, सिकरी (हि०); सिक्रि (ने०)]।

सिकहर—(सं०) सामान को ऊपर टाँगने के लिए रस्सियों का बना जालीदार साधन-विशेष, सिक्का या छिक्का (सा०-१)। पर्या०—सिक्का, सीका, सीक, सींक।

[सिक + हर; सिक < शिक्य; हर (प्र०) या < घर < गृह (?); शिक्य (संस्कृ०); सिक्का (पा०); सिक्कय (प्रा०); सिका, छींका (हि०); सिको (ने०); सीको (कुमा०); सिखुर (कश्म०); सिक, सिका (बं०); सिका (ओ०); सीकु (गु०); सीके (मरा०); सिक्का (सिंह०)]।



सिकहुली—(सं०) मूँज की बनी हुई छोटी डलिया (गं० द०)। पर्या०—सिकौली।

[सिक+हुली; सिक < सीक < इषीक-, हुली < कृति-, कृत-, < √ वेष्ट् (तन्तुसन्ताने); सिकहुली (हि०)=मूँज, कास आदि की बनी हुई डलिया]।

सिकहुल—(सं०) एक प्रकार की घास (चंपा०-१)।

सिकारगाह—(सं०) शिकार का स्थान, शिकारगाह।

सिकारगाही—(सं०) मछली मारने या शिकार करने का अधिकार (प०)।

[शिकार+गाही < शिकारगाह-(फा०)]।

सिकौली—(सं०) मूँज की बनी छोटी डलिया। दे०—सिकहुली।

[सिक+औली, सिक < सीक < इषीक-, औली < कृति-, या कृत < √ वे (वयति)]।

सिक्कड़—(सं०) सीकड़, जंजीर। दे०—सिक्कर।

[सिक्कड़ < शृङ्खल-]।

सिक्कर—(सं०) सीकड़, जंजीर। पर्या०—सीकर, सिकरी, सिक्कड़।

[सिक्कर < शृङ्खल-]।

सिक्का—(सं०) (१) छींका, रस्सी का बना हुआ वह साधन-विशेष, जो रस्सी के सहारे लटकता रहता है और उसपर वस्तुएँ रखी जाती हैं। दे०—सिकहर। (२) रुपया, मुद्रा।

[सिक्का < शिक्य-]।

सिगता—(सं०) कड़ी मिट्टी, जो सूखने पर फट जाती है। दे०—चनकी।

[सिगता < सिकता]।

सिझाठ—(सं०) खेत की गहरी कोड़नी करना (भाग०-१)। दे०—अखाड़ल।

सिजकोहड़ा—(सं०) पत्तर में फलनेवाला कोंहड़े की जाति का फल-विशेष, जिसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा, बड़ी आदि बनाने में किया जाता है (मै०)। दे०—भतुआ।

[सिज+कोहड़ा < सित+कुष्माण्ड-]।

सिजबन—(सं०) एक लता। इसकी फली लौंग के आकार की होती है (पट०-१)। पर्या०—नलीमुँडी (पट०-१)।

सिट्टा—(सं०) कुएँ पर रखा हुआ खड़ या पुआल का बंडल, जिसपर पानी डाला जाता है (पट०-१)।

[देशी]।

सिट्ठी—(सं०) (१) चूसकर मुंह से निकाला हुआ अन्न का शेष भाग। दे०—खोइया। (२) किसी वस्तु का चूसा हुआ या रस निकाला हुआ भाग।

[सिट्ठी <शिष्ट- < √शिष्+त (प्र०)]।

सिड़ाहा—(सं०) वह जमीन, जिसका पानी सूख गया हो (पट०-१, द० मुं०)।

[सिड़+आहा (प्र०) <सिड़ <सीड़ (देशी) वा < सीर-(संस्कृ०)=हल, यथा हलय-<हल-(हाल, गीलापन लिये वह जमीन, जिसमें हल लगता हो)]।

सितलबुकनी—(सं०) सतुआ। दे०—सतुआ।

[सितल+बुकनी, सितल <शीतल-; बुकनी < बुक्क-(?)]।

सितीसार—(सं०) एक प्रकार का रोपा जानेवाला धान (द० मुं०)।

[सिती+सार <सित+शालि-]।

सितुआ—(सं०) (१) एक चिपटे जलीय जीव का बाह्य कोश, जिससे चूना बनता है (सं० द०)। दे०—सीपी। (२) पोस्ते की फली में इकट्ठा हुई अफीम को खुरचने या निकालने का साधन-विशेष। (३) सीपी की आकृति का लोहे का बना हुआ साधन-विशेष, जिससे रसोईघर में विविध कार्य किये जाते हैं।

[सितुआ <शुक्तिका-(?)]।

सितुरियाएल—(सं०) वह फसल, जो किसी कारण से बढ़ नहीं सकी हो (प० मै०, शाहा०)। दे०—बैठल हासिल।

[सितुर + इयाएल (प्र०) < सितु < सितुआ < शुक्तिक-(?) वा शीतल-(?)]।

सितुरियाएल—(क्रि०) रोग, पाला आदि के कारण फसल के पौधों का न बढ़ सकना, बल्कि सिकुड़ जाना।

[सितुर+इयाएल (प्र०) <सितुर <शुक्तिक-]।

सितुहा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध लंबे चिपटे जलीय जीव का बाह्य कोश, जिससे चूना बनता है (सं० द०)। दे०—सीपी। (२) बरतन में लगे पदार्थ को खुरचने के लिए सीपी जैसा लोहे का बना साधन-विशेष। (३) बच्चों को दूध पिलाने की सीपी। (४) पोस्ते की फली में इकट्ठा हुई अफीम को खुरचकर निकालने के लिए प्रयुक्त साधन-विशेष। पर्या०—पोछनी= बाँस की पतली फट्ठी का बना खुरचनेवाला सितुआ (द० पू० मै०)।

[सितुआ <शुक्तिक-]।

सित्‍ह—(सं०) एक लंबे चिपटे जलीय जीव का बाह्य कोश, जिससे चूना बनता है या बटन बनते हैं (द० भाग०)। दे०—सीपी।

[सित्‍ह <शुक्ति-]।

सिधवाई—(सं०) बैलगाड़ी को पीछे की ओर से अधिक बोझा के कारण गिरने से बचाने के लिए दी जानेवाली थूनी। दे०—एड़ा।

सिधौली—(सं०) रसोई के लिए सीधा (कच्चा अन्न) देने की टोकरी या डाली (दर०-१, पूर्णि०-१)।

• [सिध+औली, सिध <सीधा <सिद्ध- (=असिद्ध-) +औली (देशी-)]।

सिनुआरि—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[सिनुआरि <सिन्दुवार-(?)]।

सिनुरिया—(सं०) (१) एक प्रकार का आम, जिसका ऊपर का भाग सिंदूर की तरह लाल होता है। यह आम समहा तथा कुछ खट्टा होता है। (२) सिंदूर बेचनेवाली एक जाति। (वि०) सिंदूर जैसा रंगवाला।

[सिनुर+इया (प्र०) <सिनुर <सिंदूर-]।

सिपवा—(सं०) बैलगाड़ी को खड़ा रखने के लिए उसके आगे लगाया जानेवाला दो डंडों का खंभा (सा०)। दे०—सिपावा।

सिपहटैंगना—(सं०) सिपाहे में लगी सुतली की रस्सी (दर०-१)।

[सिपह+टैंगना; सिपह <सेहपाव (फा०)-(हिं० श० सा०), टैंगना (देशी)]।

सिपहा—(सं०) बैलगाड़ी को खड़ा रखने के लिए उसके आगे लगाया जानेवाला दो डंडों का विशेष प्रकार का खंभा (द० भाग०)। दे०—सिपावा।

[सिपहा <सेहपाव (फा०)]।

सिपावल—(क्रि०) बैलगाड़ी आदि को बाँस के सिपावे पर अटकाना (चंपा०-१)।

[सिपाव+ल (प्र०) <सेहपाव (फा०)]।

सिपावा—(सं०) (१) जिस समय बैल जुते नहीं रहते हैं, उस समय गाड़ी को आगे की ओर गिरने से बचाने के लिए सगुन के नीचे दी जानेवाली थूनी, जो बाँस के दो डंडों की बनी होती है और रस्सी से आपस में बँधी रहती है।

पर्या०—सिरपावा (उ० पू० मै०), सिपवा (सा०), सिपाह (दर०-१, पूर्णि०-१), सिपहा, सिपाहा (द० भाग०)। (२) खटोली के दोनों अंतिम छोरों पर लगाये गये बाँस के दो डंडे, जो ऊपर की ओर

तीन फुट ऊँचा कैंची के आकार में बँधे रहते हैं। पर्या०—सिपाहा।
[सिपावा<सेहपाय (फा०); सिपाव (हिं०)]।

सिपाह—(सं०) सिपाहा (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—सिपावा।

सिपाहा—(सं०) (१) ऊपर की ओर रस्सी से अवकाश देकर बँधे हुए बाँस के दो मजबूत डंडे, जिन्हें बैलगाड़ी के मूड़े से अटकाकर गाड़ी को खड़ा रखा जाता है (मुं०-१, द० भाग० पट०-१)। दे०—सिपावा। (२) खटोली के दोनों अंतिम छोरों पर लगाये गये दो बाँस के डंडे, जो ऊपर की ओर तीन फुट ऊँचा कैंची की तरह बँधे रहते हैं।
[सिपाहा<सेहपाय (फा०)]।

सिपिया—(सं०) सीपी की तरह लंबा चिपटा एक प्रसिद्ध आम, जो बंबइया या मालदह के बाद पकता है (पट०-१, चंपा०-१)।
[सीपिया<सीपी]।

सिपौआ—(सं०) गेआना के प्रत्येक भाग में लगे चार-चार डंडे।
[सिपौआ<सेहपाय (फा०)]।

सिबअंस—(सं०) नवीन अन्न में से साधु-संन्यासियों के लिए निकाला गया अंश।
[सिब+अंस<शिवांश]।

सिवैत—(सं०) किसी मंदिर के नाम से लिखी गई जमीन या संपत्ति को देखभाल करनेवाला या मालिक (सा०, दर०)।
[सिव+ऐत<शिवायत्त-(?)]।

सिवोत्तर—(सं०) शिव की पूजा के निमित्त अर्पित कर-मुक्त भूमि। दे०—संकल्प।
[सिव+ओत्तर<शिवोत्तर-]।

सिमला—(सं०) (१) बैलगाड़ी के जुए के दोनों किनारों पर दी जानेवाली लकड़ी की कील, जो बैलों के कन्धों को बाहर खिसकने से बचाती है (पट०-१)। (२) एक प्रसिद्ध पहाड़ी स्थान, जो हिमाचल-प्रदेश की राजधानी है।
[सिमला<शम्याकील-(?)]।

सिम्मल—(सं०) बैलों के कंधे को काम करते समय बाहर खिसकने से बचाने के लिए जुए के दोनों किनारों पर लगाई जानेवाली कील। यह लोहे या लकड़ी की बनती है। दे०—सेमल।

सियाह—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का काला धान (पट०)। (२) काली उड़द (पट०)। दे०—डंगर। (वि०) स्याह, काला।
[सियाह<सियाह-(फा०)]।

सिरकी—(सं०) (१) मूंज के ऊपर की हिस्से की पतली सींक, जिससे चटाई आदि बुनी जाती है। (२) सिरकी की बनी चटाई आदि।
[सिरकी<शरकाण्ड-(?) या < शर (=सरपत)+कीक-(?)]।

सिरनी—(सं०) (१) वर्ष में पहले-पहल पेरे हुए रस का गुड़ (पट०, गया)। (२) चीनी में बनी एक मिठाई।
[सिरनी<शीरी या <शीरीनी (फा०-); मिला०-क्षीरिणी (संस्कृ०)=दूध की बनी या दूध में बनी वस्तु, दूध-मिली वस्तु]।

सिरपंचमी—(सं०) अगले साल की नई फसल के लिए वसंत-पंचमी के दिन की जानेवाली पहली जुताई (गं० उ०, द० भाग०)। दे०—हरमहुतर। (२) माघशुक्ल-पंचमी, वसंत-पंचमी, श्रीपंचमी। (३) वसंत-पंचमी का त्यौहार।
टि०—उत्तरी बिहार तथा पूर्वी और पूर्वदक्षिण बिहार में वसंत-पंचमी के दिन ही हल-प्रवहण-मुहूर्त कर लिया जाता है। लेकिन, पटना-प्रमंडल में रोहिणी नक्षत्र में विशेष मुहूर्त मनाकर हल-प्रवहण किया जाता है, जिसे 'समहुत' कहते हैं।
पर्या०—सिरपंचमी, सिरपचई।
[सिर+पंचमी<श्रीपञ्चमी]।

सिरपचई—(सं०) (१) अगले साल की नई फसल के लिए माघशुक्ल-पंचमी में की जानेवाली पहली जुताई (गं० उ०, द० भाग०)। दे०—हरमहुतर, सिरपंचमी। (२) माघशुक्ल-पंचमी, वसंत-पंचमी। (३) वसंत-पंचमी का त्यौहार।
[सिर+पचई<श्रीपञ्चमी]।

सिरपाया—(सं०) (उ० पू० मै०)। दे०—सिरपावा।

सिरपाहा—(सं०) नील के हौज की दीवार के सहारे अवलंबित रहनेवाली- थूनी (पू० मै०)। दे०—मजुसी।

सिरफा—(सं०) फल आदि का छोटा टुकड़ा (मुं०-१)।
[सिरफा<(?)]।

सिरबरह—(सं०) खेत के मध्य आसपास पानी चढ़ाने के लिए बनाई गई नाली (सा०-१)।
[सिर+बरह; सिर<शिरस् (?), बरह<वर्ह-(?)]।

सिरमान—(सं०) माँग के अनुसार अनाज न देने तक किसान के अनाज को रोककर देखरेख करनेवाला जमींदार की ओर से नियुक्त पुरुष (द० पू०)। दे०—छेकनिहार। (२) फसल की कटनी-बँधनी के समय जमींदार का प्रतिनिधि (मुं०-१)। (३) श्रेष्ठ व्यक्ति, श्रीमान् (मुं०)।

[सिरमान < सिरमनि < शिरोमणि-(?) वा< श्रीमान्<श्रीमत्<श्री+मतुप् (प्र०)]।

सिरहंट—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (सा०)।

[सिरहंट<श्रीहट्ट-(?)=सिलहट, असम-प्रदेश का एक नगर, उसके आसपास का प्रदेश]

सिरहंटी—(सं०) कात्तिक मास में तैयार होनेवाला एक प्रकार का धान (दर०-१)।

[सिरहंटी<(देशी) वा<श्रीहट्ट-(?)=असम-प्रदेश का एक नगर और जिला, सिलहट]।

सिरहट्टी—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (गया, द० मुं०)।

[सिरहट्टी<श्रीहट्ट-=सिलहट, असम-प्रदेश का एक नगर और जिला]।

सिरहथ—(सं०) खलिहान में स्थित अन्न के बुहारने की झाड़ू (गं० उ०, सा०)। पर्या०—सरहथ (उ० प० मै०), खरहरा (चंपा०), खर्रा (प० मै०), कूना (गं० द०, गया, द०, मुं०), कूंचा (शाहा०), सेथम, कूंची (द० प० शाहा०), झटई, खरहरा (द० भाग०)।

[सिरहथ<श्रीहस्त-(?)।

सिरा—(सं०) (१) गुड़ या राब से निकाला गया काला तरल पदार्थ, छोआ (द० प० शाहा०)। दे०—छोआ।

[सिरा<शीरा (फा०)]।

सिरा—(सं०) (२) वह दिशा, जिधर से पानी बहकर आता है। (मछली मारने के समय प्रयुक्त है) (चंपा०-१)। (३) बलिदान में काटा गया बकरे का सिर।

[सिरा<सिर<शिरस्-]।

सिराउर—(सं०) हल से जोतने पर जमीन में खोदी हुई पांत, सीता। (मै०, चंपा०, चंपा०-१, अन्यत्र)। पर्या०—रेह (उ० पू० मै०)।

[सिर + आउर; सिर < सीर-=हल; आउर < आवट-(?) वा<आवलि-=पंक्ति, रेखा]।

सिराउर के धरल—(मु०) जोतना, हल चलाना (चंपा०)। दे०-जोतल। पर्या०—सरिया के जोतल।

[सिराउर+के (विभ०)+धरल]।

सिराह—(सं०) वह बैल, जो बधिया किये जाने पर भी गायों के पीछे लगा रहता है (चंपा०-१)।

[सिराह<सैरिन् (?) <सैरिक-(?)]।

सिरिस्ता—(सं०) कचहरी में वह स्थान, जहाँ जमींदारी से संबद्ध कागज रखे जाते हैं (पट०-१)।

[सिरिस्ता<शिरिश्ता (फा०)]।

सिरीकेवल—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उजला धान (द० प० शाहा०)।

[सिरीकेवल<श्रीकमल-(?)]।

सिरीस—(सं०) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसके फूलों की पंखुड़ियाँ अति कोमल और महीन होती हैं। इसके फूल पीले होते हैं। इसका तना और डालियाँ बड़ी होती हैं और पत्तियाँ छोटी।

[सिरीस<शिरीष-]।

सिरुका—(सं०) (१) ऊख की पत्तियों को खानेवाला एक कीड़ा। (२) चना, मटर आदि की फसल को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा (सा०, पट०)। दे०—सुरका।

[सिरुका (देशी)]।

सिरैतिन—(सं०) हलवाहों के मेठ की औरत, जो धान रोपने के समय रोपनियों में अगुआ रहती है (मुं०-१)।

[सिर+ऐतिन; सिर<सीर-(=हल) वा < शिरस्; ऐतिन (प्र०) वा<(?)]।

सिरोर—(सं०) हल के द्वारा जोतने पर जमीन में खींची हुई गहरी लकीर, सीता (पट०)। दे०—हराई, सिराउर।

[सिर+ओर<सीरावट-(?) वा सीरावलि-]।

सिरोरा—(सं०) धान, बाजरा, ज्वार और ऊख के पौधों में लगनेवाला एक रोग, जो दखिनाहा हवा के कारण पैदा होता है। इससे फसल के पत्तों पर उजला धब्बा लग जाता है और फसल नष्ट हो जाती है। ऊख का उपरला भाग सूख जाता है (पट०)। दे०—दखिनहा।

[सिरोरा (देशी)]।

सिरौर—(सं०) हल से जोतने पर जमीन में खींची हुई गहरी लकीर, सीता। दे०—हराई।

[सिर+और<सीरावट-, वा सीरावलि-]।

सिलवा—(सं०) एक प्रकार का हेंगा। यह एक ही सीधी मोटी लकड़ी का बना होता है (पट०-१)।



[सिलवा<सिल्ला<शिला-(?)]।

सिलबे—(सं०) (१) खेत जोतने के बाद ढेलों को फोड़ने के लिए बनाया गया लकड़ी का मोटा तख्ता (पट०)। दे०—हेंगा।

सिलहट—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान, जिसकी भूसी काली और दाने उजले होते हैं (मै०)।

[सिलहट<श्रीहट्ट-(?)=असम-प्रदेश का एक नगर और जिला। संभव है, पहले-पहल यह धान वहीं से आया हो]।

सिली—(सं०) (१) लकड़ी का बड़ा मोटा टुकड़ा। (२) ओसाने के समय इकट्ठा की गई अनाज की लंबी राशि (चंपा०-१)।
[सिली<शिला-(?); सिली (२)< शिल=अनाज की बाल, या बालों को चुनना]।

सिलेब—(सं०) दे०-सिलेबा।

सिलेबा—(सं०) (१) लाल-धूसर वर्ण का पशु। (२) श्याम वर्ण का पशु (मुं०-१)। पर्या०-सिलेबे। सिलेब (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सिलेबा<शिलाभ-(?) <शिला-(<मनःशिला=मैनसिल)+आभा]।

सिलेबी—(सं०) श्याम वर्ण की गाय या दूसरी मादा मवेशी (मुं०-१)।

सिलेबे—(सं०) रक्ताभ-धूसर वर्ण का पशु (दे०—सिलेबा।
[सिलेबे < शिलाभ-]।

सिलेव—(सं०) श्याम वर्ण का पशु (दर०-२, पूर्णि०-१)। दे०-सिलेबा।

सिल्ला—(सं०) (१) दौनी के बाद भूसे के साथ मिले हुए अनाज की लंबी राशि (पट०-१)। (२) अनाज का ढेर (गया)।
[सिल्ला < शिला-]।

सिल्ली—(सं०) (१) धान के बोझों का अंबार (पट०-१)। (२) नदी की धारा के द्वारा कहीं से बालू लाकर इकट्ठा करके ऊँची की गई जमीन (सा०-१)। (३) सखुआ लकड़ी की सिलपट (मुं०-१)। (४) एक जंगली लकड़ी (मुं०-१)। (५) एक जंगली पक्षी (मुं०-१)। (६) दौनी करने के बाद भूसा-मिश्रित अनाज की राशि, जो ओसाने के लिए लंबी पांत में इकट्ठा की हुई रहती है (सं० उ०, पट०, द० प०)। पर्या०—कुठांव (पट०, उ० प०), ढेरी (चंपा०, मैं०, द० मुं०), पैर (चंपा०, गया), धार (द० भाग०), उकाम, उकुम (द० पू० मैं०, पट०), उकांव (शाहा०)। (७) खलिहान में रखी हुई नेवारी आदि की राशि। (८) उस्तरा पिजाने का पत्थर (पट०-१)।
[सिल्ली<सिल<शिला-(?)]।

सिवाती—(सं०) पंद्रहवां नक्षत्र, स्वाती। दे०—स्वाती।
[सिवाती < स्वाती]।

सिसकटनी—(सं०) अनाज के नाल को छोड़कर केवल बाल की कटाई (चंपा०)। दे०—बलकठ।
[सिस+कटनी; सिस <सीसा (बिहा०)=बाल; < शीर्ष, कटनी<कटन-(बिहा० क्रि०)<कृत-< √ कृत (कृन्तति=काटता है)]।

सिसकोंहड़ा—(सं०) कोंहड़े की जाति का एक श्वेताभ हरा फल, जिसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा, बड़ी आदि बनाने में किया जाता है, भतुआ (चंपा०, द० भाग०)। दे०—भतुआ।
[सिस+कोंहड़ा; <सिस <सित-(?), कोंहड़ा< कुष्माण्ड-]।

सिसुआ गहूम—(सं०) जनेर या ज्वार का एक भेद, जिसके दाने बड़े और लाल होते हैं (द० भाग०)। दे०—जोंधरी।
[सिसुआ+गहूम, सिसुआ <सिसवा <शीर्ष-(?), गहूम<गोधूम-]।

सिसो—(सं०) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसकी लकड़ी इमारत और कुरसी, टेबुल, चौकी आदि बनाने के काम आती है (चंपा०-१, अन्यत्र)।
[सिसो < शिंसपा< शिंशिपा; शिंशपा, शिंशिपा (संस्कृ०); सीसो, शीशम (हि०); सिस्सु (पं०); सिसौ (ने०); शिसव (मरा०); सिसु (ओ०); सिसम (गु०)]।

सिसो—(सं०) (१) धान, गेहूँ आदि फसल की बाल। (२) फसल का ऊपर का अतिकोमल भाग, गब्भा।
[सिसो < शीर्ष-]।

सिसोहल—(क्रि०) फसल की बाल से अनाज निकालना (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—मुड़ेसल, सुरकल।
[सिसो+हल; सिसो<शीर्ष-, हल<ह+ल (प्र०) <√हन् (?) या (प्र०)]

सिहरा—(सं०) फूलों की माला। सुमरनी।
पर्या०—सेहरा।
[सिहरा<सेहरा <शेखरक-, < शिखण्डक]।

सिहोड़ा—(सं०) (१) एक प्रकार की पशु-खाद्य घास (चंपा०, मैं०)। दे०—सिहोर। (२) एक कँटीला पौधा, जिसके तने से दूध जैसा रस निकलता है।
[सिहोड़ा<स्नुही-(?) या (देशी)]।

सिहोर—(सं०) (१) एक पशु-खाद्य घास। पर्या०—सिहोड़ा (चंपा०, मैं०)। (२) एक कँटीला पौधा, जिसके तने से दूध जैसा रस निकलता है।

(३) एक कँटीला जंगली पौधा, जिसका दतवन हुआ करता है।
[सिहोर < स्नुही-(?)]।

सिहोरा—(सं०) एक वृक्ष (चंपा०-१)।
[सिहोरा < स्नुही-(?), < सिहुण्ड-(हि० श० सा०)]।

सींक—(सं०) छींका। दे०—सिकहर।
[< शिक्य-]।

सींक—(सं०) (१) एक सूखे घास की सींक। (२) मूँज निकालने के बाद बचा हुआ पतला डंठल। (३) पतली घास या उसी तरह की कोई दूसरी चीज। (४) तकली में लगी लोहे की पतली कमानी (पट०-१)।
[सींक < इषीक-]।

सींकड़—(सं०) (१) हेंगा में लगी लोहे की जंजीर (शाहा०)। पर्या—सीकड़ (पट०, गया, द० मै०), सिकड़ (द० भाग०)। (२) भैंस, गाय आदि पशुओं को बाँधने की लोहे की जंजीर। (३) पक्के कुएँ में लगी लोहे की जंजीर, जिसे पकड़कर कुएँ में पानी की सतह पर उतरा जाता है। (४) लोहे की बनी जंजीर।
[सींकड़ < शृङ्खल-, शृङ्खल-(संस्कृ०); सिखेल (प्रा०); सीकड़-(हि०)]।

सींग—(सं०) पशुओं के माथे का अंग-विशेष, सींग। पर्या०—सीङ, सींघ, सींह, सिङ्ग।



[सींग < शृङ्ग, शृङ्ग-(संस्कृ०); सिंग (प्रा०); सींग (हि०); सिङ् (ने०); सींङ् (कुमा०); सींग (असा०); सींङ्ग (प्रो०); सिंग (पं०, ल०); हङ्ग (सि०); हेंग (करम०); षङ्ग (दरदी)]।

सींगियामूल—(सं०) वह भैंस, जिसके सींग के मूल में भौंरी हो (पट०-१)।
[सींगिया+मूल, सींगिया < सींघ < शृङ्ग; मूल < मूल-]।

सींघ—(सं०) (१) पशुओं के माथे का अंग विशेष, सींग। दे०—सींग। (२) एक प्रसिद्ध जंगली जानवर। (३) नाम के अन्त में लगनेवाली एक उपाधि।
[सींघ < शृङ्ग-; < सिंह-]।

सींह—(सं०) दे०—सींग, सींघ।

सीक—(सं०) छींका। दे०—सिकहर।
[सीक < शिक्य-]।

सीकड़—(सं०) (१) हेंगा खींचने की लोहे की जंजीर। दे०—जंजीर। (२) गाय, भैंस आदि पशुओं को बाँधने की जंजीर। (३) पक्के कुएँ में लगी लोहे की जंजीर, जिसके सहारे कुएँ में पानी की सतह पर उतरा जाता है। (४) लोहे की बनी जंजीर।
[सीकड़ < शृङ्खल-]।

सीकर—(सं०) (१) सीकड़, जंजीर। दे०—सिक्कर, सीकड़। (२) बैल आदि मवेशियों को बाँधने के लिए लोहे की बनी जंजीर। पर्या०—जनजीर, पाही, डाँड़ुर (चंपा०, मै०), बेल (गया), पैकल, पैकर (गया), पैकड़ (शाहा०)।
[सीकर < शृङ्खल-]।

सीकर—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनके चारों पैरों में शोथ हो जाया करता है (पट०-१)।
[देशी]।

सीका—(सं०) छींका। दे०—सिकहर।
[सीका < शिक्य-, शिक्यक-]।

सीङ—(सं०) सींग। दे०—सींग।

सीज—(सं०) एक प्रसिद्ध काँटा, थूहर। इसकी डालियाँ प्रसव के समय प्रसूति-गृह के द्वार पर लटकाई जाती है और खाँसी आदि कई प्रकार की बीमारियों में दवा के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है (चंपा०-१)।
[सीज < सीक < शिग्रु-(?)]।

सीझ—(सं०) एक कँटीला पौधा, नागफनी (मुँ०-१)। पर्या०—सीझु।
[सीझ < शिग्रु-(?) या (देशी)]।

सीझु—(सं०) एक कँटीला पौधा, नागफनी। दे०—सीझ।
[सीझु < शिग्रु-(?)]।

सीठ—(सं०) रस के निकालने के बाद बचा हुआ नील का नीरस भाग, जो खाद के काम आता था।
[सीठ < शिष्ट-]।

सीठा—(सं०) (१) कुएँ के मुँह पर उसकी और कूँड़ की रक्षा के लिए रखा गया घास या नेवारी का पूला। पर्या०—बिंडा (पट०, गया), पेंगड़ा (द० पू० शाहा०), चचार (सा०), चचरा (चंपा०)। (२) कुएँ के आगे वह गहरा स्थान, जहाँ कूँड़ से पानी गिराया जाता है। (३) सीठी, रस निचोड़ने के बाद बची वस्तु।



[सीठा < शिष्ट-(?)]।



सीठी—(सं०) चुसे या निचोड़े हुए फल, ईख आदि का नीरस अंश (चंपा०-१)
[सीठी < शिष्टि-, शिष्ट -(?)]।

सीड़ा—(सं०) वह जमीन, जिसका पानी सूख गया हो (द० भाग०)। दे०—पनवार।
[सीड़ा < सीड़ (देशी)]।

सीतलबुकनी—(सं०) सत्तू (चंपा०-१)।
[सीतल + बुकनी, सीतल < शीतल, बुकनी (देशी)]।

सीधापुरी कयरा—(सं०) एक प्रकार का लंबा पतला केला, जिसका पौधा भी लंबा होता है (पट०-१)।
[सीधापुरी + कयरा (दे०)]।

सीना—(सं०) (१) कीड़ा-लगा ऊख का पौधा (सा०, चंपा०)। पर्या०—हाड़ा (सा०, चंपा०), रतड़ल, कनाइल (गं० उ०), कनाइ (मै०, द० प० शाहा०), कनाहार (द० मुं०), कानी (द० भाग०), काना (पट०), रताएल (गया), रसाएल (पट०), मुड़ियारी मारल (गं० उ०)। (२) छाती। (३) सीना-पिरोना या सिलाई।
[सीना (देशी)]।

सीपी—(सं०) एक प्रसिद्ध लंबे चिपटे जलीय जीव का बाह्य कोश, जिससे चूना बनता है (गं० उ०)। पर्या०—सितुआ, सितुहा (गं० उ०), सित् (द० भाग०)।
[सीपी < सिप्पी (प्रा०); सिप्पी (पा०); शुक्ति- (संस्कृ०); सीप, सीपी (हिं०); सिपि (ने०); सीपी (कुमा०); सिप (ओ०); सिप्प, सिप्पी (पं०); सिप्पी (ल०); सिप (सिं०); सीप (गु०); शीप (मरा०); सिप्पिय (सिंह०)]।

सीम—(सं०) लत्तर में होनेवाली लंबी चिपटी एक प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी, अचार आदि बनते हैं (पू०, पट०-१)। दे०—सेम।
[सीम < शिम्बि-]।

सीमा—(सं०) (१) सेम की जाति की फली-विशेष। इसकी फली सीम की फली से बड़ी होती है (पट०-१)। पर्या०—बड़सीमा (भाग०)। (२) हद, अवधि।
[सीमा < शिम्बि-; < सीमन्]।

सीर—(सं०) (१) एक प्रकार की जमीन, जिसे जमींदार स्वयं जुतवाते थे और आबाद कराते थे; न कि रैयतों को बन्दोबस्त देते थे। (२) वह जमीन, जिसकी उपज बहुतों में बँटती हो।
[सीर < सीर-(?); सीर-(संस्कृ०)=हल, सीर (प्रा०, पा०) =हल; सिर (ने०)=जमींदार द्वारा अपने मजदूरों के द्वारा आबाद की जानेवाली जमीन। सरकार द्वारा इनाम में मिली जमीन। सीर (कुमा०); सीर (हिं०); सीर (पं०)]।

सीरप पंप—(सं०) चीनी-मिल में लगा हुआ लोहे का नल, जिससे होकर ऊख का रस बहता है (री०)।
[सीरप+पंप < सीरप+पंप (अं०)]।

सीरा—(सं०) (१) गुड़ के लिए उबाला हुआ ऊख का रस। (२) खोआ।
[सीरा < शीरा, शीर (फा०)]।

सीवाना—(सं०) किसी जमीन या गाँव आदि की सीमा (सा०-१)।
[सीवाना < सीमन्-(?)]।

सीस—(सं०) फसल के अन्न की बाल (द० पू० मै०)। दे०—बाल।
[सीस < शीर्ष-]।

सीस डोलल—(मु०) धीरे-धीरे हवा का बहना (चंपा०-१)।
[सीस+डोल+ल (प्र०); सीस < शीर्ष-; डोल < √दोल् (दोलयति, आन्दोलयति)]।

सीसा—(सं०) (१) फसल की बाल, जिसमें अन्न का गुच्छा रहता है (द० भाग०)। दे०—बाल। (२) धान आदि की बाली। (३) मकई का फूल (मुं०-१)।
[सीसा < शीर्ष-]।
(३) शीशा, काँच। शीशे की बनी चीज।
[सीसा < सीसक-]।

सुंग—(सं०) अनाज की बालों पर की सुई।

सुंगर—(सं०) माघी फसल के साथ स्वयं उगा हुआ दूसरा पौधा (उ० प० मै०)। दे०—पीढ़ी।
[सुंगर < (देशी) या सुंग+र < सुंग < शूक-(?)]।

सुंडा—(सं०) अनाज और लकड़ी को खानेवाली एक प्रकार की घुन (प० मै०, द० पू०)। दे०—सूँड़ा।
[सुंडा < शुण्ड-(?); शुण्डा=सूँड़, हाथी की लंबी नाक]।

सुंदरी—(सं०) रेंड़ की पत्तियों में लगनेवाला एक कीड़ा (पू०)।
[देशी]।

सुअरा—(सं०) (१) ज्वार, बाजरा आदि के खेत में उगनेवाली एक घास (गया, शाहा०)। दे०—सुरबरिया। (२) एक कीड़ा। (३) एक चिड़िया। (४) सूअर, एक प्रसिद्ध पशु। (५) एक प्रकार की लड़ (चंपा०-१)।
[सुअरा (देशी) या < सूकर-(?)]।

सुआएल—(क्रि०) अंकुर फूटना। दे०—अँखुआ।
[सुआ+एल (प्र०) < सूआ < सूचक वा सूची वा शूक-(?)]।

सुइया—(सं०) ज्वार, बाजरा, गेहूँ आदि की फसल का पहला अंकुर। पर्या०—सूआ, अँकुड़ा (उ० प०), कनी (पट०), डेफ (उ० प० मै०), डेफी (पू०)। मु०—सुइया गइल=अंकुर फटना (सं० उ०)। डेफ निकसल=अंकुर फूटना (उ० पू० मै०)। रेंड़ल वा, रेड़ गइल=अंकुर फटा है (प०)।



'सूआ आवऽ हैं'=अंकुर फूट रहा है (गया)।
'कनियाएल आवऽ हैं'=अंकुर फूट रहा है (पट०)।
[सुइया < सूची-(?)]।

सुइयाएल—(क्रि०) गेहूँ, ज्वार, बाजरा, मकई, ऊख आदि का प्रथम अंकुर निकलना। (वि०) वह ऊख या दूसरी फसल, जिसका पहला अंकुर निकला हो (शा०)। दे०—पुआरी।
[सुइया + एल-(प्र०) < सुइया < सूची, सूचिका (?)।

सुइला—(सं०) बोझा ढोने के लिए बाँस की मोटी फट्ठी, जिसके दोनों किनारों पर दो छींके लटकते रहते हैं (चंपा०, उ० पू० मै०)। दे०—बहँगी।
[देशी]।



सुका—(सं०) चार आने का एक सिक्का (चंपा०-१)।
[सुका < (देशी) वा < सूक्ष्म (=महीन, छोटा); सुका (ने०)=चार आने का छोटा सिक्का, चौअन्नी; सुका (ओ०)=चौथाई, चौअन्नी; सूका (हिं०)=चौअन्नी; सकूँ (गु०); सुखुम (पा०), सुहुम (प्रा०); सियम (सिंह०)]।

सुकुल—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध आम, जो प्रायः सावन-भादो में पकता है। (२) एक जातीय उपाधि, शुक्ल। (३) उजला।
[सुकुल < शुक्ल-, शुच्+ल < शुच् (शुचि, उजला, पवित्र)+ल (प्र०)]।

सुकुल आम—(सं०) एक प्रसिद्ध आम, जो सावन-भादो में पकता है। इसके अंदर बहुत सारे रेशे होते हैं। (पट०-१)।
[सुकुल+आम; सुकुल < शुक्ल-; आम < आम्र-]।

सुकुल पख—(सं०) चान्द्र मास के १५ दिनों की एक निश्चित अवधि, जिसमें चन्द्रमा की कला क्रमशः बढ़ती है। दे०—पख।
[सुकुल+पख < शुक्लपक्ष-]।

सुक्की—(सं०) चार आने का छोटा सिक्का (द० भाग०)। दे०—सुका।

सुखठा—(सं०) ऊख में लगनेवाला पाला जैसा एक रोग, जिससे ऊख की फसल सूख जाती है (प० मै०, प०)। दे०—सुखड़ा।
[सुख+ठा (प्र०) < सुख < शुष्क < √ शुष्+क < (क-प्र०)]।

सुखड़ा—(सं०) (१) ऊख में लगनेवाला पाला जैसा एक रोग, जिससे ऊख सूख जाता है (द० मै०, प०)। पर्या०—सुखठा (प० मै०, प०), पिहिला (शाहा०), सुरिया (द० भाग०)।
[सुख+ड़ा (प्र०) < सुख < शुष्क < √ शुष्+क < (क-प्र०); सुक्ख (प्रा०)]।

सुखड़ा—(सं०) (२) खमिया को सुखाकर तैयार किया गया खाद्य (पट०-२)। (३) वह फल, जो पकने के पूर्व ही सूखकर सुख-सुख हो गया हो (चंपा०-१)।

सुखरना—(सं०) वह भैंस, जिसका दूध सूख जाता है (पट०-१)।
[सुखर+ना (प्र०) < सुखर < सुक्ख < सुख < शुष्क-]।

सुखरा—(सं०) कीड़े लगने की एक बीमारी, जो फसलों को नष्ट कर देती है (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सुख+रा (प्र०) < सुख < शुष्क-]।

सुखरूख—(सं०) रूखी-सूखी जमीन (चंपा०-१)।
[सुख+रुख < शुष्क+रुक्ष-]।

सुखवन—(सं०) अफीम की वह अवस्था, जब उसकी तरलता सूखकर कमी हो जाती है।
[सुखवन < सुख < शुष्क-]।

सुखार—(सं०) (१) अनावृष्टि। (२) वर्षा की कमी के कारण खेती में सूखा पड़ जाना। (३) दुर्भिक्ष (मुं०-१)।
[सुख+आर (प्र०) < सुख < सुक्ख < शुष्क-]।

सुखौत—(सं०) धूप में सुखाई गई साग-सब्जी आदि। (मुं०-१)। (वि०) सूखा हुआ। पर्या०-सुखौता।
[सुख+औत < शुष्क+पत्र-(?)]।

सुखौता—(सं०) धूप में सुखाकर रखी जानेवाली साग-सब्जी। दे०—सुखौत।

सुगंधिराज—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सुगइल—(सं०) वह फल, जिसे तोता या कोई दूसरा पक्षी खा चुका हो (चंपा०-१)।
[सुग+इल (प्र०) < सुग < शुक-]।

सुगइल जाल—(सं०) एक प्रकार का जाल, जिसमें दो बाँस बँधे रहते हैं। नीचेवाले बाँस में पाँच सेर का पत्थर बँधा रहता है। जाल के अंदर चार डोरियाँ लगी रहती हैं और एक रस्सा लगा रहता है (सा०-१)।
[सुगइल+जाल-, सुगइल (देशी), जाल-(सं-कु०)]।

सुगर ड्रायर—(सं०) चीनी-मिल में लगी चीनी को सुखानेवाली मशीन (रो०)।
[सुगर+ड्रायर-(अं०)]।

सुगरा—(सं०) वह जमीन, जिसका पानी सूख गया हो (द० प० शाहा०)। दे०—रनमार।
[सुगरा (देशी)]।

सुगवा-(सं०) (१) छोटे दानोंवाली हरी मटर। (२) सुग्गे की चोंच जैसी आकृतिवाला।
[सुगवा < शुक-]।

सुगवा बचवा—(सं०) एक प्रकार की चोईंटा-रहित मछली (शा०-१)।

सुगहवा गोहूम—(सं०) लंबे दानों और उजले रंग का गेहूँ (पट०-१)।

सुगहवा बइर—(सं०) सुग्गे की चोंच जैसी आकृति का बेर।

सुगापंखी—(सं०) (१) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। (२) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। (३) एक अगहनी धान, जो काला, दोनों छोरों पर उजला और जिसका चावल सफेद होता है (सा०-१)। (४) हरे रंग की साड़ी। (वि०) सुग्गे के रंग की कोई वस्तु।
[सुगा+पंखी, सुगा < शुक-; पंखी < पंख+ई < पक्ष < पक्ष-]।

सुग्गी—(सं०) (१) उर्वर बीज, जो ठीक तरह से उग जाते हैं। मिला०- कुव्वी। (२) मादा तोता।
[सुग्गी < (देशी)- या < शुकी]।

सुइठी—(सं०) धूप में सुखाई हुई मछली (मुं०-१)।
[सुइठी < सुइ +ठी < सुइ < सुख < सुक्ख < शुष्क-; ठी (प्र०) या < प्रोष्ठी (=सोढिया)]।

सुजवा—(सं०) जानवरों का रोग-विशेष, जिसमें अनायास ही उनके सभी अंगों में शोथ हो जाया करता है (पट०-१)।
[सुज+वा (प्र०) < सूजल (बिहा० क्रि०), सूजना (हिं०)]।

सुझी—(सं०) (१) जानवरों का उदर-शूल, जिसमें उनकी भूख-प्यास मिट जाती है (पट०-१)। (२) एक प्रकार का तैयार अनाज, जिससे हलवा बनता है।
[सुझी < सूजल, सूजना]।

सुठिया—(सं०) गाय-बैल का एक प्रकार का सींग (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सुठिया < सुठ < शुण्ठी-(?)]।

सुड़कल—(सं०) शस्य की बाल से मसलकर अनाज निकालना (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सुड़क+ल (प्र०) < सुड़क; मिला०- सुंकल, सुंकल-(देशी)=धान आदि की बाल (पट०-१)]।

सुतरदंत—(सं०) ऊँट की तरह दाँतोंवाला बैल (पट०-१)।
[सुतर+दंत, सुतर < शुतुर < शुतुर (फा०)=ऊँट; दंत < दन्त-]।

सुतरा—(सं०) एक प्रकार की चोईंटा-रहित मछली (सा०-१)।

सुतरियाएल—(क्रि०) फसल का किसी रोग के कारण न बढ़ सकना (सा०)। (सं०) रोग के कारण न बढ़ी हुई फसल (सा०)। दे०—बैठल हासिल।
[सुतर+इयाएल (प्र०) < सुतर (देशी) या < सुतरी < सुतली < सूतल (?)=सन की ऐंठी हुई रस्सी]।

सुतरी—(सं०) सन की ऐंठी हुई रस्सी। पर्या०—सुतली (प०), सुथरी (द० भाग०)।
[सुतरी < सूत्रल-]।

सुतली—(सं०) सन की ऐंठी हुई रस्सी। दे०—सुतरी।
[सुतली < सूत्रल-]।

सुतवाय—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनकी आँखों से आँसू बहता है और दुर्बलता आ जाती है (पट०-१)।

सुत्तिहा—(सं०) वह कुआँ, जिसमें सतह से जल-प्रणाली नहीं निकलती, बल्कि जलस्रोत से पानी मिलता है (प०)। पर्या०—सोतही, सोइया (पट०, गया, द० मुं०), जलधर (द० भाग०)।
[सुत्तिहा < स्रुति-या स्रोतस्]।

सुत्ती—(सं०) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ जलस्रोत (शाहा०)। दे०—सोता।
[सुत्ती < स्रुति- < √ स्रु (स्रवति) + ति, या <स्रोतस-]।

सुथनी—(सं०) एक प्रकार का गोल रोएँदार कन्द, जो प्रायः कातिक-अगहन में उपजता है और पकाकर या तरकारी बनाकर खाया जाता है।
[सुथनी < सुस्तन-(?)]।

सुथरी—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। (२) ऐंठी हुई रस्सी (द० भाग०)।
[देशी]।

सुदभरना—(सं०) वह जमीन, जो किसी प्रकार का कर्ज लेने के बाद उसके सूद की पूर्ति के लिए महाजन को तबतक दे दी जाती है, जबतक कि कर्ज चुकता न कर दिया जाय। दे०—कुरताली।
[सुद+भरना, सुद < सूद (फा०); भरना (हिं०) <भरण-]।

सुदभरनादार—(सं०) सुदभरना जमीन लेनेवाला महाजन (पट०-१)।
[सुद + भरना + दार, सूद (फा०); भरना (हिं०, बिहा०); दार (फा० प्र०)]।

सुन—(सं०) कुदाल में धार और पासा के मिलने की जगह (द० मुं०)। दे०—कंठी।
[सुन्न < शून्य-]।

सुनगी—(सं०) पाकड़ की टहनी में निकली टूसी। इस टूसी से पत्ते निकलते हैं। इसका अँचार बनता है (चंपा०-१)।
[सुनगी (देशी)]।

सुन्नी—(सं०) (१) वह कुआँ, जिसमें जलस्रोत नहीं निकलता है। (२) सूना, शून्य। (३) संज्ञाशून्य। (४) मुसलमानों का एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय।
[सुन्न < शून्य-; सुन्नी (अ०)]।

सुपती—(सं०) (१) छोटा सूप। (२) बाँस का सुपती जैसा फूल या नई कोंपल के ऊपर का आवरण-पत्र। (३) पैर का तलवा (मुं०-१, भाग०)।
सुप+ती (प्र०) < सूप < शूर्प-]।

सुपही—(सं०) प्राप्त अन्नराशि में से मन में एक सेर के हिसाब से अन्न निकालने की प्रक्रिया (प०)। पर्या०—सेरही (शाहा०)।

सुपाक—(सं०) अच्छी तरह पका हुआ आम या दूसरा कोई फल (चंपा०-१)। (वि०) अच्छी तरह पका हुआ पदार्थ।
[सुपाक < सुपाक-(?)]।

सुपुली—(सं०) (१) बाँस की कोंपल के ऊपर का आवरण, जो कालांतर में गाँठ से अलग होकर गिर जाता है। (२) बाँस की फट्टी का बना छोटा सूप (चंपा०-१)।

सुफेद—(सं०) एक प्रकार की कपास (मुं०)। (वि०) सफेद रंग की वस्तु।
[सुफेद < सफ़ेद (फा०)]।

सुबी—(सं०) अच्छा बीज, जो उग सकता है (चंपा०-१)।
[सुबी < सुबं ज या सुबीर्य-(?)]।

सुमुत—(सं०) फसल-कटाई के आरंभ में काटकर लाया गया थोड़ा-सा अनाज (उ० प० मैं०)। दे०—समहुत।
[समुत < सुमुहर्त-]।

सुम्हवत—(सं०) वसंत-पंचमी के दिन परती जमीन में अगले वर्ष की नई खेती के लिए प्रथम बार हल का चलाया जाना (चंपा०-१)।
[सुम्हवत < सुमुहूर्त-]।

सुरकल—(क्रि०) (१) फसल की बालों से दानों को या मंजरियों को चुटकी के सहारे एक साथ अलग करना। (२) तरल वस्तु को सुर-सुर शब्द करते हुए खाना। (३) नाक सुड़कना या साफ करना (मुं०-१)।
[सुरक+ल (प्र०) < सुरक (देशी)]।

सुरका—(सं०) (१) ऊख की पत्तियों को खानेवाला एवं चना, मटर आदि दूसरी फसलों को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा (पू० मैं०, शाहा०)। पर्या०—सिरका (सा०, पट०), फनिगा (मैं०, द० प० शाहा० १)। (२) हरे धान का कूटा हुआ चूड़ा (मुं०-१)। (३) हरा धान (चंपा०-१)।
[सुरका < सुकल (देशी प्रा०)= धान्यमंजरी-]।

सुरका चूरा—(सं०) अधपका हरा धान कूटकर बनाया गया चूड़ा।
[सुरका+चूरा, सुरका < सुकल (देशी प्रा०)= धान्यमंजरी; चूरा < चिउरा < चिपिटक-]।

सुरखिया—(सं०) लाल रोओंवाला बैल (पट०-१)।
[सुरख+इया (प्र०) < सुरख < सुर्ख़ (फा०)]।

सुरगुजा—(सं०) (१) एक प्रकार का लाल रंग का तेलहन, (पट०-१)। (२) मध्यप्रदेश का स्थान-विशेष, सुरगुज्जा।
[(देशी), मिला०-सुरगुजा मध्यप्रदेश का स्थान-विशेष]।

सुरजमुखी—(सं०) (१) कुएँ की बगलवाली दीवार को बनाने के लिए प्रयुक्त होनेवाली विशेष प्रकार की ईंट, जिसका एक मुख छोटा, और दूसरा चौड़ा होता है। पर्या०—गँड़ आवा (चंपा०)। (२) एक प्रसिद्ध फूल, जिसका अगला भाग सूर्य की ओर रहा करता है और सूर्यास्त होनेपर बंद हो जाया करता है। (३) वास्तुभूमि का प्रकार-विशेष।
[सुरज+मुखी <सूर्यमुख-(?)]।

सुरफा—(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकार (पट०)। दे०—असराफ।
[सुरफा < शरीफ़ (फा०)-(१)]।

सुरफान—(सं०) सुरफा का बहुवचन। ऊँची श्रेणी के काश्तकार (गया)। दे०—असराफ।
[सुरफान < शरीफ़ (फा०)]।

सुरबरिया—(सं०) ज्वार, बाजरा आदि के खेत में उगनेवाली एक प्रकार की पशु-खाद्य घास (पट०, गया)। पर्या०—सुरबार (गया, शाहा०), सुअरा (गया, शाहा०), सुरबारी (उ०)।
[सुरबर+इया (प्र०) < सुरबर (देशी), मिला०—सुरबही। सुरही (देशी प्रा०)=एक प्रकार की घास, मशक जाति का एक कीड़ा-(देशीना०)]।

सुरबार—(सं०) ज्वार, बाजरा आदि के खेत में फसल के साथ उगनेवाली एक पशु-खाद्य घास < गया, शाहा०।) दे०—सुरबरिया।
[सुरबार (देशी)-(१) मिला०-सुरही (देशी, प्रा०)=एक प्रकार की घास, मशक जाति का एक कीड़ा]।

सुरबारी—(सं०) ज्वार, बाजरा आदि के साथ उगनेवाली एक घास (उ०)। दे०—सुरबरिया।
[सुरबार+ई (प्र०)<सुरबार (देशी) या < सुरही (देशी, प्रा०)]।

सुराफ—(सं०) (गाइड०)। दे०—बट्टा।

सुरंगा—(सं०) (१) वह पेड़, जो बिना डाली का और काफी ऊँचा हो (चंपा०, भाग०)। (२) सुरंग। (३) लोकगाथा की एक प्रसिद्ध नायिका सुरंगा रानी।
[सुरंगा < स्वर्ण+ग-(१)]।

सुरुख—(सं०) गाढ़ा लाल रंग। दे०—कुसुम।
[सुरुख < सुर्ख़ (फा०)]।

सुरुजमुखी—(सं०) (१) एक प्रकार का लाल मिर्चा, जिसकी फली ऊपर की ओर उठी रहती है (चंपा०-१)। (२) एक प्रसिद्ध फूल, जो सूर्य की ओर उन्मुख रहता है। (३) वास्तु-भूमि का प्रकार-विशेष।
[सुरुजमुखी < सूर्यमुख-]।

सुल्हा—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे पेट में बड़ी पीड़ा होती है (पट०-१)।

सुहिला—(सं०) बाँस की खोपचाँड़ी (बहँगी), जिसपर धान ढोया जाता है (चंपा०-१)।
[देशी]।



सूंग, सूंघ—(सं०) (१) जौ की बाल के ऊपर की सूई-जैसी नुकीली वस्तु (पट०, पू०)। दे०—टूँड़। (२) फसल की बाल का शूक। दे०—टूँड़।
[सूँग < शूक-, < सूची: सुई (देशी, प्रा०)=मंजरी]।

सूंघ, सूंग—(सं०) जौ या किसी दूसरे अनाज की बाल के ऊपर की सूई जैसी नुकीली पतली वस्तु (पट०, पू०)। दे०—टूँड़।
सूँघ < शूक-, < सूची: सुई (देशी, प्रा०)=मंजरी]।

सूँड़—(सं०) (१) जौ की या दूसरे अनाज की बाल के ऊपर की सुई जैसी नुकीली पतली वस्तु (द० प० मै०)। दे०—टूँड़। (२) हाथी की लंबी नाक, सूँड़।
[सूँड़ < सूँ+ड़ (प्र०) < शूक-; <शुण्डा-]।

सूँड़ा, सूँड़ी—(सं०) लकड़ी या अनाज को खानेवाला एक प्रकार का घुन (द० मै०)। पर्या०—सूँड़, सूँड़ा (गया), सुंडा (प० मै०, द० पू०)।
[सूँड़ा < शूक-; < शुण्डा-(१)]।

सूँड़ी, सूँड़ा—(सं०) लकड़ी या अनाज को खानेवाला एक प्रकार का घुन (द० मै०)। दे०—सूँड़ा।
[सूँड़ी < शूक-; <शुण्डा (१)]।

सूँड़—(सं०) (१) लकड़ी और अनाज को खानेवाला एक प्रकार का घुन (गया)। दे०—सूँड़ा। (२) हाथी की लंबी नाक, सूँड़।
[सूँड़ < शूक-; शुण्डा-]।

सूँड़ा—(सं०) (१) लकड़ी और अनाज को खानेवाला एक प्रकार का घुन (गया)। दे०—सूँड़ा। (२) जौ या किसी दूसरे अनाज के ऊपर की सुई-जैसी नुकीली पतली वस्तु (चंपा०, मै०)। दे०—टूँड़।
[सूँड़ा < शुण्डा, शूक-]।



सूआ—(सं०) (१) गेहूँ के बीज का उगा हुआ पहला अंकुर। दे०—सुइया। प्रयोग—'सूआ आवे है'=अंकुर फूट रहा है (गया)। (२) बाजरे या किसी दूसरे बीज का पहला अंकुर। दे०—अँखुआ। अँखुआएल (क्रि०)=सूआ निकलना, अंकुर फूटना। (३) बोरा आदि सीने की बड़ी सूई। (४) तोता।
[सूआ < शूक-, < शूक-, < सूच-]।

सूइयाएल—(क्रि०) अनाज के बीज का प्रथम अंकुर का फूटना। पर्या०—सूई फेंकल (पू० मै०)।
[सूइया+एल (प्र०) < सूई < सूची। मिला०-सूई (देशी, पा०)=मंजरी]।

सूई फेंकल—(मु०) अनाज के बीज का प्रथम अंकुर का फूटना (पू० मै०)। दे०—सूइयाएल।
[सूई+फेंक+ल (प्र०); सूई < सूची; फेंक (वर्ण-व्यत्यय के साथ) < क्षेप- < √क्षिप्]।

सूखरी—(सं०) हरी सब्जी आदि को सुखाकर रखी जानेवाली वस्तु। इसे किसी समय भी पानी में भिगोकर तरकारी बनाई जा सकती है, सुखौता (चंपा०-१)।
[सूख+री (प्र०) < सूख < शुष्क-]।

सूखल—(क्रि०) (१) पौधे आदि का सूख जाना और विकसित न हो पाना (सा०-१)। (२) सूखना। (वि०) सूखी हुई वस्तु।
[सूख+ल (प्र०) < सूख < शुष्क-, (शुष्कायति-ना० धा०) < √ शुष्+क (=क्त); सुक्ख (प्रा०); सूखना (हि०)]।

सूता—(सं०) (१) एक इंच का आठवाँ भाग, जो लोहा, लकड़ी आदि की माप में व्यवहृत होता है (री०)। दे०—सूत। (२) कपास, रेशम आदि का सूत। (३) लकड़ी आदि पर चिह्न लगाने के लिए प्रयुक्त सूत।
[सूता < सूत्र-]।

सूद—(सं०) उधार दिये हुए धन के बदले में मिलनेवाला अतिरिक्त धन। पर्या०—सूदि (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सूद (फा०)]।

सूदभरना—(सं०) किसी से रुपया उधार लेकर उस मूल धन के सूद के लिए रुपया लौटाने की अवधि-तक लिखी गई जमीन। दे०—सुदभरना।
[सूद+भरना, सूद (फा०); भरना < भरण]।

सूदि—(सं०) सूद (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—सूद।

सूप—(सं०) बाँस की पतली बत्तियों या सिरकी का बना हुआ एक प्रसिद्ध उपकरण, जो अनाज फटकने के काम आता है।
[सूप < शूर्प-, सुप्प (पा०); सूप (हि०)]।

सूरजकोंहड़ा—(सं०) कोंहड़े की जाति का एक प्रसिद्ध फल, जिसकी मिठाई आदि बनाई जाती है, भतुआ। दे०—भतुआ।
[सूरज+कोंहड़ा, सूरज < सूर्य- या श्वेत-(?), कोंहड़ा < कूष्माण्ड-]।

सूरजमुखी मिरचाई—(सं०) एक प्रकार की लाल मिर्च, जिसकी फली पौधे में ऊपर की ओर उठी रहती है (पट०-१)।

सूरमई—(सं०) सुरमा जैसा काला रंग। दे०—कुसुम। (वि०) सुरमा जैसा रंगवाला।
[सूरमई < सुर्म (फा०)]।

सेंगरा—(सं०) एक अगहनी धान, जिसका छिलका लाल, दोनों छोर काले और चावल उजला होता है (सा०-१)।

सेंट्री फ्युगल मशीन—(सं०) चीनी-मिल में लगी मशीन, जिससे चीनी साफ की जाती है (री०)।
[अं०]।

सेंथन—(सं०) खलिहान में पड़े अनाज को बुहारकर एकत्र करने की झाड़ू (द० प० शाहा०)। दे०—सिरहथ।

सेंधमारी—(सं०) (१) चोरी करने के लिए सेंध मारने का एक औजार (पट०-१)। (२) सेंध मारने का काम।
[सेंध+मारी (प्री०), सेंध < सन्धि-, मारी < मारन < √ मारि < मृ-]।

सेआहा—(सं०) जमींदार की आमदनी और खर्च का लेखा (पट०-१)।

सेइला—(सं०) हल के पालों में लगी लोहे की कील (पट०-१)।
[सेइला < शल्य-]।

सेऊत—(सं०) वह जमीन, जिसका पानी सुखा दिया गया हो (गया)। दे०—पनमार।
[से+उत < स्यूत- या स्विन्न या < स्वेदित-]।

सेगाछ—(सं०) (नाइड०)। दे०—दरगाछ।

सेढ़ा—(सं०) साठी की तरह का एक धान, जो काला एवं छोटा होता है और जिसके चावल उजले होते हैं। यह धान भी साठ दिनों में ही तैयार होता है (द० प० शाहा०)। लोको०—'सेढ़ा, साठी साठ दिन, जॅव देव बरसे रातदिन।' =रात-दिन वर्षा होते रहने पर भी सेढ़ा, साठी साठ दिनों में तैयार हो जाते हैं।
[सेढ़ा < (?)]।

सेढ़ी—(सं०) एक प्रकार की पशु-खाद्य घास (द० प० शाहा०)।
[सेढ़ी < (?)]।

सेनुरिया—(सं०) एक प्रसिद्ध आम, जिसका उपरला भाग लाल और बिचला भाग हरा या पीला होता है

तथा संपूर्ण आम में बिंदी जैसे चिह्न होते हैं। (वि०) सिंदूरी रंग का।

[सेंदुर+इया (प्र०) < सेंदुर < सिन्दूर-]।

सेव—(सं०) (१) बीज बोने के समय हल को चलाने की विशेष प्रक्रिया, जिसमें फाल अधिक गहरा नहीं धँसता है और छिछली जुताई हो जाती है (पट०-१)। (२) एक प्रसिद्ध फल, सेब।

[सेव (देशी) या < सेब (फा०)]।

सेमंदी—(सं०) जमींदार के गुमाश्ता, पटवारी, बराहिल आदि का खर्च, जो गाँव के किसानों को देना पड़ता था (पट०-१)।

सेम—(सं०) लत्तर में होनेवाली लंबी, चिपटी एक प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी बनती है। पर्या०—सीम, सेमा।

[सेम < शिम्बी, दे०—सेम]।

सेममुकर्ररी—(सं०) (गाइड०)। दे०-मर मुकर्ररी।

[सेम+मुकर्ररी (फा०)]।

सेमर—(सं०) रुई का एक बहुत बड़ा पेड़, जिसमें लाल फूल लगते हैं और फूलों के गिरने के बाद उसकी फली से रुई निकलती है (चंपा-१)।

[सेमर < सेमल < शाल्मलि-]

सेमल—(सं०) गाड़ी के जुए के दोनों तरफ लगाई जानेवाली लोहे या लकड़ी की कील, जो बैलों के कंधों से जुए को गिरने से बचाती है। पर्या०—सम्मल, सिम्मल, कनैल (पू०)।

[सेमल < शमीकील-(?)]।

सेमा—(सं०) लत्तर में होनेवाली लंबी, चिपटी एक प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी होती है। दे०—सेम।

[सेम < सीम < शिम्ब-, शिम्बा]।

सेमाना—(सं०) (१) गाँव की सीमा। (२) सीमावर्ती भूमि (पट०-१)।

[सेमाना < सीमन्-]।

सेमार—(सं०) चीनी साफ करने के काम आनेवाली एक प्रकार की जलीय घास, जो तालाब आदि के बँधे पानी में उगती है (उ० पू० मै०)। दे०—सेवार।

[सेमार < शैवाल]।

सेर—(सं०) (१) सोलह छटाँक, या चार पाव या अस्सी तोले की एक तौल। (२) सेर-भर तौल की वस्तु।

टि०—नये विधान के अनुसार भारत-भर में नाप-तौल में एकरूपता लाने के लिए केन्द्रीय प्रशासन ने ग्राम, मीटर, सेंटीमीटर, कीलोमीटर तथा लिटर आदि अँगरेजी परिमाणवाचक पारिभाषिक शब्दों तथा परिभाष्य अर्थों को उद्घोषित करके लागू किया है। एक कीलोमीटर लगभग ८६ तोले के बराबर होता है। यह दस सौ ग्राम का होता है। यद्यपि अभी पुराने और नये दोनों बाट चालू हैं, किंतु पुराने अवैधानिक घोषित कर दिये गये हैं और नये बटखरों के प्रयोग की ही घोषणा की गई है। यही बात नये और पुराने सिक्कों के विषय में भी है।

[सेर < सेट; सेटक-(?)]।

सेरही—(सं०) (१) किसान द्वारा प्राप्त अन्न में से मन में एक सेर निकालने की प्रक्रिया (शाहा०)। (२) सेर-भर तौल की वस्तु। (३) सेर-भर दूध देनेवाली गाय-भैंस आदि। (४) भावली जमीन में पटवारी को प्रतिमन सेर-भर मिलनेवाला वेतन (शाहा०)। दे०—नौचा। (५) (गाइड०)। दे०—मनसेरी।

[सेर+ही (प्र०) < सेर < सेट, < सेटक-]।

सेरी—(सं०) भावली जमीन में पटवारी को प्रतिमन सेर-भर मिलनेवाला वेतन (शाहा०)। दे०—नौचा।

[सेर+ई (प्र०) < सेर < सेट, सेटक-]।

सेरी नौ सत्ता—(सं०) भावली या जिरात जमीन की उपज में से नौ (९/१६) आना जमींदार और सात आना (७/१६) किसान में बाँटने की प्रणाली (प० मै०) दे०—नौ सत्ता।

[सेरी+नौ+सत्ता (यौ०), सेरी < सेट-, नौ < नवन्; सत्ता < सप्तन्]।

सेरुकी—(सं०) कोईं की जड़, जो खाने के काम आती है (चंपा०-१)।

[सेरुकी < शालूक-=कमल आदि की जड़ का कंद]।

सेल्हुवाधान—(सं०) एक प्रकार का काला महीन धान (पट०-१)।

[सेल्हवा+धान (यौ०), सेल्ह+वा (प्र०) + धान, सेल्ह < शालि-(?); धान < धान्य-(?)]।

सेल्हा—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुं०, पट०)। (२) एक उजला मोटा अगहनी धान (सा०-१, चंपा०-१)।

[सेल्हा < शालि-]।

सेवटा—(सं०) अधिक वर्षा के बाद तेज गरमी पड़ने पर जमीन में पपड़ी पड़ जाने के कारण पौधे की वृद्धि में हुई रुकावट। दे०—सपट जाइल।

[सेवटा-(?)]।

सेवठा—(सं०) (शाहा०, पट०)। दे०—सेवटा।

सेवात—(सं०) हल के द्वारा जोतने से खींची हुई वह गहरी लकीर, जिसमें दूसरा अनाज बोया जाता है।

ये लकीरें खेत के चारों ओर किनारे-किनारे की जाती हैं (गया)। पर्या०—झंझियाधारी (सा०, गया)।

[देशी]।

सेबार—(सं०) चीनी साफ करने के काम आनेवाली जल के ऊपर होनेवाली एक प्रसिद्ध घास। दे०—सेंवार।

[सेबार < शेवाल-, शैवल-]।

सेस—(सं०) भूमि पर लगनेवाला राजस्व-विशेष। इसके रुपये सड़क के निर्माण में लगते हैं (सा०-१, पट०-१)। पर्या०—रोडसीस।

[सेस (अं०)]।

सेहला—(सं०) एक प्रकार का धान (मुं०-१)।

[सेहला < सेहरा < शिखरक-, शिखण्डक वा < शालि-(?)]।

सै—(सं०) सौ, सौ की संख्या (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[सै < शत-]।

सैका—(सं०) हाँड़ी आदि से गन्ने के रस को निकालने का मिट्टी का मग (मुं०-१)। पर्या०—शैका।

[सैका (देशी)-]।

सैन—(सं०) (१) खेत में पानी बिखेरने के लिए बाँस का या लोहे के पत्तर का बना हुआ पात्र। इसे दो ओर से दो आदमी बँधी रस्सी से पकड़कर व्यवहार में लाते हैं। (२) एक प्रकार की तश्तरी (द० पू० मैं०)। **सैन बरावल** (मु०) सैन से पानी निकालकर खेत सींचना (मुं०)।

सैन बराएल—(मु०) दो आदमियों के द्वारा दो ओर से बड़ी-बड़ी रस्सियों से बँधे हुए एक प्रकार के बरतन से पानी बिखेरकर खेत सींचना (द० पू०)।

[सैन < श्रयण <√ श्रि-(?), बराएल < बारि-(?)]।

सैन बरावल—(मु०) दे०—सैन बराएल, सैन।

सैनार—(सं०) वह स्थान, जहाँ खड़ा होकर मनुष्य सैन चलाते हैं (द० भाग०)। दे०—मोर पीर।

[सैन+आर, सैन < श्रयन- <√ श्रि-(?), आर < आल (=आलवाल)- वा (देशी प्र०)]।

सैयन—(सं०) (१) वह प्रसिद्ध वृक्ष, जिसकी लम्बी फलियों और फूलों की भाजी बनती है, सहिजन। (२) सहिजन की फली। पर्या०—सोहिजन, सोहजन, सहजन (मैं०), सहिजन (शाहा०), सहजना (पट०, द० भाग०); मुनगा=सहिजन की फली।

[सैयन < सहिजन < शोभाञ्जन-]।

सैर—(सं०) (१) दो ओर से बड़ी-बड़ी रस्सियों से बँधा एवं लटकता हुआ बरतन, जिसे दो मनुष्य पकड़कर गड्ढे आदि से पानी निकालकर खेत सींचते हैं। पर्या०—चाँड़ (मध्य, पू० बिहा०), डोल (मैं०), दौरा (द० प० शाहा०), सर (चंपा०, गया), सैन (द० पू०)। सैरवाह (सं०) सैर चलानेवाला। सैर चलाएल (क्रि०)=सैर चलाना। (२) (गाइड०)। दे०—कोस।



[सैर (देशी)]।

सैर चलाएल—(क्रि०) सैर चलाना। दे०—सैर। पर्या०—डोल चलाएल, चाँड़ चलाएल।

सैरजाल—(सं०) मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल, जो चिलवेज (इंकर) में लगा दिया जाता है (सा०-१)।

[सैर+जाल; सैर < (?) वा < सारिन् (< विसारिन्=मछली); जाल < जाल- <जल-]।

सैरवाह—(सं०) सैन चलानेवाले मजदूर। दे०—चाँड़, डोल। पर्या०—चँड़िवाह, डोलवाह।

[सैर+वाह (प्र०) < सैर < (?)]।

सैरा—(सं०) मछली पकड़ने का टोकरी जैसा एक प्रकार का जाल (द० भाग०)। दे०—अरसी।

[सैरा < सैर < (?) सारिन् < विसारिन्=मछली]।

सैल—(सं०) जुए के अंत में लगी कील, जो बैल की गरदन को हटने से बचाता है (पाप)।

[सैल < शल्य, शल्यक, < शला]।

सैला—(सं०) (१) जुए के नीचे का पल्ला (शाहा०)। दे०—तरसईल। (२) बैलों के कंधे के बाद जुए के दोनों किनारों में लगाई हुई लकड़ी या लोहे की कील। पर्या०—समैल (प०), कनैल (पू०), कनकिल्ली (द० भाग०)।

[सैला < शल्यक-, < शला]।

सैलाब—(सं०) बाढ़ (पट०-१)।

[सैलाब (फा०)]।

सैला, सइल—(सं०) जुए के दोनों पाखों को जोड़ने के लिए बैल के कंधे के बाहर छिद्र में लगाई गई कील (प०)। दे०—सईल।

[सैला < शल्यक-, शला]।





सौंडा—(सं०) (१) ताड़ के फल को काटनेवाली हँसिया को तेज करने के लिए प्रयुक्त लंबी लकड़ी (पू०)। दे०—सौंटा। (२) मोटा डंडा। पर्या०—ओंटा, डंटा, डटौका (चंपा०)। (३) छोटी-मोटी लाठी (चंपा०-१)।
[सोंटा (देशी)]।

सौंठ—(सं०) सोंठ, आदी को सुखाकर बनाई गई वस्तु, जो मसाला या दवा आदि के काम आती है।
[सोंठ < शुण्ठी]।

सौंठि—(सं०) सोंठ (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सौंठी—(सं०) एक प्रकार की चोईंटा-रहित मछली (गा०-१)।

सौंहांस—(सं०) एक फल, खीरा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सोंहांस < सुहास-(?)]।

सोआ—(सं०) (१) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ जलस्रोत (द० भाग०)। दे०—सोता।
[सोआ < स्रोतस्-]।
(२) एक प्रकार का सुगंधित साग (चंपा०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सोआ < शताह्वा]।

सोइया—(सं०) वह कुआँ, जिसमें सतह के चारों ओर से जल नहीं निकलता, बल्कि किसी एक या दो जगह से फटनेवाले जलस्रोत से निकलता है (पट०, गया, द० मुं०)। दे०—सुत्तिहा।
[सोइया < स्रोतस्-, या स्रोतस्विन्-]।

सोई—(सं०) कुएँ की सतह पर निकला हुआ जलस्रोत (पट०, गया, द० मुं०)। दे०—सोता।
[सोई < स्रोतस्-]।

सोई कुआँ—(सं०) वह कुआँ, जिसमें नीचे से थोड़ा-थोड़ा पानी आता हो (पट०-१)।
[सोई + कुआँ, सोई < स्रोतस्, स्रोतस्विन्; कुआँ < कूप-]

सोकन—(सं०) अधिक धूसर मवेशी।
[सोकन < सुकर्ण-(?) या श्यामकर्ण (=काले कानोंवाला)]।

सोकना—(सं०) एक प्रकार का धान, जो जेठ में पहली वर्षा होने पर बोया जाता है और आसिन या भादो में काटा जाता है (उ० प०)। पर्या०—भदैया।
[सोकना<सुकर्ण-(?) या सुकणक-(=अच्छे दानोंवाला) या<श्यावकणक-]।

सोखा के पूजा—(सं०) किसानों का उत्सव-विशेष, जो आषाढ़ मास में किसी दिन मनाया जाता है। इस दिन अपने कुलदेवता की पूजा की जाती है (पट०-१)।
[सोखा + के (विभ०) + पूजा (स्त्री०)]।

सोजाना—(सं०) सहिजन का पेड़। सहिजन की फली (मुं०-१)।
[सोजाना < शोभाञ्जन-]।

सोझ—(वि०) सीधा।
[सोझ < शुद्ध या < सिद्ध (?)]।

सोझौआ जोत—(सं०) चतुर्भुजाकार खेत की लंबाई अथवा चौड़ाई की ओर से की जानेवाली सीधी जुताई। पर्या०—समती (द० भाग०), ठढ़ाइ (पट०, चंपा०), ठढ़िया (प०)।
[सोझौआ + जोत; सोझौआ < सोझ+औआ (प्र०) < सोझ < शुद्ध या < सिद्ध-, जोत < युक्त या युत < √युज्; √ यु; युत, जुत (प्रा०)]।

सोंडा—(सं०) छोटा मोटा डंडा। दे०—सौंटा।

सोत—(सं०) (१) कुएँ के अंदर निकला हुआ जलस्रोत (शाहा०, द० भाग०)। (२) छोटा नाला (पट०-१)।
[सोत < स्रोतस्-]।

सोतही—(सं०) वह कुआँ, जिसमें सतह पर कोई एक जल-प्रणाली नहीं निकलती है, बल्कि पूरे कुएँ में छोटे-छोटे जलस्रोतों से पानी मिलता है। दे०—सुत्तिहा।
[सोतही < सोत + ही (प्र०) < सोत < स्रोतस्-]।

सोता—(सं०) (१) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ जलस्रोत (गं० उ०)। पर्या०—मोका (उ० पू० मे०), सोत, सुत्ती (शाहा०), सोई (पट०, द० मुं०, गया), सोत, संगरा, संघरा (द० भाग०), सूर, सोआ (द० भाग०)। (२) नाला, परनाला (चंपा०-१)।
[सोता < स्रोतस्-]।

सोती—(सं०) नाली, जिससे होकर वर्षा आदि का पानी बहता है (चंपा०-१)।
[सोती < सोता < स्रोतस्-]।

सोन—(सं०) (१) एक प्रकार का पौधा, जिसकी छाल के रेशे से रस्सी बनती है (उ० पू०, द० भाग०, पूर्णि०)। दे०—सन।
[सोन < सन (स्थानीय उच्चारण के साथ, जिसमें 'स' का 'सो' जैसा पूत उच्चारण होता है) < शण-]।

सोन—(सं०) अमरकंटक से निकलनेवाली एक प्रसिद्ध नदी, जो मध्यप्रदेश, उ० प्र० और बिहार-राज्य की

भूमि को सींचती है और मनेर (पटना) के पास गंगा में मिलती है। पर्या०—सोनभद्दर।

[सोन < शोण-'शोणो हिरण्यवाहः स्यात्'-(अमर०)]।

सोनभद्दर—(सं०) सोन नदी। दे०—सोन।

सोनहुल—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[सोनहुल < स्वर्णकुल्ल-(?) < स्वर्णल-(?)]।

सोनहुला—(सं०) सुनहला पीला रंग। दे०—कुसुम।

[सोनहुला < स्वर्णकुल्ल-(?)]।

सोनार—(सं०) (१) अनाज तौलनेवाला (पट०)। दे०—हटवा। (२) सोनार, गहना बनानेवाले कारीगरों की एक प्रसिद्ध जाति।

[सोनार < स्वर्णकार-]।

सोनारी—(सं०) (१) सोनार को मिलनेवाला पारिश्रमिक (पट०-१)। (२) सोनार का काम।

[सोनारी < सानार < स्वर्णकार-]।

सोना सुन्नरि—(सं०) पीली बालूवाली मिट्टी (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[सोना+सुन्नरि; सोना < सुवर्ण-; सुन्नरि < सुन्दरी]।

सोबरा—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है। यह प्रायः पूर्वी बिहार में होता है।

[सोबरा < सोबर < शबल-(?)। मिला०—सोबना]।

सोमरा—(सं०) (१) दूसरी जोत, दूसरी चास। (२) दूसरी बार जोती हुई जमीन (उ० प०)। दे०—दोखार। (३) किसी खेत को एक बार आड़ा और दुबारा पड़ा जोतना (चंपा०-१)। पर्या०—सोमार (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[सोमरा < (देशी-१)]।

सोमाता—(सं०) अगली फसल के लिए की जानेवाली पहली जुताई (द० भाग०)। दे०—हरमहुतर।

[सोमाता < समुद्घंक-(?)]।

सोमार—(सं०) (१) दूसरी जोत या चास। (२) दूसरी बार जोता हुआ खेत। (३) सोमवार।

[सोमार (देशी), सोमार (३) सोमवार-]।

सोमारल—(क्रि०) खेत को दुबारा जोतना, दुहराना (मुं०-१)।

[सोमार+ल (प्र०) < सोमार (देशी)]।

सोर—(सं०) किसी पेड़ या पौधे की जड़ से निकलनेवाला तंतु-समूह (चंपा०-१)।

[सोर < सर < शूल-(?)]।

सोरही—(सं०) (१) मोट और कड़ी दोनों को जोड़नेवाली रस्सी। दे०—नखियारी। (२) फसल के परिमाण के लिए एक निश्चित राशि, जो १६ बोझों की होती है। (३) सोलह वस्तुओं का समूह (मुं०-१)। (४) कामधेनु गाय। सोरही लागल (क्रि०) किसी वस्तु की सोलह संख्या का पूरा होना (मुं०-१)।

[सोरही < षोडशी, षोडश]।

सोरही गाय—(सं०) चमरी गाय, जिसकी पूँछ से चँवर बनता है, तिब्बती याक। इस शब्द का व्यवहार लोकगीतों में होता है (चंपा०-१)।

[सोरही+गाय < सुरभि+गो-]।

सोरियाबल—(क्रि०) (१) किसी वस्तु को करीने से रखना। (२) फसल की कटी हुई राशि को ठीक से इकट्ठा करना (मुं०-१)।

सोलकन्ह—(सं०) छोटी जाति के काश्तकार (मै०)। दे०—राड़ जाति।

[सोलकन्ह < शूलस्कन्ध-(?)ः पहले फाँसी देनेवाले चाण्डाल कंधे पर शूल रखकर वध्य व्यक्ति को सूली पर चढ़ाने ले जाते थे। संभव है, इसलिए ऐसा नाम पड़ा हो]।

सोल्हा—(सं०) चार बैलों से चलनेवाले हेंगे में बाईं ओर की जोड़ी का दाहिनी तरफवाला बैल (चंपा०-१)।

[सोल्हा (देशी)]।

सोबा—(सं०) शाक-जाति का पौधा-विशेष। इसकी पत्ती नोकदार और लंबी होती है और इससे अच्छी गंध निकलती है। इसका उपयोग दूसरे शाकों के साथ होता है और इसके दानों का मसाले के रूप में प्रयोग करते हैं (पट०-१)।

[सोबा < शताह्वा-(?), शतपुष्पा-]।

सोसना—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसके खाने से गाय-भैंस का दूध गाढ़ा हो जाता है, मगर उस दूध का दही खाने से गाँठ-गाँठ में पीड़ा होने लगती है (मुं०-१)।

[सोसना (देशी)]।

सोहजन—(सं०) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसकी लंबी फली और फूलों की भाजी बनती है। उस वृक्ष की फली। सहिजन (मै०)। दे०—सैयन।

[सोहजन < शोभाञ्जन-]।

सोहनी—(सं०) खिखली कोड़ाई करके अनाज के खेतों की घास आदि की सफाई (प०)। पर्या०—केरौनी, कमैनी (गं० उ०), कोड़नी, हरखी (पट०), उभलन (गया, शाहा०), केसौनी, कमौनी, केरौनी

(द० भाग०, द० मुं०)। भर खुरपी सोहल (मुं०)= खुरपी से गहरी कोड़ाई करके सोहने (घास आदि निकालने) की प्रक्रिया। सोहाइ (सं०)=सोहनी के लिए दी जानेवाली मजदूरी।

[सोहनी < सोहल (बिहा० क्रि०) < √शोम्-]।

सोहरी—(सं०) गाड़ी में जुते हुए बैलों के गले में लगी रस्सी, जिसे खींचकर उन्हें चलाते, मोड़ते हैं, रास (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—रास।

सोहल—(क्रि०) (१) छड़ी आदि को छुरी से चिकनाना। (२) लकड़ी, बांस आदि की कानियों को मोखना। (३) प्रहार के लिए किसी के ऊपर लाठी उठाना (मुं०-१)। (४) खुरपी से खेत की घास आदि की निकौनी करना, जिससे अनपेक्षित वस्तु निकल जाय, जमीन हलकी हो जाय और फसल की बाढ़ ठीक से हो।

[सोह + ल (प्र०) < सोह < शोमा- < √शोम्-]।

सोहाइ—(सं०) खेत में की जानेवाली घास आदि की सफाई के लिए मिलनेवाली मजदूरी। पर्या०—चिखुराई (उ० प०), बन (पू०), निकौनी (पट०, गया), बनी (द० प० शाहा०), बनिहारी (सामा०)।

[सोहाइ < सोहा < शोमा]।

सोहिजन—(सं०) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसकी लंबी फली और फूलों की भाजी होती है। इस वृक्ष की फली, सहिजन। (मै०, द० भाग०, पूर्णि०)। दे०—सैयन।

[सोहिजन < शोमाञ्जन-]।

सौंख—(सं०) बैलों के मस्तक पर का एक प्राकृतिक चिह्न। यह एक ऐब माना जाता है। यह निशान सिर पर शंख के आकार का होता है (पाप)।

[सौंख < शङ्ख-]।

सौंफ—(सं०) जीरा की जाति का एक प्रसिद्ध मसाला।

[सौंफ < शतपुष्पा]।

सौंरा—(सं०) धूसर वर्ण का मवेशी। दे०—सांवर।

[सौंरा < सांवर < श्यामल-]।

सौनी—(सं०) सरसों आदि की भूसी (मुं०-१)। पर्या०—शौनी।

[सौनी < (?)]।

सौरी—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१, चंपा०-१)।

[सौरी < बिसारिन् (?)]।

स्यामकरन—(सं०) वह बैल, जिसके दोनों कान काले होते हैं। यह एक ऐब है (पट०-१)।

स्यामतरु—(सं०) वह बैल, जिसका तालु काला होता है। यह एक ऐब है (पट०-१)।

[स्यामतरु < श्यामतालु]।

स्यारी—(सं०) जाड़े की फसल (पाप)।

स्वाती—(सं०) पंद्रहवां नक्षत्र, स्वाती। यह आश्विन में पड़ता है। इसका पानी फसल के लिए अमृत के समान माना जाता है। कहा जाता है कि इसकी बूंद सीपी में मोती बनती है। पर्या०—सिवाती।

[स्वाती < स्वाती]।

ह

हंकनिहार—(सं०) मोट आदि चलाने में बैलों को हांकनेवाला मनुष्य। दे०—हंकवा।

[हँकनि+हार (प्र०)<हँकनि <हांकल (बिहा०); हांकना (हिं०) < √हक्क (हक्कार—देशी)]।

हंकवा—(सं०) मोट आदि चलाने में बैलों को हांकनेवाला मनुष्य। पर्या०—हंकनिहार, फेरहा (शाहा०)।

[हँक + वा (प्र०) < हँक < हांकल, हांकना (हिं०) < हक्क (देशी-धा०); हक्क (देशी) = हांक, प्रेरणा। 'धवलो धुरम्मि जुत्तो न सहइ उच्चारिअं हक्कं, (वज्जा०)=धुरी में जुता हुआ धौरा बैल मुंह से निकले हांक को नहीं सह सकता है]।

हंकवा—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू को हांकनेवाला मजदूर (द० प० शाहा०, मै०)। दे०—कतरवाह। (२) श्राद्ध के समय हल्ला करके मांगनेवाला महापात्र, जो पितरों की नरक-स्वर्ग की गति का वर्णन करते हुए दान मांगता है और जबतक मुंहमांगा दान नहीं मिलता, तबतक हल्ला करता रहता है।

[हँक+वा (प्र०) < हँक < हक्क (देशी)=हांक]।

हंकावल—(क्रि०) (१) पशु को टिटकारकर चलाना या खदेड़ना। (२) हांक देना, पुकारना, बुलाना

[हँक + आवल (प्र०) < हँक < हक्क (देशी) = हांकना, पुकारना; हँकाउनु (ने०); हकुणो (कुमा०); हांकना (हिं०); हकावना (पं०)]।

हंड़वाय—(सं०) एक थैला, जिसमें बैल पर अन्न ढोनेवाला अपना सामान रखता है (द० मुं०)। दे०—कटारी।

[हँड़वाय (देशी), मिला०—हदवे, हदवा (=अन्न तौलनेवाला व्यक्ति) < हट्ट-]।

हंडा—(सं०) (१) ऊख या तेल पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख अथवा तेलहन पीसा जाता है। दे०—खान।

[हंडा < हण्ड-, वा हण्डिका]।

हंडा—(सं०) (२) जमींदार की जिरात जमीन के प्रति-एकड़ धान की उपज के २० मन का कर। (३) नील की खेती के लिए मिल-मालिक द्वारा

निर्धारित नकदी वितरण। (४) नील की खेती न करने के कारण लिया जानेवाला हरजाना। (गाइड०)। (५) भात आदि पकाने का बरतन।

[हंडा (देशी) या < हण्ड-]।

हँड़िया—(१) (सं०) अन्न रखने का एक बरतन (गं० उ०)। (२) भोजन पकाने का मिट्टी का हंडा-जैसा बरतन।

[हँड़िया < हण्डिका < हण्ड, या भाण्ड-(?)]।

हँड़ुआ—(सं०) बाँस की कोंपल से तैयार किया गया खाद्य (पट०-२)।

[हँड़ुआ (देशी)]।

हँड़ोलड़वा—(सं०) ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख का टुकड़ा पीसा जाता था (यह आज से सौ वर्ष पहले प्रयुक्त होता था, जबकि कोल्हू लकड़ी या पत्थर का होता था) (शाहा०)। दे०—खान।

[हँड़ोलड़वा (देशी)]।

हँथउठाई—(सं०) खलिहान में दौनी समाप्त होने पर मजदूरों को दिया जानेवाला अनाज (पट०-१)।

[हँथ+उठाई ; हँथ < हस्त-, उठाई < उठावल < √उत्थापन < उद्+√स्थापि<उत्थापयति]।

हँथड़ा—(सं०) चक्की का वह भाग, जिसे पकड़कर चक्की घुमाई जाती है। हत्था (मुं०-१)। पर्या०—हथड़ा, हत्था।

[हँथ + ड़ा (प्र०) < हँथ < हस्त-, या < हस्तदण्ड-]।

हँथवासा—(सं०) बल्ला और गाड़ी के बीच की खाली जगह को रस्सी से भरना। पर्या०—फड़का (पट०), एड़ा (सा०)।

[हँथवासा (देशी)]।

हँथिगड़—(सं०) मवेशियों का एक प्रकार का ऐब। इस ऐबवाले मवेशियों का सिर नीचे की ओर झुका रहता है (सा०-१)।

[हँथि + गड़, हँथि < हाथी < हस्तिन्-(?), गड़< गड़ल, गड़ना (हिं०), या <गल-]।

हँफनी—(सं०) पशुओं का एक रोग, जिसमें हाँफना और काँपना अधिक होता है (द० पू० मै०)। दे०—हाँफ।

[हँफनी < हाँफल (बिहा० क्रि०) < हफ्फ (देशी) या<मफ्फ<वफ्फ < बाष्प-(?)]।

हँररहवा—(सं०) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (उ० प०)। दे०—ललका।

[हँर+रहवा < हँरर+हवा (प्र०) हँरर < हरड़ हरीतकी (?)]।

हँसड़ल—(क्रि०) (१) सामूहिक रूप से फसल, संपत्ति आदि को नष्ट करना। (२) जैसे-तैसे खाना। (३) मसलना (मुं०-१)।

[हँसड़+ल (प्र०) < हँसड़ < हँस+ड़ (प्र०) < < हँस < ध्वंस < √ध्वंस् (?)]।

हँसुआ—(सं०) (१) ताड़ के फल को काटनेवाली हँसिया (पू०)। दे०—हँसुली।

हँसुआ—(सं०) (२) घास या फसल काटने का तेज धारवाला हथियार, हँसिया। पर्या०—हाँसू। (३) फसल या घास काटने का लोहे का धनुषाकार एक हथियार (पट०-१)। (४) ऊख छीलने का लोहे का तेज हथियार। (५) तरकारी, सब्जी आदि काटने का एक खड़ा हथियार (द० भाग०)।

[हँस + उआ (प्र०) < हँस < ध्वंस < √ध्वंस् (ध्वंसते-(?) या < √हस् (हसति) या < असि-, या < हास (=चन्द्रहास=तलवार)]।

हँसुली—(सं०) (१) ताल-पेड़ के फल को काटनेवाली हँसिया (प०)। पर्या०—हँसुआ (पू०), फँसुली (सा०-१)।



हँसुली—(सं०)(२) बिना दाँत की हँसिया, जिससे प्रायः साग या ताड़ आदि काटने का काम लिया जाता है (प०)।

[हँसुली < हँस+उली (प्र०) < हास-(=चन्द्र-हास=तलवार) (?) या < असि-]।

हँसेड़ी—(सं०) (१) भीड़, समूह। (२) लूटपाट या बलवा करनेवालों का अनियन्त्रित जनसमूह। (३) फसल काटनेवाले मजदूरों का जत्था (मुं०-१)।

[हँसेड़ी (देशी)]।

हँसेड़ी—(सं०) मारपीट करने के लिए उतारू अनियन्त्रित जनसमूह (चंपा०-१)।

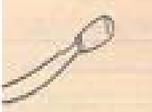
[हँसेड़ी (देशी))]।

हक आजिरी—(सं०) वह रकम, जो जरपेशगीदार को रुपये के सधाने में मिलती है (सा०-१)।

[हक+आजिरी; हक-(फा०)=अधिकार; आजिरी< आजिर (अ०) (=मजदूरी देनेवाला) < उज्रत (अ०)= मजदूरी, वेतन]।

हक आशाइस—(सं०) दूसरे की जमीन पर हक जताने-वाला होना (सा०-१)।

[हक+आशाइस; हक < हक़ (फा०) + आसाइश (फा०); हक=अधिकार; आसाइश=सुख, चैन, सुविधा; हक्के + आसाइश (अ०, फा०) =वह हक, जिसे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को देने के लिए बाध्य हो]।



हकमैती—(सं०) जमींदार की आज्ञा से किसी विशेष अवसर पर किसान के द्वारा समर्पित वस्तुविशेष या वैयक्तिक सेवा (द० भाग०)। दे०—हुकूमत।
[हकमैती < हुकुम < हुक्म (अ०)]।

हकशफा—(सं०) किसी व्यक्ति द्वारा अपनी जमीन बय कर देने पर उस जमीन के शरीकदार या उस जमीन के नजदीकवाली जमीन के मालिक को कीमत अदा करने पर जमीन लेने का हक होना (सा०-१)।
[हक+शफा < हक्के शुफ़्अः (अ०)=पड़ोस की जमीन या मकान पर वह हक, जो उसके बिकते समय पड़ोसी को प्राप्त रहता है कि वह जमीन या मकान सबसे पहले उसे ही मिले]।

हक हाजरी—(सं०) असली जमींदार को दिया जानेवाला राजस्व (पट०-१)।
[हक+हाजरी; हक < हक़ (फा०); हाजरी < हाजरी (अ०)]।

हकीअत—(सं०) जमींदार का अधिकार (पट०-१)।
[हकीयत < हक़ (फा०)]।

हकूकुल कागजात—(सं०) अधिकार-संबंधी पत्र (सा०-१)।
[हकूकुल+कागजात; हकूकुल < हक्कूक़ (अ०)-(?) कागजात < कागज (अ० बहु० व०)]।

हचका—(सं०) (१) पानी के भीतर का गड्हा, खंता, खाँवा (मुं०-१)। (२) सड़क की लीक के बीच का गड्हा, जहाँ गाड़ी आदि का पहिया 'हच'-से बोल उठता है। पर्या०—हिचका।
[हचा < पालि < √हच्]।

हजाम—(सं०) गाँव में बसनेवाली एक जाति, जो बाल काटकर तथा जनेउ-विवाह आदि के अवसर पर कार्य करके अपनी जीविका चलाती है, नाई। पर्या०—ठाकुर, नाइ, नाउ, नौआ, नहेरि (उ० पू० मै०), ओस्ता (सा०, द० भाग०)।
[हजाम < हज्जाम (अ०); हजाम नाई, नाउ (हिं०); नापित (संस्कृ०)]।

हजामत—(सं०) सिर तथा दाढ़ी का बाल बनाना या काटना (पट०-१)। पर्या०—खाउ, खौर।
[हजाम+त (प्र०) < हजाम < हज्जाम (अ०)]।

हजारा लेंबो—(सं०) सुपारी के समान छोटे-छोटे रूप में फलनेवाला नींबू (पट०-१)।
[हजारा+लेंबो (देशी)]।

हटई—(सं०) (१) अन्न नापने का लकड़ी या लोहे का बना विशेष प्रकार का बरतन (चंपा०-१)। (२) दूध नापने का पात्र-विशेष, जो मिट्टी का बना होता है और बीस गंडे की नाप का होता है (चंपा०-१)।
[हटई < हट+ई (प्र०) < हट < हट्ट-]

हटका—(सं०) मकान की दो दीवारों के जोड़ के पास से चलकर छत के पास जाकर कैंची की तरह मिलकर अपने उपरले नोंक पर छत के भार को उठानेवाले दो खंभों का जोड़ा (शाहा०)। दे०—भितमेड़ा।
[हटका (देशी)]।

हटबे—(सं०)(१) अनाज तौलनेवाला जमींदार का आदमी (पट०-१)। (२) अनाज तौलनेवाला, बनिया।
[हट+बे (प्र०) < हट < हट्ट-(?)]।

हटवई—(सं०) अन्न नापने की मजदूरी (चंपा०-१)।
[हट+वई (प्र०) < हट < हट्ट-(?)।

हटवई—(सं०) गाँव के बाहरी आदमी से अपनी जमीन का लगान वसूल करना (सा०-१)।
[हट+वई (प्र०) < हट < हट्ट-(?)]।

हटवई, हटवाई—(सं०) अन्न तौलनेवाले व्यक्ति का पारिश्रमिक (सं० उ०)। दे०—हटवाई।
[हटवई < हट+वई (प्र०) < हट < हट्ट]।

हटवा—(सं०) अन्न तौलनेवाला व्यक्ति (सं० उ०), (गाइड०)। पर्या०—हटवे (चंपा०, पट०, गया), बाया, बया (प०), सोनार (पट०), केआल, बनिया (पट०, द० पू०)।
[हट+वा (प्र०) < हट < हट्ट (?)]।

हटवाई, हटवई—(सं०) अन्न तौलनेवाले व्यक्ति का पारिश्रमिक (सं० उ०)। पर्या०—पछुआ (चंपा०, मै०); मनपई, मनपौआ (चंपा०, पू० मै०)। केआई, पवही (=प्रतिमन एक पाव) (प०); चालसा (गया, द० मुं०), धुरिया (=प्रतिमन एक पाव) (पट०, चंपा०), केआली, तौलाई (=प्रतिमन एक सेर) (द० पू०)।
[हटवाई < हट+वाई (प्र०) < हट < हट्ट-(?)]।

हटवे—(सं०) अन्न तौलनेवाला व्यक्ति (चंपा०, चंपा०-१, पट०, गया)। दे०—हटवा।
[हट+वे (प्र०) < हट < हट्ट-(?)]।

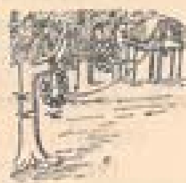
हड्ड—(वि०) कड़ा, कठोर, कच्चा (मुं०-१)। पर्या०—हड्डा।
[हड्ड < हड्ड-(?)]।

हड्डा—(सं०) जमीन की जुताई में लकीर से घिरा हुआ जमीन का टुकड़ा। दे०—आँतर। (वि०) कड़ा, कठोर, कच्चा (मुं०-१)।
[हड्डा (देशी)]।

हट्टा बरद—(सं०) वह बैल, जो गाड़ी आदि में न चलकर केवल हल या हेंगे में चलता है (चंपा०, मै०)। दे०—बरद।

[हट्टा+बरद, हट्टा < हट्ट < √ हृष्+त (प्र०)+ बरद < बलीवर्द-]।

हड़का—(सं०) चिड़ियाँ आदि को डराने के लिए खेत में पेड़ से लटकाया हुआ टिन, ताड़ का पत्ता आदि, जिसे बजाने के लिए रस्सी से खींचते हैं (द० भाग०, द० मुं०)। दे०—डबडबा।



[हड़का < हड़हड़ (अनु०)]।

हड़बोंग—(सं०) मोटी और भारी लाठी। मजबूत बोंग (मुं०-१)।



[हड+बोंग (देशी)]।

हड़वर—(सं०) वह खेतिहर मजदूर, जो पूरे वर्ष के लिए नियुक्त होता है (सा०)। पर्या०—भरसलिया (उ० पू० मै०)।

[हड़वर (?)]।

हड़हड़ा—(सं०) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (द० प० मै०)। दे०—ललका।

[हड़हड़ा (देशी-?)]।

हड़हवा—(सं०) दक्षिण-पश्चिम की हवा, जिसके कारण फसल में रोग लग जाता है (चाय)।

[हड़हवा (देशी)]।

हड़हवा—(सं०) (भोज)। दे०—ऊख नम्बर ४५३।

हड़हवा—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०)।

[हड़हवा (देशी)]।

हड़हा—(सं०) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (पट०)। दे०—ललका।

[हड़हा (देशी))।

हड़ियबाबेल—(सं०) (१) एक प्रकार का बेल, जिसका फल बहुत बड़ा होता है। (२) उस पेड़ का फल।

[हड़ियवा+बेल, हड़ियवा < हड़िया < हंडिका, बेल < बिल्व-]।

हड़िया—(सं०) (१) हाँड़ी, मिट्टी का बरतन। (२) भात सड़ाकर बनाई गई शराब, जो संतालों का एक प्रिय पेय है (मुं०-१)।

[हड़िया < हण्डिका]।

हड़ौड़ी—(सं०) हरवाहों को दी जानेवाली अगाऊ मजदूरी (उ० प० मै०)। दे०—अगवड़।

[हड+औड़ी-, हड <(?) वा हर < हल-, औड़ी (प्र०) वा औड़ी < चाउर < चावल-(?)]।

हड्डा—(सं०) (१) तंबाकू की जड़ से उत्पन्न होनेवाला उजला लंबा कीड़ा, जो पौधे की जड़ को काटकर अलग कर देता है। (२) घोड़ों की टाँग में जौ की बाल की तरह हड्डी निकलने का एक रोग (पट०-१)। (३) अनाज को हानि पहुँचानेवाली एक छोटी लत्तर या घास। दे०—उनरा। (४) लाल रंग का एक प्रकार का गेहूँ (चंपा०-१)। (५) एक प्रकार की चोंइटा-रहित मछली (सा०-१)। (६) एक प्रकार का विषैला कीड़ा, जो लाल या पीले रंग का होता है। ततैया (पट०)।

[हड्डा < हड्डी < अस्थि-(?)]।

हड्डी—(सं०) (१) मकई के भुट्टे से दानों के निकाल लेने के बाद बचा हुआ डंठल (द० भाग०)। दे०—लेंड़ा। (२) किसी फल आदि की आँठी। (३) शरीर के अंदर का प्रसिद्ध धातु-विशेष।

[हड्डी < अस्थि-, वा < अस्थी]।

हत्था—(सं०) (१) खेत में पानी बिखेरकर सींचने के लिए लकड़ी का बना हुआ और बाँस का डंडा लगा हुआ सूप जैसा एक बरतन। (२) कड़ाह में रस उड़ेलने के काम आनेवाला मिट्टी का पक्का घड़ा। दे०—थैका। (३) लकड़ी की बनी फावड़ा जैसे फलवाली एक वस्तु, जो खेत में पानी छिड़कने के काम आती है। दे०—हथा। (४) केले के फलों का गुच्छा (चंपा०-१)।



(५) बड़ा हाथी। (६) भाथी में व्यवहृत मुठिया की तरह दो खड़ी (द० पू० मै०)। दे०—हत्थी। (७) करघे का उपकरण-विशेष, जो लकड़ी का बना होता है और छत से लटकता रहता है तथा ढरकी के चलने पर आगे खींचा जाता है (प० शाहा०, पट०, प० मै०)। (८) मलाई उतारने के लिए झरनी की तरह मिट्टी का बना हुआ चम्मच (पट०, गया, द० मुं०)। (९) मुसरे को चलाने के लिए हाथ से पकड़ने की मूठ (द० भाग०)। दे०—चलौनी। (१०) कुरता, कमीज आदि की बाँह। (११) बाँह। (१२) केले की घूर, जिसमें एक दर्जन या इससे अधिक भी केले होते हैं। एक खम्ही या घौद में कई घूर या हत्थे होते हैं। (मुं०-१)।

[हत्था < हस्तक-]।

हत्था चरक—(सं०) मोटा रस्सा ऐंठने का उपकरण-विशेष (गं० उ०)। पर्या०–मूठा (गं० द०)।
[हत्था+चरक, हत्था < हस्तक-, चरक < चर्ख (फा०), चरखी]।

हत्थी—(सं०) ढेंकी चलाते समय सहारा के लिए पकड़ने की लग्गी या कोई दूसरी चीज (गया)। दे०—अस्थम।
[हत्थी < हत्था < हस्तक-]।

हथउठाई—(सं०) खलिहान में नेगियों को दिया जानेवाला अन्न (पट०-१)।
[हथ+उठाई, हथ < हाथ < हस्त-, उठाई < उठावन <उत् + √स्था]।

हथकल ढोमनी—(सं०) चौखट में किवाड़ के पल्लों को अटकाने या बिठाने के लिए लोहे का खंग (मुं०-१)।
[हथकल + ढोमनी (देशी)]।

हथकुरइली—(सं०) छोटा कुरइल (एक प्रकार का जाल), जिससे मछलियाँ पकड़ी जाती हैं (चंपा०-१)।
[हथ+कुरइली, हथ < हाथ < हस्त-, कुरइली (देशी)]।

हथघिसेट—(सं०) पानी पटाया हुआ खेत (गया)। दे०—पटौआ।
[हथ+घिसेट; हथ < हाथ < हस्त-, घिसेट < घिसन]।

हथड़ा—(सं०) (१) जाँता चलाने का लकड़ी का बना हत्था। दे०—हथरा। (२) केले के फल का आधार, जिसमें फल लगे रहते हैं (पट०-१)। दे०—हत्था।
[हथड़ा < हथ+ड़ा (प्र०) < हथ < हत्थ < हस्तक-(?)]।

हथधरा—(सं०) करीन और छीप को जोड़नेवाली रस्सी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[हथ+धरा; हथ < हाथ < हस्त-; धरा <धरन < √धृ-]।

हथनी—(सं०) मादा हाथी, हथिनी। पर्या०—हथिनी, भेदनी (पू० मैं०), जोड़ी (द० प० मैं०)।
[हथनी < हस्तिनी < हस्तिन् < हस्त-]

हथफेर—(सं०) (१) निश्चित समय के लिए लिया गया ऋण, जो ठीक समय पर लौटा दिया जाता है। दे०—पैंचा। (२) बिना सूद का लिया गया ऋण। दे०—दसगरदाँ।
[हथ+फेर; हथ < हाथ < हस्त-, फेर < फेरन (बिहा० क्रि०)]।

हथबरही—(सं०) लाठे में लगा हुआ पानी निकालने का रस्सा (चंपा०, उ० पू० मैं०)। दे०—बरहा।
[हथ+बरही, हथ < हाथ < हस्त, बरही, बरहा < बराहर्ड-(?)]।

हथबाहा—(सं०) हत्था से पानी बिखेरकर खेत को सींचनेवाला पुरुष। पर्या०—छिरकना (उ० प०), बरवाहा (शाहा०), पनिवाह (प०), खँड़मोड़ा, छिचनिया (पट०, गया); सिचवाह, खँड़वाह (पट०), खँड़कट्ठा (चंपा०, द० भाग०), गँड़रकट्ठा (द० मुं०)।
[हथबाहा < हथ+बाह; हथ < हाथ < हस्त-; बाहा (प्र०) वा < √वह्]।

हथरा—(सं०) (१) जाँता (चक्की) का हत्था। पर्या०—हथड़ा, खूआ (प०), हाथर (द० पू० मैं०)। (२) जाँता को चलानेवाला बड़ा हत्था (यत्र-तत्र)। दे०—हथड़ा।
[हथ+रा (प्र०) < हथ < हस्त-, हस्तक-]।

हथवै—(सं०) एक प्रकार की पशु-खाद्य घास (पू० मैं०)।
हथ+वै (प्र०) < हथ < हस्तिन् (?) मिला०-हथिया=एक लंबी घास]।

हथसार—(सं०) हाथी के रहने का घर (मुं०-१)।
[हथ+सार < हस्तिशाला]।

हथा—(सं०) लकड़ी का बना फावड़ा जैसे फलकवाला उपकरण, जो खेत में पानी छिड़कने के काम आता है। पर्या०—हत्था, आमा (गं० द०), छिट्टा (द० भाग०), कठौआ (द० मुं०)।
[हथा < हत्था < हस्तक-]।

हथिनी—(सं०) मादा हाथी। दे०—हाथी, हथनी।
[हथिनी < हस्तिनी]।

हथिया—(सं०) (१) सत्ताईस नक्षत्रों में तेरहवाँ नक्षत्र, जो किसानों में बहुत प्रसिद्ध है। यह प्रायः आश्विन मास में पड़ता है। खेती के लिए इस नक्षत्र में पानी बरसना आवश्यक माना जाता है। अन्यथा खेती की फसल में विशेषकर धान में अच्छा अनाज नहीं हो पाता।
[हथिया < हस्त-, हत्थ (पा०); हथिया (हिं०); हथिया (ने०)]।

हथिया—(सं०) (२) चावल को हानि पहुँचानेवाला उजला छोटा कीड़ा (उ० पू० मैं०, गया)। पर्या०—हथियासुंडा (द० पू०)। (३) एक लंबी घास।
[हथिया (देशी) वा < हस्त-(?)]।

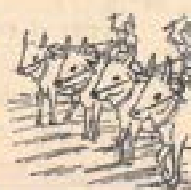
हथियावल—(क्रि०) हाथ में लेना, हड़पना, अपने कब्जे में लेना (मुं०-१)।
[हथिया+आवल (प्र०) < हथिया < हस्त-]।

हथिया सुंढा—(सं०) चावल को हानि पहुँचानेवाला एक उजला छोटा कीड़ा (द० पू०)। दे०—हथिया।
[हथिया < हस्तिन्-, सुंढा < शुण्डा-(?)।

हथुनी—(सं०) एक प्रकार का मोटा ऊख (प० मै०, सा०)।
[हथ+उनी < हथ < हस्त-(?)]।

हथैला—(सं०) ऊख का रस रखने का मिट्टी का बरतन (गया)।
[हथ+ऐला (प्र०) < हथ <हत्थ <हस्त-(?)]।

हथौधा—(सं०) हेंगा चलाते समय बैलों को पकड़े रहने की रस्सी (पट०-१)।
[हथ+औधा<हथ+बंधा < हस्तबन्ध-]।



हथौआ—(सं०) हेंगे में बाईं ओर के बैल के अनंतर दूसरा बैल।
[हथ+औआ; हथ < हस्त-, औआ (प्र०)]।

हथौना—(सं०) (१) ताड़ी इकट्ठा करने का लबनी से बड़ा पात्र।
[हथौना < हथ+औना < हथ < हस्त-, औना < आवपन-]।

हथौना—(सं०) (२) ताड़ी रखने का लंबी आकृति का बड़ा घड़ा।

हदहद—(क्रि० वि०) झम-झम, जोर से (मुं०-१)।

हदहदावल—(क्रि०) जोर-जोर से वर्षा का होना (मुं०-१)।
[हद+हद+आवल (प्र०) < हदहद (अनु०)]।

हनुआ—(सं०) पशुओं का दंतरोग (द० पू० मै०, पट०)। दे०—मुखमासी।
[हनुआ (देशी), या < हनु-]।

हन्नबाई—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे वे एकाएक चक्कर खाकर गिर जाते हैं (पट०-१)।
[देशी]।

हन्ना—(सं०) ऊख या तेल पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख या तेलहन पीसा जाता है (सं० द०)। दे०—खान।
[हन्ना (देशी)]।

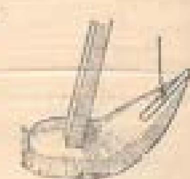
हफसल—(क्रि०) हाँफना। गरमी आदि के कारण बैलों का हाँफना (मुं०-१)।
[हफस+ल (प्र०)<हफस (अनु०), हाँफना (हिं०); हाफिक (संस्कृ०-) (हिं० श० सा०)]।

हबसायल—(क्रि०) फसल की बाल के दृढ होने की अवस्था में होना (द० प० शाहा०)। पर्या०—कैलाएल, गोटाएल (सा०, प० मै०); अधपक्कू (गया); कैला जाएल (पट०-१); कलाएल (द० पू०)।
[हसब + आएल (प्र०) < हसब < (?) या (देशी)]।

हबेली—(सं०) (१) चारों ओर से घिरा हुआ कई कमरों से युक्त बड़ा मकान (सं० उ०)। (२) स्त्रियों के रहने लिए घिरा हुआ मकान, अन्तःपुर (सं० द०)। पर्या०—हवेली (सं० द०), हाता (सं० द०)।
[हबेली < हवेली (फा०)]।

हमचा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)।
[हमचा-(देशी)]।

हर—(सं०) (१) हल, जमीन जोतने का एक प्रसिद्ध उपकरण। पर्या०—लांगल (शाहा०)।
[हर <हल; (संस्कृ०); हल (पा०, प्रा०); हल, हर (हिं०); हल् (नि०)=जुआ, दो बैलों का जोड़ा; हल (कुमा०); हल (बँ०); हल (ओ०); हल (पं०, ल०); हलिया (अस०)=जोड़ा; हल (गु०, म०); हल (करम०); हल (प० पहा०); हट (दरदी); होल, हाल (सिन्धा०); हल (सिंह०)]।



(२) हल का वह अगला नुकीला भाग, जिसमें फाल लगाया जाता है (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) ऊख बोने में दो हलों से काम लिया जाता है, उनमें से पहला हल। इसे 'दहियावाला हर' भी कहते हैं। इसका दूसरा हल 'कान्ही के हर' कहलाता है (सा०), मठौनी (चंपा०)। कौनी, कान्ही=दूसरे हर के चारों ओर बाँधा हुआ घास का बंडल, जो हल के द्वारा हुए कटाव (सीराउर) को विस्तृत करता है। सं० द० मै० में दूसरे हल का प्रयोग नहीं होता है। आज० में पहले हल के कटाव (सिराउर) को दूसरे हल से साथ-साथ बंद किया जाता है। किंतु, बिहार में प्रायः हाथ से ही सिराउर को ढक दिया जाता है।
[हर < हल-]।

हरई—(सं०) जमींदार द्वारा मुफ्त में लिया जानेवाला हल-बैल (पट०-१)।
[हर+ई (प्र०) < हर < हल-]।

हरकट्ठा—(सं०) हल का वह अंश, जिसमें फाल लगाया जाता है (दर०-१, पूर्णि०-१) ; पर्या०—हरकठ ।
[हर+कट्ठा < हल+काष्ठ-(?)] ।

हरकठ—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१) । दे०—हरकट्ठा ।

हरकल—(क्रि०) भड़कना, दूर भागना । परकल (क्रि०) का उलटा (मुँ०-१) ।
[हरक+ल (प्र०) < हरक < √ह-(?)] ।

हरका—(सं०) चिड़िया आदि को डराने के लिए खेत में पेड़ से लटकाये हुए टिन आदि, जिन्हें रस्सी से खींचते हैं और वे बजने लगते हैं (द० भाग०, द० मुँ०) । दे०—हवड़वा ।

हरकावल—(क्रि०) भड़काना, भगाना, पास नहीं फटकने देना । परकावल का उलटा (मुँ०-१) ।
[हरक+आवल (प्र०) < हरक < √ह-(?)] ।

हरकाह—(सं०) भड़कनेवाला बैल (सं० उ०) । दे०—फेफरियाह ।
[हरक+आहा (प्र०) < हरक < √-ह-(?)] ।

हरकाहा—(सं०) भड़कनेवाला बैल (द० पू० मुँ०-१) । दे०—फेफरियाह ।
[हरक+आह (प्र०) < हरक < √ह-(?)] ।

हरकाही—(सं०) भड़कनेवाली गाय या भैंस (मुँ०-१) ।

हरकुस—(सं०) काम बंद होना । काम में बाधा या रुकावट पड़ने का भाव (मुँ०-१) ।
[देशी] ।

हरकेर—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१) । पर्या०—हरिनकेस (दर०) ।
[देशी] ।

हरखी—(सं०) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेतों की घास आदि की सफाई (पट०-१) । दे०—सोहनी ।
[हरखी (देशी) या हरखी < हलखी < हलका < लघुक-(?)] ।

हरखुगानी—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे पर हल को घर की ओर ले जाने की क्रिया (द० पू० मैं०) । दे०—हरखुली ।
[हर+खुगानी, हर < हल-; खुगानी < खुलानी < खुलल (?)] ।

हरखुली—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हर को रखकर घर की ओर ले जाना । पर्या०—हरखोलिया, हर खुजल, हरखुगानी (द० पू० मैं०), हरछुटाव (द० प० शाहा०), हरछुट्टन (शाहा०, गया); हरबिनार, हरजोआर (पट०), हरखोलानी (चंपा०, द० मुँ०-१), हरखोली (गया, चंपा०, द० पू०) ।
[हर+खुली; हर < हल-; खुली < खुलल, खोलल (बिहा० क्रि०)] ।

हरखूजल—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हल को रखकर घर की ओर ले जाना । दे०—हरखुली ।
[हर+खूजल, हर < हल-; खूजल (देशी)] ।

हरखोलानी—(सं०) दे०—हरखुली ।

हर खोलिया—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हल को रखकर घर की ओर ले जाना । दे०—हरखुली ।
[हर+खोलिया, हर < हल-, खोलिया (देशी)] ।

हरखोली—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हल को रखकर घर की ओर ले जाना (गया, चंपा०, द० पू०) । दे०—हरखुली ।
[हर+खोली, हर < हल-, खोली < खोलल, खुलल] ।

हरछुटाव—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हल को रखकर घर की ओर ले जाना (द० पू० शाहा०) । दे०—हरखुली ।
[हर+छुटाव; हर < हल-; छुटाव < छुट+आव (प्र०) < छूटल < √छुट् (देशी)] ।

हरछुट्टन—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हल को रखकर घर की ओर ले जाने की क्रिया (शाहा०, गया) । दे०—हर खुली ।
[हर+छुट्टन; हर < हल-, छुट्टन < छूटल < √छुट् (देशी)] ।

हरजा—(सं०) माल की रुकावट या हरजाना ।
[हरजा < हर्ज: (फा०)] ।

हरजाना—(सं०) क्षति की पूर्ति (सा०-१) ।
[हरजाना < हर्जान: (फा०)] ।

हरजिन्सा—(सं०) वह जमीन, जिसमें रोपे जानेवाले धान को छोड़कर सभी प्रकार की फसल पैदा होती है ।
[हर+जिन्सा; हर (फा०), जिन्स (अ०)] ।

हरजोआर—(सं०) (पट०) । दे०—हरखुली ।
[हर+जोआर; हर < हल-; जोआर (?)] ।

हरदा—(सं०) (१) पाला जैसा एक प्रकार का रोग, जो फसल को सुखा देता है । इससे पौधा पीला और

बाल काली हो जाती है (उ० प०)। (२) गेहूँ का रोग-विशेष, जिसके कारण फसल पीली पड़ जाती है (पट०-१)। (३) पीली आभा लिये रोओंवाला बैल (पट०-१)।

[हरदा < हरदी < हरिद्रा, वा हरित-(?)]।

हरदि—(सं०) हल्दी (दर०-१, पूर्णि०-१)।

हरदी—(सं०) हल्दी। एक प्रसिद्ध मसाला। पर्या०—हल्दी (शाहा०), हरदि (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[हरदी < हरिद्रा; हरिद्रा (संस्कृ०); हलिद्दा, हलिद्दी (पा०); हरिद्दा, हलिद्दा, हलिद्दी, हलद्दी (प्रा०); हल्दी (हि०); हलेदो (ने०); हल्दो (कुमा०); हालिध (असo); हलिद < बं०); हलदि (ओ०); हल्दी (पं०); हल्दार (पं०); हलद्, हरदल (ल०); हैड़ांव (सि०)=पीला; हैड्रा (सि०)=हल्दी; हल्दर, हलद, हलध (गु०); हळद (मरा०); हलदु (सिंह०); लेदोर (कश्म०), हेड्ल (प०-पहा०)=हल्दी, हैंडलो (प०-पहा०)=पीला]।

हरनठल—(क्रि०) फल-फूल आदि का उद्गम बंद हो जाना (चंपा०-१)।

[हर+नठ+ल (प्र०), हर < (?) नठ < नष्ट < √नश्]।

हरना—(सं०) (१) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (उ० प०)। दे०—ललका।

[देशी]।

(२) वह भेड़, जिसकी ऊपरी देह काली और पेट लाल हो। पर्या०—कासर, ओर।

[हरना < हरिण-(?)]।

हरना तार—(सं०) (१) वह ताड़, जिसका फल छोटा होता है और उसके फल का रंग लाल होता है। (२) उस ताड़ का फल (पट०-१)।

[हरना+तार (यौ०)]।

हरपलटा—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर खेती-बारी करने की अपनी बारी (चंपा०, गया)। दे०—भाँज।

[हर+पलटा; हर < हल-; पलटा < पलट (देशी) वा < पर्यस्त < परि+ √अस्+त (प्र०)]।

हरपसार—(सं०) नई खेती के लिए प्रथम शुभ मुहूर्त में हल जोतना (पट०-१)।

[हर+पसार; हर < हल-, पसार < प्रसार (?)]।

हरपेतल—(क्रि०) बैलों का ढाही (टक्कर) मारना (प०)। पर्या०—मारल (मै०), हूँस मारल (पट०, पू०), हुस मारल (द० पू०), हूना मारल (द० पू०), हुसियाएल (गया)। हुसमार, हुसियाहा (सं०)= टक्कर मारनेवाला बैल।

[हरपेत+ल (प्र०) < (?) वा (देशी)]।

हरफरउरी—(सं०) (१) एक प्रकार का खट्टा फल, जो आकार में छोटा एवं ऊबड़-खाबड़ होता है (चंपा०-१)। (२) एक फलवृक्ष, जिसका फल हरा, छोटा और खट्टा होता है (पट०-१)। पर्या०-हरफारेरि। (सं० प०)

[हर+फर+उरी-(?)]।

हरफा—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे० हरफाउरी।

[हरफा < हरफल-(?)]।

हरफी—(सं०) साधारण ब्याज (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[हरफी < हर्फ़ (अ०)]।

हरफोरवा केराव—(सं०) एक साथ उत्पन्न जौ और केराव का मिश्रण (द० प० शाहा०)। दे०—जौ-केराई।

[हर+फोरवा+केराव; हर < हल-, फोरवा < फोरल < स्फोर < √स्फुर् वा < स्फोट < √स्फुट्; केराव < कलाय-(?)]।

हरवा डोरवा—(सं०) घोड़ों के गले में पहनाई जाने-वाली चीनी मिट्टी के दानों की माला (पट०-१)।

[देशी]।

हरबिनार—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हल को रख-कर घर की ओर ले जाना (पट०)। दे०—हरखुल।

[हर+बिनार, < हल-, बिनार < बिनस, बोनल (?)]।

हरभाँजा—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर खेती-बारी करने की अपनी बारी (पट०, गं० उ०)। दे०—भाँजा।

[हर+भाँजा, हर < हल-, भाँजा < भाँज (देशी)]।

हरमहंतर—(सं०) नई खेती के लिए हल चलाने का प्रथम शुभ मुहूर्त (पट०-१)।

[हर+महंतर < हल+मुहूर्त-]।

हरमहुतर—(सं०) नई खेती के लिए शुभ मुहूर्त में की जानेवाली पहली जुताई। पर्या०—हर मोहतर (पट०, गया); समहुत (पट०, शाहा०), सिरपंचमी (गं० उ०); सिरपचाई, हरमहंतर, हरसमता (द० मु०), सोमाता, हरसमौध (द० भाग०), हरपत (सा०)।

[हरमहुतर < हल + मुहूर्त < हल+प्रवहण + मुहूर्त-]।

हरमहूरत—(सं०) वर्ष के आरंभ में पहले-पहल हल जोतने के समय हल, पालो आदि की पूजा (गं० उ०)।
[हर+महूरत < हल+मुहूर्त-]।

हरमोठ—(वि०) हट्टा-कट्टा, उजड्ड, जबरदस्त (मुं०-१)।
[हर+मोठ, हर < हल + मोठ < मुठ्ठ < मुष्टिक-(?)=हल को मुट्ठी से पकड़कर चलानेवाला व्यक्ति, अर्थात् हट्टा-कट्टा]।

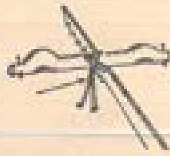
हरमोठी—(सं०) हरमोठ का भाव। जोर-जबरदस्ती (मुं०-१)।

हरमोतर—(सं०) हल की पूजा (द० मुं०)।
[हर+मोतर < हल+मुहूर्त-]।

हरमोहूतर—(सं०) नई फसल के लिए की जानेवाली पहली जुताई (पट०, गया)। दे०—हरमहूतर।
[हर+ मोहतर <हल+मुहूर्त- < हल + प्रवहण+ मुहूर्त-]।

हररा—(सं०) हरे वर्ण की उड़द (गया)। दे०—तुलबुल्ली।
[हररा < हरा < हरित- (?)]।

हरलग्गित—(सं०) नई खेती के लिए शुभ मुहूर्त में हल जोतना प्रारंभ करना (पट०-१)।
[हर+लग्गित; हर < हल-; लग्गित < लगन]।



हरलदहा—(सं०) वह रस्सी, जिससे पालो और हरीस बाँधे जाते हैं (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—नारन।
[हर+लदहा; हर <हल-, नदहा <नद्धी-(?)]।



हरलद्धा—(सं०) (१) हल का वह भाग, जो हरकट्ठा से लगा हुआ होता है। इसे मूठ भी कहते हैं (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०-हरलधी।
[हर+लद्धा < हल+नद्धक-(?), नद्ध < √नह्+त (=क्त-प्र०)]।

हरलधा—(सं०) पालो और हरीस को जोड़नेवाली रस्सी (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—नारन।
[हर+लधा < हल+नद्धी (?)]।

हरलधी—(सं०) पालो को हरीस से जोड़नेवाली रस्सी (द० मैं०, सा०)। दे०—नारन। पर्या०—हरलधा, हरलदहा, हरलद्धा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[हर+लधी < हल+नद्धी, नद्धी < √नह्+त्र (=ष्ट्रन्-प्र०)]।

हरवंत, सुम्हुत—(सं०) श्रीपंचमी के दिन परती भूमि को नये वर्ष में पहले-पहल जोतना (चंपा०-१)।
[हरवंत < हलवत्]।

हरवत—(सं०) नई फसल के लिए की जानेवाली पहली जुताई (सा०)। दे०—हरमहूरत।
[हरवत < हलवत्-(?)]।

हरवर—(सं०) हलवाहे को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (प०)। पर्या०—हरौरी (द० प० शाहा०), हरौर (मैं०), हरवाही (द० पू०), कमिअई (पट०), कमियौटी (गया)।
[हरवर < हर+वर < हल+वृत्ति-]।

हरवाँही—(सं०) वह खेत या स्थान, जहाँ जुताई चल रही हो (शाहा०)। दे०—हरवाही।
[हरवाँह+ई (प्र०) < हलवाह-]।

हरवाह—(सं०) हल जोतनेवाला श्रमिक (प०)। दे०—हरवाहा।
[हर+वाह<हलवाह-, हलवाह-, हलिन्, हालिक- (संस्कृ०); हलिअ (प्रा०); हलि (ने०); हलिला (कुमा०); हलिआ (ओ०); हली, हलवाहा (हिं०)]।

हरवाहा—(सं०) हल जोतनेवाला श्रमिक। पर्या०—हरवाह (प०), हरौरी (पू० मैं०)।

हरवाही—(सं०) (१) हल चलानेवालों को दी जानेवाली मजदूरी। (२) हलवाहे का कार्य।
[हर+वाहा < हलवाहक < हल+ √वह् + अक (=ण्वुल्)]।

हरवाही—(सं०) (१) हल चलानेवालों को दी जानेवाली मजदूरी। (२) हलवाहे को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (द० पू०)। दे०—हरवाहा। (३) वह स्थान, जहाँ जुताई चल रही हो (पट०, गं० उ०)। पर्या०—हरवाँही (शाहा०), टोपरा (पट०), हराठा (सामा०), हराठी (द० भाग०)।
[हर + वाह+ई (प्र०) < हरवाह < हलवाह, हलवाहक-]।

हरबिहुन—(सं०) बिना जोता-कोड़ा खेत (पट०-१)।
[हर+बिहुन, हर < हल; बिहुन < बिहन < बीज+धान्य-(?)]।

हरसज्झा—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर खेतीबारी करने की अपनी बारी (प०)। दे०—भाँज।
[हर+सज्झा < हल+साझा-, सह+व (ध्यन्)]।

हरसमता—(सं०) नई फसल के लिए की जानेवाली पहली जुताई (द० मुं०)। दे०—हरमहूतर।
[हर+समता < हल+संवत् (?)]।

हरसमौध—(सं०) (१) पहली चास (द० भाग०)। दे०—पहिलचास। (२) नई फसल के लिए की जानेवाली पहली जुताई (द० भाग०)।
[हर+समौध < हल+समाधि वा < हर+समहुत < हल+समुहूर्त (?)]।

हरसा—(सं०) (१) ऊख या तेल के कोल्हू का सीधा खड़ा खंभा। पर्या०—हरिसा (गं० उ०), मानिक-थम (पू०, द० भाग०); मनखम (शाहा०); खूँटा (पट०, गया); मरथम्ह (पट०, गया); मानिखम (द० पू०)। (२) बैलगाड़ी का एक अंग, जो गाड़ी के दोनों तरफ त्रिभुजाकार बनाता हुआ 'आक' के प्रत्येक छोर से 'सगुन' तक जाता है (सा०, चंपा०-१)। दे०—कर।
[हरसा (देशी) वा < हलीषा-(?)]।

हरसाला पट्टा—(सं०) प्रत्येक वर्ष का पट्टा (सा०-१)।
[हर + साला + पट्टा < हरसाल (फा०) + पट्टा (देशी) वा < पट्ट-]।

हरसोधन—(सं०) बावग करने के अंतिम दिन का किसानों का एक सामाजिक विधान, जिसमें खेत में बावग किये जानेवाले बीज में से थोड़ा-सा लाकर एक बरतन में रखकर बंद कर दिया जाता है और दूसरी ओर भोज के लिए भोजन तैयार किया जाता है (चंपा०-)। दे०—कुं हमुंदन।
[हर+सोधन < हल+शोधन-(?)]।

हरही—(सं०) वह गाय या भैंस, जो काफी हैरान करती है और कभी स्थिर नहीं रहती (चंपा०-१)।
[हरही < हरहा (देशी)]।

हराई—(सं०) (१) प्रत्येक रैयत के द्वारा जमींदार को वर्ष में दो दिनों के लिए मुफ्त में अपने हर और बैलों के दिये जाने का रिवाज (शाहा०, पट०)। (२) जमींदार की जमीन की जुताई में किसानों द्वारा दी गई सहायता (शाहा०, द० प० मै०)। दे०—हरी। (३) हल के द्वारा जोतने से खींची गई लकीर, पंक्ति (प०)। पर्या०—सिराउर (चंपा०, मै०), सिरोर (पट०), सिरौर, सेवात (गया), भँड़ियाधारी (सा०, गया)।
[हराई < हर+आई (प्र०) < हल-(?)]।

हराठा—(सं०) (१) वह स्थान या खेत, जहाँ हल चलता हो (मुं०-१, अन्यत्र)।
[हर+आठा, हर<हल-, आठा<आस्थान (?)]।

हराठी—(सं०) हल में चलनेवाला बैल (पू०)।
[हर+आठी; हर < हल-, आठी (प्र०) वा < आस्थान-(?)]।

हराम—(सं०) (१) सूअर (गया) (मु० प्र०)। दे०—सूगर। (२) संकरता, दोगलापन। (३) बिना प्रयत्न का, मुफ्त का।
[हराम < हराम (अ०)]।

हराहा—(वि०) (१) भड़कनेवाला, नटखट, उच्छृंखल (बैल आदि)। (२) अनियंत्रित, वश में न आनेवाला। (स्त्री०) हराही। कहा०—'हराही संग सराही जाय, घी खिचड़ी बराबर खाय' = भगोड़ी गाय के साथ यदि सराही (अच्छी) गाय जाती है, तो फल दोनों को बराबर ही भुगतना पड़ता है—(मुं०-१)।
[हर+आहा (प्र०) < हर < (?) वा<हारल]।

हराही—(सं०) (१) जमींदार की जमीन की जुताई में किसानों द्वारा दी गई सहायता (दर०, गया)। दे०—हरी। (२) भड़कनेवाली गाय आदि।
[हर+आही (प्र०) < हर < (?) हारल]।

हरिअर—(वि०) हरा-भरा, हरे रंग का। (सं०) एक प्रसिद्ध पक्षी हारिल।
[हरिअर < हरितक, हारीत-(?) वा (देशी)]।

हरिअरी—(सं०) (१) हरी लत्तर (पट०-१)। (२) हरी घास (चंपा०-१)। (३) हरा रंग। (वि०) हरा-भरा।
[हरिअर + ई (प्र०) हरिअर < हरिअ+ र (प्र०) < हरिअ < हरित-]।

हरिआना कबरा—(सं०) हरी-भरी फलियोंवाला केला, जो पकने पर भी हरा ही रहता है (पट०-१)।
[हरियाना+कबरा, हरियाना < हरित-; कबरा < कदल, कदली]।

हरिनकेर—(सं०) एक अगहनी चितकबरा महीन धान, जिसका चावल उजला होता है (सा०-१)। पर्या०—हरिनकेल।
[हरिन+केर; हरिन < हरिण, केर (?)]।

हरिनकेल—(सं०) एक अगहनी धान (दर०)। दे०—हरकेर, हरिनकेर।
[देशी]।

हरिनपीठी—(सं०) वह बैल, जिसकी पीठ बीच में धँसी हुई हो और जिसके आगे और पीछे की रीढ़ ऊँची हो (पट०-१)।
[हरिन+पीठी < हरिणपृष्ठ-(?)]।

हरियर—(सं०) (१) हरित वर्ण की उड़द (शाहा०)। दे०—तुलबुल्लो। (२) एक प्रसिद्ध पक्षी, हारिल। (वि०) हरितवर्ण की वस्तु।
[हरियर < हरिय+र (प्र०) < हरिय < हरित]।

हरियल—(सं०) (१) एक प्रकार का हरा कबूतर (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) हारिल (सा०-१)।
[हरियल < हरित-(?)]।

हरियाँध—(सं०) (मुँ०-१)। दे०—हरियान।
[हरियाँध < हरित+गन्ध]।

हरियान—(सं०) कच्चे दलहन या हरी साग-सब्जी का स्वाद (मुँ०-१)। पर्या०—हरियाँध।
[हरियान < हरियाँध < हरित+गन्ध-]।

हरियार—(सं०) अन्न को गिरने से बचाने के लिए गाड़ी की पेंदी में लगाई हुई चटाई (पट०)। दे०—चटाई।

हरिहर—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध पक्षी, हरियल, हारिल (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) शिव और विष्णु का एकत्र संयोग। (३) दे०—हरी।
[हरिहर < हरित-(?) वा < हारीत-]।

हरिहरा—(सं०) दे०—हरी।

हरिस—(सं०) हल में लगा हुआ लंबा डंडा, जिसमें पालो बाँधा जाता है (गं० उ०, द० भाग०)। पर्या०—हरीस (पू० मै०), साँड़ (पट०, गया, द० मुँ०)।
[हरिस<हरीस < हलीषा < हल+ईषा; हलीषा (संस्कृ०); हलोसा; हरीसा (प्रा०); हलिसा (बँ०), हलस, हरिस, हर्स (हिं०); हल्स (पं०); हलेह (ल०); हर्सां (सिं०); हलीस, हलस (मरा०)]।

हरी—(१) (सं०) जमींदार की जमीन की जुताई में किसानों द्वारा दी गई सहायता (उ० प०)। पर्या०—हरिहर, हरिहरा, हरीहरी (पू०), सेवाहा (उ० प० मै०), हराही (पट०, गया)। (२) देवता-विशेष, विष्णु।
[हरी < हरि < हलि- वा हल-]।

हरीस—(सं०) हल में लगा लंबा डंडा, जिसमें पालो बाँधा जाता है (पू० मै०)। दे०—हरिस।
[हरीस < हलीषा < हल+ईषा]।

हरीहरी—(सं०) जमींदार की जमीन की जुताई में किसानों द्वारा दी गई सहायता (पू०)। दे०—हरी। (वि०) हरी-भरी।
[हरी+हरी < हलि- वा हल-]।

हरूसा—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[हरूसा < हर्ष-(?)]।

हरे—(सं०) (१) हर्रे का बड़ा वृक्ष। इसका फल औषध के काम में आता है, हर्रे (चंपा०-१)। (२) उस वृक्ष का फल।
[हरे < हर्रे < हरीतकी, हरीतक-, हरीतकी (संस्कृ०); हरीतक (पा०)=हर्रे, हरीतकी (पा०)=हर्रे का वृक्ष; हरडइ, हरड़, हरीडइ (प्रा०); हरीडा (ओ०); हर्रों (ने०); हरड़, हर्रा, हर्रा, हर्रे (हिं०); हरड़ (पं०); हरीड़, हरीड़ (ल०); हरीड़ (सिं०); हरड़ें, हरड़ी (गु०); हरडा, हिरडा (मरा०); अरलु (सिंह०); हलिलो (चीनी)=हर्रे, पिटिलो (चीनी)=बहेड़ा, अमोलो (चीनी)=आमला। हर्रा < हरर, हरीर-, मिला०—हरित-(संस्कृ०)=पीला-नेपा०]।

हरेआ बैल—(सं०) वे बैल, जो गाड़ी आदि में न चलकर केवल हल-हेंगे में ही चलते हैं (उ० प०, गया)। दे०—बरद, बैल।
[हरेआ+बैल; हरेआ < हल्य- < हल+य, वा हालिक < हल+इक (-ठक् प्र०), बैल < बइल्ल (देशी), बलीवर्द-(संस्कृ०)]।

हरैठा—(सं०) रहर का सूखा डंठल (गं० द०, मै०, द० प० शाहा०)। दे०—रहैठा।
[हरैठा < हर+एठा; रहैठा का वर्ण-विपर्यय से हरैठा; अरहर+एठा, < आढक+काष्ठ-(?)]।

हरौतिया—(सं०) बाँस का एक भेद, जो लंबा, मोटा, मजबूत और भीतर से ठोस होता है (मुँ०-१, भाग०)।
[हरौतिया (देशी)]।

हरौती—(सं०) (१) एक पशु-खाद्य घास (द० पू० मै०)। (२) एक प्रकार का मजबूत बाँस, जिसका भीतरी भाग ठोस होता है (चंपा०-१)।
[हरौती (देशी)]।

हरौर—(सं०) हलवाहे को नियुक्त करते समय अन्न, रुपये या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (मुँ०)। दे०—हरवर।
[हर+और < हल-; और < आउर < चाउर=चाउर < चावल (देशी) वा और (प्र०)]।

हरौरी—(सं०) (१) हल जोतनेवाला श्रमिक। दे०—हरवाहा। (२) हलवाहे को नियुक्त करते समय अनाज, रुपये या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (द० प० शाहा०)। दे०—हरवर।
[हर+औरी < हरौर < हल+ऋच-(?)]।

हलका—(सं०) एक प्रदेश, भूमिखंड, सर्किल (गाइड०)। (वि०) हलका, जो भारी न हो।
[हलका < हल्क-(अ०)]।

हलकोरा—(सं०) दे०—हलोकोरा।

हलखर्चा—(सं०) बढ़ई को दिया जानेवाला हल की बनाई का पारिश्रमिक (गाइड०)।
[हल+खर्चा-, हल<हल-, खर्चा<खर्च (फा०)]।

हलखा—(सं०) घोड़े के लिए प्रयुक्त लोहे की अंगूठी जैसी एक वस्तु।
[हलखा (देशी)]।

हलखोर—(सं०) हरिजनों की एक जाति, मेहतर। दे०—हलालखोर।

हलदी—(सं०) एक प्रसिद्ध गाँठदार मसाला, जिससे दाल-सब्जी आदि का रंग-परिवर्तन किया जाता है (शाहा०)। दे०—हरदी।
[हलदी < हरिद्रा, हारिद्र- (संस्कृ०); हलिद, हलद (पा०); हल्दी (हिं०); हर्दी (ने०)]।

हलफल—(क्रि०) डोलना, थरथराना, काँपना (मुँ०-१)।

हलफी—(सं०) (१) आँधी, हवा का झोंका। (२) नदी आदि के पानी में उठनेवाली हिलोर (मुँ०-१)।
[हलफ+ई (प्र०) < हलफ-(?)]।

हलवाइ—(सं०) मिठाई बनानेवाला (द० बिहा०)। दे०—हलुआइ।
[हलवाइ < हल्वा (अ०)]।

हलही—(सं०) वह खेत, जिसमें सिंचाई से ही फसल पैदा होती है (द० मुं०, सा०)।
[हल+ही (प्र०) <हल- वा <हल्व (=हाथ)]।

हलायल—(क्रि०) गड़ाना, गहरे धँसाना (सा०-१)। पर्या०—गड़ावल।
[हल+आवल (प्र०) < हल < हल-; हलयति- (संस्कृ०); हलापेति (पा०); हलावेइ (प्रा०)]।

हलालखोर—(सं०) निम्न श्रेणी की एक जाति, जिसका पानी नहीं चलता है। हरिजन (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[हलालखोर < हलालखोर-(अ०)]।

हलुआइ—(सं०) (१) मिठाई बनानेवाला (उ०)। पर्या०—हलवाइ (द० बिहा०)। (२) रस निकाले हुए ऊख के डंठल को हटानेवाला।
[हलुआई < हल्वाई<हल्वा (अ०)]।

हलुक—(सं०) कमजोर मिट्टी (उ० प० बिहा०)। पर्या०—तपनाह (उ० पू० मै०); ठस, भब्बर (चंपा०), उसठ (गं० द०)। (वि०) हलका, जो भारी न हो।
[हलुक <लघुक-, (वर्ण-विपर्यय के साथ), लहुअ, हलुअ (पा०)]।

हलोकोरा—(सं०) (१) पानी के हिलने से उठनेवाली तरंग। (२) उस प्रकार की तरंग का उठना (चंपा०-१)।
[हलोकोरा (देशी) वा हलोको+रा (प्र०)<हलोक < हिल्लोलक-]।

हवालगी लगान—(सं०) खतियान के रेंट-कॉलम में एक भूखंड के राजस्व के विषय में दिया जानेवाला विवरण (गाइड०)।
[हवाल +गी (प्र०) + लगान, हवाल < हवाला < हवालः (अ०); लगान < लग्न-(?)]।

हसर करल—(मु०) मुकदमा में विरोधी दल या व्यक्ति को शपथ लेने के लिए ललकारना। पर्या०—हसर डारल (पट०, गया०, द० पू०)।
[हसर + करल, हसर < हस्र (अ०)=निर्भरता, अवलंबन वा हश्र (अ०)=प्रलय, विपदा]।

हसर डारल—(मु०) दे०—हसर करल।

हस्त—(सं०) तेरहवाँ नक्षत्र, हस्त, हथिया। यह नक्षत्र प्रायः आश्विन मास में पड़ता है। किसानों की अगहनी और रब्बी दोनों फसलों के लिए इसमें होनेवाली वर्षा आवश्यक मानी जाती है।
[हस्त-]।

हस्तबूदी—(सं०) वह भूमि, जिसमें लगी फसल को देखकर भूमि का राजस्व निश्चित किया जाता है।

टि०—हस्तबूदी शब्द फारसी का है और यह योगरूढ़ है—हस्त (=है) + बूदी (=था) = है-था। अर्थात्, वह भूमि, जिसका परिमाण बोने के समय पूरा था, किंतु फसल काटने के समय बाढ़, टिड्डी आदि के कारण कुछ भाग के नष्ट हो जाने से वह माप छोटा हो जाता है। जैसे, यदि एक बीघे में फसल बोई गई, तो वह १६ कट्ठे में ही आबाद हो सकी और चार कट्ठा अनाजरहित ही रहा, तो भूमि का राजस्व निर्धारित करते समय फसल काटने के समय वर्तमान १६ कट्ठे का ही राजस्व निर्धारित होगा और चार कट्ठा को बाद कर दिया जायगा। बंगाल में इसे 'उतबंदी' कहते हैं।
[हस्त+बूदी < हस्तोबूद (फा०)=है+था]।

हस्फबंदी—(सं०) ईख आदि की खेती करने के कारण उन खेतों पर लगाये जानेवाले नगदी राजस्व की प्रणाली, जिनकी राजस्व-प्रणाली उपज के रूप में देने की थी (गाइड०)।
[हस्फबंदी (फा०)]।

हहावल—(क्रि०) (१) आग का धधकना। (२) नदी या बादल का उमड़ना। (३) अचानक धन की प्राप्ति

कर उमड़ पड़ना। (४) जोर से हवा बहना (मुं०-१)।

[हहा+अव्यक्त वा वत (प्र०) < हहा (अनु०)]।

हहास—(सं०) (१) हवा का जबरदस्त झोंका। (२) पानी का झोंका (मुं०-१)। पर्या०—हहासा।

हहासा—(सं०) (१) हवा का भारी झोंका। (२) पानी का भारी झोंका (मुं०-१)। दे०—हहास।

[हहासा (देशी) वा (अनु०)]।

हहाहू—(सं०) साँड़ को पुकारने का सांकेतिक शब्द (सा०-१)।

[(अनु०)]।

हांक—(सं०) (१) कार्तिक की संक्रान्ति के दिन किसानों द्वारा खेत में जाकर पौधों को फूटने के लिए आमंत्रित करने की एक रीति। (२) पुकार, बुलाहट, निमंत्रण। हांक देओल (मु०)=पुकारना, बुलाना (मुं०-१)।

[हांक < हक्क (देशी), मिला०—आ+√ह्वे ञ् (आह्वयति=बुलाता है)]।

हांकल—(क्रि०) (१) पशुओं को चलाना। (२) आगे बढ़ाना। (३) गाड़ी आदि चलाना। (४) बढ़-बढ़कर बातें करना (मुं०-१)।

[हांक+ल (प्र०) < हांक < हक्क-(देशी)]।

हांकी—(सं०) खेत से कौओं आदि पक्षियों को हटाना, हांकना (चंपा०, द० पू०)। पर्या०—कौआ हांकल (यत्र-तत्र)।

[हांकी < हांक < हक्क-(देशी)]।

हांगुल—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।

[देशी]।

हांड़—(सं०) नदी से ऊपर बालू-भरी जमीन (पट०-१)।

[हांड़ (देशी) वा < भाण्ड-(?)]।

हांड़ा—(सं०) ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पीसा जाता था। यह उस समय का प्रयोग है, जबकि कोल्हू लकड़ी या पत्थर का होता था। आजकल ईख पेरने का कोल्हू लोहे का होता है और उसमें सिलिंडर या गोल मथानी लगी रहती है, लेकिन तेल पेरने का कोल्हू आज भी वही है (गं० द०)। दे०—खान।

[हांड़ा < हण्डक-, वा < भाण्डक-]।

हांढ़ा—(सं०) ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पीसा जाता था (द० मुं०)। दे०—खान, हांड़ा।

[हांढ़ा < हण्डक-, हण्डिका वा < भाण्ड-]।

हांड़ी—(सं०) (१) दूध, दही आदि रखने तथा भोजन पकाने का पात्र। (२) पानी रखने का मिट्टी का छोटा पात्र। पर्या०—हँड़िया, कोहा (पू० मै०)। (३) रंगरेज का रंगने का अर्ध-गोलाकार पात्र (पट०, गया)। दे०—अधरा। (४) गारा रखने का मिट्टी का बरतन। पर्या०—कोहा (पू० मै०), अधरा (गं० द०), कड़ाह (द० भाग०)। (५) दही रखने का बड़ा पात्र। पर्या०—हँड़िया।

[हांड़ी < हण्डिआ < हण्डिका < भाण्ड-]।

हांथ—(सं०) (१) केहुनी से पंजे के सिरे तक की नाप। (२) शरीर का अंग-विशेष। पर्या०—हाथ।

[हांथ < हत्थ < हस्त-]।

हांथ सें निकाएल—(मु०) हाथ से घास आदि की सफाई करना (पट०, गया, द० मुं०)। दे०—चिखुरनी।

[हांथ सें (विभ०)+निकाएल]।

हांथीघास—(सं०) एक प्रकार की लंबी घास (पट०-१)।

हांफ—(सं०) पशुओं का एक रोग, जिसमें हाँफना और कंपन अधिक होता है (उ० प०, प० मै०)। हँफनी (द० पू० मै०), बात (उ० पू० मै०)।

[हांफ (देशी) वा < भांफ < बाष्प-(?)]।

हांसु—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—हांसू।

हांसू—(सं०) घास या फसल काटने का तेज धारवाला हथियार, हँसिया। दे०—हँसुआ। पर्या०—हांसु, (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[हांसू < हसन्ती; (हँसती हुई, अँगीठी) वा < असि-]

हाव—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनका पेट बढ़ जाता है (पट०-१)।

[देशी]।

हाकिम—(सं०) हुकूमत या न्याय करनेवाला अधिकारी (सा०-१)।

[हाकिम (अ०)]।

हाजिरी बाबू—(सं०) चीनी-मिल का एक लिपिक, जो प्रवेशद्वार पर रहकर ईख की गाड़ियों का हिसाब रखता है (बिह०)। दे०—गेटबाबू।

हाट—(सं०) गाँव का बाजार। साप्ताहिक बाजार का स्थान (शाहा०)।

[हाट < हट्ट-]।

हाड़ा—(सं०) (१) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (मै०)। दे०—ललका। (२) बर्रे, ततैया। यह लाल रंग की बड़ी और पीले रंग की छोटी हुआ करती है। बड़ी ततैया अधिक जहरीली होती है (चंपा०-१)। (३) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१);

[हाड़ा (देशी)]।

हाड़िन—(सं०) मेहतरानी (द० पू०)। पुं०—हाड़ी।

हाड़ी—(सं०) डोम की श्रेणी की एक अन्त्यज जाति, मेहतर (द० पू०)।
[हाड़ी (देशी)]।

हाता—(सं०) (१) चारों ओर से घिरा हुआ कई घरों से युक्त बड़ा मकान (सं० द०)। दे० हवेली। (२) सीमा। (३) घिराहुआ स्थान। (४) खेत के चारों ओर खोदी गई पतली नाली (चंपा०-१)।
[हाता < हहातः (अ०), मिला०- हद (फा०); आघाट-(शिला० संस्कृ०) =सीमा, चौहद्दी]।

हातावाला—(सं०) किसी सीमा या मेंड़ द्वारा अलग की गई भूमि (उ० प०, द० मुं०)।
[हाता+वाला (प्र०) < हाता < हहातः(अ०); हद (फा०); आघाट-(संस्कृ०)]।

हातावाला—(सं०) ऊख के खेतों में बनी हुई क्यारी (उ० प०, गया, उ० प० मैं०)। पर्या०—झोर, झोरा (सं० द०), झोरा (उ० प०), बड़ी कियारी, पहटा (गया, शा०, चंपा०) =बड़ी कियारी, परिया (द० प० मैं०), दवन (चंपा०, उ० प० मैं०), कियारा, भेर (पू० मैं०)।
[हाता+वाला (प्र०) < हाता < हहातः(अ०); हद (फा०)]।

हातुल—(सं०) मुसरा को चलाने के लिए हाथ से पकड़ने की मूठ (द० भाग०)। दे०—चलौनी।
[हात+उल (प्र०) < हात < हाथ < हत्थ < हस्त-]।

हाथ—(सं०) (१) केहुनी से पंजे के सिरे तक की नाप। (२) हाथ। दे०—हाँथ।
[हाथ < हस्त-]।

हाथड़—(सं०) जाँते को चलाने के लिए उसके ऊपर लगा हुआ लकड़ी का तिरछा हत्था (द० पू० मैं०)। पर्या०—हथरा, हथड़ा (कहीं-कहीं), जुआ (शाहा०)।
[हाथ+ड (प्र०) < हाथ < हस्त-]।

हाथर—(सं०) जाँता चलाने के लिए लकड़ी का तिरछा बना हत्था (द० पू० मैं०)। दे०—हथरा।
[हाथ+र (प्र०) हाथ < हत्थ < हस्त-]।

हाथा—(सं०) पानी पटाने के लिए लकड़ी का बना बेलचानुमा साधन-विशेष (चंपा०-१)।
[हाथा < हस्तक-(१)]।

हाथी—(सं०) एक प्रसिद्ध पशु, हाथी। पर्या०—हत्था (पुं०), हथिनी, मेदिनी (स्त्री०)।

हाबुस—(सं०) (१) अधपका भुना हुआ जौ। (२) मडुए की अधपकी भुनी हुई बाल (शाहा०)। दे०—होरहा।
[हाबुस < अभ्यूष, अभ्यूषखादनिका- (काम०)]।

हारवाला—(सं०) घूम-घूमकर पशुओं का व्यापार करनेवाला (अन्यत्र)। पर्या०-फेरवाक (सं० प०)। दे०—फेरहा।

हारामोहन—(सं०) हरे रंग का एक ऊख (पट०-१)।
[हारामोहन (पौ०)]।

हारिल—(सं०) (१) पक्षी-विशेष (चंपा०-१)। (२) एक प्रकार का हरा पक्षी, जिसके होंठ और पूँछ छोटे होते हैं तथा पैर पीले और चोंच कासनी रंग की होती है। पर्या०—हरियल।
[हारिल < हारीत-(१)]।

हारी—(सं०) प्रयुक्त, व्यवहृत। काम में लगाना, कार्य में संलग्न, काम में अभ्यस्त। हारी होअल (मु०) बैल आदि का जुतना या गाड़ी, हल आदि में जुतने की आदत पकड़ना। हारी करल (मु०) काम में लगाना या लाना, नये बैल आदि को जोतने का अभ्यास कराना (मुं०-१)।
[हारी < हारिन् < √हृ-(१)]।

हाल—(सं०) (१) जमीन में रहनेवाली नमी। (२) वर्त्तमान वर्ष। (३) हाल-समाचार। (४) पहिये के ऊपर का लोहे का घेरा।
[हाल < हल्य- < हल-]।

हाल उपारजित—(सं०) तत्काल अधिकृत भूमि, जो मौरूसी नहीं है (उ० पू० मैं०)। दे०—गैरमौरूसी।
[हाल-(फा०)+उपारजित < उपार्जित-]।

हाल कबजा—(सं०) जमीन आदि का तात्कालिक अधिकार (गाइड०)।
[हाल+कब्जा < हालकब्जः (फा०)]।

हाल लगान—(सं०) वर्त्तमान राजस्व (गाइड०)।
[हाल (फा०)+ लगान < लग्न < √ लग् + न (प्र०) < त-]।

हाल हासिली—(सं०) वह भूमि, जिसका राजस्व फसल तैयार होनेपर देखकर निश्चित किया गया है।

टि०—यह भूमि पट०, गया में थी। इसकी रीति यह थी कि बटाई जमीन की तरह इसके लिए भी जमींदार के कार्यकर्त्ता और काश्तकार फसल-वाले खेत में साथ-साथ जाते थे और फसल का अनुमित आंकड़ा तैयार कर परिमाण निश्चित कर देते थे। गया में तो जमींदार अपने हिस्से की उस भूमि के अन्न के बदले नगदी रुपया लेने के

लिए ठीकेदार नियुक्त करता था। प्रतिवर्ष नये ठीकेदार और नया भाव ठीक किया जाता था। इसी तरह की बलकर भूमि भी होती थी, जिसमें जमींदार के नौकर काश्तकार के साथ जाकर, फसल देखकर, अनुमानतः अन्न-परिमाण निश्चित कर, पुनः उसका मूल्य-निर्धारण कर, नगद राजस्व निश्चित करते थे।
[हाल+हासिल (फा०)]।

हास्दा—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[हास्दा (देशी)]।

हिडोल—(सं०) घोड़ों की झूमती हुई चाल, जिसमें सवार पालकी की सवारी का अनुभव करता है (दर०-१)।
[< हिन्दोल-]।

हिंदलोट—(सं०) किसी से कर्ज में रुपये लेकर उसके बदले में लिखा हुआ इकरारनामा (पट०-१)।
[हिंदलोट < हैंडनोट (अं०)]।

हिंदू—(सं०) भारत में रहनेवाले एक विशेष प्रकार के आचरण और धर्म को माननेवाले लोग।
[हिंदू < हिंद < सिन्धु-]।

हिनुआना—(सं०) बलुआही जमीन में होनेवाला एक प्रसिद्ध फल, जिसके अंदर मीठा, ठंडा जल और प्रायः लाल गूदा भरा रहता है, तरबूज (द० प० शाहा०)। दे०—तरबूज।
[हिनुआना < हिन्दुआना < हिन्दू वा (देशी)]।

हिरन—(क्रि०) पशुओं का एक स्थान पर एकत्र होना (चंपा०-१)।
[हिर+न (प्र०) < हिर < √ हृ (=हरति, ह्रियते)]।

हिकवट—(सं०) भेड़ों के एक पैर का नाकामयाब होने का रोग (सा०-१)। पर्या०—करगही।
[हिकवट < (?) मिला०-हिक्क:(अं०)—खुजली]।

हिक्का—(सं०) धुआँ के निकास का स्थान (गया)। दे०—धुआँकस।
[हिक्का (देशी)]।

हिगराबल—(क्रि०) झुंड में से पशुओं को अलग करना (सं० प०)।

हिचा—(सं०) गाड़ी की लीक में बना कोई गढ़ा, जहाँ गाड़ी का पहिया 'हच्च' शब्द के साथ झुक जाता है। दे०—हच्चा।
[हिचवा < हच्च (अनु०)]।

हिब्बानामा—(सं०) वह पत्र, जिसमें किसी को किसी वस्तु के प्रदान करने का उल्लेख हो (सा०-१)।
[हिब्बानामा < हिब:नामः (अ०)=दानपत्र]।

हियाती—(सं०) वह घोड़ा, जिसकी गरदन पर कान के पास दोनों ओर भौरी हो। यह आयुसूचक भौरी है। यदि एक ओर रहे, तो घातक और किसी ओर नहीं रहने से ऐसा घोड़ा आयुहीन माना जाता है (सा०-१)।
[हियाती < हयात (अ०) (?)=जीवन, जिन्दगी]।

हिरदावल—(सं०) वह घोड़ी, जिसकी छाती के एक बित्ते के अंदर में भौरी हो। यह घोड़े का एक ऐब माना जाता है (सा०-१)।
[हिरदावल < हृदय-(?)]।

हिरदौल—(सं०) घोड़ों के हृदय के पास की भौरी। यह एक ऐब माना जाता है (पट०-१)।

हिरांत—(सं०) पशुओं को घेरकर रखने के लिए काँटेदार पौधों से बनाया गया घेरा (चंपा०)। दे०—घेरान।
[हिर+आंत < हिर < √ हृ-(?)]।

हिरात—(सं०) वह स्थान, जहाँ भैंसें या दूसरे मवेशी रखे जाते हैं (उ० प०)। पर्या०—खेंढ़ (उ० प० मै०), बैठार (पू० मै०), लेंढ़ियाएल (क्रि०) पशुओं को इकट्ठा करना (उ० प० मै०)।
[हिरात (देशी)]।

हिलना—(सं०) मवेशियों का एक ऐब। इस ऐब के कारण वह मवेशी एक ही पैर पर बल देकर डोलता रहता है (सा०-१)।

हिलसा—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। (२) चावल के आटे का एक पक्वान्न (भाग०)। (३) पटना जिले का एक स्थान।
हिलसा < इल्लीश-]।

हिलोरा—(सं०) पानी की तरंग (चंपा०-१)।
[हिलोरा < हिलोर < हिन्दोल-(?) वा हिल्लोल]।

हिसाब बिकरी गल्ला—(सं०) वह बही, जिसमें अन्न की बिक्री की दर, तारीख आदि लिखी रहती हैं।
[हिसाब (फा०) + बिक्री (< विक्रय-) + गल्ला (देशी)]।

हिस्सा—(सं०) (१) जमींदारी या खेती में गाँव या खेत आदि के रूप में अधिकार-प्राप्त अंश। (२) किसी-तरह की संपत्ति में अधिकार-प्राप्त अंश। (३) भाग, अंश। पर्या०—बखरा (प० मै०)। हिस्सेदार, सरिकदार, बखरदार (प०), पटिदार (मै०); फरीक=जमींदारी या संपत्ति का हिस्सेदार।
[हिस्सा < हिस्सः (फा०)]।

हिस्सा पटिदारी—(सं०) भाइयों में बँटे हुए जमींदारी के गाँवों पर या संपत्ति पर अंश के अनुसार लगा राजस्व का बँटवारा (अन्यत्र)। दे०—भेर।
[हिस्सा+पटिदार + ई (प्र०), हिस्सा < हिस्सः (फा०); पटिदार < पट्टी + दार (प्र०)]।

हिस्सेदार—(सं०) (१) संयुक्त जमींदारी का दाय लेनेवाला। (२) संयुक्त परिवार या किसी कंपनी का दाय का स्वत्वाधिकारी। दे०—हिस्सा। पर्या०—सरिकदार, बखरदार (प०), पटिदार (मै०), फरीक।
[हिस्से+दार (फा०)]।

हींक—(सं०) धुआँ के निकास का स्थान। दे०—धुआँकस।

हींड़ल—(क्रि०) मथना, अच्छी तरह खींचना (मुं०-१)।
[हींड़+ल (प्र०)<हींड़<√हिण्ड्-(आहिण्डते)]।

हींका—(सं०) भैंस के अगले दोनों पैरों के बीच का भाग (सा०-१)।

हींड़ल—(सं०) पानी में पैठकर उसे मथकर गंदा कर देना (चंपा०-१)।
[हींड़+ल (प्र०)< हींड़<√हिण्ड् (आहिण्डते)]।

हीने हयात—(वि०) आजीवन, यावज्जीवन (गाइड०)। दे०—मुकर्ररी।
[हीने+हयात (अ०)=यावज्जीवन, आजीवन]।

हीर—(सं०) किसी वस्तु के अंदर का मूल तत्त्व या सार भाग (चंपा०-१)।
[हीर (देशी), मिला०- हीर-, हीरक=हीरा]।

हुंडा—(सं०) (१) वह खेत, जिसका राजस्व अनाज के रूप में चुकाया जाता है। दे०—मनखप। (२) जमीन की नगदी के बदले प्रतिबीघा अनाज के एक निश्चित परिमाण के रूप में जमींदार को दी जानेवाली मालगुजारी। दे०—मनखप।
[हुंडा (देशी)]।

हुँड़ार—(सं०) एक प्रसिद्ध हिंस्र पशु, भेड़िया (चंपा०-१, भाग०, मुं०, सं० प०, पट०, गया)।
[हुँडार (देशी) वा < हुड़, हुण्ड-(संस्कृ०-)=बाघ; हुड (प्रा०)= भेड़ा, कुत्ता; होंड़ु (कश्म०)= मोटा भेड़ा; हुँड़ियार (प०)=जंगली भेंड़; हुंडा (ओ०); बहुँडि हुँड़ार (ने०); भेड़िया (हि०)]।

हुंडियाना—(सं०) किसी हुंडी पर दिया गया कमीशन। दे०—हुंडियावन।
[हुंडि + याना < हुंडी (देशी) वा हुण्डिका (संस्कृ०)]।

हुंडियावन—(सं०) किसी हुंडी पर लिया जानेवाला कमीशन। दे०—हुंडियाना।
[हुंडी + यावन < हुंडी (देशी) वा < हुण्डिका (संस्कृ०)]।

हुंडी—(सं०) अपना प्राप्य धन या उसका कोई अंश पाने के लिए किसी के नाम लिखा हुआ वह पत्र, जिसपर यह लिखा होता है कि इतने रुपये अमुक व्यक्ति, महाजन या बैंक को दिये जायँ। पर्या०—हुंडीपत्री, पतरी (गया, द० प०)।
[हुंडी (देशी) वा < हुण्डिका]।

हुंडी—(सं०) गुप्तधन, कोसल, धरोहर (मुं०-१)।
[हुंडी (देशी) वा < हुण्डिका (संस्कृ०); होण्डु (कश्म०); हुण्डी (असा०, बँ०, ओ०, हि०, पं०, स०, सिं०, गु०, मरा०); हुण्डि (ने०)]।

हुकुमनामा—(सं०) (१) लिखित आदेश (गाइड०)। (२) जमींदारों का आदेशपत्र (पट०-१)। (३) किसी जमीन की बंदोबस्ती का विवरण (सा० १)।
[हुकुम+नामा < हुक्मनामः (अ०)]।

हुकूमत—(सं०) (१) जमींदार की आज्ञा से किसी विशेष अवसर पर किसान के द्वारा दिया गया वस्तु-विशेष या वैयक्तिक सेवा। पर्या०—फरमाइश, मदत (द० मुं०), हकमैती (द० भाग०)। (२) आदेश, शासन।
[हुकूमत < हुक्म (अ०)]।

हुजताना—(सं०) (१) रैयतों द्वारा मालगुजारी आदि के विषय में जिज्ञासा करने पर मालगुजारी के हिसाब से पटवारी को मिलनेवाला प्रतिरुपया एक पैसा वार्षिक शुल्क। (२) प्रति रुपये एक आना या दो आने तक मिलनेवाला सामान्य शुल्क (गाइड०)। (३) पटवारियों की तहरीर (पट०-१)।
[हुजताना < हुज्जत (अ०)=तर्क, दलील]।

हुत्था—(सं०) लाठी का मोटा छोर, हूर्रा (गया)। दे०—हूरा।
[हुत्था (देशी)]।

हुप्प हुप्प—(सं०) हनुमान् (लंगूर) की बोली का अनुकरणात्मक शब्द (मुं०-१)।

हुमड़ल—(क्रि०) पानी, बादल आदि का उमड़ना-घुमड़ना (मुं०-१)।
[हुमड़+ल-(प्र०) < हुमड़ (अनु०)]।

हुमना—(सं०) हल के मूठ के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (पट०)। दे०—समधरिया।
[हुमना (देशी)]।

हुरका—(सं०) दरवाजे के पिछले भाग में लगा दोनों पल्लों को बंद करने का डंडा (द० भाग०)।
[देशी]।

हुरड़—(सं०) दे०—अखाड़ल। (भाग०-१)।

हुरपेटल—(क्रि०) (१) लाठी के हुर्रे से मवेशी को बगल में मारना। (२) किसी का पीछा करना।
[हुर+पेट+ल (प्र०) < हुर < हुर्रा (देशी), पेट < √ पिट्ट (?)]।

हुरल—(क्रि०) (१) किसी खंभे आदि को गाड़ने के पश्चात् उसकी जड़ में लाठी या किसी नुकीले डंडे आदि से चोट देकर मिट्टी को बैठाना (चंपा०-१)। (२) किसी को लाठी के हुर्रे से मारना या ठोकर देना।
[हुर+ल (प्र०) < हुर < हुर्रा (देशी)]।

हुरहुरा—(सं०) एक छोटा-सा पौधा। इसकी पत्ती फोरन तथा साग के काम आती है (पट०-१)।
[देशी]।

हुर्रा—(सं०) लाठी का अंतिम मोटा नुकीला छोर (शाहा०, द० पू०)। दे०—हूरा।
[हुर्रा (देशी)]।

हूक—(सं०) (१) चौकठ में लगाया गया काँटा या डंडा, जिसके सहारे किवाड़ लगाया जाता है (चंपा०-१)। (२) कलेजे का दर्द।

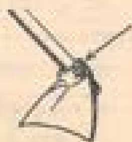
हूर—(सं०) (१) गँड़ासी की बेंट के अंत का गाँठदार अंश (उ० पू० मै०)। दे०—एड़ा। (२) कुदाल के डंडे के नीचेवाला गाँठदार अंतिम अंश (उ० पू० मै०)।
[हूर (देशी)]।

हूरल—(क्रि०) (१) झटके के साथ ठेलना। (२) किसी कड़े पदार्थ से ठेलना। (३) कस-कसकर ठूँसना, घुँसना (मुँ०-१)। (४) लाठी के हुर्रे से ठेलना या ठोकर देना। दे०—हुरल।
[हूर+ल (प्र०) < हूर या हुर्रा (देशी)]।

हूरा—(सं०) (१) खाद (द० भाग०)। (२) घास-पात जलाकर बनाई हुई खाद (द० मुँ०)। दे०—खादर।
[हूरा (देशी)। मिला०-पूरा, पूर (प्र०)=खाद, राख आदि की राशि]।

हूरा—(सं०) (३) लाठी का अंतिम मोटा नुकीला छोर (गं० उ०)। पर्या०—हुर्रा (शाहा०, द० पू०), हुरुवा (गया), गोआ (द० मुँ०)।
[हूरा < हूर (देशी), हुच (देशी=अभिमुख, संमुख)-(पा० स० म०); हुच्छ=ठूलना—(पा० स० म०)]।

हूरा—(सं०) (४) कुदाल के डंडे के नीचे का गाँठदार अंतिम छोर (द० प० मै०)। पर्या०—हूर (उ० प० मै०), मूठा (द० प० मै०), एड़ा, अड़ानी (सर्वत्र), पाट (द० भाग०)।
[देशी]।



हूरा—(सं०) (५) हूरने का सामान लाठी आदि (मुँ०-१)। हूरा मारल (क्रि०)=हूरे से मारना, कस-कसकर ठूँसना (मुँ०-१)।

हूरा—(सं०) (६) पालो का छोर (चंपा०-१)।

हूरा—(सं०) (७) गोधन (गोवर्धन-पूजा) के प्रातःकाल पशुओं के निमित्त होनेवाली एक प्रथा।

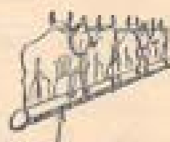
टि०—सवेरे सूअर के बच्चे को रस्सी से बाँधकर पेड़ में लटका दिया जाता है या नीचे ही खुला छोड़ दिया जाता है। चरवाहे अपनी-अपनी भैंसों को उसपर आक्रमण करने के लिए ललकारते हैं। भैंसें एक-एक कर अपने-अपने चोखे सींगों से सूअर के बच्चे को हूरती रहती हैं, जबतक बच्चे की अँतड़ी नहीं निकल जाती।
[हूरा (देशी)]

हूरा मारल—(क्रि०) दे०—हूरा।

हेंग—(सं०) हेंगा, चौकी (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—चौंगी, पटेड़।
[हेंग (देशी)]।

हेंगही—(सं०) हेंगा खींचने की रस्सी (गं० उ०)। दे०—बरही।
[हेंग+ही (प्र०) < हेंग (देशी)]।

हेंगा—(सं०) खेत जोतने के बाद ढेला फोड़ने के लिए लकड़ी का बना तीन-चार इंच मोटा लंबा तख्ता (प० बिहा०, द० पू० मै०)। पर्या०—चौकी, चौकी (पू० बिहा०), सिलवे (पट०), पटवे (पट०), लगावही (पट०)।
[हेंगा (देशी)]।



हेंगाएल—(क्रि०) हेंगा चलाना, चौकी देना। पर्या०—हेंगा चलाएल, चौकी घुमाएल। पू० बिहार में निम्नलिखित लोकोक्ति प्रसिद्ध है—
'थोर जोतिहऽ बहुत हेंगइहऽ, ऊँच के बँधिहऽ आरि।
उपजे तऽ उपजे, नाहिं तऽ घाघे दीहऽ गारि।।'
—'थोड़ा जोतो, अधिक हेंगाओ और खेत की आर (मेंड़) ऊँची करके बाँधो। इतने पर यदि उपज अच्छी न हो, तो घाघ कहता है, मुझे गाली देना।'
[हेंगा+आएल (प्र०) < हेंगा (देशी)]।

हेंगा चलाएल—(क्रि०) हेंगा देना, चौकी देना। दे०—हेंगाएल।
[हेंगा+चल+आएल (प्र०) (यौ०)]।

हेंगायल—(क्रि०) हेंगाना। दे०—हेंगाएल। (वि०) हेंगा दिया हुआ खेत।

हेंगावल—(क्रि०) खेत जोतने के बाद हेंगा देकर उसे बराबर करना (चंपा०-१)। (वि०) हेंगाया हुआ खेत। दे०—हेंगायल।
[हेंगा+आवल (प्र०) < हेंगा (देशी)]।

हेंगी—(सं०) वह हेंगा, जिसमें दो ही बैल जोते जाते हैं (चंपा०)। पर्या०—दुगोड़ी (मै०), एकहरा (द० भाग०), दोबरदा।
[हेंगा+ई (प्र०) < हेंगा (देशी)]।

हेंबली—(सं०) एक प्रकार की छोटी कपास, जो बारी में उपजती है (शाहा०)।
[हेंबली (देशी)]।

हेज—(सं०) पशुओं का झुंड।
[देशी]।

हेड़—(सं०) भेड़, बकरी आदि पशुओं का समूह (पू० मै०)। दे०—झुंड।

हेथ—(सं०) बैलों को रोकने की एक बोली (सा०-१)।
[देशी]।

हेर—(सं०) गायों का समूह (चंपा०-१)।
[देशी]।

हेरल—(सं०) (१) खोई हुई चीज का पता लगाना, खोजना। (२) सिर से जूँओं को निकालना। (३) देखना, कृपादृष्टि करना (मुं०)
[हेर+ल (प्र०) <हेर (देशी धा०)=देखना, खोजना (हेरई=हेरता है, खोजता है); हेरना (हि०); हेर्नु (ने०); हेर्नो (कुमा०); हेरवुँ (गु०)=खोजना, पता लगाना; हेरणे (मरा०); मिला०-हिर (लाहु०)=देखना; हेर, एर (कुल्लू); हुर (गोंडी)—(ब्लॉक)-(नेपा०)]।

हेराइल—(क्रि०) भुला जाना (सा०-१)। पर्या०—भुलाइल, हेराएल।
हेर+आइल (प्र०) < हेर (देशी धा०)]।

हेराएल—(क्रि०) भुला जाना। दे०—हेराइल। (वि०) भुलाया हुआ।

हेरा जाएल—(क्रि०) पशुओं का भुला जाना, भटक जाना। पर्या०—भुला जाइल (सा०), अनेर जाएल, अनेरवा जाएल (उ० पू० मै०), बहकल, मोरियाएल (शाहा०), बहर आएल (पट०, गया)।
[हेरा + जा + आएल (प्र०) (यौ०), हेरा < हेर (देशी धा०); जा < √ या; हेरवा (हि०); हेराउनु (ने०)=दिखलाना; हेराम्नु (ने०)=ताक-झाँक करना]।

हेलल—(क्रि०) (१) पानी की धार को तैरकर पार करना। (२) मरना (चंपा०-१)। (३) पानी में पैठना, तैरना (मुं०-१)।
[हेल+ल (प्र०); हेला (देशी)=वेग, शीघ्रता; हेलना (हि०); हेल्नु (ने०); संभ०- <अभितरति; मिला०- अभितरते-(नेपा०)]।

हेलांत—(सं०) वह धारा या गढ़ा, जिसमें कम पानी हो और डूबने का भय न हो (चंपा०-१)। पर्या०—हेलाव (भाग०)।
[हेल + आंत (प्र०), हेल < हेलल < हेल (देशी) या आंत < अन्त-(?)]।

हेला—(सं०) शूद्रों की एक जाति, जिसका पानी नहीं चलता है (दर०-१, पूर्णि०-१)।

हेलाव—(सं०) वह जलधारा या गढ़ा, जिसमें कम पानी हो और डूबने का डर न हो (द० भाग०)। दे०—हेलांत।

हेलावल—(क्रि०) (१) मवेशियों को घेरकर पानी की धारा को पार करवा देना। (२) मार डालना (चंपा०-१)। (३) पानी में उतारना, तैराना (मुं०-१)।
[हेल+आवल (ना० धा० प्र०) < हेल (देशी); हेलल (क्रि० का प्रे०)]।

हैंडनोट—(सं०) कर्ज लेने का इकरारनामा। किसी के द्वारा कर्ज लिये जाने पर एक निश्चित परिमाण की रसीदी टिकट साटकर मजमून लिखकर अंगूठे का निशान बनाकर तैयार किया गया प्रमाणभूत पत्र (सा०-१)।
[हैंडनोट (अं०)]।

हैंडिल—(सं०) किसी हथियार आदि की मूठ, हत्था।
[हैंडिल (अं०)]।

हैंतुआ—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे छाती से हलक तक फूल जाता है (पट०-१)।
[देशी]।

होंक—(सं०) सूप आदि से हवा करना (दर०-१, (पूर्णि०-१)।
[होंक < हुक्क-(?) या धौंक < धौंकल < √ ध्मा-]।

होंकल—(क्रि०) (१) सूप आदि से हवा करना। (२) सूप, पंखा आदि से हवा करके आग सुलगाना।
[होंक+ल (प्र०) < होंक < होंक < धोंक (?) < √ ध्मा (धमति, ध्मायते)]।

होरहा—(सं०) (१) मँडुए की अधपकी भुनी हुई बाल। पर्या०—ओरहा (पू० मै०), होरहा (चंपा०, द० मुं०), हाबुस (शाहा०), धुधनी, घुंघनी (गं० द०)। (२) आग में पका हुआ भुट्टा। पर्या०—ओरहा (पू०)। (३) भूनने के लिए काटा हुआ अनाज।

पर्या०—ओरहा (द० पू० मै०), होरहा (चंपा०, द० मै०)। (४) अधपकी काटी हुई फसल। पर्या०—ओरहा (द० पू० मै०), होलहा (द० मुं०)। (५) झाड़ी के साथ ही पत्तों आदि की आग में भूना हुआ अधपका चना, मटर आदि। (६) मकई, गेहूँ आदि की बाल या चने की झाड़ को आग में झुलसाकर बनाया गया एक प्रकार का भूंजा (चंपा०-१)।

[होरहा < होलहा < होलिका या होला-(?); मिला०-होलाखादनिका, अभ्यूषखादनिका=होरहा खाने का एक मनोविनोद और उत्सव (काम०)]।

होरिल—(सं०) नवजात शिशु। इस शब्द का प्रयोग लोकगीतों में होता है। पर्या०—होरिला।

[होरिल (देशी)]।

होरिला—(सं०) नवजात शिशु। दे०—होरिल।

होरी—(सं०) (१) होली। फाल्गुन-पूर्णिमा और चैत्र कृष्ण-प्रतिपदा को होनेवाला एक प्रसिद्ध त्यौहार। (२) होली के अवसर पर गाया जानेवाला विशेष प्रकार का गीत।

[होरी < होली, होलिका-]।

होलइया—(सं०) होली गानेवाला दल (पट०-१)।

[होल+इया (प्र०) < होल < होली]।

होलइया पढ़ल—(क्रि०) होली के अवसर पर अश्लील वाक्य या गीत बोलना (पट०-१)।

होलहा—(सं०) (१) अधपकी काटी हुई फसल (द० मुं०)। दे०—होरहा। (२) भूनने के लिए काटा गया अनाज (चंपा०, द० मुं०)। दे०—होरहा। (३) मँडुए की अधपकी भूनी हुई बाल (चंपा०, द० मुं०)। दे०—होरहा। (४) अधपकी भूनी हुई रब्बी की बाल।

[होलहा < होला < होलिका]।

होलाष्टक—(सं०) (१) होली के पहले आठ दिन से होली तक का दिन (पट०-१)।

[होलाष्टक < होलाष्टक-]।

होली—(सं०) फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाया जानेवाला प्रसिद्ध त्यौहार, जिसमें 'संवत्' जलाया जाता है और दूसरे दिन धूलिवंदन एवं रंगक्रीड़ा की जाती है। यह किसानों का मुख्य त्यौहार है। इसमें किसान 'संवत्' जलाने के समय हवा के रुख से अगले साल की भविष्यवाणी करते हैं।

[होली < होली, < होलिका < होला; होलिया (पा०); होलि (बं०); होल्ली (पं०); होली, होरी (हिं०, सि०); होळी (गु०, मरा०); होलि (ने०)]।

होली खेलाई—(सं०) होली के अवसर पर किसानों की ओर से पटवारी आदि को मिलनेवाला पुरस्कार। पर्या०—फगुआही।

हौंकल—(क्रि०) सूप, पंखा आदि से हवा करना (मुं०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—झेलल।

[हौंक+ल (प्र०) < हौंक < (देशी) या < धौंक < √ ध्मा]।

हौद—(सं०) रस रखने का कुंड। पर्या०—हौदी (शाहा०), चहबच्चा (गया), खँड़गरक (पट०), गुरहंडी (द० भाग०), नाद, नाँद (सं० उ०, गया)।

[हौद < हौज (अ०)]।

हौदरी—(सं०) छोटा हौज, जहाँ कड़ाह में ले जाने के पहले नील का रस एकत्र किया जाता था। पर्या०—मालझड़ी (चंपा०, उ० पू० मै०)।

[हौद+री (प्र०) < हौद < हौज (अ०)]।

हौदी—(सं०) (१) रस रखने का कुंड (शाहा०)। दे०—हौद। (२) कुएँ के पास स्थित पानी रखने का हौज।

[हौद+ई (प्र०) < हौद < हौज (अ०)]।

हौ हौ—(सं०) चलते हुए बैलों के रोकने का सांकेतिक शब्द।

[हौ+हौ (अनु०), हेइ (ने०)=गाय-भैंसों के ध्यान को आकृष्ट करने के लिए प्रयुक्त सांकेतिक शब्द]।

• •

परिशिष्ट—१

अ

अंकड़ा—(सं०) ढेंकी-कुटा चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची—१।

[अंकड़ा < अङ्कुलक-(?); मिला०-अक्कट (बा० टी० को०)]।

अनुसूची—१ (सं०) बिहार में उपजनेवाले धान तीन प्रकार के होते हैं, उत्तम, मध्यम और मोटे। उत्तम धान में, बासमती, तुलसीमंजरी, जीरासार, केलासार आदि हैं। इनका चावल महीन, छोटा और सुगंधि होता है। इनका बना भात स्वादिष्ठ और अधिक रुचिकर अथच अल्पमात्रा में ही तुष्टिकारक होता है।

मध्यम प्रकार के धान उत्तम प्रकार के धान से कुछ मोटे होते हैं। इनका चावल सामान्यतः मध्यम श्रेणी का, स्वादिष्ठ और रुचिकर होता है। इनका प्रकार अनुसूची-२ में आगे दिया जा रहा है।

मोटे किस्म के धान वे हैं, जो सामान्य, अधिक मोटे और पूर्व के दोनों प्रकार के धान से अधिक प्रचलित हैं। इनका भात सामान्य होता है। इनके प्रकार भी आगे दिये जा रहे हैं।

मोटी किस्म के धान या चावल से तात्पर्य है, वह धान या चावल, जो निम्नांकित प्रकार और विशेषताओं से युक्त हो—

नाम—कलमकाटी, परैया, बैतरनी, रथ, चौधानी (निम्न), सोतवा, सदवा, मोफरसी, पनसीर, धकनकसवा, दुही, परवा, पूस, बुसारी, डुमरकट, मोरेंगीया, जशवा, सुरशन, सहीबाना, रोसड़, भ्रमरदन, साठी, करेंगा, गवरासारी, भुली, शेरहटी, बालसार, देशगीया, बरौहर, सिदरा, दोलन, गोभाती, नरसीया, पनसेरा, खीरा, गोबेधा, मोटासाठी, बड़ुया, बनधानी, हैबोह, भोगफराटी, सारो, सरटी, सिलीबाह, रानजी, लैच, हरोनीया, गोरा, हलयैया, भौली, पोगरा, मेटगंजा, चंद्रीगोहा, रथगोवी, बदांस, उजरका, मोंझीसाल, जलहर (५८)।

विशेषताएँ—(१) इसका दाना मोटा, छोटा और चिपटी किस्म का होता है। इसका पृष्ठभाग थोड़ा उभरा और लगभग गोल होता है। (२) इसकी लंबाई और चौड़ाई का अनुपात २.५ से कम होता है। (३) दाना अपारदर्शी (मटमैला) या खड़िया के समान होता है। (४) इसमें सुगंध नहीं होती। (५) पकाने पर चावल की सहज कोमलता प्रकट हो जाती है एवं यह लसदार पिंड बन जाता है।

अनुसूची—२ (सं०) इस सूची में मध्यम प्रकार के चावल या धान गिनाये गये हैं। वे चावल या धान निम्नांकित नाम और प्रकार के होते हैं—

नाम—झूलन, कलमदान (निम्न), किशोर, सोहनी, बेगमपुरी, बकुवा, बोलदी दुलहरी, धनधाना, कालाजोरी, कलमदान (खीजरा), चौलोना, कलासार, तोसर, चक्रपतिया, कतकी, नरहीया, दोलंगी, दहीया, भवासारी, सत्यराज, पुलया, नौहीया, पनझोली, गोधीला, गरहा, कतका, गेरमखिया, शुसारी, मुनरा, साफीमोटा, मरीसा, गोपीसाल, आनंदी, खड़कीखोची, रांगो, लसी, नवादेन, परसू, साफी, बगलर, कुमारसाल, बैगनबिची, नबोदवा, भुली, कपरी, पनजोई, कनारभोग, जल्दीपीठा, अरवा, कल्याणी (५०)।

विशेषताएँ—(१) दाना कम मोटा, छोटा और चिपटा होता है। इनका पृष्ठभाग लगभग सीधा होता है, दोनों किनारे कुछ नुकीले होते हैं। (२) इनकी लंबाई और चौड़ाई का अनुपात २.५ से अधिक, किन्तु ३ से अधिक नहीं होता है। (३) दाने न तो अपारदर्शी और न स्पष्ट पारदर्शी होते हैं और बनावट में ये खड़िया रंग के भी नहीं होते। (४) इनमें सुगंध नहीं होती। (५) पकाने पर चावल लसदार पिंड तो नहीं बनता, पूरा फरहर भी नहीं होता।

अनुसूची—३ (सं०) इस सूची में वैसे धान या चावल आते हैं, जो नमी, पानी और बाहरी पदार्थ [बालू, आंकड़ (सिलिका), मिट्टी, धूल, भूँसी] के कारण विकृत, बदरंग और अंकुरित हो जाते हैं, या जिनके दाने बेरंग और जले होते हैं।

ये सभी चावल **उसना**, **मिलकुटा**, **हथकुटा** या **अरवा** होते हैं। इनमें **खुद्दी**, **लालदाने**, **टूटे दाने** और **सफेद दाने** होते हैं।

टि०—(१) पूरा दाना—इसमें समूचे या खड़े (हेड) दाने तथा पूरे दाने के ३/४ या उससे बड़े आकार के दाने सम्मिलित हैं।

(२) खुद्दी—इसमें पूरे दाने के ३/४ से छोटे आकार के तथा पूरे दाने के १/४ आकार के टुकड़े सम्मिलित हैं; चाहे वे किसी किस्म के क्यों न हों। टूटे, बेरंग और सफेद दाने टूटे दानों में ही रखे जायेंगे, खुद्दी में नहीं।

(३) लालदाने—ऐसे दाने, जिनकी १/४ से अधिक सतह लाल हो।

(४) विजातीय पदार्थ—इसमें चावल के अतिरिक्त गर्द, कंकड़, मिट्टी के कण, धान, अन्य खाद्यान्न और कण, अर्थात् पूरे चावल के १/४ से छोटे दाने सम्मिलित हों।

(५) बेरंग, टूटे और सफेद दाने—सामान्य रंग से भिन्न रंग के दाने इनमें आते हैं तथा अपरिपक्व हरे दाने भी इनमें सम्मिलित हैं। जिस दाने का आधा या आधे से अधिक भाग सफेद हो, उसे भी सफेद ही माना जायगा।

(६) पर्याप्त पालिश से तात्पर्य है ५% भूसी छाँटकर अलग करना।

यह सम्पूर्ण सूचना २७ नवंबर, १९६५ ई० के 'बिहार गजट' के असाधारण संख्या ५१८, पृ० २, 'आपूर्ति वाणिज्य-विभाग-अधिसूचना में' के शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित सामग्री से ली गई है।

अरवा—(सं०) (१) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२। (२) दे०—अरवा।
[देशी वा < अर्द्ध-]।

आ

आनंदी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[आनंदी < आनंद-(?)]।

उ

उजरका—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२। (बि०) उजला।
[उजरका < उज्ज्वलक-]।

उर्वरक—(सं०) सल्फेट, फास्फेट आदि के संमिश्रण से बनी वैज्ञानिक खाद।

उसना—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

क

कंपोस्ट खाद—(सं०) घास-पात, गोबर आदि को विशेष विधि से सड़ाकर बनाई गई खाद।
[कंपोस्ट (अँ०) + खाद]।

कतका—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२, कतिका।
[कतका < कतक-(?) = निर्मली, धोबियों द्वारा प्रयुक्त एक फली, जिससे गंदा पानी निर्मल बनाया जाता है, वा < कार्तिक-]।

कतकी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२, कतकी, कतका।
[कतकी < कतक- वा < कार्त्तिकीय-]।

कपरी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[कपरी < कदली-]।

करंगा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[करँगा < करङ्क-(?)= एक प्रकार की ईख]।

कलदार—(सं०) दे०—बट्टा।

कलमकाठी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

कलमदान—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक प्रसिद्ध धान या उस धान का चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[कलम+दान < कलम+धान्य-(?) वा कलम (अ०)= (पतला, लंबा महीन पदार्थ) + दानः (फा० = अनाज, दाना)]।

कलमदान (खीजरा)—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक प्रसिद्ध धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[कलमदान+खीजरा < कलमदान (अ०+फा०)+ खिजरा < खिज्र (?) वा < खज (तुर्किस्तान का एक सुहावना प्रदेश)]।

कलासार—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[कला + सार < कला + शालि-(?) वा काल + शालि-]।

कल्याणी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२
[कल्याणी < कल्याणी]।

कसारभाँग—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[कसार+भाँग < कासार (=तालाब)+भङ्गा-(?)]।

काँटी—(सं०) (१) मिट्टी का बना विशिष्ट प्रकार का बरतन, जिसमें गाय-भैंस का दूध दुहा जाता है (शाहा०-३)। दे०—कटिया। (२) कील, काँटा।
[काँटी (१) < कटक-(?) < √ (कट्=बरसना, ढकना)। मिला०—कट्वर- (=दही का पानी, दुग्ध-पदार्थ), < कण्टक-]।

कालाजोरी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[काला+जोरी (देशी) या < कालजोड-(?)]।

किशोर—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[किशोर < किशोर-(?)]।

कुँपारी—(सं०) दे०—बट्टा।

कुमारसाल—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[कुमार+साल < कुमारशालि-(?)]।

कुरताली पेटावाला—(सं०) (उ० प्र०)। दे०—सिकमी।

ख

खड़कीखोंची—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[खड़की + खोंची (देशी)]।

खहिहन—(सं०) खाने की सामग्री (चंपा०-२)।
[खहिहन < खहि+हन < खाद+धान्य-]।

खीरा—(सं०) एक प्रकार का मोटा चावल या धान (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१। (२) एक प्रसिद्ध फली।
[खीरा < क्षीरक-(?)]।

खुद्दी—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

ग

गदरा—(सं०) (१) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[गदरा < गदर (देशी)]।

गैरनथिया—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[गैरनथिया < जगरनथिया < जगन्नाथ-(देवता के नाम पर या जगन्नाथपुरी से लाया हुआ धान), मिला०-जगरनथिया]।

गोटा—(सं०) (१) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१। (२) सरसों।
[गोटा < गोटक-(?)]।

गोपीसाल—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[गोपी+साल < गोपीशालि-]।

गोभाती—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[गोभाती (देशी)-(?)]।

गोबेथा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[गोबेथा (देशी)]।

गोरा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[गोरा < गौर-(?)]।

घ

घुसारी—(सं०) (१) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२। (२) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[घुसारी < घुसृण-(=केसर)-(?)]।

च

चंद्रीगोहा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[चन्द्रीगोहा < (?)]।

चउरा—(सं०) दे०—चौरा।

चखपतिया—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[चखपतिया < चक्षुष्पत्रिक-(?) या (देशी)]।

चनथाना—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[चनथाना < चणकस्थानीय-(?)]।

चनधानी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[चनधानी < चणकधानीय- या चणक-धान्य-(?)]।

चावल मोटा, मध्यम—(सं०) चावल के तीन प्रकार होते हैं—मोटा, मध्यम और महीन या उत्तम। इनमें मोटा या मध्यम से तात्पर्य उस धान या चावल से है, जो क्रमशः अनुसूची-१ और अनुसूची-२ में उल्लिखित है।

चुकिया—(सं०) पानी पीने का मिट्टी का छोटा बरतन। दे०—चुक्का, चूंका।

चूंका—(सं०) मिट्टी का बना छोटे मुंह का बरतन, जिससे पानी पीया जाता है या बच्चे खेल खेलते हैं और दिवाली के दिन लावा-फरही भरकर खाते-खिलाते हैं (शाहा०-२)। पर्या०—चूंकिया (शाहा०)।
[चूंका < चुक्का < चुक-(?) वा (देशी)]।

चूंकिया—(सं०) दे०—चूंका।

चौधाती—(सं०) निम्न श्रेणी का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[चौधाती (देशी) वा < चतुर्धाकी (?)]।

चौरा—(सं०) (१) चावल। (२) चावल से संबद्ध खेत आदि, चौराहा। (बि०) चौड़ा।

चौलोना—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[चौलोना (देशी) वा < चतुर्लवणक-(?)]।

चौसेरा—(सं०) चार सेर की तौल। (बि०) चार सेर की तौल का चावल आदि।
[चौ+सेरा < चतुःसेटक-]।

ज

जंग—(सं०) (१) लोहे आदि पर लगा विकार-विशेष, जिससे वह धातु नष्ट होने लगता है। पर्या०—जड़। (२) लड़ाई।

जड़—(सं०) दे०—जंग।

जथापूंजी—(सं०) स्वाधिकृत धन। दे०—जथा।

जमींदारी उन्मूलन—(सं०) कानून द्वारा सन् १९४८ ई० के जमींदारी (स्थायी बंदोबस्ती) को हटाकर किसान को स्वामित्व प्रदान करने की प्रक्रिया।

जमींदारी बौंड—(सं०) जमींदारी लेने के बाद सरकार की ओर से क्षतिपूर्ति के रूप में दिया जानेवाला विशेष प्रकार का सरकारी कागज (बौंड)।

जरल—(क्रि०) (१) जलना, आग लगना। (२) धान उसनने या भुनने आदि के समय जल जाना या बरतन में लग जाना। (३) डाह करना, जल-भुन जाना।
[जरल < ज्वलन < √ ज्वल्]।

जलहर—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१। दे०—जलोहर।
[जलहर < जलधर-(?)]।

जल्दीपीठा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

जवाकुसुम—(सं०) लाल रंग का एक प्रसिद्ध फूल। इसका अधिक उपयोग देवीपूजा और औषध में भी होता है।
[जवाकुसुम < जपाकुसुम-]।

जसावा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१। दे०—जसवा।
[देशी, वा < जशवन्त (पुर) = स्थानविशेष का नाम-]।

जहरमोहरा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध फूल। (२) एक औषध-विशेष।

जांगर—(सं०) मवेशी, पालतू पशु।
[जांगर < जङ्गाल-(=तेज चलनेवाला, भागनेवाला) वा (देशी)]।

जांतल—(क्रि०) जांतना, किसी भारी वस्तु से किसी पदार्थ को दबाना।
[जांत+ ल (प्र०) < जांत < यन्त्र < √ यन्त्र (यन्त्रयति, नियन्त्रयति)]।

जाब्ता फौजदारी—(सं०) फौजदारी मुकदमे से संबद्ध कानून। मिला०—जाब्ता दिवानी।

झ

झरना—(सं०) (१) झरना, निर्झर। (२) लग्गी में बांधकर अनाज झाड़ने के प्रयोग में आनेवाला झाड़न-विशेष (शाहा०-३)। पर्या०—झरनी (शाहा०-३)।
[झरना < झाड़ल (बि० क्रि०)]।

झरनी—(सं०) दे०—झरना।

झरमरदन—(सं०) एक प्रकार का मोटा चावल या धान (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१, झलमरदन।

झीली—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

झूलन—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

झूली—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

ट

टघरल—(क्रि०) धीरे-धीरे चलना। दुर्बलता के कारण चलने में अशक्त होना।

टटका—(बि०) ताजा, तुरत का।

टलहा—(सं०) खोटा रुपया आदि। (बि०) टाल से संबद्ध।

टहरी—(सं०) दे०—टेहरी।

टारल—(क्रि०) दौनी के समय लग्गी से फसल की डाँट ऊपर-नीचे करना, टालना।

टूटदाना—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

ड

डकरा—(सं०) एक विषैला पौधा। (२) विष।

डाक—(सं०) घाघ के समान अर्धकल्पित व्यक्तिविशेष, जिसकी खेती-विषयक कहावतें प्रसिद्ध हैं। (२) डाक, पत्रालय-संबंधी।

डोलपात—(सं०) (द० भाग०)। दे०—दोल्हापाती।

त

ताड़गुड़—(सं०) ताड़ के रस से बनाया गया गुड़ (शाहा०-३)।

तालमिसरी—(सं०) ताड़गुड़ या तालचीनी से बनने-वाली मिसरी (शाहा०-३)।

तितलौकी—(सं०) कड़ुआ लौका। इसकी तरकारी नहीं बनती है, बल्कि तुंबी आदि बनती है।

तोसर—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी, मिला०-तसर < त्रसर-]।

थ

थंभ—(सं०) केले का धड़ या पूरा पौधा। (२) खंभा।

थथुआ—(सं०) घर छाने का चौड़ा खपड़ा। मिला०—नरिया।

थम्भ—(सं०) दे०—थंभ।

थला—(सं०) थल्ला, आलवाल। दे०—थल्ला।

थवना—(सं०) दे०—थौना।

थौना—(सं०) चूल्हे के पास बना ऊँचा स्थान, जिसपर बरतन रखकर माँड़ पसाया जाता है (शाहा० ३)।

द

दहीया—(सं०) मध्यम श्रेणी का धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[दहीया < दधिक-(?) < दधि-]।

दुमरकट—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

दूही—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

देशमीया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

दोलंगी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

दोलन—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

दोल्हापाती—(सं०) गाँव का एक प्रसिद्ध खेल, जो वृक्षों की शाखों पर चढ़कर तथा भूमि पर दौड़कर खेला जाता है। यह प्राचीन खेल 'उद्दालकपुष्पभञ्जिका' की परम्परा का प्रतीत होता है। पर्या०—डोलपात (द० भाग०)।
[दोल्हापाती < दुर्लभप०ी का दल + पत्री; इस खेल में वृक्ष की टहनियों और पत्तों का सम्बन्ध रहता है, इसलिए यह नाम संभाव्य है।]।

ध

धकनकसवा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

धार कराएल—(मु०) दे०—धार पिटावल।

धुमनहमा—(सं०) एक प्रकार का खट्टा आम (द० भाग०)। दे०—धुमनामा, धुमनाहा।
[धुमनहमा < धूमगन्धाम्र-(?)]।

धौकल—(क्रि०) धूँकना। हवा करना। दे० धौंकल।
[धौंक +ल (प्र०) धौंक < √ ध्मा (?)]।

धौगल—(क्रि०) दौड़ना।
[धौग + ल (प्र०) < धौग < धावक (?)]।

न

नबोदबा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

नरसीया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[नरसीया < नरसी (किसी ग्राम या व्यक्ति के नाम पर)]।

नरहीया—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[नरहीया < नरहा (?)]।

नबाडेन—(सं०) मध्यम श्रेणी का धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

नादी—(सं०) (१) दही जमाने का चौड़े मुँह का मिट्टी का बरतन (शाहा०-३)। (२) नाद।
[देशी]।

नोधीखा—(सं०) मध्यम श्रेणी का धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

नौहीया—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

प

पक्खसीर—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[पक्खसीर < पक्षसार-(?)]।

पखा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[पखा < पक्षक-(?)]।

पनजोई—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०-अनुसूची-२।
[पन + जोई < पक्षज्योतिर्-, या पान < पर्ण, जोई < ज्योतिर्-(?)]।

पनभौली—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

पनसेरा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[पनसेरा < पक्षसेटक-(?), वा (देशी)]।

परैया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

पर्जंटी—(सं०) अंचलाधिकारी के कार्यालय से मिले बीज का विशेष धान (चंपा०-३)।
[पर्जंटी<प्रोजेक्ट (अं०)]।

पहसू—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[पहसू < पहसुल (=हँसुआ) < प्रहास-(?)]।

पुलया—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

पूंख—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[पूँख < पुष्प-(?)।

पैठिया—(सं०) (१) 'दौनी' करने में किनारे का अंतिम बैल (शाहा०-३)। (२) गाँव का बाजार।
[पैठिया (देशी)]।

पोगरा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

फ

फेरवांक—(सं०) पशुओं का व्यापार करनेवाला, फेरहा (सं० पु०)।

ब

बंगलवा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[बँगलवा < बँगला < बंगाल]।

बकुवा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२, बकवा।
[(देशी) या < बक-]।

बगलर—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

बडूया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

बड़ेर—(सं०) घरन के ऊपर मलिया पर स्थित लंबी लकड़ी की शहतीर (शाहा०-३)।

बर्रास—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

बरोहर—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[बरोहर<बरोहर<बट + प्ररोह-(?), वा देशी]।

बालसार—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[बाल + सार < बालशालि-(?)]।

बिहार भूमिसुधार कानून—(सं०) सन् १९४८ ई० में पारित बिहार की कृषियोग्य भूमि के सुधार का कानून या विधि। इसके अनुसार भूमि का स्वामी किसान होता है और सरकार एवं किसान के बीच कोई मध्यस्थ नहीं रहता है।

बेहुँडी—(सं०) दूध गरम करने तथा दही मथने का मिट्टी का बड़ा बरतन (शाहा०-३)।
[देशी (?), बहु + भाण्ड-(?)]।

बेघमपुरी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[बेघमपुर < बेगमपुर=गाँवविशेष का नाम]।

बैंगनबिची—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[बैंगन + बिची, बैंगन < बिगुण-(?) वा वृन्ताक-; बिची < बीज-(?)]।

बैतरनी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[बैतरनी < बैतरणी (=नरकलोक की एक नदी, उड़ीसा-प्रदेश की एक प्रसिद्ध नदी)]।

बोलवी बुलहरी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

भ

भलासारी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[भलासारी < भद्रशालि-]।

भूली—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

भोगपराटी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[भोग + पराटी (देशी)]।

म

मरीसा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

मलिकथम्म—(सं०) घरन के ऊपर का खंभा (शाहा०-३)। मिला०- मनिकथम्म।
[मलिकथम्म < माणिक्यस्तम्भ-(?) या मल्लिक-स्कम्भ, मल्लिक- (=मलिया)]।

मलिया—(सं०) (१) 'मलिकथम्म' के ऊपर रखा जानेवाला लकड़ी का बरतन जैसा गहरा उपकरण-विशेष, जिसके ऊपर लंबी बरेंड़ रखी जाती है (शाहा०-३)। (२) तेल रखने का छोटा बरतन।
[मलिया < मल्लिक-, मल्लक-]।

माँझीसाल—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[माँझी + साल, माँझी < मध्यम-(?), साल < शालि-]।

मिलकुदा—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

मुआवजा—(सं०) (१) जमींदारी-उन्मूलन-कानून, सन् १९४७ ई० के अनुसार भूतपूर्व जमींदारों को सरकार की ओर से जमींदारी के बदले मिलनेवाली रकम। (२) क्षतिपूर्ति की रकम।
[<मुआवजः (अ)]।

मुनरा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

मुरैना—(सं०) धान की तरह का एक घासजातीय पशुखाद्य अनाज। इसका पौधा धान के पौधे के समान होता है (शाहा०)। दे०—मुनरा।
[मुरैना < मूलान्न-(?)]।

मेहगंजा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[मेहगंजा < मेहगंज = स्थान-विशेष का नाम]।

मोटा साठी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[मोटा + साठी, मोटा < मोहक-(?) साठी < षष्टि-]।

मोफरसी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

मोरंगीया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[मोरंगीया < मोरंग (= स्थान-विशेष, नेपाल का पूर्वी प्रदेश)]।

र

रथ—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[रथ (देशी-?)]।

रांगो—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[रांगो < रांग < रङ्ग-(?)]।

रानजी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

रोस्त—(सं०) एक मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

ल

लबो—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

लालदाना—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

लैच—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०) दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

श

शेरहटी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[शेरहटी < शेरहाट (?) या शेरघ.ड-]।

स

सतराज—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[सतराज < सत्यराज-(?) या सत्त्वराज-(?)]।

सत्यराज—(सं०) दे०—सतराज।

सदवा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

सफेद दाना—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

सरही—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

सहीबाना—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[सहीबाना < साहिब]।

साठी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[साठी < षष्ठिका < षष्ठि-]।

साफी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[साफी < साफ-]।

साफीमोटा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[साफी + मोटा (धी०)]।

सारो—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[सारो < सार < शालि-(?)]।

सिदरा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी, या सिन्दूर-(?)]।

सिलीबाह—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

सुरशन—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी, या < सुराशन-(?)=देवों का भोजन। मिला०-राजभिर्भुज्यन्ते इति राजभोजनाः शालयः—सिद्धा० कृद०]।

सोतवा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[सोतवा < स्रोतस्-(?), किसी सोता या जलधारा के निकट के क्षेत्र में उपजने के कारण ऐसा नाम पड़ता है]।

सोहनी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[सोहनी < सोहना (बि० क्रि०) या < शोभनी, शोभनीय-]।

ह

हथकुटा—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

हरोनीया—एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी, या हरणीय-(?)]।

हलूवैया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[हलुवैया < हलवाई]।

हैयाह—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

• •

परिशिष्ट—२

(प्रस्तुत कोश में प्रयुक्त कहावतें)

अंठिया—कोढ़ि कटनिहार के मुंगर सन आँठी।

अखाड़—जेकर बनल अखड़वा रे तेकर बारहो मास।

अदरा—अदरा मास जे बोये साठी।
दुख के मार निकाल लाठी॥

अरदरा—(क) अरदरा धान, पुनरवस पैया,
गेल किसान, जे बोये चिरैया।
(ख) आदि न बरसे अरदरा हस्त न बरसे निदान।
कहहि डाक सुनु भिल्लरी भये किसान पिसान॥
(ग) चढ़त बरसे अरदरा उतरत बरसे हस्त।
कतेक राजा दाँड़े, रहे अनंद गिरहस्त॥
(घ) अरदरा बरसे सभ किछुहीं।
एक जवास पतर बिन भौं॥

असरेखा—जे न भरे असरेखा मग्घा।
फेर भरे असरेखा मग्घा॥

ईँटा—मन में आन, बगल में ईँटा।

उखापाती—उखापाती घूघू, लछमी घर दरिद्रा बाहर।

उखांब—तीन पटावन तेरह कोड़न।

उखेड़ा—धान पान उखेरा, तीनों पानी के चेरा।

उतरा—उतरा में जनि रोपहु भैया।
तीन धान होए तेरहे पैया॥

उदंत—उदंत बरदे उदंत बिआय,
आप जाय या खसमे खाय।

ककड़ी—(क) निकोरिया गेलाह हाट, कांकरि देखि हिया फाट।
(ख) एक हाथक कांकरी नौ हाथक बीया।

कजरा—बैल लीजै कजरा, दाम दीजै अगरा।

कनाई—ऊख कनाही काहे ले, स्वाती पानी पाये ले।

कुसुम—बाप रहल पेटे, पूत गेल बरियात।

केवाल—असल के बेटी अउ केवाल के खेती।

कोढ़ि—कोढ़ि बरद के फेफरी बहुत।

खेसारी—तुरुक तारी, बैल खेसारी, बाभन आम, कायथ काम।

गुंडा—गुंडा खाय, मुनुंडा होय।

गुदार—कोढ़ि कटनिहार के मुंगर सन आँटी।

गेरुआई—नीचे ओद ऊपर बदराई; घाघ कहे **गेरुआई** अवधाई।

गोन—बैल न कूदे कूदे **गोन**, एह तमासा देखे कौन।

गोनर—गोआरक **गोनर** दुहू दिस चिक्कन।

घूर—घर जरय हय, **घूर** बुताय।

घोंची—**घोंची** देखे ओहि पार, थैली खोले यहि पार।

घास—सौ **घास** गंडा पचास घास मंडा,
तेकर आधा मोरी, तेकर आध तोरी।

चिखुरल—खाड़ होखऽ तऽ फोड़ऽ बइठऽ तऽ **चिखुर**ऽ।

छदांत—मुड्ल बरदा **छकड़ी**।

छान—गदहा गेलाह सरग **छान** लगले गेलैन्हि।

जड़हन—अरहर दाल, **जड़हन** भात,
गागल निबुआ औ घिउ तात।

जोरी—**जोरी** जरि गेल, ऐंठन ठामे।

झिलेंगा—**झिलेंगा** खटिया बातलि देह, तिरिया लंपट हारे गेह।
बेना बिगरि कै मुदइ मिलंत, कहे घाघ ई बिपति के अंत॥

तमाकू—(क) चून **तमाकू** सान के बिन माँगे जे दे।
सुरपुर, नरपुर, नागपुर तीनू बस कर ले॥
(ख) भोर भये मानुस सब जागे, **हुक्का** चीलम बाजन लागे।
(ग) खैनी खाये न **तमाकू** पीये, से नर बतावऽ कैसे जीये।
(घ) तमाखुपत्रं राजेन्द्र भज माज्ञानदायकम्।
(ङ) चतुर्भिर्मुखैरुत्तरं तेन दत्तं तमालं तमाखं तमालं तमालम्।
(च) क्वचिद् **हुक्का**, क्वचित् **चुक्का**, क्वचिन्नासाप्रवर्त्तिनी।
एषा त्रिपथगा गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम्॥
(छ) कोई ए **खाधी** कोई ए पीधी, कोई ए लीधी **नास**।
तमाकुनी निंद्रा करे तेनो जय सत्यानास॥ (गुज०)

तलाब—ताल त भोपाल ताल और सभ तलैया।
राजा त सिवसिंघ और सभ रजैया॥

ताका—**ताका** भैंसा गादर बैल नारि कुलच्छिनि बालक छैल।
इनसे बाँचे चातुर जागे, राज छाड़ि के साधै जोग॥

तेंतर—**तेंतर** बेटी राज दिलावे, तेंतर बेटा भीख मँगावे।

पजाखा—बकरी करे **पजाखा** तब डायन कहे कि हमरे चर्चा करे छै।

पोखरि—**पोखरी** रजोखरि और सभ पोखरा।
राजा सिवसिंघ और सभ छोकरा॥

पौला—मूषन पहिरि हर जोतै, औ **पौला** पहिरि निरावै।
घाघ कहे ई तीनों भकुआ, सिर बोझा औ गावै॥

बड़होखाना—ई बुरिबक गाम कमैताह, जनिका गखानी न बसुला।

बैंगन—काहू के भंटा बैरी काहू के भंटा पंथ।

बैल—(क) **बैल** बेसाहे चललहऽ कन्त, बैल बेसहिह दुन्दु दन्त।
काछ कसौटी साँबोर बान, ई छाडि किनिहऽ मति आन।
जब देखिहऽ रूप थौर, टका चारि दीहऽ उपरौड़।
जब देखिह मैना, तब एहि पार सँ करिहऽ बैना।
जब देखिहऽ बैरिया गोल, उठ बैठ के करिहऽ मोल।
जब देखिह करियवा कन्त, कैला गोला, देखिह जनु दन्त।
(ख) सरगपताली भौंआटेर, आपन खाय परोसिया हेर।

भाड़—थोड़ा जोतै बहुत हेंगावै डायन बाँधे आड़।
ऊँचे पर खेती करै पैदा होवै **भाड़**॥

भार—जौ जरि गेल, भारला बाँधल छी।

भुस्सभुलवा—छुट्टल घोड़ **भुस्सभुलवहि** ठाढ़।

भैंस—(क) खेत **महिसी** चरे पड़रुहि मार।
(ख) खेत खाय गदहा, मार खाय जोलहा।

मंड़ुआ—(क) जब **मंड़ुआ** के गाछी भेल, धिया पुता सुख माछी भेल।
(ख) जब **मंड़ुआ** के बाल भेल, धिया पुता के गाल भेल॥
(ग) कोदो **मंड़ुआ** अन नहीं, जोलहा धुनिया जन नहीं।

मकुनी—आठ कठौती मठा पीवे, सोरह **मकुनी** खाइ।
उसके मरे न रोइये, घर के दलिद्दर जाइ॥

मचोल—बाबू भैया **मचोल** पर छोड़ा मौड़ा हेठ में।

मुलगा—**मुलगा** मच्छड़, मोखतार मालजादी,
ई चारो से साहबगंज की आबादी।

रहिला—एहि रहिला के पूरि कचौरी, एहि रहिला के दाल।
एहि रहिला के कैलौं खिचरा, बहुत मोटैले गाल।

राड़जाति—काएथ किछु लेले देलें, बरहमन खिऔलें।
धानपान पनियौलें औ **राड़जात** लतियौलें॥

रेंड़—जहाँ गाछ न बिरिछ तहाँ रेंड़ पुरधान।

रोप—रजपूत अउर धान के ओर नाहीं।

साठी—**साठी** पाके साठ दिन, बरखा होवे रातदिन।

सेढ़ा—**सेढ़ा** साठी साठ दिन, जँव देव बरसे रातदिन।

हेंगाएल—थोर जोतिहऽ बहुत **हेंगइहऽ** ऊँच के बाँधिहऽ आरि।
उपजे तऽ उपजे, नाहि तऽ पाचे दीहऽ गारि॥

• •

परिशिष्ट—3

(कतिपय अन्य कृषि-संबंधी कहावतें)

अगहन जे बरसे मेघ, धन ओ राजा धन ओ देस।

अगहन दोबर पूस ड्यौढ़ा, माघ सवाई, फागुन बरसे घरहू के जाई।

अदरा गेल तीनि गेल, सन साठी कपास।
हथिया गेल सब गेल, आगिल पाछिल चास॥

आधा चित्रा राइ मुराइ, आधा चित्रा जौ केराइ।

ऊगे अगस्त पन फूले कास, अब नाहीं बरखा के आस।

एको पानि जौं बरसे स्वाती, कुरमिन पहिने सोनापाती।

ओआ बोआ बहे बतास, तब होवा बरसा के आस।

करके भीजे कंकरी, सिध गरजे जाए।
कह भड्डर सुनु भड्डरि कुत्ता भात न खाए॥

काँसी कुसी चौठ के धान, अब का रोपब धान किसान।

कुसी अमावस चौठी चान, अब का रोपब धान किसान।

कित्तिका चूए छौ ले चूए, जौं रोहिनि नाहि कादो करे।

चितरा बरसे माटी मारे, आगे भाइ गेंहु के कारे।

चैत के पछेया, भादो के जल, भादो के पछेया, माघ के फल।

छपन के उगे तो क्या भये, निरमल रैनि करन्त।
किये जल देखिहऽ सगरा कामिनि कूप भरन्त॥

जब जनिहऽ खरचाक हीन, कित्तिका में तूं बोइहऽ चीन।

जौं पुरवा पुरवैया पावे, सुखले नदिया नाओ बहावे।

जौं बरसे वैसखवा राऊ, एक धान में दोबर चाऊ।

तीतिर पंख मेघा उड़े, ओ विधवा मुसकाए।
कहे डाक सुनु डाकिनि, ऊ बरसे, ई जाए॥

पानी बरसे आधा पूस, आधा गेहूँ आधा भूस।

पुख पुनरबस बोए धान, माघा असलेखा कादो सान।

पुरवा पर जौं पछवा बहै, बिहँसि रॉड़ बात करै।
एह दोनों के इहे बिचार, ऊ बरसे ई करे भतार॥

पुरवा रोपे पूर किसान, आधा पपरी आधा धान।

फागु कराइ चैत चुक कितिक नहुहि तार।
स्वाती नहुहि माघ तिल कहि गए डाक गोआर॥

बेदविदित ना होवे आन, बिना तुला नहि फूटे धान।

सुख सुखराती देव उठान, तकरै बरहु करहु नेमान।
तकरै बरहै खेत खरिहान, तकरै बरहै कोठिए धान॥

बोली लुखरी, फूले कास, अब नाही बरखा के आस।

मग्घा लगावे घग्घा, सिवाती लावस टाटी।
कहतारी हाथी रानी, हमहूँ आवत बाटी॥

माघ के गरमी, जेठ के जाड़; पहिला पानी भर गेल ताड़।
घाघ कहै हम होबौ जोगी; कुआँ का पानी धोइहें धोबी॥

मिरिगसिरा तबय, रोहिनि लबय, अरदरा जाय बुदबुदाय।
कहै डाक सुनु भिल्लरि, कुत्ता–भात न खाय॥

रात निबद्दर (रातुक चकमक) दिनकें छाया।
कहे घाघ जे बरखा गया॥

रातुक कागा, दीनुक सियार, कि झरि बादर कि उपतार।

साओनक पछवा दिन दुइ चार, चुल्हिक पाछा उपजे सारि।

साओन के पुरवा, भादों पछिया जोर।
बरधा बेच सामी, चल देस का ओर॥

साओन पछवा, भादव पुरवा, आसिन बहे इसान।
कातिक कंता सिकिओ ना डोले, कतय के रखबहु धान॥

साओन पछेया नहि भरे, भादों पुरवा पथल सड़े।

साओन मास बहै पुरवैया, बेचहु बरद, कीनहु गैया।

साओन सुकला सप्तमी, उगके लुकहि सूर।
हाँको पिया हर बरद, बरखा गेल बड़ी दूर॥

साओन सुकला सप्तमी, उदै जो देखे भान।
तुम जाओ पिया मालवा, हम जैबों मुलतान॥

साओन सुकला सप्तमी छपिकै ऊगहि भान।
तौ लगि मेघा बरसे जौं लगि देव उठान॥

साओन सुकला सप्तमी जौं गरजे आधी रात।
तुम जाओ पिया मालवा हम जैबों गुजरात॥

साओन सुकला सप्तमी, रैनि होहि मसियार।
कह भड्डर सुनु भड्डरि, परबत उपजे सार॥

सुक करे बदरी, सनीचर रहे छाए।
ऐसन बोले भड्डरि, बिन बरसे नहि जाए॥

हथिया बरसे तीन होत बा सक्कर, साली, मास।
हथिया बरसे तीन जात बा तील, कोदो, कपास॥

हथिया बरसे चितरा मँड़राय।
घर बैसे धनहा रिरियाय (अगराय)॥

●●

ग्रन्थ-संकेत

[शब्द-संकेत के लिए कोश का प्रथम खण्ड द्रष्टव्य

अथर्व० = अथर्वसंहिता, अथर्ववेद
अमर० = अमरकोश
अयो० का० = अयोध्याकाण्ड, वा० रा०
अर० का० = अरण्यकाण्ड, वा० रा०
अर्थ० = अर्थशास्त्र, कौटल्य अर्थशास्त्र
अर्थ० सी० प्र० = अर्थशास्त्र, सीताध्यक्ष-प्रकरण
अष्टा० = अष्टाध्यायी, पाणिनि-कृत संस्कृतव्याकरण
आप०, आपस्तम्ब = आपस्तम्ब, आपस्तम्बगृह्यसूत्र
आप० गृ० सू० = आपस्तम्बगृह्यसूत्र
आप० ध० सू० = आपस्तम्बधर्मसूत्र
आप० श्रौ० सू० = आपस्तम्बश्रौतसूत्र
इण्डि० एपि० = इण्डियन एपिग्राफी : डी० सी० सरकार
इण्डिया, इं० ऑव कल्प० = इण्डिया ऑव वेदिक कल्पसूत्राज : डा० रामगोपाल
उज्ज्वल० टी० = उज्ज्वलदत्त-कृत गृह्यसूत्र की टीका
उवट० = यजुर्वेद का उवट-कृत भाष्य
उ० सू० = उणादिसूत्र, दशपाठी अष्टाध्यायी के अन्तर्गत उणादिसूत्र
ऋ०, ऋक्, ऋ० सं० = ऋक्संहिता, ऋग्वेद
का० सं० = काठकसंहिता (यजुर्वेद का एक भाग)
कृ० परा० = कृषिपराशर
कौ० गृ० सू०, कौ० सू० = कौशिकगृह्यसूत्र
क्लासिकल एज = हिस्टरी ऑव क्लासिकल एज, भारतीय विद्याभवन, बम्बई
खा० गृ० सू० = खादिरगृह्यसूत्र
गीता० = श्रीमद्भगवद्गीता
गृ० र० = गृह्यरत्न
गो० गृ० सू० = गोभिलगृह्यसूत्र
गोविन्दस्वामी = गोविन्दस्वामिकृत बौधायनधर्मसूत्र की टीका
गौ० = गौतम, गौतमस्मृति
गौ० सू० = गौतमसूत्र
जै० पैप्प० सं० = जैमिनीय पैप्पलादसंहिता
तै० सं० = तैत्तिरीयसंहिता
द० वै० ए० = द वैदिक एज : आर० सी० मजूमदार, भारतीय विद्याभवन, बम्बई
द्रा० गृ० सू० = द्राह्यायणगृह्यसूत्र

धर्मशास्त्राज = ए स्टडी इन देयर ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमेण्ट एस्० सी० बनर्जी
निरु०, निरुक्त = महर्षि यास्क-कृत निरुक्त
नीति० वा० = नीतिवाक्यामृत
परा० = पराशरस्मृति
पस्पशा० = पस्पशाह्निक, पातञ्जल महाभाष्य का पस्पशाह्निक
पा० का० भा० = पाणिनिकालीन भारत : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल
पा०, पा० अ० = पाणिनीय अष्टाध्यायी, व्याकरण-ग्रन्थ
पै० सं० = पैप्पलादसंहिता
बृह० = बृहस्पतिस्मृति
बृहदा० उप० = बृहदारण्यक उपनिषद्
बौ० गृ० सू० = बौधायनगृह्यसूत्र
बौ० ध० सू० = बौधायनधर्मसूत्र
बौ० श्रौ० सू० = बौधायनश्रौतसूत्र
भाग० = भागवतपुराण
मनु० = मनुस्मृति
महा०, महाभा० = महाभारत
महा० सभा० = महाभारत, सभापर्व
मही०, महीधर० = यजुर्वेद का महीधर-कृत भाष्य
मा० गृ० सू० = मानवगृह्यसूत्र
माध्य० सं० = माध्यन्दिनीय संहिता (यजुर्वेद)
मै० सं० = मैत्रायणीसंहिता
यजुः० = यजुर्वेद, यजुःसंहिता
याज्ञ० = याज्ञवल्क्यस्मृति
रा० का० भा० = रामायणकालीन भारत
राज० = राजतरङ्गिणी : कल्हण
रामा०, रामायण = वाल्मीकीय रामायण
वन० = वनपर्व, महाभारत
वनौ० = वनौषधिवर्ग, अमरकोश
वराहसं० = वराहसंहिता, बृहत्संहिता : वराहमिहिराचार्य
वा० = वार्त्तिक, पाणिनीय अष्टाध्यायी पर कात्यायन-कृत
वाच०, वाचस्पत्य० = वाचस्पत्यकोश
वा० रा० अयो० = वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड
वा० रा० उ० का० = वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड

वृ० हारीत = वृद्धहारीत
वै० ए० = वैदिक एज, द वैदिक एज, भारतीय विद्या-भवन, बम्बई द्वारा प्रकाशित
शत० = शतपथब्राह्मण
शा० श्रौ० सू० = शाङ्खायनश्रौतसूत्र
शान्ति० = शान्तिपर्व, महाभारत
साम० टी० = गोभिलगृह्यसूत्र पर सत्यव्रत सामश्रमी की टीका
सायण = सायण-कृत वेदों का भाष्य
सि० कौ० = सिद्धान्तकौमुदी, भट्टोजिदीक्षित-कृत व्याकरण-ग्रन्थ
सी० प्र०, सीता० = सीताध्यक्ष-प्रकरण, अर्थशास्त्र
स्कन्द० = गोभिलगृह्यसूत्र पर स्कन्दस्वामी की टीका
हि० ऑव धर्म०, हिस्टरी० धर्म० = हिस्टरी ऑव धर्मशास्त्राज : पी० वी० काणे

• •